

ज्ञानपीठ सूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [प्राकृत ग्रन्थाः

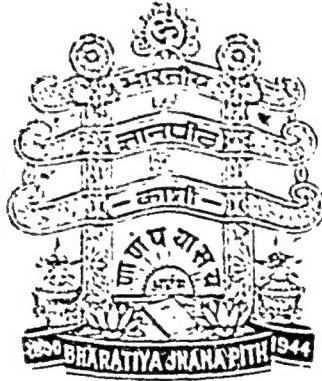
भगवंत भूदवल्लि भडारय पणीदो

म हा बं धो

[महाधवल सिद्धान्त शास्त्र]

श्री म
१ पढमो पयडिवंधादियारो

प्रथम भाग प्रकृतिबन्धाधिकारः
हिन्दी भाषानुवाद सहित



सम्पादकः—

पं० सुमेरुचन्द्रो दिवाकरः शास्त्री न्यायतीर्थः

वी० ए०, एल०-एल० वी०, सिवनी

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

प्रथम आवृत्ति
एक सहस्र प्रति

ज्येष्ठ, वीर नि० सं० २४७३
वि० सं० २००४
मई १९४७

{ मूल्यम्—१२)
{ द्वादश रूप्यकाणि

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में

तत्सुपुत्र सेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा

संस्थापित

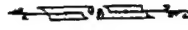
ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध विषयक जैन साहित्य का अनुसन्धान, उसका मूल और यथासंभव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन होगा । • जैन भंडारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानों के अध्ययनग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे ।

R693

818/1147

2802/03



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक—(प्राकृत विभाग)

प्रो० डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०, मॉरिस कॉलेज, नागपुर ।

प्रो० डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०, राजाराम कॉलेज, कोल्हापुर ।

प्राकृत ग्रन्थाङ्क १

प्रकाशक—

अयोध्याप्रसाद गोयलीय,

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी ।

मुद्रक—पं० पृथ्वीनाथ भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, काशी ।

स्थापनाव्द
फाल्गुन कृष्ण ६
वीर नि० २४७० }

सर्वाधिकार सुरक्षित

{ विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी १९४४ }



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JNANA-PITHA MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMAL

PRAKRIT GRANTHA No. 1

Bhagwant Bhoodabali Bhadaraya Paneedo

MAHABANDHO

[MAHADHAVAL SIDDHANTA SHASTRA]

Padhamo Payadi bandhahiyaro

Vol. 1

PRAKRITI BANDHADHIKARA

॥॥॥

HINDI TRANSLATION



EDITOR

Pt. SUMERU CHANDRA DIWAKAR, SHASTRI,
NYAYATIRTHA, B. A., LL. B., SEONI C. P.

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI.

First Edition 1000 Copies. }

JYESHTHA, VIR SAMVAT 2473
VIKRAMA SAMVAT 2004
MAY, 1947.

{ Price Rs. 12/-

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

MOORTI DEVI

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

IN THIS GRANTHAMALA CRITICALLY EDITED JAIN AGAMIC, PHILOSOPHICAL, PAURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI, KANNADA & TAMIL ETC., AVAILABLE IN ANCIENT LANGUAGES, WILL BE PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THE TRANSLATION IN MODERN LANGUAGES.

AND

ALSO CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL BE PUBLISHED

GENERAL EDITORS OF THE PRAKRIT SECTION

PROF. DR. HIRALAL JAIN, M. A., D. LITT.,
MORRIS COLLEGE NAGPUR.

PROF. DR. A. N. UPADHYE, M. A., D. LITT.,
RAJARAM COLLEGE, KOLHAPUR.

PRAKRIT GRANTHA No. 1

PUBLISHER

AYODHYA PRASAD GOYALIYA,

SECY. BHARATIYA JNANA PITHA,

DURGAKUND ROAD, BENARES CITY.

Printed by—BHARGAVA BHUSHAN PRESS, BENARES.

Founded in
Falguna Krishna, 9,
Vir Sam. 2470

All Rights Reserved.

{ Vikram Samvat 2000
18th Feb. 1944.

महावध



आचार्य शान्ति सागर महाराज

स्वाभ्यर्चना

चारित्रचक्रवर्ती पूज्य श्री १०८ आचार्य
शान्तिसागरजी महाराजके
कर कमलोंमें

—सुमेरुचन्द्र दिवाकर



सूची

प्रकाशकीय	7-8
ग्रन्थमाला सम्पादकका प्रास्ताविक किञ्चित् हिन्दी			9-10
" "	" "	अंग्रेजी	11-12
प्रीफेस-दिवाकरजी	13-19
प्राकथन	"	१-१०
प्रस्तावना	"	११-४०
महावन्धपर प्रकाश	११-१३
महावन्ध नाम प्रचारका कारण		...	१४
महावन्धके अवतरणका इतिहास		...	१५-२२
भूतबलिका समय	२२-२५
ग्रन्थकी प्रामाणिकता	२५-२७
मङ्गलाचरण	२७-३०
श्रेष्ठमङ्गल अनादिमङ्गल	३०-३१
मङ्गल पद्यके रचयिता	३१-३२
प्रतिलिपिके विषयमें	३२-३३
महावन्धका प्रभाव	३३-३४
महावन्धके परिशीलनकी उपयोगिता		...	३४-३७
प्रशस्ति परिचय	३७-४०
कर्मवन्ध मीमांसा	४१-७६
विषयसूची	७७
संकेतसूची	७८
मूलग्रन्थ	१-३४८
गाथासूची	३४९
शब्द सूची	३४९-५०



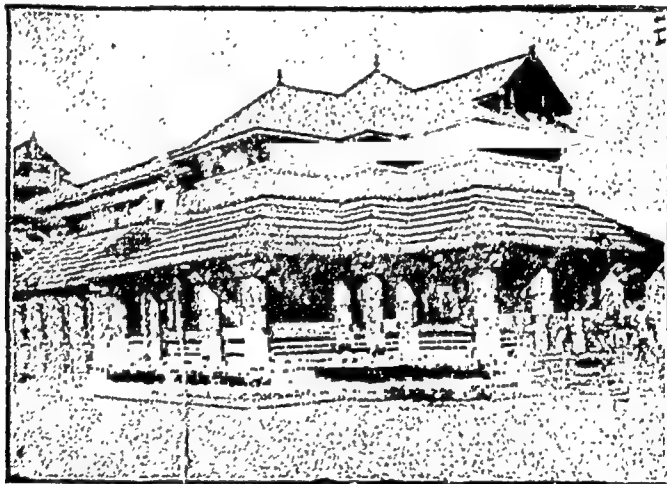
स्वस्ति श्री भट्टारक
चारुकीर्ति पण्डिताचार्यवर्य
मृडचिद्री



स्वस्ति श्री भट्टारक
चारुकीर्ति पण्डिताचार्यवर्य
श्रवणवेलगोल



श्रीमान् नागराज श्रेष्ठी,
मृडचिद्री



त्रिलोक चूडामणि चैत्यालय,
चन्द्रनाथ वसदि
मृडचिद्री

स्व. श्रीमान् रघुचन्द्रजी
वल्लला मंगलूर

श्रीमान् मंजग्य हेगडे
बी. ए. एम्. एल. सी.
धर्मस्थल



प्रकाशकीय

प्राचीन जैन ग्रन्थों की शोध-खोज, सम्पादन-प्रकाशन तथा आधुनिक लोकोपयोगी धार्मिक साहित्यिक ऐतिहासिक सुवर्णिपूर्ण भव्य साहित्य के निर्माण और प्रकाशन की भावनाओं से प्रेरित होकर सेठ ज्ञान्तिप्रसादजी और उनकी सहधर्मचारिणी श्रीमती रमरानीजी ने फाल्गुन कृष्ण ६ वि० सं० २००० शुक्रवार, १८ फरवरी १९४४ को बनारस में भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना की ।

उनकी धर्मनिष्ठ स्नेहमयी स्वर्गीय माता मूर्तिदेवी की अभिलाषा जैन सिद्धान्त ग्रन्थों—विशेष कर जयधवल, महाधवल के उद्धार की थी । अतः उनकी अभिलाषा की पूर्ति स्वरूप उनकी पवित्र स्मृति में ज्ञानपीठ से एक मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है ।

ज्ञानपीठ की स्थापना को ३-४ मास ही हुए थे कि श्री पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर ने स्वसम्पादित प्रस्तुत ग्रन्थराज प्रथमखंड को ज्ञानपीठ से प्रकाशित करने की अभिलाषा प्रकट की । माताजी की अभिलाषा पूर्तिस्वरूप जयधवल का प्रकाशन जैनसंघ के तत्त्वावधान में प्रारम्भ हो चुका था । अतः महाधवल को ज्ञानपीठ से प्रकाशित करना तुरन्त निश्चय कर लिया गया और वीरशासन जयन्ती की शुभ वेला में प्रेस में दे दिया । परम सन्तोष की बात है कि ३ वर्ष पश्चात् श्रुतपंचमी के पुण्य दिवस पर उत्सुक और भक्तिविभोर जनता को उसके पूजन का अवसर मिल रहा है । हमारी अभिलाषा इसे शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करने की थी, पर प्रेस आदि की कठिनाइयों के कारण ऐसा नहीं हो सका ।

दिवाकरजी ने अनेक विघ्न बाधाओं को पार करके जिस साहस और अदम्य उत्साह से यह अलभ्य ग्रंथ प्राप्त किया, उतनी ही लगन और परिश्रम से इसका सम्पादन किया है । ग्रंथराज की उपलब्धि, अनुवाद और सम्पादनादि सब कुछ आत्मकल्याण की पवित्र भावना से किया है और इसी भाव से ज्ञानपीठ को प्रकाशन के लिये भेंट कर दिया है । जिनवाणी के उद्धार की दिवाकरजी की यह निस्पृह भावना और लगन अनुकरणीय और अभिनन्दनीय है ।

The Jain philosophers do not agree with the idea of a Supreme Being, guiding the destinies of all things, since it does not stand to critical examination and logical interpretation. Impartial study and mature thought lead us to the conclusion, that this world full of barbarities and inequalities cannot be the handiwork of a good, happy Omnipotent and Omniscient God. The observations of the great scientist Huxley deserve special attention in this respect :—

“In my opinion it is not the quantity, but the quality, of persons among whom, the attributes of divinity are distributed, which is the serious matter. If the divine might is associated with no higher ethical attributes than those, which obtained among ordinary men ; if the divine intelligence is supposed to be so imperfect that it cannot foresee the consequences of its own contrivances ; if the supernal powers can become furiously angry with the creatures of their omni-potence and in their senseless wrath destroy the innocent along with the guilty ; or if they can show themselves to be as easily placated by presents and gross flattery as any oriental or accidental despot ; if in short, they are only stronger than mortal men and no better, then surely, it is time for us to look somewhat closely into their credentials and to accept none but conclusive evidence of their existence.”—Science & Hebrew Tradition, p. 258.

This world cannot be the creation of a benevolent and good God, for it presents a poor picture of the abundance of misery and calamity as the lot of the majority of its creatures. Arnold in his *Light of Asia* argues :—

“How can it be, that Brahma,
Would make a world, and keep it miserable,
Since, if all-powerful, he leaves it so,
He is no good, and if not powerful,
He is not God.”

Due to these failings, the Jains believe in a God, who is Omniscient, who is passionless and who enjoys the bliss of perfection, and who does not bother about the creation or destruction of the world. The manifold conditions of sentient beings are due to fruition of Karmas acquired by the Jiva in the past.

Some think, that the soul is pure and perfect; therefore it is wrong to suppose it as the reaper of the harvest of its merits or demerits. *Bondage of Karma.* This view goes against our experience and reason. The mundane soul is impure, since it is contaminated with matter assuming the form of good or bad karmas. We see that the Jiva

has been imprisoned in this body, which is a store-house of the filthiest of objects. The pure, perfect and powerful soul would never have liked to reside in such an impure tabernacle even for a moment. We therefore infer, that the jiva is under forced-servility of some thing, which is instrumental to such an awkward position of the soul. The main source of this downfall is the matter, having assumed the form of a Karma.

This karma is material, since its effects, auspicious or otherwise, are visible either on the physical body or they are exhibited by means of association or separation of material objects.

This soul, although immaterial, is recipient of good or evil effects of the karmas, which are material. This phenomenon should not bewilder any one, for we see that the intelligent being is subject to intoxication caused by drinking wine, which is non-sentient. It is to be noted, that the very liquor does not cause any intoxication to the bottle, which contains it. Such is the nature of things.

The mundane soul has got vibrations through mind, body or speech. The molecules, which assume the form of mind, body or speech, engender vibrations in the Jiva, whereby an infinite number of subtle atoms is attracted and assimilated by the Jiva. This assimilated group of atoms is termed as Karma. Its effect is visible in the multifarious conditions of the mundane soul. As a red-hot iron-ball, when dipped into water, assimilates its particles ; or as a magnet draws iron filings towards itself due to magnetic force ; in the like manner the soul, propelled by its psychic experiences of infatuation, anger, pride, deceit and avarice, attracts karmic molecules and becomes polluted by the karmas. The psychic experience is the instrumental cause of this transformation of matter into a karma ; as the clouds are instrumental in the change of sun's rays into a rainbow.

When karmas come in contact with the soul fusion occurs, whereby a new condition springs up, which is endowed with marvellous potentialities and is more powerful than infinite atom bombs. One can easily imagine the power of karmas, which have covered infinite knowledge, infinite power, infinite bliss of the soul and have made a beggar of this very Jiva, who is no less than a Paramatman by its intrinsic nature. Psychic experiences of anger etc., cause the fusion of karmas and these karmas again produce feelings of attachment, aversion or anger etc., thus the chain of karmic bondage continues *ad infinitum*.

This immerson-absorption is without a beginning. There has been no period, when the fusion of beings took place in a universal, it is beyond comprehension, that a person, pure, blessed, consistent and potent soul will ever enter into the duty of embodying the Beings and thus dig in one greatly limiting immovable and indestructible substance.

Then the limit of a body is removed from it, the soul loses its power of expanding; therefore when the limit of Beings molecules is removed from the material soul, the resulting person Jiva cannot be impeded by the expansion of Beings. The nature of a soul, as taught in the science of transmigration, can be understood easily, when we draw our attention to the images gold found in a mine. The association of soul with golden ore is without beginning, but when the foreign matter is removed the gold remains, the resulting pure self shines; in the like manner the ore of physical body, ether, intelligence and ether creates darkness the Beings' bondage in all times. If the ore of self-absorption is removed, the work of destruction can be achieved within a span of 42 minutes. This destruction does not mean complete annihilation of the being, but it causes the dissolution of Beings molecules from the soul.

While explaining the nature of Beings, the Jiva beings have died the instance of water, transforming into cloud, fish, boat, snake, man etc. in accordance with the digestive power; similarly the Beings assume immovable forms in conforming with the psychic experiences of the Jiva. These Beings molecules are ephemeral. They are not visible even with the aid of physical instruments. Even after the destruction of this physical or gross body the Beings are not destroyed. The Beings' body and the etheric body 'Tattva Sarsa', always remain and regulate the activities of the Jiva. Had they left the Jiva for a moment, no power in the world could have supported the soul in the activities of Beings and achieved the Divine Being from enjoying transcendental bliss of liberation.

The bondage of Jiva and Beings has been described into 'Prakriti', 'Guilt', 'Avidya' and 'Destruction' bondage. The first is a, the physical 'Prakriti' of matter. b, the names of the Beings' bondage; c, the names of guilt is immolation. Similarly the 'Guilt' bondage causes the bondage; the 'Destruction' bondage causes 'Prison' of consciousness, which produces bondage; 'Avidya' enables the soul to have sensations of pleasure or pain through senses; 'Avidya', the degradation of the Beings, causes delusion and perturbed vision of the self and cosmos; 'Avidya' determines the length

of life in a particular body ; 'Nama' is responsible for physical form, complexion, constitution etc., 'Gotra' decides the birth in high or low family and the last one, 'Antaraya', acts as an impediment in the acquisition and enjoyment of things, possession of strength etc. These eightfold karmas are further sub-divided into 148 varieties. The present volume deals with this Prakriti Bandha from several stand-points. The second one i. e., 'Sthiti Bandha' determines duration of the bondage ; the third, 'Anubhaga Bandha' deals with the potentiality of various karmas, the fourth, 'Pradesha Bandha' causes the division of karmic molecules into several varieties in accordance with the vibrations of the soul.

Modern worldly-wise man perhaps may think that this work has no bearing upon life and it is a mere display of intellectual exercises.

An aspirant for liberation will immediately differ from this viewpoint. In Mahabandha he will find wonderful remedy for warding off

Utility of Study. the feelings of attachment or aversion and thereby uplift the soul to the sphere of equanimous contemplation, which ultimately leads to the final beatitude. One who devotes himself to the study of this work is so deeply engrossed therein, that he forgets for a while the world of attachment and aversion. His Holiness the Digamber Jain Acharya Charitra Chakravarti Sri Shantisagar Maharaj had once remarked, "This Shastra must be thoroughly studied by those who are tired of transmigration and who long for liberation. Proper knowledge of Bandha-Tattva is essential before proceeding towards the ultimate goal of purity and perfection."

In the end, we deem it our duty to express our sincere gratefulness to Sri D. Manjjaiya Heggade, B. A., M. L. C., Dharmasthala, His Holiness Bhattarak Sriman Charukirti Panditacharya Swami, Moodbidree and the trustees of the Jain Siddhanta Temple, Moodbidree (South Kanara) for the kind permission to take a copy from the original text preserved in the Siddhanta Mandir.

We are also thankful to Sri Shanti Prasad Jain, B. Sc., Dalmianagar, founder of the BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI, through whose munificence this volume is coming to the hands of the public.

Seoni (C. P.),
6th of January, 1947. }

Sumeruchandra Diwaker.

“तं वत्थुं मुत्तब्बं, जं पडि उपज्जए कसायग्गी ।
तं वत्थुं सल्लियजो, जत्थुवसम्मो कसायाणं ॥”

—भगवती आराधना गा० २६२

❀

जिनके कारण कषाय अग्नि बढ़े वे सभी पदार्थ हेय हैं । जिनसे कषायोंका उपशमन हो वे सभी पदार्थ उपादेय हैं ।

❀

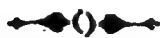
“बंधाणं च सहावं, वियाणिञ्चो अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि, सो कम्मविमोक्खणं कुण्णई ॥”

—समयसार गा० २९३

❀

आत्मा और बन्धका स्वभाव जानकर जो विवेकी बन्धसे विरक्त होता है वह कर्मोंका क्षय करता है ।

प्राक्कथन



जैन संसारमें धवल, जयधवल, महाधवल (महाबन्ध)—इन सिद्धान्तग्रंथोंका अत्यधिक सन्मान और श्रद्धापूर्वक नाम स्मरण किया जाता है। ये परम पूज्य शास्त्र मूडविद्री, दक्षिण कर्णाटकके सिद्धान्त मन्दिरके शास्त्रभंडारको समलंकृत करते हैं। इन ग्रंथरत्नोंके प्रभाववश संपूर्ण भारतके जैन बन्धु मूडविद्रीको विशेष पूज्य तीर्थस्थल सदृश समझ वहांकी वंदनाको अपना विशिष्ट सौभाग्य मानते थे, और वहां जाकर इन शास्त्रोंके दर्शनमात्रसे अपनेको कृतार्थ मानते थे। भगवद्भक्त जिस ममत्व, श्रद्धा तथा प्रेमभावसे पावापुरी, सम्मेदशिखर, राजगिरि आदि तीर्थस्थलोंकी वंदना करते हैं, प्रायः उसी प्रकारकी समुज्ज्वल भावनाओं सहित श्रुतभक्त श्रावक तथा श्राविकाएं उत्तर भारतसे जाकर दक्षिण भारतके पश्चिम कोणमें मंगलूर बन्दरके पार्श्ववर्ती मूडविद्रीकी वन्दना करते थे। जिन व्यक्तियोंको सिद्धान्त ग्रंथोंके कारण पूज्य मानी गई मूडविद्रीको जानेका सौभाग्य नहीं मिला, वे उक्त स्थलकी परोक्षवन्दना करते हुए उस सुअवसरकी बाट जोहा करते थे, जब वे वहां पहुंच कर अपने चक्षुओंको सफल कर सकेंगे।

कहते हैं—ये सिद्धान्तशास्त्र पहले जैनबद्री—श्रमणवेलगोलके महनीय ग्रंथागारको अलंकृत करते थे। पश्चात् ये ग्रंथ मूडविद्री पहुंचे। इन ग्रंथोंकी प्रतिलिपि भारतवर्ष भरमें अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इन शास्त्रोंका प्रमेय क्या है, यह किसीको भी पता नहीं था। बहुत लोग तो यह सोचते थे कि इन शास्त्रोंमें आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार सदृश चमत्कारप्रद एवं भौतिक आनन्दवर्धक सामग्री-निर्माणका वर्णन किया गया होगा। हवाई जहाज, रेडियो, टेलीफोन, ग्रामोफोन, सोना बनाना आदि सब कुछ इन शास्त्रोंमें होंगे। इस काल्पनिक महत्ताके कारण साधारण व्यक्ति भी श्रुतदेवताकी वंदनाको सोत्कण्ठ सन्नद्ध रहते थे।

ये ग्रंथ अपनी महत्ता, अपूर्वता तथा विशेष पूज्यताके कारण बड़े आदरके साथ निधि अथवा रत्नराशिके समान सावधानी पूर्वक सुरक्षित रखे जाते थे। जिस प्रकार विशेष भेंट लेकर भक्त गुरुके समीप जाता है, उसी प्रकार वन्दक व्यक्ति भी यथाशक्ति उचित द्रव्य-अर्पण करके ग्रंथराजकी वन्दना करता था। शास्त्रभंडार खुलवानेके लिए द्रव्यार्पण आवश्यक था। सिद्धान्त-मन्दिर मूडविद्रीके व्यवस्थापक लोग ही शास्त्रोंपर अपना स्वत्व समझते थे, उनकी ही कृपाके फल स्वरूप दर्शन हुआ करते थे। शास्त्रोंकी एकमात्र प्रति पुरानी (हडेगन्नड) कनड़ी लिपिमें थी, अतः उस लिपिसे सुपरिचित तथा प्राकृत भाषाका परिज्ञाता हुए विना ग्रन्थका यथार्थ रस लेने तथा देने-वाला कोई भी समर्थ व्यक्ति ज्ञात न था। ग्रन्थको उठाकर दर्शन करा देना और चोरोंसे या वाधकोंसे शास्त्रोंको बचाना इतना ही कार्य व्यवस्थापक करते थे। इसका फल यह हुआ, कि अत्यन्त जीर्ण तथा शिथिल ताड़पत्र पर लिखे ग्रन्थोंकी पुनः प्रतिलिपि कराकर सुरक्षाकी ओर ध्यान न गया, इससे महाधवल-महाबन्धके लगभग तीन, चार हजार श्लोक नष्ट हो गए, किन्तु इसका पता किसीको भी नहीं हुआ।

जैनकुलभूषण स्व० सेठ माणिकचंद जी जे० पी० वंवाईसे सन् १८८३ में वंदनार्थ मूडविद्री पहुँचे। वे एक विचारक श्रीमान् थे। शास्त्रोंका दर्शन करते समय उनकी भावना हुई, कि ग्रंथको किसी विद्वान्से पढ़वाकर सुनना चाहिए, किन्तु योग्य अभ्यासीके अभाववश उस समय उनकी कामना पूर्ण न हो पाई। उनके चित्तमें यह बात उत्कीर्णसी हो गई, कि किसी भी तरह इन शास्त्रों का उद्धार करके जगत्के समक्ष यह निधि अवश्य आना चाहिये। तीर्थयात्रासे लौटते हुए उक्त सेठजीने अपने हृदयकी सारी बातें अपने अत्यन्त स्नेही सेठ हीराचन्द्र नेमचंदजी सोलापुर वालोंको सुनाई। सेठ हीराचंदजीके अंतःकरणमें दक्षिणयात्राकी वलवती इच्छा हुई, अतः आगामी वर्ष वे मूडविद्रीके लिए रवाना हो गए। ब्रह्मसूरि शास्त्री नामक प्रकाण्ड जैन विद्वान् जैनवद्रीमें रहते थे। वे इन शास्त्रोंको वांचकर समझा सकते थे। अतः सेठ हीराचन्द्रजीने उक्त शास्त्रीजीको जैनवद्रीसे अपने साथ रख लिया था। जब ग्रंथोंका मंगलाचरण पढ़कर उनका अर्थ सुनाया गया, तब श्रोतृमंडलीको इतना आनन्द मिला, जिसका वाणीके द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रवाससे लौटने पर सेठ हीराचन्द्रजीके चित्तमें ग्रंथोंकी प्रतिलिपि करानेकी इच्छा हुई, किन्तु लौकिक कार्योंमें संलग्नताके कारण बहुत समय व्यतीत हो गया और मनकी बात कृतिका रूप धारण न कर सकी। इस बीचमें सेठ नेमीचंदजी सोनी अजमेर पं० गोपालदासजी वरैयाको साथ लेकर तीर्थयात्रार्थ निकले और मूडविद्री पहुँचे। उनके प्रभाव तथा सत्प्रयत्नसे स्थानीय व्यवस्थापक पंचमंडलीने पं० ब्रह्मसूरि शास्त्रीके द्वारा देवनागरी लिपिमें प्रतिलिपि करानेकी स्वीकृति प्रदान की। अत्यन्त मन्दगतिसे कार्य प्रारंभ किया गया और थोड़ी नकल मात्र हो पाई कि अंतरायने विघ्न उत्पन्न कर दिया।

सेठ हीराचन्द्रजीके प्रयत्नसे प्रतिलिपि निमित्त लगभग चौदह हजार रुपयोंकी समाज द्वारा सहायताकी व्यवस्था हुई, अतः ब्रह्मसूरि शास्त्रीके साथ गजपति उपाध्याय महाशय मिरज-निवासीके द्वारा पूर्वोक्त स्थगित कार्य पुनः चालू हुआ। कुछ काल व्यतीत होने पर दुर्भाग्यसे ब्रह्मसूरि शास्त्रीका स्वर्गवास हो गया। अतः पं० गजपतिजी ही कार्य करते रहे। धवला और जयधवला टीकाओंकी नकल लगभग १६ वर्षोंमें पूर्ण हो पाई। इस बीचमें श्री देवराज सेट्टि, शांतप्पा उपाध्याय और ब्रह्मराज इन्द्रने कनड़ी भाषामें एक प्रतिलिपि कर ली। इधर गजपति उपाध्याय मूडविद्रीके सिद्धान्तमन्दिरमें विराजमान करनेके लिए देवनागरी लिपिमें प्रतिलिपि करतेथे, उधर गुप्त रूपसे अपनी विदुषी धर्मपत्नी लक्ष्मीवाईके सहयोगसे कनड़ीमें भी एक प्रतिलिपि तैयार कर ली, जिसका किसीको रहस्य अवगत न था। वह प्रति उपाध्यायजीने विशेष पुरस्कार लेकर स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसादजी रईस सहारनपुरको प्रदान की। उनने पं० विजयचंद्रय्या और पं० सीताराम शास्त्रीके द्वारा उस कनड़ी प्रतिलिपिसे देवनागरीमें जो प्रतिलिपि लिखवाई उसमें सात वर्षका समय व्यतीत हुआ। पं० विजयचंद्रय्यासे कनड़ी प्रति वचवाकर सीताराम शास्त्री नकल करते थे। शीघ्र कार्य निमित्त सीतारामजी साधारण कागज पर पहले लिख लेते थे, पीछे लाला जम्बूप्रसादजीके भण्डारके लिए नकल तैयार करते थे। सीताराम शास्त्रीने अपने पासके साधारण कागज पर लिखी गई नकल परसे अन्य प्रतिलिपि की। उसके आधार पर अन्य प्रतियां लिखाकर आरा, सागर, सिवनी, दिल्ली, वंवाई, कारंजा, इन्दौर, व्यावर, अजमेर, झालरापाटन

आदि स्थानोंमें पहुंचाई गई। इससे जयधवल और धवल शास्त्रोंके दर्शन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य अनेक व्यक्तियोंको प्राप्त होने लगा।

मूडविद्री वालोंको अन्धकारमें रखकर जिस ढंगसे पूर्वोक्त दो सिद्धान्त शास्त्र मूडविद्री-से बाहर गए और उनका प्रचार किया गया, उससे मूडविद्रीके पंचोंके हृदयको बड़ा आघात पहुंचा। मूडविद्रीकी विभूतिके अन्यत्र चले जानेसे मूडविद्रीके प्रति आकर्षण कम हो जायगा, यह बात भी उनके चित्तमें अवश्य रही होगी, इस कारण अब उनने महाधवल-महाबन्धकी प्रतिलिपिके विषयमें पूर्ण सतर्कतासे कार्य लिया। दूधका जला छांछको भी फूक कर पीता है, इस कहावतके अनुसार उनने महाबन्धको शास्त्र भंडारमें इतना अधिक सुरक्षित कर दिया, कि भेंट देनेवाले व्यक्ति भी महाबन्धके स्थानमें अनेक बार अन्य शास्त्रका दर्शन कर अपने मनको काल्पनिक संतोष प्रदान करते थे कि हमने भी महाधवल जी आदिकी वंदना कर ली। अब महाबन्धका यथार्थ दर्शन जब कठिन हो गया तब प्रतिलिपिकी उपलब्धिकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सेठ हीराचंदजी के सत्प्रयत्नसे महाबन्धकी देवनागरी प्रतिलिपिका कार्य पं० लोकनाथजी शास्त्री मूडविद्रीके ग्रन्थागारके लिए करते जाते थे। यह कार्य सन् १९१८ से १९२२ पर्यन्त चला। इसी बीचमें पं० नेमिराजजीने इसकी कनड़ी प्रतिलिपि भी बना ली। तीनों सिद्धान्त ग्रंथोंकी प्रतिलिपि करानेमें लगभग बीस हजार रुपया खर्च हुए और छब्बीस वर्षका लम्बा समय लगा।

तीनों ग्रंथोंकी देवनागरी तथा कनड़ी प्रतिलिपिके हो जानेसे अब सुरक्षण सम्बन्धी चिन्ता दूर हो गई, केवल एक ही जटिल समस्या श्रुतभक्त समाजके समक्ष सुलझाने को थी, कि महाबन्धको बंधन मुक्त करके किस प्रकार उस ज्ञाननिधिके द्वारा जगत्का कल्याण किया जाय? इस क्षेत्रमें महान् प्रयत्नशील सेठ माणिकचंदजी बंबई तथा सेठ हीराचंदजी सोलापुर सफल मनोरथ होनेके पूर्व ही स्वर्गीय निधि बन गए।

दिगम्बर जैन महासभाने इस विषयमें एक प्रस्ताव पास करके प्रयत्न किया, किंतु वह अरण्यरोदन रहा। महासभाका एक वार्षिक उत्सव सन् १९३६ में इन्दौरमें रावराजा दानवीर श्रीमन्त सर सेठ हुकमचंदजीकी जुबलीके अवसर पर हुआ। वहाँ महाबन्धके विषयमें हमने प्रस्ताव पेश करनेका प्रयत्न किया, तो महासभाके अनेक अनुभवी व्यक्तियोंने इस बातका विरोध किया, कि यह अनावश्यक है, वह ग्रन्थ तो मूडविद्रीकी समाज देनेको विल्कुल तैयार नहीं है। विशेष श्रम करनेपर सौभाग्यसे पुनः प्रस्ताव पास हुआ और उसमें प्राण-प्रतिष्ठानिमित्त एक उपसमितिका निर्माण हुआ। उसके संयोजक जिनवाणीभूषण धर्मवीर स्व० सेठ रावजी सखाराम जी दोशी बनाए गए। लेखक भी उसका अन्यतम सदस्य था। सेठ रावजी भाईने दो बार मूडविद्रीका लम्बा प्रवास करके एवं हजारों रुपया भेंट करनेका अभिवचन देकर भी सफलता निमित्त प्रयास किया, किंतु दुर्भाग्यवश मनोरथ पूर्ण न हो पाया। कुछ ऐसी बातें उत्पन्न हो गईं, जिनने मधुर संबंधोंमें भी शैथिल्य उत्पन्न कर दिया। महाबन्ध उपसमितिके समक्ष यहाँ तक विचार आने लगा, कि जिनवाणी माताकी रक्षा निमित्त व्यक्तिगत अनुनय-विनयका मार्ग छोड़कर अब न्यायालयका आश्रय लेना चाहिए। किन्हीं व्यक्तियोंके विचित्र ग्रन्थ-मोहकी पूर्ति निमित्त विश्वकी अनुपमनिधिको अब अधिक समय तक बंधनमें नहीं रखा जा सकता।

न्यायालयके द्वार खटखटानेके विचार पर हमारी आत्माने सहमति नहीं दी। सहसा हृदयमें यह भाव उदित हुए, कि अदालतके द्वारपर मूढविद्वीवालोंको घसीट कर कष्ट देना योग्य नहीं है, कारण इनके ही पूर्वजोंके प्रयत्न और पुरुषार्थके प्रसादसे ग्रंथराज अवतक विद्यमान हैं, और अब भी वे यथामति उनकी सेवा कर ही रहे हैं। उनकी श्रुत-भक्ति तथा सेवाके प्रति कृतज्ञतावश हमारा मस्तक नम्र हो जाता है। यदि हम पुनः उनसे सस्नेह अनुरोध करेंगे, और अपनी बात समझावेंगे, तो वे लोग अवश्य हमारी हृदयकी ध्वनिको ध्यानसे सुनेंगे। न मालूम क्यों, हृदय बार बार यह कहता था, कि प्रेम-पूर्ण प्रयत्नके पथमें ही सफलता है ?

कुछ समयके पश्चात् पुरुषार्थी धर्मवीर सेठ रावजी भाईका स्वर्गवास हो गया। इससे आत्मा बहुत व्यथित हुई। हमने सोचा—भगवन् ! अब यह महाबन्धकी प्राप्तिकी कठिन तथा जटिल समस्या कबतक और कैसे सुलभती है।

सुदैवसे ग्रंथराजकी प्रतिलिपि प्राप्तिके मार्गकी बाधाओंका अभाव होना तथा अनुकूल परिस्थितियोंका निर्माण अब आरंभ हो जाता है। इस संबंधकी चर्चा रुचिकर होगी, ऐसी आशा है।

सन् १९३९ की बात है। श्रमणवेलगोलामें भगवान् बाहुवलस्वामीकी भुवनमोहिनी, विश्वातिशायिनी दिव्य मूर्तिके महाभिषेककी पुण्यवेला आई। किन्तु मैसूर प्रान्तमें स्व० सेठ एम० एल० वर्धमानैय्या सदृश कार्यकुशल, प्रभावशाली, उदार तथा समर्थ नेताके अभाव होनेसे आदरणीय भट्टारक श्री चारुकीर्ति पंडिताचार्य (पूर्वमें जो ब्र० नेमिसागर जी वर्णिके रूपमें विख्यात थे) महाराज श्रमणवेलगोला तथा उनके सहयोगी महानुभाव, अन्तरायोंकी अपरिमित राशि देख सचिन्त थे, और गोम्मटेश्वर स्वामी से पुनः पुनः प्रार्थना करते थे—‘देवाधिदेव, आपके चरणोंके प्रसादसे यह मंगलकार्य सम्यक् प्रकार संपन्न हो, कोई भी विघ्न नहीं आने पावे।’

उस समय जैन गजटके संपादक तथा अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन राजनैतिक स्वत्वरक्षक समितिके मंत्रीके रूपमें हमने यथाशक्ति महाभिषेक सफलता निमित्त पत्र द्वारा आंदोलन किया, विघ्नकारियों का तीव्र प्रतिवाद किया तथा मैसूर राज्यके दीवान सा० आदि उच्च अधिकारियोंसे पत्र व्यवहार द्वारा अनुरोध किया। उस समय हमारे लेखों आदिका कनड़ी अनुवाद मैसूर राज्यके आस्थान महाविद्वान् पं० शांतिराज जी शास्त्रीके कनड़ी पत्र विवेकाभ्युदय में छपता था, इस कारण कर्णाटक प्रान्तीय जैन वन्धुओंसे हमारा आन्तरिक स्नेह सम्बन्ध सहज ही स्थापित हो गया। यही स्नेह आगे सफलतामें प्रमुख हेतु बना।

महाभिषेक-महोत्सवका पुण्य अवसर आया। लाखों वंदक विश्ववन्दीय विभूतिकी वंदना द्वारा जीवन सफल करनेके लिए भारतवर्षके कोने कोनेसे आए। उस महाभिषेकके अपूर्व समारोहको कौन भूल सकता है। बड़े सौभाग्यसे हम भी अपने पिताजी आदिके साथ वहां पहुंचे। भट्टारकजी से मिलने गए, तब उनके समीप उस प्रान्तके प्रमुख जैन वंधु बैठे हुए थे। वहां स्वामी जीने (भट्टारक महाराजका बड़ा प्रभाव तथा सन्मान है। मैसूर महाराज भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं, उनको वहां स्वामी जी कहते हैं।) हमारे प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रगट किया। उनने बड़े बड़े शब्दों द्वारा लोगोंको हमारा परिचय देते हुए इस महाभिषेकको संपन्न करानेका विशेष श्रेय हमें

प्रदान किया। हम चकित हो गए। महाराजसे कहा—“हमने क्या कार्य किया, जिसका आप इतना उल्लेख कर रहे हैं। हमारा इतना पुण्य नहीं है। गोम्मटेश्वर स्वामीके चरणोंके प्रति भक्तिवश कुछ सेवा बन गई, उसे अधिक मूल्यवान् बताना आपकी ही महत्ता है।” स्वामी जी ने अपनी कर्णाटकी ध्वनि (tone) में कहा, “क्या आपकी स्तुति करके हमें कुछ प्राप्त करना है, जो हम यहां अतिशयोक्ति पूर्ण बात कहते।” हमें चुप हो जाना पड़ा।

चलते समय स्वामीजी ने हृदयसे मंगल आशीर्वाद दिया और ‘फलेन फलमालभेत’— (इन फलों के द्वारा तुम्हें महाफल मिले) कहते हुए कुछ पक्व फल हमें दिए। वह पर्वका दिन था। हमारे हाथोंमें फलोंको देखकर एक शास्त्रीजीने व्यंग्यमें कहा—क्या अंग्रेजीकी शिक्षाने आपकी प्रवृत्ति बदल तो नहीं दी? हमने भट्टारक जीसे फल प्राप्तिकी बात सुनाई, तो वे बोल उठे—“आप खूब मिले, और लोग तो भट्टारक जीको फल चढ़ाते हैं, भेंट देते हैं और भट्टारक जी आपको देते हैं।” हँसते हुए हम अपने स्थान पर आ गए।

महाभिषेक बड़े वैभव और अपूर्व आनन्दपूर्वक संपन्न हुआ। अभिषेकके कलशोंकी बोलीसे प्राप्त रकम मैसूर स्टेटके अधिकारियोंके पास जमा हो गई। किन्तु बहुतसे धर्मबन्धु अपने धनको अपने ही अधिकारमें रखनेकी बात सोचते थे। अर्थव्यवस्था निमित्त सर सेठ हुकमचंद्र जीके स्थानपर एक बैठक हुई। उसमें कर्णाटक प्रान्तके प्रभावशाली व्यक्ति श्री डी० मंजैय्या हेगड़े वी० ए० धर्मस्थल तथा उस प्रान्तके विशेष श्रीमंत श्री रघुचन्द्र वल्लाल मंगलोर भी शामिल हुए थे। वह मीटिंग उक्त दोनों महानुभावोंके साथ हमारे स्निग्ध सम्बन्धोंके स्थापन तथा संवर्धनमें कारण पड़ी। यहां यह लिख देना उचित होगा कि ‘महाबन्ध’के व्यवस्थापकोंमें उन लोगोंका प्रमुख स्थान था, इसलिए उनके साथका परिचय तथा मैत्री सम्बन्ध भावी सफलताके मार्गके लिए अनुकूलताको सूचित करते थे।

महाभिषेक-महोत्सव पूर्ण होनेके पश्चात् मूडविट्री कार्कल आदिकी वन्दना निमित्त हम मैंगलोर पहुंचे। वहां श्री वल्लाल महाशयसे अकस्मात् भेंट हो गई। प्रसंगवश हमने उनसे कहा—“पहले तो वल्लाल वंशने दक्षिण भारतमें राज्य किया था। आपको भी उस वंशकी प्रतिष्ठाके अनुरूप अपूर्व कार्य करना चाहिए। देखिये, आपके यहां मूडविट्रीके शास्त्रभंडारमें संसारकी अपूर्व विभूति महाबन्ध शास्त्र है। इसका उद्धार कार्य करनेसे विश्व आपका आभार मानेगा।” इसके अनंतर कुछ और धार्मिक बातें हुईं। शायद वे उन्हें पसन्द आईं। उनने हमसे कहा—“हम आपका मूडविट्रीमें भाषण कराना चाहते हैं, क्या आप वोलेंगे?” हमने विनोदपूर्वक कहा—“जब भी आप भाषणके लिए कहेंगे, तब ही हम बोलनेको तैयार हैं, किन्तु इसके बदलेमें आपको महाबन्ध शास्त्र देना होगा।” वे हंसने लगे।

हम मूडविट्री पहुंचे। वहां जैन नरेशोंके औदार्य तथा भक्तिवश निर्माण कराए गए त्रिलोकचूड़ामणि चैत्यालय (चंद्रनाथवसदि) की भव्यता तथा विशालताको देख बड़ा आनन्द आया। उस मन्दिरमें अफ्रिकाके कारीगरोंने आकर प्राचीन समयमें शिल्पका कार्य किया था। हमें बताया गया कि पहले जैनियोंकी वहां बहुत समृद्धिपूर्ण स्थिति थी। बड़े बड़े जहाजोंके वे अधिपति थे। उनसे वे विदेश जाकर रत्नोंका व्यापार करते थे और श्रेष्ठ वस्तु जिनशासनके उपयोगमें

लाते थे। इस प्रकार वहांकी अमूल्य अपूर्व मूर्तियां वनाई गई थीं। पुरातन जैन वैभवकी चर्चा सुनसुन कर हृदय हर्षित हो रहा था, उस समय वयोवृद्ध श्री नागराज श्रेष्ठीसे भेंट हुई। उनसे बड़ा स्नेह व्यक्त किया। हमने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—“बड़ी दया हो, यदि इस वारके महाभिषेककी स्मृतिमें आपलोग महावन्धकी प्रतिलिपि करनेकी अनुज्ञा दे दें। आपके पूर्वजोंका ही पुण्य था, जो इस रत्नराशिसे भी अधिक मूल्यवान् ग्रंथ रत्नकी अव तक रक्षा हुई।” हमारी बात सुनकर उनसे कहा—“प्रयत्न करो, आपको ग्रंथ मिल जायगा।” हमने कहा, “आपके आशीर्वाद और कृपा द्वारा ही यह कठिन कार्य संभव हो सकता है।” उनसे हमें उत्साहित करते हुए कहा—“अगर आप मंजैय्या तथा रघुचन्द्र वल्लालको यहां ला सकें, तो सरलतासे काम बन जायगा। उन लोगोंका यहांकी समाजपर विशेष प्रभाव है। हेगड़े जीका प्रभाव तो असाधारण है।” अतः दूसरे दिन सवेरे हमने अपने छोटे भाई चिरंजीव सुशीलकुमार दिवाकर वी० काम० को तथा स्व० ब्र० फतेहचन्द्र जी परवारभूषण नागपुरवालोंको साथ लेकर धर्मस्थल जा श्री मंजैय्या हेगड़ेसे मूडविद्री चलनेका अनुरोध किया। बड़े आग्रह करने पर उनसे हमारा निवेदन स्वीकार किया। धर्मस्थलमें हेगड़े जीके वैभव, प्रभाव तथा पुण्यको देखकर आनंद हुआ।

धर्मस्थलसे वापिस होते समय हम वेणूरकी बाहुवलि स्वामीकी विशाल तथा उच्च कलापूर्ण मूर्तिके दर्शनार्थ ठहरे, तो वहां सौभाग्यसे सर सेठ हुकमचन्द जीसे भेंट हो गई। हमने उन्हें सिद्धान्तशास्त्र सम्बन्धी चर्चा सुना संध्याके समय मूडविद्री पहुंचनेका अनुरोध किया और अपने स्थानपर वापिस आए। पश्चात् हम वल्लाल महाशयसे मिलने मैंगलोर पहुंचे। उनसे पूछ कैसे आए? तब हमने विनोद पूर्वक कहा—“उस दिन आपने कहा था कि मूडविद्रीमें हम आपका व्याख्यान कराना चाहते हैं। आप अब तक नहीं आए। हमें अपने देश वापिस जल्दी जाना है, इससे आपको लेने आए हैं, कि आज संध्याको हमारा व्याख्यान सुन लें।” वे मुस्किरा पड़े। अनंतर हमने सब कथा उनको सुनाकर शीघ्र चलनेकी प्रेरणा की। वे सहर्ष तैयार हो गए। उनकी मोटरमें हम मूडविद्रीके लिए रवाना हुए। मार्गमें हमने सब विषय उनके समक्ष स्पष्ट किया, तो उन्हें अपनी स्वीकृति प्रदान करनेमें विलम्ब न लगा।

मूडविद्री वापिस आनेपर हमें श्री हेगड़ेजी और सर सेठ हुकमचंदजी मिल गए। रात्रिको पूर्वोक्त त्रिलोकचूड़ामणि चैत्यालय—चंद्रनाथवसदिके प्रांगणमें सर सेठ हुकमचंदजीकी अध्यक्षतामें एक सभा बुलाई गई। अनेक प्रतिष्ठित महानुभाव पधारे थे। मूडविद्री मठके अधिपति भट्टारकजी चारुकीर्ति-पण्डिताचार्य स्वामी भी उस सभामें आए थे। हमने महावन्ध-संबन्धी चर्चा प्रारम्भ की, उस समय ज्ञात हुआ कि मूडविद्री सिद्धांत शास्त्रमंदिरके ट्रस्टी तथा पंच महानुभावोंके चित्तमें इस बातकी गहरी ठेस लगी, कि एक जैनपत्रमें यह वृत्तांत प्रकाशित किया गया था, कि महावन्ध शास्त्र न देनेमें मूडविद्रीवालोंका व्यक्तिगत स्वार्थ कारण है। वे शास्त्र विक्रय करके (traffic in literature) लाभ उठाना चाहते हैं। इस संबंधमें भ्रमनिवारण किया गया कि जिन लोगोंके पूर्वजोंने त्रिलोकचूड़ामणि चैत्यालय जैसा विशाल जिनमंदिर बनवाया, धर्मसेवाके उज्ज्वल कार्य निस्वार्थ भावसे संपन्न किए, उनके विषयमें मिथ्या प्रचार करना ठीक नहीं है।

इसके पश्चात् हमने अपने भाषणमें मूडविद्रीके प्राचीन पुरुषों एवं वर्तमान धर्मपरायण समाजके प्रति आंतरिक अनुराग तथा आदरका भाव व्यक्त करते हुए कहा—“जब लोग धार्मिक

अत्याचार करते थे, उस संकटके युगमें जिनने शास्त्रोंको छुपाकर श्रुतकी रक्षा की, उनके प्रति हम हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। किन्तु जगत्में बड़ा परिवर्तन हो गया है। लोग ज्ञानामृतके पिपासु हैं। भूतबलि स्वामीने जगत्के कल्याण निमित्त महान् कष्ट उठाकर इतना बड़ा और अत्यंत गंभीर शास्त्र बनाया। उसके प्रकाशमें आनेपर जगत्में ग्रंथकर्ताकी कीर्ति व्याप्त होगी, मुमुक्षुगण अपना हित संपन्न करेंगे। पूज्य पुरुषोंकी निर्मल कीर्तिका संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। सोमदेवसूरिने बताया है—‘यशोवधः प्राणिवधात् गरीयान्’—प्राणिघातकी अपेक्षा यशका घात करना गुरुतर दोष है, कारण यशोवध द्वारा कल्पान्तस्थायी यशःशरीरका नाश होता है। भूतबलि स्वामीके साहित्यको छुपानेसे उनके प्राणघातसे भी बढ़कर दोष प्राप्त होता है। भूतबलि स्वामीने विश्वकल्याणके लिए यह रचना की थी। इस अमूल्य कृतिका क्या उनने कुछ मूल्य रखा था ? हमारी भक्तिका अर्थ है श्रुतका संरक्षण तथा सुप्रचार। उसे बंधनमें रख दीमकादि द्वारा नष्ट होते देखना कभी भी श्रुतभक्ति नहीं कही जा सकती। इतनेमें किसीने कहा हमारे यहाँ लोग गरीब हैं, उनकी सहायतार्थ द्रव्य आवश्यक है। इसे सुनते ही हमने कहा—“इन वाक्योंको सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि हमारे दक्षिणके कोई कोई बन्धु अपनेको गरीब समझ रहे हैं। जिनके पास भगवान् गोमटेश्वर जैसी अनुपम प्रभावशाली मूर्ति है वे क्या गरीब हैं ? जिनके पास बहुमूल्य तथा अपूर्व जिनविम्ब विद्यमान हैं वे क्या गरीब हैं ? जिनके पास धवल महाधवल सट्टश श्रेष्ठ ग्रन्थराज हैं, वे भी क्या गरीब हैं ? यदि इसे ही गरीबी कहा जाता है, तो हम ऐसी गरीबीका अभिनन्दन करते हैं, अभिवन्दन करते हैं। लीजिए भौतिक संसारकी समृद्धिको, और हमें यह गरीबी दे दीजिए।” हमने यह भी कहा, “बताइये, इन ग्रन्थोंका आपने क्या मूल्य रखा है ? रुपयोंका मूल्य तो जाने दीजिए, हम तो जीवन-निधि तक अर्पणकर इस आगम-निधिको लेने आए हैं। बताइये, इससे अधिक और क्या मूल्य आपको चाहिए ? हम जानते हैं, महाबन्ध सट्टश श्रुतकी रक्षा निमित्त हमारे सट्टश सैकड़ों व्यक्तियोंका जीवन नगण्य है। लोग राष्ट्रप्रेमके कारण जीवन-उत्सर्ग करते हैं, तो सकल संतापहारी श्रुत रक्षार्थ जीवन अर्पण करनेमें क्या भीति है ? कहिए, ग्रंथके लिए आप और क्या मूल्य चाहते हैं ?” इस पर श्री मंजैय्या हेगड़ेने द्रवित होकर कहा ‘You have given us more than we wanted’—जो कुछ हम चाहते थे, उससे अधिक मूल्य आपने दे दिया। श्री हेगड़ेजीकी अनुकूलता होने पर भट्टारक महाराज, श्री बल्लाल आदि सवने स्वीकृति प्रदान कर दी। हमने सोचा, यह महान् कार्य है। जो स्थिर नहीं रहता। परिणामोंमें परिवर्तनका पदार्पण होते विलम्ब नहीं लगता, अतः लिखित स्वीकृति सर्व आशंकाओंको दूर कर देगी। हमने सब समाजसे विनय की—“आज आप लोगोंने महाधवलजीकी बिना मूल्य प्रतिलिपि प्रदान करनेकी पवित्र स्वीकृति दी है। समाचार पत्रोंमें प्रामाणिकता पूर्वक समाचार प्रकाशित करनेके लिए आप लोगोंकी लिखित स्वीकृति महत्त्वपूर्ण होगी, और लोगोंको तनिक भी संदेह नहीं रहेगा।” सबका हृदय पवित्र था। स्वीकृति अंतःकरणसे दी गई थी, अतः सहर्ष प्रमुख पुरुषोंने शीघ्र हस्ताक्षर करके स्वीकृतिपत्रक हमें दिया, उसे पा हमने अपनेको कृतार्थ समझा।

मूडविट्टीके पंचोंकी महान् उदारताको घोषित करनेवाला समाचार जब जैन समाजने सुना, तब चारों ओर सवने हर्ष मनाया और मूडविट्टीकी समाजके कार्यकी प्रशंसा की। किन्तु

एक समाचार पत्रमें कुछ ऐसे समाचार निकल गए, जिससे पुरातन विरोधाग्नि पुनः प्रदीप्त हो उठी। इससे दक्षिणके एक प्रमुख पुरुषने हमें लिखा—“अब आप प्रतिलिपि ले लेना, देखें, कौन देता है?” इससे हमारी आत्मा काँप उठी। यह ज्ञातकर बड़ा दुःख हुआ, कि व्यक्तिगत विशेष मानकी रक्षार्थ हमारे विज्ञवंधु ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयको पुनः विरोध और विवादकी भँवरमें फँसा रहे हैं। इसके अनन्तर ज्ञात हुआ कि न्यायदेवताको आह्वान निमित्त कानूनी कार्यवाही भी प्रारम्भ होने लगी। उस समय श्रुतभक्त ब्र० श्री जीवराज गौतमचंदजी दोशी और धुल्लक श्री समंतभद्रजीके प्रभाव तथा सत्प्रयत्नसे विरोध शांत किया गया। यह चर्चा हमने इससे की, कि लोग यह देख लें, कि बना बनाया धर्मका कार्य किस प्रकार अकारण अवांछनीय संकटोंसे घिर जाता है। सोमदेव सूरिकी उक्ति बड़ी अनुभवपूर्ण है। वे अपने नीतिवाक्यामृत में लिखते हैं —

‘धर्मानुष्ठाने भवति, अप्रार्थितमपि प्रातिलोम्यं लोकस्य’ । १-३५ ।

‘धर्मकार्यमें लोग बिना प्रार्थना किए गए स्वयमेव प्रतिकूलता धारण करते हैं। ऐसी प्रवृत्ति पापानुष्ठानके विषयमें नहीं होती।’

और भी विपत्तियोंका वर्णन करके हम लेखको बढ़ाना उचित नहीं समझते, संक्षेपमें इतना ही कहना है, कि बड़े बड़े विद्वान आए, किन्तु श्रुतदेवताके प्रसादसे वे शरदऋतुके मेघोंके सदृश अल्पस्थायी रहे।

वर्ष बीत गया, फिर भी प्रतिलिपिका कार्य प्रारम्भ नहीं हो रहा था। एक बार श्री मंजैय्या हेगड़ेने अपने धर्मस्थलके सर्व धर्म-सम्मेलनमें बुलाया। वहाँ पहुंचनेसे प्रतिलिपिका कार्य शीघ्र प्रारम्भ करनेमें विद्वान नहीं आता, किन्तु कारण विशेषसे पहुंचना न हो सका। कुछ समयके अनंतर दिसम्बर सन् ४१ में गोम्मटेश्वर महामस्तकाभिषेक फण्ड सम्बन्धी कमेटीकी बैठकमें सम्मिलित होनेको हमें वैंगलोर जाना पड़ा। उत्तर भारतसे केवल सर सेठ हुकमचंदजी, सर सेठ भागचंदजी पहुंचे थे। मीटिंगके पश्चात् हम ग्रंथप्राप्तिकी आशासे श्री मंजैय्या हेगड़े, श्रीरघुचंद बल्लाल, श्री जिनराज हेगड़े, शास्त्री श्री शांतिराज जी आस्थान महाविद्वान् मैसूरके साथ मूडविद्वीके लिए रवाना हुए। सब लोग आवश्यक कार्यवश अपने अपने घर चले गए। अतः हम अकेले मूडविद्वी पहुंचे। दो तीन दिन प्रयत्न करने पर भी प्रतिलिपिका कार्य प्रारम्भ न हो सका। आगे कबतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, यह भी पता नहीं चलता था। इससे चित्तमें विविध संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते थे।

दो तीन दिनकी प्रबल प्रतीक्षाके पश्चात् व्यवस्थापक वंधु श्री धर्मपालजी श्रेष्ठिकी विशेष कृपा हुई। उनने भण्डार खोलकर महावंध शास्त्रकी प्रति हमारे समक्ष विराजमान कर दी। जिनेन्द्रदेव तथा जिनवाणीकी पूजाके अनन्तर हमने स्वयं प्रतिलिपि करनेका परम सौभाग्य प्राप्त किया। वह ३० दिसम्बर १९४१ का दिन जैन साहित्यके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा।

अनन्तर प्रतिलिपिका कार्य पं० लोकनाथ जी शास्त्रीके तत्त्वावधानमें संपन्न होता रहा। ३० दिसम्बर सन् १९४२ तक कार्य पूर्ण हो गया। पहले मूडविद्वीके भण्डारके लिये यही काफी ४ वर्षमें तैयार की गई थी। यह कार्य-शीघ्र संपन्न करनेका श्रेय उक्त शास्त्रीजीके सहयोगी विद्वान्

पं० नागराज जी तथा देवकुमारजीको भी है। भट्टारक महाराज तथा व्यवस्थापकोंकी भी विशेष कृपा रही, जो उन लोगोंने इस कार्यमें कोई भी बाधा नहीं उत्पन्न होने दी। इस सम्बन्ध में श्री मंजैय्या हेगड़ेके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं, कि उनने सर्वदा इस कार्यमें सर्व प्रकारका सहयोग प्रदान किया है। कुछ विद्वानोंने उत्तर भारतसे श्री हेगड़ेजीको प्रतिलिपि न देनेका अप्रार्थित बहुमूल्य परामर्श दिया, किन्तु विद्वान हेगड़े महाशयके उत्तरसे उन लोगोंको चुप होना पड़ा। जब हम आपत्तियोंसे आकुलित होकर हेगड़े जी को लिखते थे, तो उनके उत्तरसे निराशा दूर हो जाती थी। उनने हमें लिखा था, “आप भय न करें, ग्रंथ-प्रकाशनके विषयमें कोई भी बाधा न आयगी। प्रतिलिपिका कार्य आपकी इच्छानुसार होता रहे, इसपर मैं विशेष ध्यान रखूंगा।” उनने अपने वचनका पूर्णतया रक्षण किया। कुछ भी भेट लिये बिना प्रतिलिपिकी अनुज्ञा प्रदान करनेकी उदारता तथा कृपाके उपलक्षमें हम सिद्धान्त मंदिरके ट्रस्टियों तथा मूडविद्रीके पंचोंको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। भट्टारक महाराजके भी हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं। मूडविद्रीके महानुभावोंके हार्दिक प्रेम, कृपा तथा उदार भावकी स्मृति चिरकाल पर्यन्त अंतःकरणमें अंकित रहेगी।

मूडविद्रीमें प्रतिलिपि कराने में जो द्रव्य-व्यय हुआ, वह सेठ गुलाबचंद जी हीराचन्द जी सोलापुरके पाससे प्राप्त हुआ था। इसके लिए उन्हें धन्यवाद है। ब्र० श्री जीवराज जीने इस श्रुत-रक्षा या सेवाके कार्यमें जो सत्परामर्श तथा सर्व प्रकारका सहयोग दिया, उसके लिए हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं।

दानवीर साहू श्रीशान्तिप्रसादजी जैनकी वदान्यतासे स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ काशीने इस टीकाके प्रकाशनकी उदारता की, इसके लिए हम साहू शान्तिप्रसादजीके अत्यन्त अनुगृहीत हैं। पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यने प्रकाशन निमित्त जो श्रम किया, उसके लिए उन्हें विशेष धन्यवाद है।

इस शास्त्रका शब्दानुवाद प्रथम बार पं० कुन्दनलाल जी परिवार न्यायतीर्थ तथा पं० परमानन्दजी साहित्याचार्य सौरई निवासीके सहयोगसे लगभग सवामाहमें पूर्ण हुआ था। इसके पश्चात् पं० कुन्दनलाल जीके अस्वस्थ हो जानेके कारण उनका बहुमूल्य सहयोग न मिल सका। पं० परमानन्दजीका लगभग दो एक सप्ताह और सहयोग बड़ी कठिनातासे मिला, और आगे वे सहयोग न दे पाए, कारण ग्रीष्मावकाशके अनन्तर सिवनीका महिलाश्रम खुल गया, पाठशाला और आश्रमकी पढ़ाईके पश्चात् कार्य करनेयोग्य न समय मिलता था और न शक्ति ही वचती थी, कि ऐसा गुरुतर कार्य किया जावे। दोनों विद्वानोंके सहयोग न मिलनेसे कार्यमें सहसा बड़ी अड़चन आ गई। उन विद्वानोंके कृपापूर्ण अमूल्य सहयोगके लिए हम अत्यन्त आभारी हैं।

आद्य अनुवादकी प्रति देखकर अनेक अनुभवी विद्वानोंने सलाह दी, कि पुनः टीका लिखी जानी चाहिए। हमने भी जब विशेष शास्त्रोंका अभ्यास किया और रचनाका सूक्ष्मतया निरीक्षण किया, तब नवीन रूपसे टीका निर्माण करना ही उचित जंचा। महावन्धकी टीकाको मुख्य कार्य समझ हम उसमें संलग्न हो गए। लगभग तीन वर्षमें यह कार्य बन पाया। बना या नहीं यह हम नहीं कह सकते। हमारा भाव यह है कि इसमें पूर्वोक्त समय लगा। इस अनुवादमें विशेषार्थ, टिप्पणी, शुद्ध पाठ योजना आदि भी कार्य हुए। इस अपेक्षासे यह टीका पूर्णतया नवीन समझना चाहिए।

सन् १९४५ के ग्रीष्मावकाशमें न्यायालंकार सिद्धान्त महोदधि गुरुवर पं० वंशीधर जी शास्त्री महरोनी वालोंने सिवनी पधारकर अनुवादको ध्यान पूर्वक देखा। उनके संशोधन के उपलक्षमें हम हृदय से कृतज्ञ हैं। यह उनकी ही कृपा है, जो यह महान् कार्य हम जैसे व्यक्ति-से संपन्न हो गया।

पं० हीरालाल जी शास्त्री साहूमलने अनेक बहुमूल्य परामर्श तथा सुझाव प्रदान किए थे। पं० फूलचंद जी शास्त्रीने सिवनी पधार कर अनेक महत्त्वास्पद बातें सुझाई थी। इसके लिए हम दोनों विद्वानोंके अनुगृहीत हैं। अन्य सहायकोंके भी हम आभारी हैं।

हमें स्वप्नमें इस बातका भान न था, कि महावन्ध की प्रति मूढविद्रीसे प्राप्त करनेका परम सौभाग्य हमें मिलेगा, और उसकी टीका करनेका भी अमूल्य अवसर आयगा। जैन धर्मके प्रसादसे और चारित्र चक्रवर्ती प्रातःस्मरणीय पूज्य आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर महाराजके पवित्र आशीर्वादसे यह मंगलमय कार्य संपन्न हुआ। प्रमाद अथवा अज्ञानवश टीकामें जो भूल हुई हों, उन्हें विशेषतः विद्वान् क्षमा करेंगे और संशोधनार्थ हमें सूचित करनेकी कृपा करेंगे, ऐसी आशा है। ऐसे महान् कार्यमें भूलें होना असंभव नहीं है। 'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे।'

पौष कृ० ११, वीरसंचत् २४७३

१८ दिसम्बर, १९४६ सिवनी

(सी० पी०)

}

—सुमेरचन्द्र दिवाकर

प्रस्तावना

१—महाबन्धपर प्रकाश

जिनेन्द्र देवकी निर्दोष वाणीरूप होनेके कारण संपूर्ण आगम ग्रन्थ समान आदर तथा श्रद्धाके पात्र हैं, फिर भी जैन संसारमें धवल, जयधवल, महाधवल नामक शास्त्रोंके प्रति उत्कट अनुराग एवं तीव्र भक्तिका भाव विद्यमान है। इस विशेष आदरका कारण यह है, कि तीर्थंकर भगवान् महावीर प्रभुकी दिव्य ध्वनिको ग्रहण कर गणधरदेवने ग्रन्थ-रचना की। वह मौखिक परंपराके रूपमें, विशेष ज्ञानी मुनीन्द्रोंको चमत्कारिणी स्मृतिके रूपमें, हीयमान होती हुई भी, विद्यमान थी। महावीर निर्वाणके ६८३ वर्ष व्यतीत होने पर अज्ञों और पूर्वोंके एक देशका भी ज्ञान लुप्त होनेकी विकट स्थिति आ गई। उस समय अग्रायणीयपूर्वके चयनलब्धि अधिकारके चतुर्थ प्राभृत 'कम्मपयडि'के चौबीस अनुयोग द्वारोंसे षट्खण्डागमके चार खण्ड बनाए गए, जिन्हें वेदना, वर्गणा, खुदाबंध तथा महाबंध कहते हैं। बंधक अनुयोग द्वारके अन्यतम भेद बंधविधानसे जीवट्टाणका बहुभाग और तीसरा बंधसामित्तविचय निकले। इस प्रकार षट्खण्डागमका द्वादशांगसे सम्बन्ध है। इसी प्रकार ज्ञानप्रवाद नामक पंचम पूर्वके दशम वस्तु अधिकारके अन्तर्गत तीसरे पेज्जदोसपाहुडसे कषाय प्राभृतकी रचना की गई। इन ग्रन्थोंका द्वादशांगवाणीसे अविच्छिन्न सम्बन्ध होनेके कारण द्वादशांगवाणीके समान श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक आदर किया जाता है। षट्खण्डागमके महाबन्धको छोड़कर पांच खण्डोंपर जो वीरसेनाचार्य रचित टीका है उसे धवला टीका कहते हैं। महाबन्धपर कोई टीका उपलब्ध नहीं है।^१ कषाय प्राभृतमें गुणधर आचार्य रचित १८० गाथाएं हैं।^२ इसकी ७२ हजार श्लोकके प्रमाण टीका वीरसेनाचार्य तथा उनके शिष्य भगवज्जिनसेन स्वामीने बनाई, उसका नाम जयधवला टीका है।

षट्खण्डागममें जीवट्टाणके प्रारम्भिक सत्प्ररूपणा अधिकारके केवल १७७ सूत्रोंकी रचना पुष्पदन्त आचार्यने की है, शेष समस्त रचना भूतबलि स्वामीकृत है। जीवट्टाण, खुदाबंध, बंधसामित्त, वेदना और वर्गणा इन ५ खण्डोंकी श्लोक संख्या छह हजार प्रमाण है। छठवें खण्ड महाबन्धमें चालीस हजार श्लोक हैं। साधारणतया संपूर्ण धवला, जयधवला टीकाको द्वादशांगसे साक्षात् सम्बन्धित समझा जाता है, किन्तु यथार्थमें धवला और जयधवला टीकाओंका निर्माण जब नवमी शताब्दीके लगभग हुआ है, तब ईसवी सदीके प्रारंभमें की गई रचनाओंके समान इनका स्थान नहीं रहता।

(१) वण्णदेवने आठ हजार पांच श्लोक प्रमाण महाबन्धकी टीका रची थी।

“व्यलिखत् प्राकृतभाषारूपां सम्यक्पुरातनव्याख्याम्।

अष्टसहस्रग्रन्थां व्याख्यां पञ्चाधिकां महाबन्धे ॥ १७६ ॥” -इन्द्र० श्रुता०।

(२) “गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि।

वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥” -जयध० १।१५१।

द्वादशांग वाणीसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन साहित्यकी दृष्टिसे गुणधर आचार्य रचित १८० गाथाओंको जो विशेषता प्राप्त होगी, वह उन पर रची गई ७२ हजार श्लोक प्रमाण टीकाको नहीं होगी। इसी दृष्टि से यदि धवला टीका पर भी प्रकाश डाला जाय, तो कहना होगा, कि ६० हजार श्लोक प्रमाण टीका भी नवमी सदी की है, प्राचीन अंश पांच खण्डोंके रूपमें केवल ६ हजार श्लोक प्रमाण है। महावन्ध ग्रन्थकी संपूर्ण ४० हजार प्रमाण रचना भूतबलि स्वामीकृत होनेके कारण अत्यन्त प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार सबसे प्राचीन जैनवाङ्मयकी दृष्टिसे महावन्ध सूत्रकी रचना धवला जयधवला टीकाओंके मूलकी अपेक्षा लगभग सातगुनी है। ब्रह्म हेमचन्द्र रचित श्रुतस्कन्धमें लिखा है—

“सत्तरिसहस्रधवलो जयधवलो सट्टिसहस्र बोधवो।

महवन्धं चालीसं सिद्धंततयं अहं वंदे ॥”

‘धवलशास्त्र सत्तर सहस्र प्रमाण है, जयधवल साठ हजार प्रमाण है तथा महावन्ध चालीस हजार प्रमाण है। इन सिद्धान्तशास्त्रयुक्तों में वंदना करता हूँ।’

इन्द्रनन्दिने महावन्धको तीस हजार^१ कहा आर ब्रह्म हेमचन्द्र चालीस हजार श्लोक^२ प्रमाण बताते हैं। इस मतभेदका कारण यह विदित होता है, कि संभवतः इन्द्रनन्दिने महावन्धमें उपलब्ध अक्षरोंकी गणनानुसार अपनी संख्या निर्धारित की, ब्रह्म हेमचन्द्रने महावन्धके संक्षिप्त किए सांकेतिक अक्षरोंको, संभवतः पूर्ण मानकर गणना की। ‘ओराण्यसरीर’को महावन्ध में ‘ओरा०’ लिखा है। इसे इन्द्रनन्दिने दो अक्षर माने और ब्रह्म हेमचन्द्रने सात अक्षर रूप गिना। समस्त ग्रंथमें पुनः पुनः प्रकृति आदिके नामोंकी गणना हुई है, इस कारण भूतबलि स्वामीने सांकेतिक संक्षिप्त शैलीका आश्रय लिया। अतः इन्द्रनन्दि और हेमचन्द्रकी गणनामें भिन्नता तात्त्विक भिन्नता नहीं है।

जैन समाजमें महावन्ध शास्त्र महाधवल जीके नामसे विख्यात है। महावन्ध नामको पढ़कर कुछ लोग तो भ्रममें पड़ेंगे। यथार्थमें ग्रन्थका नाम महावन्धके अनुभागवन्ध खण्डके अन्तकी प्रशस्तिसे प्रमाणित होता है। वहां लिखा है—

“सकलधरित्री-विभुत-प्रकटितमधीशे मल्लिकव्हे वेरिसि सत्पुण्याकर महावन्धद पुस्तकं श्रीमाधनंदिमुनिपतिगितरु ॥”

यह महावन्ध भूतबलि स्वामी द्वारा रचित है, इस बातका निश्चय धवला टीका (सिवनी प्रति पृ० १४३७) के इस अवतरणसे होता है—

“जं तं वन्धविहाणं तं चउन्विहं। पयडिवंधो, द्विदिवंधो, अणुभागवंधो,

(१) “प्रविरच्य महावन्धाह्वयं ततः पष्ठकं खण्डम्। त्रिंशत्सहस्रसूत्रं व्यरचयदसौ महात्मा ॥”

—इन्द्र० श्रुता० १३९।

(२) समस्त महावन्ध गद्यमय रचना है। अनुष्टुप् छन्दके ३२ अक्षरोंको एक श्लोकका माप मान कर समस्त ग्रंथकी गणना की गई। इसे ही श्लोकोंके नामसे कहा जाता है। महावन्ध सूत्र छन्दोबद्ध रचना नहीं है।

पदेसंबंधो चेदि । एदेसिं चदुण्हं बंधाणं विहाणं भूदबलिभडारण महाबंधे सप्पवंचेण लिहिदं ति अम्हेहि एत्थ ण लिहिदं ।”

धवला टीका महाबन्धशास्त्रके रचयिताके रूपमें भूतवलिका नाम बताती है, महाबन्ध नामका परिज्ञान पूर्वोक्त अनुभागबन्धकी प्रशस्तिसे होता है, अतः यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस महाबन्धके निर्माता भूतवल स्वामी हैं । इसी महाबन्धकी महाधवलके नामसे ख्याति है । संवत् १६१७ तक महाधवलकी प्रसिद्धि विदित होनेका प्रमाण उपलब्ध है । कारणजाके प्राचीन शास्त्र भण्डारमें प्रतिक्रमण नामकी एक पोथी है । उसमें यह उल्लेख पाया जाता है—

“धवलो हि महाधवलो जयधवलो विजयधवलरच ।

ग्रन्थाः श्रीमद्भिरमी प्रोक्ताः कविधातरस्तस्मात् (?) ॥ १३ ॥

धवल, जयधवल तथा महाधवलके साथ ‘विजयधवल’ का नवीन उल्लेख है, जो अनुसंधानका विषय है । आगे लिखा है—

“तत्पट्टे धरसेनकस्तमभव सिद्धान्तगः संशुभः (?)

तत्पट्टे खलु वीरसेनमुनिपो यैश्चित्रकूटे परे ।

येलाचार्यसमीपगं कृततरं सिद्धान्तमल्पस्य ये

वाटे चैत्यवरे द्विसप्ततिमति सिद्धाचलं चक्रिरे ॥ १४ ॥”

संवत् १६३७ आश्विनमासे कृष्णपक्षे अमावस्यातिथौ शनिवासरे शिवदासेन लिखितम् ।

कवि वृन्दावनजीने महाधवल नाम प्रयुक्त किया है ।^१

पंडितप्रवर टोडरमलजीकी गोस्मटसार कर्मकाण्डकी टीकामें भी महाधवल नाम आया है । “तहां गुणस्थान विषै पक्षान्तर जो महाधवलका दूसरा नाम कषायप्राभृत (?) ताका कर्ता यतिवृषभाचार्य ताके अनुसार ताकरि अनुक्रम तें कहिए हैं ।” कषाय प्राभृतपर वीरसेनाचार्यने जो जयधवला टीका लिखी है, उससे विदित होता है कि कषायपाहुडके गाथा सूत्रोंपर यतिवृषभ आचार्यने चूर्णिसूत्र बनाए थे । इसे पण्डित टोडरमलजीने ‘महाधवल’ ग्रन्थ रूपमें कह दिया । प्रतीत होता है, सिद्धान्तग्रन्थोंका साक्षात्कार न होनेके कारण कषायप्राभृतका नामान्तर महाधवल लिखा गया ।

(१) “अग्रणीपूर्वके, पांचवें वस्तुका, महाकरमप्रकृति नाम चौथा ।

इस पराभृत्तका, ज्ञान तिनको रहा, यहां लग अंगका, अंश तौ था ॥

सो पराभृत्तको भूतवल पुष्परद, दोय मुनिको सुगुरुने पढ़ाया ।

तास अनुसार, षट्खण्डके सूत्रको, बांधिके पुस्तकोंमें मढ़ाया ॥ ४६ ॥

फिर तिसी सूत्रको, और मुनिवृन्द पढ़ि, रची वित्तारचौं ताजु टीका ।

धवल महाधवल जयधवल आदिक सु, सिद्धान्तवृत्तान्त परनान टीका ॥

तिरुन हि सिद्धान्तको, नेमिचन्द्रादि आचार्य, अभ्यास करिके पुनीता ।

रचे गोमटसारादि बहुशास्त्र यह, प्रथम सिद्धान्त-उत्तपत्ति-गीता ॥ ४७ ॥”

—श्रीप्रवचनसार-परमागम, कवि वृन्दावन, पृ० ६, ७ :

२—महाधवल नाम प्रचारका कारण

यहां यह विचार उत्पन्न होता है कि महावन्ध शास्त्रका नाम महाधवल प्रचलित होनेका क्या कारण है ? इस सम्बन्धमें यह विचार उचित जँचता है, कि महावन्ध में भूतवलि स्वामीने अपने प्रतिपाद्य विषयका स्वयं अत्यन्त विशद तथा स्पष्टता पूर्वक प्रतिपादन किया है। इसी कारण वीरसेन आचार्य अपनी धवला टीकामें लिखते हैं—“इन चार वन्धोंका विस्तृत विवेचन भूतवलि भट्टारकने महावन्धमें किया है, अतएव हम यहां इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखते।” महावन्धके विशेषण रूपमें महाधवल शब्दका प्रयोग अनुचित नहीं दिखता। यह भी संभव दिखता है कि विशेष्यके स्थानमें विशेषणने ही लोकदृष्टिमें प्राधान्य प्राप्त कर लिया हो। यह भी प्रतीत होता है, कि परंपरा शिष्य सट्टश वीरसेन, जिनसेन स्वामीने अपनी सिद्धान्तशास्त्रकी टीकाओंके नाम धवला, जयधवला रखे तब स्वयं स्पष्ट प्रतिपादन करने वाले गुरुदेव भूतवलिकी महिमापूर्ण कृतिको भक्ति तथा विशिष्ट अनुरागवश महाधवल कहना प्रारंभ कर दिया गया होगा।

महावन्धके महाधवल नामके बारेमें इस वर्ष चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर महाराजके समक्ष चर्चा करनेका अवसर आया। इस ग्रन्थकी प्रस्तुत हिन्दी टीकाका आचार्य महाराज ध्यानपूर्वक स्वाध्याय कर चुके थे, अतः ग्रंथराजसे प्राप्त परिचयके आधार पर आचार्य महाराजने कहा—“सच्चमुचमें यह ग्रन्थ महाधवल है। वन्धपर स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन करने वाला शास्त्र ग्यार्थमें महान् है। वन्धका ज्ञान होने पर ही मोक्षका बराबर ज्ञान होता है। समयसार पहले नहीं चाहिए। पहले महावन्ध चाहिए। पहले सोचो हम क्यों दुःखमें पड़े हैं, क्यों नीचे हैं ? तीन सौ त्रेसठ पाखण्ड मतवाले भी पूर्ण सुख चाहते हैं, किन्तु मिलता नहीं। हमें कर्मक्षयका मार्ग ढूंढना है। भगवानने मोक्ष जानेकी सड़क बताई है। चलोगे तो मोक्ष मिलेगा, इसमें शंका क्या ?” यह महावन्ध शास्त्र वस्तुतः महाधवल है। इस विषयको स्पष्ट करनेके लिए आचार्य महाराजने एक विद्वान् ब्राह्मणपुत्रकी कथा सुनाई, जिसको उसे पिताने, जो राजपण्डित था, अपने जीवन कालमें अर्थकरी विद्या नहीं सिखाई थी; केवल इतनी बात सिखाई थी, कि अमुक कार्य करनेसे अमुक प्रकारका वन्ध होता है। वन्धशास्त्रमें पुत्रको पारङ्गत करनेके अनन्तर पिताकी मृत्यु हो गई।

अब पितृविहीन विप्रपुत्रको अपनी आजीविकाका कोई मार्ग नहीं सूझा। अतः वह धनप्राप्ति-निमित्त राजाके यहां चोरी करने पहुंचा। उसने रत्न, सुवर्णादि बहुमूल्य सामग्री हाथमें ली तो पिताके द्वारा सिखाया गया पाठ उसे स्मरण आ गया, कि इस कार्यके द्वारा अमुक प्रकारका दुःखदायी वन्ध होता है। अतः वन्धके भयसे उसने राजकोषका कोई भी पदार्थ नहीं चुराया। उसे वापिस निराश लौटते समय मार्गमें भुसा मिला। भुसाके लेनेमें क्या दोष है, यह पिताने नहीं सिखाया था, इस लिए वह भुसाका ही गट्टा बांधकर साथ ले चला। पहरेदारोंने उसे पकड़कर

(१) “एदेसि चटुण्हं वंधाणं विहाणं भूदवलिभट्टारण महावंधे सण्ववंचेण लिहिदंति, अग्हेदि एत्थ ण लिहिदं” -व० टी० सि० १४३७।

राजाके समक्ष उपस्थित किया। जब राजाने पूछा—तुमने भुसाकी चोरी क्यों पसन्द की? तब ब्राह्मणपुत्रने बताया कि मेरे पिताजीने अपने जीवनमें मुझे केवल बन्धका शास्त्र पढ़ाया था। उसमें भुसाको लेनेमें दोषका कोई उल्लेख न पा मैंने उसे ही चुराना निर्दोष समझा। अपने राजपुरोहित-के पुत्रको इतना अधिक पापभीरु देख राजा प्रभावित हुआ और उसने उसको अत्यन्त विश्वास-पूर्ण उच्च पद देकर निराकुल कर दिया।^१ इस कथाको सुनाते हुए आचार्यश्रीने कहा—बन्धका ज्ञान होनेसे जीव पापसे वचता है, इससे कर्मोंकी निर्जरा भी होती है। बन्धका वर्णन पढ़नेसे मोक्षका ज्ञान होता है। बन्धका वर्णन करने वाला यह शास्त्र वास्तवमें महाधवल है। इससे बहुत विशुद्धता होती है।^२

महाबन्धका अध्ययन बुद्धिका विलास या बौद्धिक व्यायामकी सामग्री मात्र उपस्थित करता है, यह धारणा अयथार्थ है। इस शास्त्रमें आत्माका वास्तविक कल्याणप्रद अमृतका निर्मल निर्झर प्रवाहित होता है। उसमें निमग्न होनेवाला मुमुक्षु महान् शान्ति तथा आह्लादको प्राप्त करता है। इस दृष्टिसे कहा जा सकता है, कि महाबन्धका परिशीलन विचारोंको, बुद्धिको एवं आत्माको धवल ही नहीं महाधवल बनाता है। इस दृष्टिने महाधवल संज्ञा-प्रचारमें भी सहायता या प्रेरणा प्रदान की होगी।

महाबन्धका परिशीलन तथा मनन करते समय यह बात समझमें आई, कि जब तक मनोवृत्ति पवित्र तथा निराकुल न हो, तब तक ग्रन्थका पूर्वापर गंभोर विचार नहीं हो पाता। महाधवल मनोवृत्ति पूर्वक महाबन्धका रसास्वादन किया जा सकता है, इस मनोवृत्तिको लक्ष्यमें रखकर यह नाम प्रचलित हो गया प्रतीत होता है।

३—महाबन्धके अवतरणका इतिहास

कविकी कल्पना या विचारोंके द्वारा जैसे काव्यकी रचना होती है, उसी प्रकार यह महाबन्ध-शास्त्र भूतबलि स्वामीके व्यक्तिगत अनुभव, विचार या कल्पनाओंकी साकार मूर्ति नहीं है। इस ग्रन्थका प्रमेय सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामीने अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा प्रकाशित किया था।^१ श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके प्रभातमें विपुलाचल पर्वतपर सर्वज्ञ महावीर तीर्थकरकी कल्याण-कारिणी धर्म-देशना हुई थी। उसे गौतमगोत्री चतुर्विध निर्मल ज्ञानसंपन्न, संपूर्ण दुःश्रुतिमें पारङ्गत इन्द्रभूति ब्राह्मणने^२ वर्धमान भगवानके पादमूलमें उपस्थित हो सुना और अवधारण किया। अनन्तर गौतम स्वामीने^३ उस वाणीकी द्वादशांग तथा चतुर्दश पूर्वरूप ग्रन्थात्मक रचना^४ एक मुहूर्तमें की। “एककेण चैव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा”। यह द्वादशांग रूप रचना

(१) “वासस्स पढममासे सावणणामग्गि बहुलपडियाए।

अभिजीणक्खरम्मि य उप्पत्ती घम्मतिथिस्स ॥” —ति० प० १।३८।

(२) गौतम स्वामीके विषयमें जयधवलाकार यह बताते हैं, कि ‘उनका सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी अपेक्षा अनन्तगुणित बल था’ —इदंभूदिस्स...सत्त्वद्विसिद्धि-णिवासिदेवेहिंतो अणंतगुणवत्तस्स। (पृ० ८३)

(३) “पुणो तेणिंदभूदिणा भावसुदपज्जयपरिणदेण बारहंगाणं चोद्दसपुच्चाणं च गंथाणमेक्केण चैव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भावसुदस्स अत्थपदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो दुदपज्जाएण गोदमो परिणदो चि दव्वसुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथरयणा जादेत्ति।” —ध० टी० १।६५।

तत्काल की गई थी। इस सम्बन्धमें भगवान् महावीरको अर्थकर्त्ता कहा गया है, और गौतम स्वामीको ग्रन्थकर्त्ता। गौतमने द्रव्यश्रुतकी रचना की थी। तिलोयपण्णत्तिकारका कथन है—

“इय मूलतंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदिविप्पवरो ।

उवतंते कत्तारो अणुतंते सेसआइरया ॥ १।८० ॥”

‘इस प्रकार श्री वीर भगवान् मूलतंत्रकर्त्ता, विप्रशिरोमणि इन्द्रभूति उपतंत्रकर्त्ता तथा शेष आचार्य अनुतंत्रकर्त्ता हैं।’

यह द्वादशांग समुद्रके समान विशाल तथा गंभीर है। संपूर्ण द्वादशांगकी ‘मध्यमपद’ के रूपमें गणना करने पर जो संख्या प्राप्त होती है, उसे कविवर ध्यानतरायजी इस प्रकार बताते हैं—

“इक सौ वारह कोडि बखानो । लाख चौरासी ऊपर जानो ॥

ठावनसहस पंच अधिकानो । द्वादश अंग सर्व पद मानो ॥”

सम्पूर्ण श्रुतज्ञानमें पदोंकी संख्या ११२८४५८००५ होती है। वारह अङ्गोंमें निबद्ध अक्षरोंके अतिरिक्त अक्षरोंका प्रमाण ८०१०८१७५ है। इनकी अनुष्टुप् छन्दरूप गणना करें तो २५०३३८०^३/_४ श्लोकोंका प्रमाण होता है।

प्रथम अंगका नाम आचारांग है। इसमें अठारह हजार पद कहे गए हैं। ये मध्यम पद रूप हैं। एक मध्यम पदमें कितने श्लोक होंगे इसके विषयमें कहा है—

“कोडि इक्कावन आठ हि लाखं । सहस चुरासी छह सौ भाखं ॥

साढ़े इक्कीस शिलोक बताए । एक एक पदके ये गाए ॥”

इन श्लोकोंकी संख्यासे आचारांगके १६००० पदोंका गुणा करनेके अनन्तर आचारांगके अपुनरुक्त अक्षर विशिष्ट श्लोकोंकी प्राप्ति होगी। जिस व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पंचम अंगका उपदेश धरसेन आचार्यने भूतबलि पुष्पदन्तको दिया था और जो इस ग्रन्थराजके बीज स्वरूप है उसमें पदोंकी संख्या इस प्रकार कही है—

“पंचम व्याख्याप्रगपति दरसं । दोय लाख अट्ठाइस सरसं ।”

दृष्टिवाद नामक वारहवें अंगके चौथे पूर्व अग्रायणी सम्बन्धी भी उपदेश दिया गया था। उस दृष्टिवादका भी बड़ा विशाल रूप है।

“द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इक सौ आठ कोडिपन वेदं ।

अडसठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंच पद मिथ्याहन हैं ॥”

‘व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगमें जिनेन्द्र भगवान् के समीपमें गणधर देवसे जो साठ हजार प्रश्न किए गए उनका वर्णन है। ‘दृष्टिवादमें तीन सौ त्रैसठ कुवादोंका वर्णन तथा निराकरण किया

(१) “पण्डितहस्ताणि भगवदर्हत्तीर्यङ्करसन्निधौ । गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यन्ते कथ्यन्ते वस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम ।”

(२) “द्वादशमङ्गं दृष्टिवाद इति । दृष्टिगतानां त्रयाणां त्रिपष्ठ्युत्तराणां प्ररूपणं निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते ।” —त० रा० पृ० ५१ ।

गया है। इस अंगके पूर्वगत भेदका उपभेद अग्रायणीपूर्व है। उसमें सुनय, दुर्नय, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व, नवपदार्थों आदिका वर्णन किया गया है। द्वादशांग वाणीमें दिव्यध्वनिका अधिकसे अधिक सार संगृहीत रहता है। सर्वज्ञ भगवान्ने विश्वके समस्त तत्त्वोंका प्रतिपादन किया था, इस कारण द्वादशांग वाणीमें भी सभी विषयोंका विशद प्रतिपादन किया गया है। जब रत्नत्रय धर्मकी विशुद्ध साधना होती थी, तब पवित्र आत्माओंमें चमत्कारी ज्ञानकी ज्योति जगती थी। अब राग-द्वेष मोहके कारण आत्माकी मलिनता बढ़ जानेसे महान् ज्ञानोंकी उपलब्धिकी बात तो दूर है, वह चर्चा भी चकित कर देती है।

द्वादशांग वाणीके अत्यन्त विस्तृत विवेचनके होते हुए भी समस्त पदार्थका प्रतिपादन उसके द्वारा नहीं हो सका। कारण—

“पणवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं ।

पणवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिवद्धो ॥” —गो० जी० ३३३ ।

‘पदार्थोंका बहुभाग वाणीके परे है। अनिर्वचनीय पदार्थोंका अनंतवां भाग वाणीके गोचर है। इसका भी अनंतवां भाग श्रुतरूपमें निबद्ध किया गया है।

यह द्वादशांग ही यथार्थ वेद है, कारण यह किसी प्रकारके दोषसे दूषित नहीं है। हिंसाका वर्णन करनेवाला यथार्थ वेद नहीं है। उसे तो कृतान्त (यम) की वाणी कहना चाहिए। महर्षि जिनसेनका कथन है—

“श्रुतं सुविहितं वेदो द्वादशाङ्गमकल्मषम् ।

हिंसोपदेशि यद्वाक्यं न वेदोऽसौ कृतान्तवाक् ॥” —महापु० ३९।२२ ।

गौतम स्वामीने द्वादशांग ग्रंथका सुधर्माचार्यको व्याख्यान किया। धवलाटीकामें सुधर्माचार्यके स्थानमें लोहाचार्यका नाम ग्रहण किया गया है। कुछ कालके अनंतर गौतमस्वामी^२ केवली हुए। उनने बारह वर्ष पर्यन्त विहार करके निर्वाण प्राप्त किया। उसी दिन सुधर्माचार्यने जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्योंको द्वादशांगका व्याख्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार महावीर भगवान्के निर्वाणके बाद गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन सकल श्रुतके धारक हुए, पश्चात् केवलज्ञान-लक्ष्मीके अधिपति बने। परिपाटी क्रमसे ये तीन सकल श्रुतके धारक कहे गए हैं और अपरिपाटी^३ क्रमसे सकलश्रुतके ज्ञाता संख्यात हजार

(१) “अग्रस्य द्वादशाङ्गेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं ज्ञानं अग्रायणं तत्प्रयोजनं अग्रायणीयम् । तच्च सप्त-शतसुनयदुर्णयपंचास्तिकायषड्द्रव्य-सप्ततत्त्व-नवपदार्थादीन् वर्णयति ।” —गो० जीव० जी० ३६५ ।

(२) “तेण गोदमेण दुविहमवि सुदणाणं लोहज्जस्स संचारिदं ।” —ध० टी० १।६५ ।

तदो तेण गो अमगोत्तेण इंदभूदिणा सुहमा (म्मा) इरियस्स गंथो वक्खाणिदो ।” —ज० ध० १।८४ ।

(३) “परिवाडिमस्सिदूण एदे तिणिं वि सयलसुदधारया भणिया ।

अरिवाडीए पुण सयलसुदपारगा संखेज्जसहस्सा ॥” —ध० टी० १।६५ ।

हुए। जयधवलामें बताया है कि सुधर्माचार्यने अनेक आचार्योंको द्वादशांगका व्याख्यान किया। इसे ही धवलाटीकामें स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपरिपाटीकी अपेक्षा संख्यात हजार श्रुतकेवली हुए। जम्बूस्वामीने विष्णु आदि अनेक आचार्योंको द्वादशांगका व्याख्यान किया।

सुधर्माचार्यने बारह वर्ष विहार किया और जम्बूस्वामीने ३८ वर्ष विहार किया, पश्चात् जम्बूस्वामीने मोक्ष प्राप्त किया। जम्बूस्वामीके बारेमें जयधवलाकार लिखते हैं—अन्तिम केवली कौन हुए? 'एसो एत्थोसप्पिणीए अंतिमकेवली।' ये इस अवसर्पिणी कालके अंतिम केवली हुए। इस कथनसे यही अर्थ निकाला जाता है कि जम्बूस्वामीके निर्वाणके पश्चात् अन्य महापुरुष निर्वाणको नहीं गए। यह कथन विशेष विचारणीय है। तिलोयपण्णत्तिमें लिखा है कि जम्बूस्वामीके निर्वाण जानेके पश्चात् अनुवद्ध केवली नहीं हुए।

“तम्मि कदकम्पणासे जंबूसामित्ति केवली जादो।

तम्मि सिद्धिं पत्ते केवल्लिणो णत्थि अणुवद्धा ॥” —४।१४७७।

गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन अनुवद्ध-क्रमवद्ध परिपाटीक्रम युक्त (In Succession) केवली हुए। अननुवद्ध-अक्रमपूर्वक^३ केवल्य उपार्जन करनेवाले अन्य भी हुए हैं, जिनमें अंतिम केवली श्रीधरमुनिने कुण्डलगिरिसे मुक्ति प्राप्त की।^३

“कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवल्लणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।

चारणारिसीसु चरिमो सुपासचंदाभिधानो य ॥” —ति० प० ४।१४७९।

तीन केवलियोंमें ६२ वर्ष व्यतीत हुए और पांच श्रुतकेवलियोंमें १०० का समय पूर्ण हुआ। इन पांच श्रुतकेवलियोंकी गणना भी परिपाटीक्रम-अनुवद्धरूपसे की गई, जो इस बातकी

(१) “तद्विसे चेव सुहम्माइरियो जंबूसामियादीणमणेयाणमाइरियाणं वक्खाणिददुवालसंगो घाइच्चउ-क्कक्खएण केवली जादो।” —ज० ध० १।८४।

“तद्विसे चेव जंबूसामिभारओ विट्ठ (विष्णु) आइरियादीणमणेयाणं वक्खाणिददुवालसंगो केवली जादो ॥” —ध० टी० १।६५।

(२) जयधवलाकारने परिपाटीक्रमका पर्यायवाची ‘अनुवसंताणेण’ (१, ८५) जिसकी संतान या परंपरा अत्रुटित है ऐसा कहा है।

(३) अपने जैन साहित्य और इतिहासके पृ० १४, १५ पर श्री नाथूरामजी प्रेमी लिखते हैं—भगवान् महावीरके बाद तीन ही केवलज्ञानी हुए हैं, जिनमें जम्बूस्वामी अन्तिम थे। ऐसी दशामें यह समझमें नहीं आता, कि यहां श्रीधरको क्यों अंतिम केवली बतलाया और ये कौन थे तथा कब हुए हैं। शायद ये अन्तःकृत केवली हों। इस शंकाका निवारण पूर्वोक्त वर्णनसे हो जाता है, कारण श्रीधर मुनि अननुवद्ध अंतिम केवली हुए हैं, जिनका निर्वाणस्थल कुण्डलगिरि है। इनको अन्तःकृत केवली माननेमें कोई आगमका आधार नहीं है। सामान्यतया नंदी, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु ये पांच श्रुतकेवली कहे गए हैं, किन्तु धवलाटीकासे ज्ञात होता है कि अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा ये द्वादशांगके पाठी संख्यात हजार थे। जयधवलसे भी इस अधिक संख्याकी पुष्टि होती है। यही युक्ति केवलियोंके विषयमें लगेगी। शास्त्रमें अनुवद्ध केवली तथा श्रुतकेवलीकी मुख्यतासे प्रतिपादन किया गया है।

सूचित करती है, कि यहां अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा नहीं ली गई है। जयधवलामें नंदि श्रुत-केवलीके स्थानमें विष्णु नामका ग्रहण किया है। इसके अनन्तर एकादश अंग तथा दशपूर्वोंके पारंगत विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव तथा सुधर्म ये ११ महापुरुष हुए। धवला टीकामें सिद्धार्थका नाम सिद्धार्थदेव और सुधर्मका नाम धर्मसेन आया है। ये महामुनि शेष चार पूर्वोंके एक देशके धारी थे। इनका काल १८३ वर्ष प्रमाण रहा। धर्मसेन मुनिके स्वर्गगासी होनेके पश्चात् भारतवर्षमें दशपूर्वके ज्ञाताओंका विच्छेद हो गया।

इनके अनन्तर नक्षत्र, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन और कंस ये पांच आचार्य परि-पाटीक्रमसे एकादशांगके पाठी हुए। ये चौदह पूर्वके एक देशके भी धारक थे। इनका काल पिण्ड-रूपसे २२० वर्ष प्रमाण है।

इसके पश्चात् परंपरा क्रमसे सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु तथा लोहार्य—ये चार आचार्य संपूर्ण आचारांगके ज्ञाता हुए। वे शेष एकादश अंग तथा चौदह पूर्वोंके एक देशके भी ज्ञाता थे। इनके कालका प्रमाण ११८ वर्ष है।

इसके अनन्तर संपूर्ण अंग तथा पूर्वके एकदेशका ज्ञान आचार्यपरंपरासे आता हुआ धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ। जयधवला टीकामें लिखा है—इसके पश्चात् अंगपूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्यपरंपरासे आता हुआ गुणधर आचार्यको प्राप्त हुआ। इससे यह प्रमाणित होता है, कि द्वादशांगका एक देश ज्ञान धरसेन तथा गुणधर आचार्यको प्राप्त हुआ था।

महावीर भगवान्के निर्वाणके पश्चात् गौतम स्वामीसे लेकर आचारांगके ज्ञाता लोहाचार्य पर्यन्त ६८३ वर्ष काल व्यतीत होता है (६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३)। इसके अनन्तर धरसेन आचार्य हुए। कितने वर्ष पश्चात् हुए, यह स्पष्ट नहीं होता है। लोहार्य और धरसेनके मध्यवर्ती आचार्योंका धवला, जयधवला, तिलोयपण्णत्तिमें वर्णन नहीं किया गया है। नन्दि आम्नाय-की प्राकृतपट्टावलीसे इस प्रकरण पर विशेष चिन्तनीय सामग्री उपलब्ध होती है। इस पट्टावलीकी विशेषता यह है, कि इसमें वीर-निर्वाणके पश्चात्वर्ती प्रत्येक आचार्यका काल पृथक् पृथक् गिनाया है। गौतमादि केवलीत्रयका काल ६२ वर्ष कहा है। विष्णु आदि पंच श्रुतकेवलीका समय यहां भी सौ वर्ष गिनाया है। विशाखाचार्य आदि ग्यारह दशपूर्वधारी आचार्योंका समय १८३ बताया है। धर्मसेन आचार्यका काल चतुर्दशके स्थानपर यदि सोलह हो जाता है, तो दो वर्षका अन्तर नहीं रहता है। संभव है पाठ भेद इस भिन्नताका कारण हो। एकादशांगी नक्षत्रादि पंच आचार्योंका समय १२३ वर्ष बताया है, जबकि तिलोयपण्णत्ति आदि शास्त्रोंमें इनका समय २२० वर्ष बताया है। सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु तथा लोहाचार्य—इन चार आचार्योंको पट्टावलीमें दस, नव तथा अष्टांग विद्याके ज्ञाता कहा है। यहां यशोबाहुके स्थानमें भद्रबाहु नाम आया है। इनका समय ९७ वर्ष बताया गया है।

(१) “तदो सव्वेसिमंगपुव्वाणमेगदेसो आइरियपरंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो।”

—ध० टी० १।६७।

(२) “तदो अंगपुव्वाणमेगदेसो चेव आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं संपत्तो।”

—जय० घ० १।८७।

“वासं सत्ताणवदिय दसंग नव अंग अट्ठधरा ॥ १२ ॥

सुभदं च जसोभदं भदवाहु कमेण च ।

लोहाचज्जमुणीसं च कहियं च जिणागमे ॥ १३ ॥”

गाथा नं० १२में इनका समूह रूपसे काल ९७ वतानेके अनंतर गाथा नं० १४ के पूर्वार्धमें उसका स्पष्टीकरण करते हुए पट्टावलीमें लिखा है—छह अट्ठारह वासे तेवीस वावण (पणास) वास मुनिवाहं । जब गाथा नं० १२ में इन आचार्यों का ९७ वर्ष समूह रूपसे काल बताया जा चुका है, तब वावण पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है । वहां पचासकी संख्या होगी । सुभद्रादि आचार्य-चतुष्टयको तिलोपपण्णत्तिमें आचारारंगका ज्ञाता लिखा है । धवला जयधवलामें भी इसका समर्थन है । धवला १, पृ० ६६ में लिखा है—‘तदो सुभदो जसभदो जसवाहु लोहजो त्ति एदे चत्तारि वि आइरिया आयारांगधरा, सेसंगपुव्वाणमेगदेसधारया ।’

पट्टावलीके अनुसार नक्षत्राचार्यसे लेकर लोहाचार्य पर्यन्त १२३+९७=२२० वर्ष प्रमाण काल होता है । इस प्रकार लोहाचार्य पर्यन्त कालमें ११८ वर्षका अन्तर पड़ता है । पट्टावलीमें लिखा है—

“पंचसये पणसठे अंतिमजिणसमयजादेसु ।

उप्पण्णा पंच जणा इयंगधारी मुण्येव्वा ॥ १५ ॥

अहिवल्लि माघनंदि य धरसेणं पुप्पयंत भूदवली ।

अडवीसं इगवीसं उगणीसं तीस वीस वास पुणो ॥ १६ ॥

इगसय-अठार-वासे इयंगधारी य मुणिवरा जादा ।

छसय-तिरासिय-वासे णिव्वाणा अंगदिति कहिय जिणे ॥ १७ ॥”

इससे ज्ञात होता है कि वीरजिनके निर्वाणके ५६५ वर्ष प्रमाण काल व्यतीत होने पर एक अंगके ज्ञाता अर्हद्वलि, माघनंदि, धरसेन, पुप्पदन्त तथा भूतवलि—ये पांच आचार्य ११८ वर्षमें हुए । इस प्रकार ५६५+११८ = ६८३ वर्ष पर्यन्त अंग ज्ञान रहा । भूतवलि पुप्पदन्तके पट्खण्डागम साहित्यकी टीका धवला एवं कसाय पाहुडकी जयधवला टीकामें धरसेन आचार्यको परिपूर्ण एक अंगका ज्ञाता नहीं बताया है । धवला टीकामें तो यह लिखा है कि ‘तदो सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेगदेसो आइरियपरंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो’ (पृ० ६७) —‘इसके अनन्तर संपूर्ण अंग और पूर्वोका एकदेश ज्ञान आचार्यपरम्परासे आता हुआ धरसेनाचार्यको प्राप्त हुआ ।’ आचार्य धरसेनके शिष्य भूतवलि पुप्पदन्त रचित शास्त्रकी टीकामें उनके सम्बन्धकी उपलब्ध सामग्री विशेष महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ती है । इसमें भी बात यह है कि तिलोपपण्णत्ति जैसा प्राचीनशास्त्र भी धवला टीकाका समर्थन करता है । सुभद्र, यशोभद्र, यशोवाहु तथा लोहार्य-के पश्चात् आचारारंगका ज्ञान लुप्त हो गया । कहा भी है—

“तेसु अदीदेसु तदा आचारधरा ण होंति भरहम्मि ।

गोदममुणिपहुदीणं वासाणं छस्सदाणि तेसीदी ॥” -ति० प० ४।१४९२ ।

लोहार्यको अन्तिम आचारांग तथा शेष अंग तथा पूर्वोक्त एकदेशका ज्ञाता लिखा है और मध्यवर्ती आचार्यपरंपराका उल्लेख बिना किए धरसेन आचार्यको सर्व अंग-पूर्वके एक देशका ज्ञाता बताया है। इसलिए धरसेन स्वामीका समय क्या माना जाय, यह कठिनाई उपस्थित होती है। इस कठिनाईके निवारणार्थ निम्नलिखित बात पर विचार करना आवश्यक है।

धवला टीकासे ज्ञात होता है कि धरसेन स्वामी गुजरातकी गिरिनगर नामके नगरकी चन्द्रगुफामें विराजमान थे।^१ वे अष्टांगनिमित्त विद्याके पारगामी थे। उन्हें इस बातका भय उत्पन्न हुआ कि श्रुतका विच्छेद हो जायगा, अतः प्रवचनवत्सल आचार्यवर्यने दक्षिणापथके निवासी तथा महिमानागरीमें एकत्रित आचार्योंके पास लेख भेजा। धरसेन स्वामीको श्रुतके विच्छेदका भय उत्पन्न होनेमें क्या कारण था, यह बात चिंतनीय है। सप्तभयवर्जित, शान्त, निश्चिन्त जीवनवाले महामुनिके चित्तमें शास्त्र लोप हो जायगा, सहसा इस भयकी उत्पत्तिका विशेष कारण होना चाहिए। हमें यह प्रतीत होता है, कि इनने अपने जीवनमें ही आचारांगके पारदर्शी ज्ञाता लोहार्यको देखा और उनके स्वर्गारोहणके पश्चात् उस आचारांग विद्याका लोप ज्ञातकर उनकी धर्मपूर्ण आत्मामें गहरा आघात पहुँचा, जिसने अंतःकरणमें इतनी प्रेरणा की कि उनने महिमानगरीमें आगत श्रमणसमुदायके समीप विशेष पत्र भेजा। पश्चात् योग्य सत्पात्र शिष्योंके प्राप्त होने पर उनको अपना विशेष श्रुतसम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया।

यह शंका उत्पन्न होती है, कि अर्हद्बलि, माधनंदि आचार्य अथवा श्रुतावतारमें वर्णित विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त तथा अर्हद्दत्त आचार्योंका तिलोपपण्णत्ति अथवा धवला, जयधवलामें क्यों नहीं प्रतिपादन किया? इसका समाधान यह है, कि ग्रंथकार अंगज्ञाताओंका वर्णन करना चाहते थे। अंगज्ञानका लोप हो जानेके बादका वर्णन करना उनके लिए अप्रकृत वस्तु थी। अतः उस सम्बन्धमें उनने कुछ प्रकाश नहीं डाला।

लोहार्यका स्वर्गवास वीरजिनके निर्वाणके ६८३ वर्ष व्यतीत होनेपर हुआ था। उस समय धरसेनाचार्य भी संभवतः वृद्ध थे, अतः उनने श्रुतरक्षार्थ शीघ्रतापूर्वक शिष्योंका अन्वेषण कराया तथा उनको अपने विशिष्ट विषयका पारंगत विद्वान् बनाया। पश्चात् वर्षाकाल अत्यन्त सन्निकट होनेके कारण उनको ग्रंथ-उपदेश समाप्तिके दिन ही अन्यत्र वर्षाकाल व्यतीत करनेकी आज्ञा दी। इन्द्रनन्दि आचार्यने लिखा है^२ कि गुरुदेवने अपना अल्प जीवन सोचकर शिष्योंको दूसरे दिन जानेको कहा। उनने यह सोचा था, कि हमारी मृत्युसे इनको क्लेश पहुँचेगा, अतः समीपमें न रखना ही श्रेयस्कर है। विबुध श्रीधरने^३ भी इन्द्रनन्दिका समर्थन किया है। धरसेनाचार्यने श्रुतरक्षण निमित्त प्रवचन-प्रेमवश जो कार्य किया उसमें कोई बहुत वर्ष नहीं बीते होंगे। श्रुतविच्छेदके भयसे कार्य शीघ्र संपन्न किया गया। इस दृष्टिसे धरसेन स्वामीका समय

(१) “तेण वि सोरट्टविसय-गिरिणयरपट्टण-चंदगुहा-ठिएण अट्ठंगमहाणिमित्तपारएण गंथवोच्छेदो होहदि त्ति जादभयेण पवयण-वच्छलेण दक्खिणावहाइरियाणं महिमाए मिलियाणं लेहो पेसिदो।” -ध०टी० १।६७।

(२) “स्वासन्नमृत्तिं ज्ञात्वा मा भूत् संक्लेशमेतयोरस्मिन्।

इति गुरुणा संचिन्त्य द्वितीयदिवसे ततस्तेन ॥” -इ० श्रु०।

(३) “आत्मनो निकटमरणं ज्ञात्वा धरसेनस्तयोर्मा क्लेशो भवतु इति मत्वा तन्मुनिवितर्जनं करिष्यति।”

६८३-५२७ = १५६ ईसवी सन्के समीप पड़ता है, इनके शिष्य भूतबलि पुष्पदन्तका भी समय इसमें पृथक् रूपसे जोड़नेपर ईसाकी दूसरी सदी रूपकाल अनुमानित करना होगा।

यहाँ कोई यह तर्क कर सकता है, कि धरसेन स्वामी अष्टांगविद्याके प्रकाण्ड आचार्य थे। उनसे निमित्त ज्ञानसे अपने मरणको समीप सोचा, इससे उनके चित्तमें श्रुतरक्षणकी भावना उत्पन्न हो गई। इस सम्बन्धमें यह बात चिन्तनीय है, कि मरण समीप है, इससे श्रुतविच्छेदकी भीति उत्पन्न होनेका औचित्य ज्ञात नहीं होता। वे ज्ञानवान् महान् आचार्य थे। उनका श्रुतरक्षाका भाव पहलेसे भी जागृत रहना चाहिए था। श्रुतव्यवच्छेदकी घटनाको देखनेसे उनके चित्तमें श्रुतरक्षाकी प्रेरणा उत्पन्न होना अधिक उपयुक्त जंचता है।

जयधवला टीकासे ज्ञात होता है कि गुणधर आचार्य भी अंगों तथा पूर्वोंके एक देशके ज्ञाता थे। उनके चित्तमें भी श्रुत-विच्छेदकी भीति उत्पन्न हुई। उनका हृदय प्रवचनके वात्सल्यके अधीन हो चुका था, इसलिए उनसे सोलह हजार पद प्रमाण 'पेज्जदोसपाहुड' का १८० गाथाओं में उपसंहार किया। गुणधर आचार्यको भी श्रुतविच्छेदकी भीतिमें निमित्त आचारांगके अंतिम ज्ञाता लोहार्यका स्वर्गगमन रहा होगा। गुणधर आचार्यके समक्ष तो मृत्युकी चिन्ताकी समस्या न थी। जब उनको श्रुतरचनामें मृत्युकी भीति कारण नहीं है, तब इसी प्रकारकी प्रक्रिया धरसेन स्वामीके विषयमें विचारना कोई दोषपूर्ण नहीं प्रतीत होता।

४—भूतबलिका समय

प्राकृत पट्टावलीको यदि ग्रामाणिक माना जाय, तो जहाँ तक धरसेनाचार्यका सम्बन्ध है उनका समय वीर निर्वाणके ६१४ वर्ष बाद आता है और भूतबलि आचार्यका काल ६६३ वर्ष वीर निर्वाणके अनन्तर प्राप्त होता है। भूतबलि स्वामीका समय १३६ ईसवी सन् निकलता है। अतएव धवला टीका द्वारा प्राप्त संकेतके आधारसे एवं पट्टावलीके प्रकाशमें भी ईसाकी दूसरी सदीका समय अनुमानित होता है।

ब्रह्मनेमिदत्तके आराधना-कथाकोपसे ज्ञात होता है, कि महिमानगरीमें स्थित मुनिसंघके पास धरसेन आचार्यने अपना पत्र भेजा था। उस दक्षिण संघके प्रधान आचार्य महासेन थे। अपने दो सुयोग्य शिष्य धरसेन आचार्यके पास भेजे थे।^१ एक नाम था सुबुद्धि और दूसरेका नाम नरवाहन था। सुबुद्धि पहले श्रेष्ठिवर थे और नरवाहन थे एक नरेश। सुबुद्धि मुनिको पुष्पदन्त और नरवाहनको भूतबलि नाम धरसेनाचार्यके द्वारा प्राप्त हुआ था।

धरसेनाचार्यके विषयमें इतना ही ज्ञात है कि वे अष्टांगनिमित्त ज्ञानी महान् आचार्य थे। सर्व अंगों तथा पूर्वोंके एकदेशके ज्ञाता एवं प्रवचन-वात्सल्यभावसे भूषित महामुनि थे। उनके पत्रके अनुसार दक्षिणापथसे दो मुनिराज इनके समीप भेजे गए थे। वे धारण और ग्रहण शक्तिमें अतीव निपुण थे। वे अत्यन्त विनयवान् शील-अलंकृत, देशकुल जातिसे विशुद्ध, संपूर्ण कलाओंमें निष्णात थे। वे आंध्रदेशमें बहने वाली वेणानदीके तटसे धरसेन स्वामीके समीप पहुंचनेके लिए रवाना हुए। इधर धरसेनाचार्यने रात्रिके पिछले भागमें एक स्वप्न देखा कि दो सुन्दर धवलवर्ण वाले बैलोंने आकर उनकी तीन ग्रदक्षिणा दी और नम्रतापूर्वक उनके चरणोंमें पड़ गए।

(१) श्रुतावतार-विबुध श्रीधर पृ० ३१६। (२) घ० टी० १, ६७-६९।

इस स्वप्नको देखकर स्वप्नशास्त्रके अनुसार अत्यन्त शुभसूचक स्वप्न समझ आचार्य संतुष्ट हुए और उनने 'जयउ सुय-देवदा'—श्रुतदेवताकी जय हो, ये शब्द उच्चारण किए। पवित्र चरित्र पुरुषोंके स्वप्न भी मिथ्या नहीं होते। उसी दिन दो मुनि आचार्यश्री के पादपद्मोंके समीप अत्यन्त विनयपूर्वक पहुंचे। उनने आचार्य श्री से अपने आनेका कारण निवेदन किया। "अणेण कज्जेणम्हा दोवि जणा तुम्हं पादमूलमुवगया।" आचार्य महाराजने कहा 'सुट्टु, भद'—ठीक है, कल्याण हो।

इसके अनंतर आचार्य महाराजने सोचा 'जहा लुंदाईणं विज्जादाणं संसार-भयवद्धणं'—स्वच्छंद वृत्ति वालोंको विद्या प्रदान करना संसार-भयका संवर्धक है; अतः पुनः परीक्षा लेना उचित समझा। उनने दो विद्याएं उन्हें साधनार्थ दीं। एकमें अल्प अक्षर थे, और दूसरीमें अधिक अक्षर थे। विद्या साधनके विषयमें आचार्यश्रीने कहा था—दो उपवासपूर्वक इनकी साधना करो। अशुद्ध मंत्रकी साधना करनेके कारण अल्पाक्षरयुक्त मंत्र साधकके अशुद्ध कानो देवी आई, तो अधिक अक्षरवाले साधकके सामने लम्बे दांतवाली देवी आई। देवताओंका सुन्दर स्वरूप होता है। यह विकृत आकृति त्रुटिको बताती है। इससे उनको मंत्रकी अशुद्धता ज्ञात हुई। उनने मन्त्रशास्त्रके अनुसार मंत्रोंको शुद्धकर साधना प्रारंभ की, तो देवताओंने अपने दिव्यरूपमें दर्शन दिए। तत्पश्चात् इन मुनियोंने सब वृत्तान्त जब गुरुदेवको सुनाया, तो उनने संतोष व्यक्त किया। और 'सोमतिहिणक्खत्तवारे गंधो पारद्धो'—'शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिनमें ग्रन्थका पढ़ाना प्रारम्भ किया।'।

आषाढ़ सुदी एकादशीके पूर्वाह्न कालमें ग्रन्थ समाप्त हुआ। धरसेन स्वामीने श्रुत-उपदेशका अपना पवित्र कार्य पूर्ण किया। इस महत्त्वपूर्ण घटनासे आनन्दित हो देवताओंने एक मुनिराजकी पुष्पोंके द्वारा महान् पूजा की और मधुर वाद्य ध्वनि की। इसे देखकर धरसेनाचार्यने उनका नाम 'भूतवलि' रखा। दूसरे मुनिराजकी पूजा देवोंने की और उनके दांतोंकी पंक्ति सुव्यवस्थित कर दी अतः उनका नाम गुरुदेवने पुष्पदन्त रखा। इसके अनन्तर गुरुकी आज्ञानुसार उनको वर्षाकाल निमित्त प्रस्थान करना पड़ा। उनने अंकलेश्वरमें चातुर्मास व्यतीत किया। इसके पश्चात् पुष्पदन्त आचार्य वनवास देशको गए और भूतवलि स्वामी द्रमिल देश पहुंचे। पुष्पदन्तने वनवास देशमें जिनपालितको दीक्षा प्रदान की और बीसदिसूत्र-बीस प्ररूपणाके अन्तर्गत सत्प्ररूपणाके १७७ सूत्र जिनपालितके द्वारा भूतवलि स्वामीके समीप भिजवाए।

जिनपालितकी विशेष योग्यताका अनुमान इससे होता है, कि पुष्पदन्त आचार्यने अपनी ज्ञान-निधि भूतवलिके पास उनके द्वारा प्रेषित की थी। धर्मकीर्ति शिलालेख नं० १ में (पट्टावली लाडवागढ़ या वागड़ा संघ) जिनपालितको 'योगिराट्'—योगियोंके अधीश्वर लिखा है।^१

(१) "तदो पुष्पयंताइरिण जिनवालिदस्स दिक्खं दाऊण वीसदिसुत्ताणि कारिय पढाविय पुणो सो भूदवलि-भयवंतस्स पांस पेसिदो।" —ध० टी० १।७१।

(२) Documents produced by Digambaris before the court of Dhvajadand Commission Udaipur. p.p. 29-30.

“तेषां नामानि वच्मीतः शृणु भद्र महान्वय ।

भद्रो भद्रस्वभावश्च धरसेनो यतीश्वरः ॥ ६ ॥

भूतवलिः पुष्पदन्तो जिनपालितयोगिराट् ।

समन्तभद्रो धीधर्मा सिद्धिसेनो गणाग्रणीः ॥ ७ ॥”

भूतवलि स्वामीने जिनपालितके पास वीसदि सूत्रोंको देखा उसमें अंतिम १७७ वां सूत्र यह है—‘अणाहारा चदुसु टाणेषु धिग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ।’ उन्हें जिनपालितके द्वारा ज्ञात हुआ, कि पुष्पदन्तका जीवन प्रदीपः शीघ्र बुझनेवाला है; इससे उनके हृदयमें विचार उत्पन्न हुए कि अब ‘महाकम्मयपडिपाहुड’ का लोप हो जायगा, अतः उनने ‘दव्वपमाणानुगममादि काऊण गंथरचना कदा’—द्रव्य-प्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रंथरचना की। पट्खण्डागममें भूतवलि स्वामी रचित आदिसूत्र यह है, ‘दव्वयमाणानुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।’ —ध० टी० २।१ ।

इस सूत्रके प्रारंभमें धीरसेनाचार्य धवलाटीकामें लिखते हैं—

“संपहि चोदसहं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव परिमाण-पडिवोहणट्ठं भूदवलियाइरियो सुत्तमाह” (२।१)

‘अब चौदह जीवसमासोंके अस्तित्वको जाननेवाले शिष्योंको परिमाणका अवबोध करानेके लिए भूतवलि आचार्य सूत्र कहते हैं ।’

पूर्वोक्त सूत्रको आदि लेकर शेष समस्त पट्खण्डागम सूत्र भूतवलि स्वामीकी उज्ज्वल कृति हैं। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारसे विदित होता है, कि जब यह रचना पूर्ण हो गई, तब चतुर्विध संघ सहित भूतवलि स्वामीने ज्येष्ठ सुदी पंचमीको ग्रंथराजकी बड़ी भक्तिपूर्वक पूजा की। उस समयसे श्रुतपंचमी पर्व प्रचलित हो गया जब कि श्रुत-देवताकी सर्वत्र अभिवन्दना की जाती है। इसके पश्चात् भूतवलि स्वामीने यह रचना जिनपालितके साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भेजी। सौभाग्यकी बात हुई, जो दुर्द्वेने पुष्पदन्ताचार्यको उस समय तक नहीं उठाया था। आचार्य पुष्पदन्तने रचना देखी। अपना मनोरथ सफल हुआ ज्ञात कर वे अत्यन्त आनंदित हुए। उनने भी चातुर्वर्णसंघ सहित सिद्धान्तशास्त्रकी पूजा की।^३

(१) “भूदवलिभववदा जिणवालिदपासे दिट्ठवीसदिसुत्तेण अप्पाउथो चि अवगयजिणवालिदेण महाकम्म-पयडिपाहुडस्स वोच्चेदो होहदि चि समुप्पण्ण-बुद्धिणा पुणो दव्वपमाणानुगममादि काऊण गंथरचना कदा ।” —ध० टी० १।७१ ।

(२) “ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः । तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥ १४३ ॥ श्रुतपंचमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परामाप । अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः ॥ १४४ ॥”

—इ० श्रु० ।

(३) विबुध श्रीधरकृत श्रुतावतारसे ज्ञात होता है, कि पुष्पदन्त आचार्यके साथ चतुःसंघने तीन दिन पर्यन्त बड़े उत्साहपूर्वक पूजा प्रभावना की थी। धार्मिक समाजने व्रतादिका परिपालन भी किया था । पृ० ३१६ ।

इस महाशास्त्रके रक्षण कार्यमें जिनपालितकी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निहित होती है। हम देखते हैं कि चातुर्मास पूर्ण होनेके पश्चात् पुष्पदन्त अपने साथी भूतबलिको छोड़कर जिनपालित के पास वनवास देशमें पहुँचते हैं। वे विंशतिसूत्रोंकी रचना करके अपना मंतव्य भूतबलिके पास प्रेषित करते हैं। भूतबलि जब ग्रंथराजका निर्माण पूर्ण कर लेते हैं, तब वे इन्हीं जिनपालितके साथ अपनी अमूल्य जीवन निधि-ज्ञाननिधिको पुष्पादन्ताचार्यके समीप भेजते हैं, ताकि उनका भी इस आगम-रचनाके विषयमें अभिप्राय ज्ञात हो जाय। जिनपालित योगिराज थे तथा पुष्पदन्त जैसे महामुनिके अत्यन्त विश्वासपात्र थे। भूतबलि स्वामीने भी उन्हें योग्य समझ अपने समीप स्थान दिया था और अपनी रचना उनके ही साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भिजवाई थी। इससे हमें प्रतीत होता है, कि महान् ग्रन्थ रचनाकार्यमें वे भूतबलि स्वामीके समीप अवश्य रहे होंगे। बहुत संभव है, कि भूतबलि स्वामीके तत्त्व प्रतिपादनको लिखनेका कार्य जिनपालित द्वारा संपन्न हुआ हो। कमसे कम इतना तो दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है, कि इस सिद्धान्तशास्त्रके उद्धार कार्यमें जिनपालित मुनिराजका विशेष स्थान रहा। इसका वर्णन इसलिए नहीं मिलता, कि पहले लोग कार्यको प्रधान मानते थे, नामकी ओर प्रायः कम ध्यान रहता था। इतना बड़ा षट्खण्डागम महाशास्त्र निर्माण करते हुए भी ग्रन्थमें जब भूतबलि स्वामीका नाम कहीं भी नहीं आया, तब जिनपालितका नाम न आना विशेष आश्चर्यप्रद बात नहीं है।

ग्रंथकी प्रामाणिकता

महाबन्ध शास्त्रमें संपूर्ण चर्चा आगमिक तथा अहेतुवाद-आश्रित है। आगमकी निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत शास्त्रके विषयमें पूर्णतया चरितार्थ होती है—

“पूर्वापरविरोधादेव्यपेतो दोषसन्ततेः।

द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः॥” —ध० टी० पृ० ७८५।

—जो पूर्वापरविरोधादि दोषपरम्परासे रहित हो, सर्व पदार्थोंका प्रकाशक हो तथा आप्तकी वाणी हो, उसे आगम कहते हैं।

षट्खण्डागम सूत्रोंकी, विशेषकर महाबन्धकी चर्चा बहुत सूक्ष्म है। उसमें कहीं भी पूर्वापर विरोधका दर्शन नहीं होता। जितना सूक्ष्म चिन्तक एवं विचारक महाबन्धका पारायण करेगा, वह ग्रंथके विवेचनसे उतना ही अधिक प्रभावित होगा। ग्रंथकी विचित्रता यथार्थमें पूर्वापर-अविरोधितामें है। अपने विषयपर प्रकाश डालनेमें आचार्यने किंचित् भी न्यूनता नहीं प्रदर्शित की है। ग्रंथराज आप्तकी कृति है, अतः यह स्वतः प्रमाण है। किसी हेतुवादर्प साधन-सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। आप्तमीमांसाकार समन्तभद्र स्वामीका कथन है—

“वक्तृर्यनाप्ते यद्वेतोः साध्यं तद्वेतुसाधितम्।

आप्ते वक्तुरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥ ७८ ॥”

—वक्ता यदि अनाप्त है, तो युक्ति द्वारा जो बात सिद्ध की जायगी, वह हेतुसाधित कही जायगी। और यदि वक्ता आप्त है, तो उनके वचनमात्रसे ही बात सिद्ध होगी। इसे आगम-साधित कहते हैं।

भूतवलि को आप्त किस कारण माना जाय, इस सम्बन्धमें धवला टीकामें सुन्दर तर्कणा की गई है। शंकाकार कहता है सूत्र की परिभाषा है—

“सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयवुद्धकहियं च ।

सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च ॥”

—गणधरका कथन, प्रत्येकवुद्ध मुनिराजकी वाणी, श्रुतकेवलीका कथन, अभिन्नदशपूर्विका कथन सूत्र है ।

“ण च भूदवलिभडारओ गणहरो, पत्तेयवुद्धो, सुदकेवली, अभिण्णदसपुव्वी वा येणेदं सुत्तं होज्ज ? जदि एदं सुत्तं ण होदि तो ... प्रमाणत्तं कुदो णव्वदे ?” ‘भूतवलि भट्टारक गणधर नहीं हैं । न वे प्रत्येकवुद्ध, श्रुतकेवली अथवा अभिन्नदशपूर्वी हैं, जिससे यह शास्त्र ‘सूत्र’ हो जाय । यदि यह शास्त्र सूत्र नहीं होता है, तो इसमें प्रामाणिकताका किस प्रकार ज्ञान होगा ?

इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं—“रागदोसमोहाभावेण पमाणीभूदपुरिसपरंपराये आगत्तादो” (ध० टी० पृ० १२८२) । ‘यह ग्रन्थ प्रमाण है, कारण राग-द्वेष-मोहरहित प्रामाणिकता-प्राप्त पुरुषपरम्परासे यह प्राप्त हुआ है ।’

इस ग्रंथमें अप्रामाणिकताका लेश भी नहीं है । इस सम्बन्धमें वीरसेनाचार्यका कथन महत्त्वपूर्ण है । वे लिखते हैं—‘इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणालिकाके द्वारा प्रवाहित होता हुआ महाकर्म प्रकृति प्राभूतरूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारकको प्राप्त हुआ । उनने भी गिरिनगरकी चंद्रगुफामें भूतवलि, पुष्पदंतको संपूर्ण महाकर्म प्रकृति प्राभूत सौपा । तदनंतर श्रुत-नदीका प्रवाह व्युच्छिन्न न हो जाय, इस भयसे भव्य जीवोंके अनुग्रहके लिए उनने ‘महाकम्म-पयडि पाहुड’ का उपसंहार करके पट्खण्ड बनाए । अतः त्रिकालगोचर समस्त पदार्थोंको ग्रहण करनेवाले प्रत्यक्ष तथा अनंत केवलज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, प्रमाणस्वरूप आचार्य प्रणालिकाके द्वारा आगत है, प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणसे अवाधित है । अतः यह शास्त्र प्रमाण है । इसलिए ‘तम्हा मोक्खवित्थिणा भवियलोएण अव्वमेसयव्वो’—मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओंको इसका अभ्यास करना चाहिए ।

पुनः शंकाकार कहता है—‘सूत्र विसंवादी क्यों नहीं है ?’ उत्तरमें कहते हैं—‘सूत्रमें

(१) “एवं पमाणीभूदमहरिसिपणालेण आगंतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपहावो धरसेणभडारयं संपत्तो । तेण वि गिरिणयरचंदगुहाए भूदवलिपुष्पदंताणं महाकम्मपयडिपाहुडं सयलं समप्पिदं । तदो भूदवलिभडारएण सुद-णइ-पवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुगगहट्ठं महाकम्मपयडिपाहुडमुत्तंसंह-रियऊण छखंडाणि क्याणि, तदो तिकालगोयरासेस-पयत्थविसय-पच्चक्खाणंत-केवलणाणप्यभवादो पमाणीभूदआइरियपणालेणागदत्तादो, दिट्ठिविरोहाभावादो पमाणमेसो गंथो, तम्हा मोक्खवित्थिणा अव्वमेसयव्वो ।” —ध० टी० सि० ७६२ ।

(२) “विसवादी सुत्तं किण्ण जायदे ? ण, विसंवादकारण-सयलदोखमुक्क-भूदवलि-वयणविणिग्गयस्स सुत्तस्स विसंवादचविरोहादो ।” —ध० टी० सि० पृ० १०३३ ।

विसंवादीपना नहीं है, कारण यह विसंवादके कारण संपूर्ण दोषोंसे मुक्त भूतबलिके वचनोंसे विनिर्गत है।” पुनः शंकाकर तर्क करता है—‘कदाचित् भूतबलिने असम्बद्ध देशना की हो?’ इसके निराकरणमें वीरसेन स्वामी कहते हैं—“ण चासंबद्धं भूदबलिभट्टारओ परुवेदि, महा-कम्मपयडिपाहुड-अभियधाणेण ओसारिदासेसराग-दोस-मोहत्तादो”—भूतबलि भट्टारक असम्बद्ध प्ररूपण नहीं करेंगे, कारण उनने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके अवधारण करनेसे रागद्वेष तथा मोहका निराकरण कर दिया है।

वक्ताका जब विशिष्ट व्यक्तित्व स्थापित हो जाता है, तब उनकी वाणीमें भी स्वयं विशेषताका अवतरण हो जाता है। इस चर्चासे यह बात भी ज्ञात हो जाती है, कि महाकर्मप्रकृति प्राभृतके परिशीलनसे राग, द्वेष तथा मोहका विनाश होता है, तब उस महाशास्त्रके उपसंहाररूप इस ग्रंथराजके द्वारा भी रागद्वेष-मोहकी विशेष मन्दता होती है। कषायादिकी विशेष तीव्र अवस्थामें तो मनोवृत्ति महाबन्धका अवगाहन भी नहीं कर सकेगी। इसके लिए अंतःकरण वृत्तिकी निर्मलता तथा निश्चिन्तताकी परम आवश्यकता है। गृहस्थ सदृश आकुलतापूर्ण श्रमण भी इस शास्त्रका रसास्वाद नहीं कर सकता। श्रमण सदृश मनोवृत्ति तथा पवित्र परिणतियुक्त व्यक्ति इस महाशास्त्रका सम्यक् परिशीलन करनेमें समर्थ होगा। गार्हस्थिक आकुलतावाला व्यक्ति इस अमृतनिधिका आनन्द न ले सकेगा। प्रतीत होता है, इस बातको लक्ष्यमें रखकर सर्वसाधारणको इस ज्ञानसिन्धुमें अवगाहन करनेका पात्र नहीं कहा।

मङ्गल-चर्चा

जैन शास्त्रकार अपने शास्त्रके प्रारम्भमें जिनेन्द्र भगवान्के गुणस्मरणरूप मंगल रचना करते हैं। इसका कारण आचार्य विद्यानन्दि यह बताते हैं कि “अभिमतफल-सिद्धिका उपाय सुबोध है, वह शास्त्रसे प्राप्त होता है और शास्त्रकी उत्पत्ति आप्तसे होती है, अतः शास्त्रके प्रसादसे प्रबोध प्राप्त पुरुषोंका कर्तव्य है कि आप्तको अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करें, कारण सत्पुरुष अपने पर किए गए उपकारको नहीं भूलते।”

मंगलके विषयमें तिलोपपणत्तिमें कहा है—

“पठमे मंगलवयणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति ।

सज्झिम्मे णिव्विग्घं विज्जा, विज्जाफलं चरिमे ॥ १।२९ ॥”

ग्रंथके आरम्भमें मंगल पाठसे शिष्य लोग शास्त्रके पारगामी होते हैं। मध्यमें मंगलके करनेसे निर्विघ्न विद्याकी उपलब्धि होती है तथा अन्तमें मंगल करनेसे विद्याका फल प्राप्त होता है। महाबन्धका प्रथम पत्र नष्ट हो गया है, अतः ग्रंथके आदिमें क्या मंगल श्लोक या सूत्र रहे,

(१) “अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः

प्रभवति स च शास्त्राच्चस्य चोत्पत्तिराप्तात् ।

इति भवति स पूज्यः, तत्प्रसादप्रबुधै-

र्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥” —श्लो० वा० पृ० २ ।

[illegible][illegible][illegible][illegible]

यहां निबद्ध, अनिबद्ध मंगलके विषयमें विशेष प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है।
अलंकार चिन्तामणिमें लिखा है—

“स्वकान्यमुखे स्वकृतं पद्यं निबद्धम्, परकृतमनिबद्धम् ।”

इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वकृत मंगल निबद्ध है और अन्यरचित अनिबद्ध है।

धवला टीकाकी आदर्श प्रतिमें लिखा है—“जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेव-
दाणमोक्कारो तं निबद्धमंगलं ।” —अर्थात् सूत्रके आदिमें सूत्ररचयिताके द्वारा रचित
देवता-नमस्कार निबद्ध मंगल है। “जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण निबद्धो देवदाण-
मोक्कारो तमनिबद्धमंगलं ।” सूत्रके आदिमें सूत्र रचयिताके द्वारा निबद्ध (अर्थात् रचित नहीं
किन्तु अन्य रचितको उठाकर लाया गया) देवता-नमस्कार रूप अनिबद्ध मंगल है। जैसे—‘णमो
जिणाणं’ आदि मंगलसूत्र, गौतमस्वामी रचित महाकम्मपयडिपाहुडसे उठाकर वेदनाखण्डके प्रारंभमें
मंगल बनाए जानेसे ‘अनिबद्धमंगल’ है। इसी प्रकार अनिबद्धमंगलत्व ‘णमो अरिहंताणं’
आदि णमोकारमन्त्रको प्राप्त होता है। धवलाकी मूल प्रतिके अनुसार जब यह मन्त्र अनिबद्ध
मंगलात्मक है, तब यह अपने आप स्पष्ट हो जाता है, कि पुष्पदन्ताचार्य इसके रचयिता नहीं हैं।
ऐसी स्थितिमें इस अपराजित मन्त्रके विषयमें यह उक्ति अबाधित रहती है—

“अनादिमूलमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।

मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥”

विद्यानुवादपूर्वमें^१ गणधरदेवने अंगुष्ठप्रसेना आदि सात सौ अल्पविद्याओं, रोहिणी
आदि पांच सौ महाविद्याओंका, अष्टांग महानिमित्तोंका एक करोड़ दस लक्ष पदों द्वारा वर्णन
किया है। उस महाशास्त्रके आधारपर रचित संक्षिप्त रूपधारी विद्यानुशासन ग्रंथ फलटणमें
देखा। इस ग्रंथमें मंत्रों आदिका विशेष विशद वर्णन किया गया है। इसमें गणधरबलय मंत्रको
देखनेपर ज्ञात हुआ, कि महाबंध टीकाके प्रारंभमें छापे गए णमो जिणाणं आदि चवालीस
मंगल मंत्र गणधरबलय मंत्रके अंगरूप हैं। विद्यानुशासनमें इस मंत्रको बहुत प्रभावशाली कहा
है^२। भक्तामरकथा यंत्रमंत्र सहित छपी है। उसके यंत्रोंमें णमो जिणाणं आदि मंत्रोंका ग्रहण
किया गया है। यह बात महाबंधके मंगलसूत्रोंके तुलनात्मक टिप्पणमें देखनेसे विदित हो जायगी,
कि किस भक्तामरयंत्रमें महाबंधका कौनसे मंगलसूत्रके साथ सादृश्य है। ‘णमो जिणाणं’
आदि मंगलसूत्र गौतम गणधर द्वारा निबद्ध हैं। यह वीरसेन स्वामी धवलाटीकामें बताते हैं। वे
यह भी कहते हैं, कि ये महाकम्मपयडि पाहुडके मंगलरूप हैं, जिनको भूतबलि भट्टारकने अपने
शास्त्रमें उठाकर रखे और अपने मंगलसूत्र स्वीकार किए—“महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदि-
आदिचउवीस अणियोगावयवस्स आदीए गोदवसाणिणा परूविदस्स भूदवलिभडारएण
वेयणाखंडस्स आदीए मंगलद्वं ततो आणेदूण ठविदस्स ।” पृ० ७५५-५६)।

(१) “विद्यानां अनुवादः अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वम् ।”

—नो० जी० प्र० टी० ३६६।

(२) “नित्यं यो गणभूमन्त्रं विशुद्धः सन्पठत्यनुम् । आखवस्तस्य पुण्यानां निर्जरा पापकर्मणाम् ॥
न स्यादुपद्रवः कश्चित् व्याधिभूतविषादिभिः । सदसदवीक्षणं स्वप्ने समाधिश्च भवेन्मूर्ता ॥”

गणधरवलय मंत्रको विश्वानुशासनमें 'गणभृन्मन्त्र' कहा है। उस मंत्रमें णमो जिणाणं आदिकी साधनाविधि बताई है और समझाया है, कि किस किस मंत्रके द्वारा किस किस रोगादि विपत्तियोंका निवारण एवं इष्ट साधना की जा सकती है। णमो जिणाणं आदि सूत्र गणधरदेव द्वारा प्ररूपित हैं, उनका गणधरमंत्र, भक्तामरयंत्रमंत्रमें उपयोग किया गया है। भक्तामरस्तोत्रके रचयिता मानतुंगमुनि मांत्रिक विद्वान् तथा योगी थे। उनने अपने स्तोत्रके साथ विशेष सामर्थ्यवान् गणधर स्वामी द्वारा निरूपण किए गए मंत्रोंको उसी प्रकार अपनाया, जैसे भूतवलि आचार्यने भी उन्हें ग्रहण किया।

वास्तवमें वे मंत्र गणधरोक्त हैं। गणधरवलय मंत्र पाठमें णमो जिणाणं आदि सूत्रोंके पूर्वमें लिखा है "ॐ णमो अरिहंताणं, ॐ णमो सिद्धाणं, ॐ णमो आइरियाणं, ॐ णमो उवज्झायाणं, ॐ णमो लोएसव्वसाहूणं" ये मंगलमंत्र णमोकारमंत्रसे विशेष भिन्न नहीं हैं। यहां केवल 'ॐ' शब्द की अधिक योजना हुई है। इन मंत्रोंके उल्लेखके साथमें किसी मंत्राराधनामें 'णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं, णमो विउव्वगइड्ढिप्पत्ताणं' मंत्रोका जाप बताया है, तो किसी में पंचपरमेष्ठी वाचक अन्य णमोकार मंत्रके अंशोंका उपयोग किया है। इस विवेचनका निष्कर्ष यह है, कि जिस प्रकार "णमो जिणाणं" आदि मंगलसूत्र भूतवलि द्वारा संगृहीत हैं, ग्रथित नहीं हैं, उसी प्रकार णमोकार मंत्ररूपसे ख्यात अनादि मूलमंत्रनामसे वंदित 'णमो अरिहंताणं' आदि भी पुष्पदन्त आचार्य द्वारा संगृहीत हैं, ग्रथित नहीं हैं। इसी कारण वीरसेन स्वामीने धवलाटीका (११४१) में इसे अनिवद्ध मंगल कहा है, कारण अलंकारचिन्तामणिकारने 'परकुतमनिवद्ध' कहकर अनिवद्धत्वके स्वरूप पर प्रकाश डाला है। आदर्श प्रतिके पाठमें परिवर्तन धवला टीकाके प्रथम भागमें हो जानेसे यथार्थमें 'विनायकं प्रकुर्वाणः रचयामास वानरम्' वाली बात हो गई। पुष्पदन्त स्वामी मंत्रशास्त्रके महान् ज्ञाता थे। उनने धरसेन गुरु द्वारा परीक्षार्थ दिए गए अशुद्धमंत्रको मंत्रशास्त्रके व्याकरणके अनुसार शुद्ध करके उसे सिद्ध किया था। अतः गुरुदेव धरसेन स्वामी द्वारा प्रतिपादित महाकम्मपयडि नामक परमागमको उपसंहार रूप करके ग्रन्थरचनाके महान् कार्य निमित्त उनने णमोकारमंत्रको ही अपना मंगल बनाया कारण यह मंत्र—'मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं' रूपसे प्रसिद्ध रहा है।

श्रेष्ठमंगल अनादिमंगल

इस विवेचनसे यह ज्ञात होता है कि समाजमें परंपरासे प्राप्त 'णमोकारमंत्र अनादिमूलमंत्र है' यह प्रसिद्धि निराधार नहीं है। विश्व अनादि है। मोक्षमार्ग अनादि है, उसके उपदेष्टा तीर्थंकरादि परमदेवोंका प्रादुर्भाव भी परंपराकी दृष्टिसे अनादि है। तीर्थंकर वर्धमान भगवानकी दिव्यध्वनि सुनकर गौतम स्वामीने द्वादशांगकी रचना की, उसमें यह अनादिमूलमंत्र आया। उनके पूर्ववर्ती सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभुने जो जो तत्त्व दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित किये, उन्हें तत्कालीन गणधर देवने द्वादशांग वाणी रूपमें रचे। इस अपेक्षासे अनादि जिनवाणीका अंग होनेसे णमोकारमंत्र अनादिमूलमंत्र है, यह निश्चय रखना उचित तथा कल्याणकारी है। महावन्धके प्रारम्भमें भूतवलि स्वामीने मंगल रचना की या नहीं, इस शंकाका निराकरण वीरसेन स्वामीके इस प्रकाशसे

हो जाता है, कि वेदनाखण्डका मंगलाचरण वर्गणा नामक पांचवें और महाबंध नामक छठवें खण्डका भी मंगलाचरण समझना चाहिए, कारण वर्गणाखण्ड तथा महाबंधके आदिमें मंगल नहीं किया गया है—

“उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु कस्सेदं मंगलं ? तिण्णं खंडाणं; कुदो ? वग्गणा-महाबंधाणमादीए मंगलाकरणादो ।” (ध० टी० सि० ७५६) ।

एक वेदना खण्डका मंगलाचरण अन्य दो खण्डोंका मंगल कैसे हो जायगा ? यह शंका ठीक नहीं है, कारण कृतिके आदिमें उक्त इसी मंगलकी शेष तेईस अनुयोग द्वारोंमें प्रवृत्ति है । इस कथनका भाव यह है कि गौतमस्वामीने चौबीस अनुयोग द्वारोंके प्रारम्भिक कृति अनुयोग द्वारके आरम्भमें मंगल रचना की है, शेष तेईस अनुयोग द्वारोंके आरम्भमें रचना नहीं की, अतः जैसे कृति अनुयोग द्वारका मंगल तेईस अनुयोग द्वारका मंगल होगा, वही न्याय यहां भी लगाना चाहिए, इस आधारसे वेदनाखण्डके मंगलसूत्र वर्गणा तथा महाबंधके मंगल सूत्र भी समझना चाहिए । इससे यह परिज्ञान होता है, कि महाबंधका मंगल वेदनाखण्डके प्रारम्भमें विद्यमान है ।

मंगलपद्यके रचयिता

अब हमारे समक्ष एक दूसरी कठिनाता उपस्थित होती है । वीरसेन ‘गमो जिणाणं’ आदि सूत्रोंके पहले ‘सिद्धा दद्धमला’ आदि छह मंगलपद्य पाए जाते हैं । ये भी क्या गणधरदेव कृत हैं जिनको भूतबलि स्वामीने अपनाया है ? विदित होता है कि मंगलपद्य गणधरदेवकी कृति नहीं है और न भूतबलि स्वामीकी ही रचना है । किन्तु वीरसेनाचार्यने ये पद्य बनाए हैं, ऐसी हमारी धारणा है । उसका कारण इस प्रकार है—गमो जिणाणं ॥१॥ सूत्रके अन्तमें टीकाकार वीरसेन स्वामीने लिखा है—“एवं दव्वट्ठियजणाणुग्गहणट्ठं गमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्म-पयडिपाहुडस्स आदिहि काऊण पज्जवट्ठियणयाणुग्गहणट्ठं उत्तरसुत्ताणि भणदि गमो ओहिजिणाणं ॥२॥” ये वाक्य द्वितीय सूत्रकी भूमिकारूप हैं । ‘सिद्धा दद्धमला’ आदि पद्यों पर कोई टीका नहीं की गई है । वीरसेन स्वामी सदृश विस्तृत रचनाकार उन पद्यों पर टीका किए बिना न रहते, यदि वह गणधरदेव या भूतबलि आचार्यकी कृति होती ।

मंगल पद्योंका क्रमांक स्वतंत्र है और सूत्रोंका भी क्रमांक पृथक् है ।

‘गमो जिणाणं’ इस सूत्रकी टीकामें मंगलके विषयमें विशेष ऊहापोहात्मक चर्चा द्वारा आचार्य वीरसेनने प्रकाश डाला है । यदि मंगलपद्य टीकाकार कृत न होते, तो यह चर्चा मंगल पद्य रचनाकी टीका रूपमें पहले ही वर्णित होती । एक बात यह भी है कि वीरसेन स्वामीकी शैली भी ऐसी मिलती है, कि वे नवीन प्ररूपणा या नवीन खण्डके प्रारम्भमें मंगलपद्य बनाते हैं । इन कारणोंसे यह निश्चय करना पड़ता है कि मंगलपद्य वीरसेन रचित हैं और मंगलसूत्र भगवान् गौतम गणधर रचित हैं ।

(१) “कथं वेयणाए आदीए उच्चं मंगलं सेसदोखंडाणं होदि ? ण, कदीए आदीहि उत्तस्स एदस्सेव मंगलस्स सेसतेवीस-अणियोगद्वारेसु पउत्तिदंसणादो । महाकम्मपयडिपाहुडच्चेण एदेस्मि पि एगत्तदंसणादो ।”

जिस प्रकार गौतम गणधरके मंगलसूत्रोंको भूतबलि स्वामीने अपनी रचनाका मंगल बनाया, तदनुसार इस हिन्दी टीकामें भी वीरसेन स्वामीके मंगलपत्रोंको हमने विघ्न-विनाश निमित्त अपने मंगलरूपमें ग्रहण किया।

प्रतिलिपिके विषयमें

महावन्धकी मूल प्रति ताड़पत्रपर कन्नड़ लिपिमें है। भाषा प्राकृत है। प्राचीन प्रति होनेके कारण उसकी लिपि भी पुरातन कन्नड़ है। महावन्धग्रन्थ २१५ ताड़पत्रों में है। इसके आरम्भके २६ ताड़पत्रोंका महावन्धसे कोई सम्बन्ध नहीं है।^१ उसमें सत्कर्मपञ्जिका है, जो पट्टखण्डागमके अन्य विषय स्थलोंपर प्रकाश डालती है। महावन्धका प्रारम्भिक ताड़पत्र अनुपलब्ध है। सम्पूर्णग्रन्थके १४ पत्र नष्ट हो चुके हैं। इससे लगभग तीन-चार सहस्र श्लोक प्रमाण शास्त्र तो सदाके लिए हमारे दुर्भाग्यसे चला गया। कहीं कहीं पत्र इतस्ततः वृद्धि भी हैं। इसके कारण अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलोंका अवबोध नहीं हो सकता, तथा किसी विषयका सहस्रारसभंग हो जाता है, कारण प्रसंग-परम्पराका अभाव हो गया है। ऐसे अवसरपर हृदयमें परिताप उत्पन्न होता है, कि हमारी असावधानीके कारण उस महानिधिका अंश लुप्त होगया, जो जगत्के कल्याण निमित्त धरसेन स्वामीने भूतबलि मुनीन्द्रके द्वारा बड़ी कठिनतासे नष्ट होनेसे बचाया था।^२ आज उस लुप्त अंशकी पूर्तिकी कथा ही दूर, उसकी पंक्तियोंकी पूर्ति करना भी असम्भव है, कारण भूतबलि स्वामी सदृश क्षयोपशम किसे प्राप्त है ?

महावन्धमें प्रकृति बन्धका वर्णन ताड़पत्र ५० पर्यन्त है। महावन्धके प्रस्तुत भागमें २२ ताड़पत्रोंका मूल तथा अनुवाद छापा जा रहा है। स्थितिवन्ध पत्र नं० ११३ पर्यन्त है तथा

(१) व० टीकामें (भाग १, ४९ भूमिका) यह उल्लेख सम्पादक जीने किया है कि तुम्बुलूराचार्यने छठवें खण्डपर सात हजार श्लोक प्रमाण पञ्जिका लिखी। पूर्वोक्त पञ्जिकाका महावन्धसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह अन्य टीका होगी।

(२) आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर महाराजने २ वर्ष हुए महावन्धके मूल सूत्रोंकी प्रतिलिपि करके भेजनेके बारेमें हमारे पास पत्र भिजवाया था। उत्तरमें हमने समाचार भेजा कि समस्त महावन्ध सूत्रात्मक ही है। इसमें टीकाका अंश सम्मिलित नहीं है। इतनी ४० हजार प्रमाण प्रतिकी नकल बिना लेखकके नहीं बन सकती। ग्रन्थमें तीन चार हजार प्रमाण श्लोक ताड़पत्र जीर्ण होनेसे नष्ट होगए। इतने समाचारने आचार्य महाराजकी प्रशान्त आत्मामें महान पीड़ा पैदा कर दी। उनने हमसे स्वयं कहा था, “तुम्हारे पत्रसे चित्तमें बहुत दुःख हुआ और भय हुआ कि कहीं आगे जाकर शोषांश भी लुप्त न हो जाय। इससे ताम्रपत्रमें इन शास्त्रोंकी खुदाई होनेपर बहुत काल पर्यन्त इन सिद्धान्तग्रन्थोंके लोप या नाशका भय न रहेगा। अतः तुम्हारे पत्रके कारण ही जिनवाणी जीर्णोद्धारक संघकी इस कार्यनिमित्त स्थापना की गई है।” उस संस्थामें लगभग दो लक्ष रुपया एकत्रित हो चुके हैं।

आचार्य महाराज सदृश किसी महान आत्माके अन्तःकरणमें श्रुतरक्षाकी भावना यदि पहले उत्पन्न हुई होती, तो आज तीन चार हजार श्लोकोंका विनाश न हो पाता।

अनुभागबन्धका वर्णन १७० नं० के ताड़पत्र तक है। प्रदेशबन्ध २१९ वें नं० के ताड़पत्र तक है। ताड़पत्रकी प्रतिका समय प्राचीन कन्नड़ीको देखकर पं० लोकनाथ जी सूचित करते हैं कि ताड़पत्रकी प्रति लगभग सात या आठ सौ वर्ष प्राचीन होगी। वे यह भी सूचित करते हैं, कि महाबन्धकी ताड़पत्रराशिमें चार पाँच त्रुटित पत्र भी अलग हैं, जो किसी किसी प्रकरणके त्रुटित अंशके पूरक प्रतीत होते हैं। उनका सम्बन्ध प्रकृतिबन्धसे नहीं है। उन पत्रोंको आगेके खण्डोंकी प्रतिमें रखा है। सम्पूर्णग्रन्थके २१९ पत्रोंमेंसे पञ्जिकाके २७ तथा चिनष्ट १४ पत्रोंके घटानेसे उपलब्ध ग्रन्थ १७९ ताड़पत्र प्रमाण है।

महाबन्धकी प्रतिलिपिकी शुद्धताके लिए पूर्वोक्त विद्वानों द्वारा ताड़पत्रकी मातृप्रतिसे अपने पासकी प्रतिका पुनः मिलान करवाया है। इससे आशा है, कि यह मातृप्रतिके प्रतिकूल न होगी।

महाबन्धका प्रभाव

समस्त जैनवाङ्मयमें बन्धके विषयमें महाबन्ध श्रेष्ठ रचना है। अत्यन्त प्राचीन, पूज्य तथा प्रामाणिक ग्रन्थ होनेके कारण यह महाशास्त्र भूतबलि स्वामीके पश्चाद्वर्ती प्रायः सभी महान् शास्त्रकारोंका बन्धके विषयमें मार्गदर्शक रहा है। तत्त्वार्थवार्तिकालंकारके देखनेसे ज्ञात होता है, कि अकलङ्क स्वामीपर महाबन्धका प्रभाव पड़ा है। वे महाबन्धको 'आगम' शब्दसे संकीर्तित करके अपना आदर तथा श्रद्धाका भाव व्यक्त करते हुए प्रतीत होते हैं—

“आगमे ह्युक्तं मनसा मनः परिच्छिद्य परेषां संज्ञादीन् जानाति, इति मनसा-
त्मनेत्यर्थः । तमात्मनावबुध्यात्मनः परेषां च चिन्ता-जीवित-मरण-सुख-दुःख-लाभा-
लाभादीन् विजानाति । व्यक्तमनसां जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम् ।”

—त० रा० पृ० ५८ ।

“मणेण माणसं पडिचिंदइत्ता परेसिं सण्णासदिमदिचिंतादि विजाणदि ।
जीविदमरणं लाभालाभं सुहदुक्खं णगरविणासं देहविणासं जणपदविणासं अदिवुट्ठि-
अणावुट्ठि-सुवुट्ठि-दुवुट्ठि-सुभिक्षं दुभिक्षं खेमाखेमं भयरोगं उव्वमं इव्वमं संभमं
णोवत्तमणाणं जीवाणं णोवत्तमणाणं जीवाणं जाणदि ।” —महाबन्ध पृ० २४, २५ ।

गोम्मटसारपर भी महाबन्धका प्रभाव स्पष्टतया दृग्गोचर होता है। उदाहरणार्थ, इस प्रकृतिबंधाधिकारके बंधसामित्तविचय अध्यायसे तुलना करें, तो पता चलेगा, कि यहाँ वर्णित कर्मप्रकृतियोंके बंधकों अवंधकों आदिका कथन गोम्मटसार कर्मकाण्डकी 'मिच्छत्तहुंडसंडा' आदि गाथा ९५ से १२० तक पद्यरूपमें निबद्ध है। महाबन्धमें बंधके सादि अनादि ध्रुव अध्रुवरूप भेदोंका वर्णन ३३-४३ पृष्ठपर किया गया है। वह गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा १२२ से १२४ में निरूपित हुआ है।

महाबन्धके पृ० २१-२४ में 'ओगाहणा जहण्णा' आदि सोलह गाथाएँ हैं, वे तनिक परिवर्तनके साथ गोम्मटसार जीवकाण्डकी ज्ञानमार्गणामें वर्णित हैं ।^१

(१) समस्त महाबन्ध गद्यरूप रचना है। इसमें पूर्वोक्त १६ गाथाओंके विवाय अन्य पद्यरचनाका अभाव है। स्थितिबंधाधिकारादिमें दो तीन गाथाएँ और पाई जाती हैं।

अन्य आगमपर महाबन्धका प्रभाव प्रकट ज्ञात होगा, जहाँ भी उनमें महाबन्धके प्रमेय सम्बन्धी चर्चा की गई है, कारण बंधविषयके प्रतिपादक महाबंधसे प्राचीन ग्रन्थराजकी अनुपलब्धि है।

महाबन्धके परिशीलनकी उपयोगिता

भौतिक उपयोगितावादी महाबन्धको देखकर आनन्दामृत पान नहीं कर सकेगा, कारण उसकी दृष्टिमें बाह्य पदार्थोंकी उपलब्धि ही आत्मोपलब्धि है। अनेक व्यक्तियोंकी यह धारणा रही है कि इन सिद्धान्तग्रन्थोंमें अपूर्व तथा अश्रुतपूर्व विद्याका भंडार है, जिसके बलसे लोहा सोना रूपमें परिणत किया जा सकता है, आकाशमें विमान उड़ाये जा सकते हैं आदि विविध वैज्ञानिक चमत्कारोंका आकर होनेकी मधुर कल्पनाके कारण लोगोंकी इन शास्त्रोंके प्रति अत्यधिक ममता रही; किन्तु प्रत्यक्ष परिचयके द्वारा जब यह ज्ञात होता है, कि महाबन्धमें केवल प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशरूप बंधचतुष्टयका सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन है, तब यह सोचता है, इससे हमें करना क्या है? अपना काम करो, ऐसी रचनाओंमें अपने बहुमूल्य समयका व्यय क्यों किया जाय? आपाततः यह दृष्टि प्रिय तथा आकर्षक मालूम पड़ती है, किन्तु ज्ञानवान् व्यक्तिको यह विचार अविद्याबन्धकारपूर्ण प्रतीत होता है। लौकिक अर्थभक्त अनर्थकी उत्पादक तथा आत्मनिधिका लोप करनेवाली सामग्रीको सर्वस्व मानता है। वह इन ग्रंथोंमें भौतिक विज्ञानकी सामग्री न पा निराश होता है, किन्तु ज्ञानवान् तथा आत्मनिधिके वैभवको समझने वाला अनुभव करता है, कि वास्तविक वैज्ञानिक चमत्कारपूर्ण सामग्रीसे यह महाशास्त्र आपूर्ण है। आत्मा अपने प्रयत्नसे कर्मोंके जालमें फँसता है। जो ज्ञान नामक सामग्री बंधनको और पुष्ट करती है, वह तो महान् अविद्या है। श्रष्ट कला, विद्या, विज्ञान या चमत्कार तो इसमें है कि यह आत्मा कर्मोंकी राशिको पृथक् करके अपने अनंत तथा अमर्यादित विभूतियोंसे अलंकृत 'आत्मत्व' को अभिव्यक्त करे। भगवान् वृषभदेवने आसमुद्रान्त विशाल साम्राज्यको छोड़कर 'आत्मवान्' की 'प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अर्थशास्त्री रूप्यों के हानिलालभपर ही दृष्टि रखता है, किन्तु ज्ञानी जीव आत्माके स्वरूपको ढकने वाले आस्रवको हानि तथा संवर और निर्जराको अपना लाभ समझता है। वही सच्चा संपत्तिशाली है, जिसे आत्मत्वकी उपलब्धि है और वही चमत्कारपूर्ण शक्ति विशिष्ट है, जिसने कर्मराशिको चूर्ण किया है तथा इसमें उद्योग करता रहता है।

नाटक समयसारमें कितनी सुन्दर बात कही गई है—

“जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करि राखे बल तोरिके।
महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रण थंभ ठाड़ो भयो मूळ मोरिके॥
आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फेरिके।
आस्रव पछान्यो रणथम्भ तोड़ि डान्यो ताहि निरखि बनारसि नमत कर जोरिके॥”

(१) “विहाय यः सागरवारिवाससं बधूमिवेमां वमुधावधूं संतीम्।

मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥” —बृहत्सं० ४।

अभिमानी आस्रव सुभटको पछाड़कर विजय प्राप्त करनेवाले आत्मज्ञानीको महाबन्ध-सदृश शास्त्र अपूर्व बल प्रदान करते हैं। कर्मोंका आत्माके साथ जो बंध है, वह इतना सुदृढ़ और सूक्ष्म है कि भयंकरसे भयंकर अस्त्र-शस्त्रादिके प्रहार होनेपर भी उसपर कुछ भी असर नहीं होता। आध्यात्मिक शक्तिके जागृत होते ही कर्मोंका सुदृढ़ बंधन ढीला होने लगता है। ऐसे ग्रंथ उस आत्मीक तेजको प्रवृद्ध करते हैं, जिसके द्वारा यह आत्मा कर्मबंधनके प्रपंचसे मुक्त होनेके मार्गमें लग जाता है। कर्मोंके प्रपंचसे छूटनेका उपाय ही यथार्थ में सबसे बड़ा चमत्कार है। संसारके समस्त भौतिक चमत्कार और अन्वेषण एक ओर रखकर दूसरी ओर कर्मनाश करनेकी आत्मचातुरी अथवा चमत्कारको रख संतुलन किया जाय, तो वह आत्मबोधकी कला ही श्रेष्ठ निकलेगी, जो अनंतभवसे बँधे हुए अनंत दुःखोंके मूलकारण कर्मोंका पूर्णतया उन्मूलन कर आत्मामें अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य तथा अनंतसुखको अभिव्यक्त कर देती है। भौतिकताकी आराधनासे आत्मत्वका हास ही हुआ करता है। इसका ही कारण है जो जीव अपने 'स्व' को भूलकर 'पर' का उपासक बनता है। अनादि कालसे मोह-महाविद्यालयमें अभ्यास करने वाला यह जीव जहाँ भी जाता है और जिस किसी पदार्थके संपर्कमें आता है, वहाँ वह या तो आसक्ति धारण करता है या द्वेषभाव रखता है। वीतरागताका प्रकाश कभी भी इसकी जीवनवृत्तिको आलोकित न कर पाया।

महाबन्धसदृश शास्त्रके परिशीलनसे आत्माको पता चलता है, कि किस किस कर्मका मेरे साथ सम्बन्ध होता है, उसके स्वरूपादिका विशद बोध होनेसे राग, द्वेष तथा मोहका अध्यास एवं अभ्यास मंद होने लगता है। आर्त और रौद्र नामक दुर्ध्यानोका अभाव होकर धर्मध्यानकी विमल चन्द्रिकाका प्रकाश तथा विकास होता है जो आनन्दामृतको प्रवाहित करती है और मोहके संतापका निवारण करती है। समुद्रके तलमें डुबकी लगाने वालेको बाह्यजगत्की शुभ अशुभ बातोंका पता नहीं चलता, इसी प्रकार कर्मराशिका विशद तथा विस्तृत विवेचन करने वाले इस ग्रंथार्णवमें निमग्न होने वाले मुमुक्षुके चित्तमें रागद्वेषादि संतापकारी भाव नहीं उत्पन्न होते। वह बड़ी निराकुलता तथा विशिष्ट शान्तिका अनुभव करता है।

व्यायामादिका सम्यक् अभ्यासशील व्यक्ति व्याधियोंके आक्रमणसे प्रायः बचा रहता है, इसी प्रकार ऐसे पुण्यानुबंधी बाङ्मयके परिशीलन द्वारा भव्य जीव उस आध्यात्मिक परिशुद्ध व्यायामको करता है, जिससे आत्मा बलिष्ठ होती है, और भौतिक चमक-दमक चित्तमें चमत्कृति या विकृति उत्पन्न नहीं कर पाती तथा कामक्रोधमोहादि दोष आत्मशक्तिको न्यून नहीं कर पाते।

शास्त्रकारोंने 'धर्मध्यान और शुक्लध्यानको निर्वाणका कारण बताया है। धर्मध्यानके चार भेदोंमें विपाकविचय नामका ध्यान कहा गया है। आचार्य अकलङ्क लिखते हैं—“कर्म-फलानुभवनविवेकं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भावप्रत्ययफलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः।” —त० रा० ३५३। “कर्मोंके फलानुभव विवेकके प्रति उपयोगका होना विपाकविचय है। ज्ञानावरणादिक कर्मोंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तसे जो फलानुभव होता है, उस ओर चित्तवृत्तिको

राजा शांतिपेण सद्गुण-भूषित थे। प्रशस्तिमें गुणभद्रसूत्रिका भी उल्लेख आया है। उनको कामविजेता, निःशल्य बताया है। उग्रादित्य नामके लेखकने महाबन्धकी कापी लिखी थी, यह बात सत्कर्मपंजिकासे ज्ञात होती है। प्रशस्ति इस प्रकार है—

स्थितिवन्धाधिकारके अंतकी प्रशस्ति

यो दुर्जयस्मरमदोत्कटकुम्भिकुम्भ
संचोदनोत्सुकतरोग्र-मृगाधिराजः ।
शल्यत्रयादपगतस्त्रयगौरवारिः
संजातवान्स भुवने गुणभद्रसूत्रिः ॥ १ ॥
दुर्वारसारमदसिन्धुर-सिन्धुरारिः
शल्यत्रयाधिकरिपुस्त्रयगुप्तिमुक्तः ।
सिद्धान्तवाधिपरिवर्धन-शीतरश्मिः
श्रीमाघनन्दिमुनिपोऽजनि भूतलेऽस्मिन् ॥ २ ॥
स्रग्धरावृत्तम् (कन्नड़)

वरसम्यक्त्वद देशसंयमद सम्यग्बोधदत्यंतभा-
सुरहारत्रिकसौख्यहेतु वेनिसिदा दानदौदार्यदे-
कतरदिं गीतने जन्मभूमि येनुतं सानंददिं कर्तुं भू-
भरमेव पोगलुत्तमिर्पुदभिमानाधीननं सेननम् ॥ ४ ॥
सुजनते सत्थन्मोलपु गुणोन्नति पेंपु जैन मा-
गर्ज गुणमैव सद्गुणमिवत्थधिकं तनगोप्पनूतनध-
र्मजनिवर्नेदु कित्ते सुमतीघरे मेदिनि गोप्पि तोव्वेचि-
त्तजसमरूपनं नेगवद 'सेनन' बुद्धप्रधाननम् ॥ ५ ॥
अनुपमगुणगणदतिव-
र्मन शीलनिदाने एसेन जिनपदसत्को-
कनद-शिलीमुखि पेने मां ।
ननदिदं 'मल्लिकव्वे ललनारत्नम्' ॥ ६ ॥
आवनिता रत्नदर्वे, पावंग पोगललरिदु जिनपूजेय ना-
ना-विधद-दानदमलिन-भावदोलां 'मल्लिकव्वेय' पोत्ववरार
श्री पंचमियं नोंतुद्यापनमं माळि वरेसि राद्धान्तमना ।
रूपवती 'सेनवधू' जितकोप श्रीमाघनंदियतिपति-गित्तल् ॥ ७ ॥

अनुभागबंधाधिकारके अन्तकी प्रशस्ति

स्रग्धरावृत्तम्

जितचेतोजातनुर्वीश्वर-मकुटतटोद्घृष्टपादारविन्द-
द्वितथं (यं) वाक्कामिनी-पीवरकुचकलशालंकृतोदारहार-
प्रतिमं दुद्धौरसंसृत्यतुल-विपिनदावानलं माघनंदि-
व्रतिनार्थं शारदाभोज्ज्वलविशदयशोराजितं शांतकान्तम् ॥ १ ॥

कंदपद्य

भावभवविजयि वरवाग्देविमुखनूत्नरत्नदर्पणनान-
म्नावनि पालकनेनिसद-निला विश्रुतकिन्ते माघनंदिब्रतीन्द्रम् ॥ २ ॥

महास्रग्धरावृत्तम्

वरराद्धांतांभोनिधि-तरल-तरंगोत्कर-क्षालितांतः-
करणं श्रीमेघचन्द्रव्रतिपतिपदपंकेरुहासक्तवट्-
चरणं तीव्रप्रतापोद्धृत-विततवलोपेत-पुष्पेषुभृतसं-
हरणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगल्दं माघनंदिब्रतीन्द्रम् ॥ ३ ॥

कंदपद्य

महनीय गुणनिधानं, सहजोन्नतबुद्धिविनयनिधिपने नेगल्दं
महि विनुतकिन्ते किञ्चित् महिमान मानिताभिमानं सेनम् ॥ ४ ॥
विनयद शीलदोल गुणदोलादिय पेंपिन पुड्डिजमनो
जनरतिरूपि नोलखनिस्त्रिसिर्द-मनोहरमप्युदोदुं-
रूपिनमने दानसागरमेनिप्य वधूत्तमे यप्प संदसे-
नन सति मल्लिकव्वेगे धरित्रियोलायोरं सद्गुणंगलिं ॥ ५ ॥
सकलधरित्रीविनुत-प्रकटितमधीशे मल्लिकव्वे धरिसि सत्पु-
ण्याकर महाबंधद पुस्तकं श्रीमाघनंदि मुनिपति गित्तल् ॥ ६ ॥

प्रदेशबंधाधिकारके अन्तकी प्रशस्ति

श्रीमलधारिमुनीन्द्रपदामलसरसीरुहभृंगनमलिन किन्ते ।
प्रेमं मुनिजनकैरवसोमनेनल्कापुनन्वियतिपति नेसेदं ॥ १ ॥
जितप्रपंचेषु प्रतापानलममलतरोत्कृष्टचारित्ररारा-
जिततेजं भारति-भासुरकुचकलशालीङ्ग भाभारनूत्ना ।

गुण न रहे तथा जो संयोग और विभागमें कारणान्तरकी अपेक्षा न करे, वह कर्म है। 'उसके उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण तथा गमन ये पांच भेद कहे गए हैं। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य क्रियाओंको भी कर्म कहते हैं। सांख्यदर्शनने संस्कार अर्थमें कर्मको ग्रहण किया है। ईश्वरकृष्णकी सांख्यकारिकामें लिखा है—'सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर भी पुरुष संस्कारवश—कर्मके वशसे शरीर धारण करके रहता है, जैसे गति प्राप्त भक्त संस्कारके वशसे भ्रमण करता रहता है।'

वाचस्पति मिश्रका कथन है—“क्लेशरूपी जलसे सिंचित बुद्धिरूपी भूमिमें कर्मरूपी बीज अंकुरोंको उत्पन्न करते हैं। तत्त्वज्ञानरूपी ग्रीष्मकालके द्वारा जिसका संपूर्ण क्लेशरूप जल सूख चुका है, उस शुष्क भूमिमें कर्मबीजोंका अंकुर कैसे उत्पन्न होगा ?”

गीतामें कार्यशीलता (activity) को कर्म बताया है। “कहा है—“अकर्मण्य रहनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है। 'संन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही कल्याणकारी हैं; किन्तु कर्मसंन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग विशेष महत्त्वास्पद है।”

महाभारत शांतिपर्वमें लिखा है—

“कर्मणा बध्यते जन्तुः, विद्यया तु प्रमुच्यते।” (२४०, ७)

—यह प्राणी कर्मसे बंधता है, और विद्याके द्वारा मुक्ति लाभ करता है।

पातञ्जलि योगसूत्रमें कहते हैं—“क्लेशका मूल कर्माशय—कर्मकी वासना है। वह इस जन्ममें वा जन्मान्तरमें अनुभवमें आती है। अविद्यादिरूप मूलके सद्भावमें जाति आयु तथा भोगरूप कर्मोंका विपाक होता है। वे आनन्द तथा संताप प्रदान करते हैं, क्योंकि उनका कारण पुण्य तथा अपुण्य है।”

न्यायमंजरीमें लिखा है—“जो देव, मनुष्य तथा तिर्यचोंमें शरीरोत्पत्ति देखी जाती

(१) “उत्क्षेपणं ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चनं तथा । प्रसारणं च गमनं कर्माण्येतानि पञ्च च ॥”

—सि० मुक्तावली ६ ।

(२) “सम्यक्ज्ञानाधिगमाद्वर्मादीनामकारणप्राप्तौ । तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद्धृतशरीरः ॥”

—सां० त० कौ० ६७ ।

(३) “क्लेशसलिलवसिक्तायां हि बुद्धिभूमौ कर्मबीजान्यङ्कुरं प्रमुच्यते । तत्त्वज्ञाननिदाघनिपीतसकलक्लेश-सलिलायामूपरायां कुतः कर्मबीजानामङ्कुरप्रसवः ?” —सां० त० कौ० पृ० ३१५ ।

(४) “योगः कर्मसु कौशलम् ।”

(५) “कर्मज्यायो ह्यकर्मणः ।” —गी० ३।८ ।

(६) “संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ । तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥” —गी० ५।२ ।

(७) “क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्यवेदनीयः । सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः । ते ह्यदपरि-तापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।” —यो० सू० २।१२-१४ ।

(८) “यो ह्ययं देव मनुष्य-तिर्यग्भूमिषु शरीरसर्गः, यश्च प्रतिविषयं बुद्धिसर्गः, यश्चात्मना सह मनसा संसर्गः स सर्वः प्रवृत्तेरेव परिणामविभवः । प्रवृत्तेश्च सर्वस्याः क्रियात्वात् क्षणिकत्वेऽपि तदुपहितो धर्माधर्मशब्दवाच्य आत्मसंस्कारः कर्मफलोपभोगपर्यन्तरित्यतिरस्त्येव ।” —न्या० सं० पृ० ७० ।

है, जो प्रत्येक पदार्थके प्रति बुद्धि उत्पन्न होती है, जो आत्माके साथ मनका संसर्ग होता है, वह सब प्रवृत्तिके परिणामका वैभव है। सर्व प्रवृत्ति क्रियात्मक हैं, अतः क्षणिक हैं; फिर भी उससे उत्पन्न होनेवाला धर्म अधर्म पदवाच्य आत्म-संस्कार कर्मके फलोपभोग पर्यन्त स्थिर रहता ही है।”

अशोकके शिलालेख नं० ८ में लिखा है—“इस प्रकार देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी अपने भले कर्मोंसे उत्पन्न हुए सुखका उपभोग करता है।”

भिक्षु नागसेनने मिलिन्द सम्राट्से जो प्रश्नोत्तर किये थे उससे कर्मोंके विषयमें बौद्ध दृष्टिका अवबोध होता है—

“राजा बोला—भन्ते ! क्या कारण है, कि सभी आदमी एक ही तरहके नहीं होते ? कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्रे, कोई बड़े सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बड़े प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँच कुलवाले, कोई मूर्ख, कोई बुद्धिमान् क्यों होते हैं ?

स्थविर बोले—महाराज ! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियां एकसी नहीं होती ? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तिक्त, कोई कड़वी, कोई कषायली और कोई मधुर क्यों होती हैं ? भन्ते ! मैं समझता हूँ कि बीजोंकी भिन्नताके कारण ही वनस्पतियोंमें भिन्नता है।

महाराज ! इसी प्रकार सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होनेसे वे सभी एक ही प्रकारके नहीं हैं। महाराज ! बुद्धदेवने भी कहा है—हे मानव ! अपने कर्मोंका सभी जीव उपभोग करते हैं। सभी जीव अपने कर्मोंके स्वामी हैं। अपने कर्मोंके अनुसार नाना योनियोंमें जन्म धारण करते हैं। अपना कर्म ही अपना वंधु है, अपना आश्रय है। कर्मसे ही लोग ऊँचे नीचे हुए हैं।

भन्ते—“आपने ठीक कहा।”

इस प्रकार दार्शनिक साहित्यके अवगाहनसे और भी सामग्री प्राप्त होगी, जो यह स्थापित करेगी, कि कर्मसिद्धान्तकी किसी न किसी रूपमें दार्शनिक जगत्में अवस्थिति अवश्य है।

(१) बुद्ध और बुद्धधर्म पृ० २५६।

(२) “राजा आह—भन्ते नागसेन, केन कारणेन मनुस्सा न सव्वे समका, अज्जे अप्पायुका, अज्जे दीघायुका, अज्जे बह्वावाधा, अज्जे अप्पावाधा, अज्जे दुव्वण्णा, अज्जे वण्णवन्तो, अज्जे अप्पेसक्खा, अज्जे महेसक्खा, अज्जे अप्पभोगा, अज्जे महाभांगा, अज्जे नीचकुलीना, अज्जे महाकुलीना, अज्जे दुप्पज्जा, अज्जे पजावन्तोति।”

येरो आह, किस्स पन, महाराज ! रक्ख्वा न सव्वे समका, अज्जे अंविता, अज्जे लवणा, अज्जे तिक्तका, अज्जे कटुका, अज्जे कसावा, अज्जे मधुराति।”

मज्झिमि भन्ते ! बीजानं नानाकरणेनाति। एदमेव खो महाराज कम्मनं नानाकरणेन मनुस्सा न सव्वे समका०। भासितं पेतं महाराज ! भगवता कम्मस्व कानाणवत्तत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोर्ना, कम्मबंधु, कम्मगरिसरणा, कम्मं सत्ते विभज्जति यददं हीनप्पणीततादीति। कल्लोसि भन्ते नागसेनाति।”

—Pali Reader P. 39 मिलिन्दपम्ह in अंगुत्तरनिकाय मिलिन्दप्रश्न ८१

गुण न रहे तथा जो संयोग और विभागमें कारणान्तरकी अपेक्षा न करे, वह कर्म है। 'उत्सर्ग उल्लेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण तथा गमन ये पांच भेद कहे गए हैं। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य क्रियाओंको भी कर्म कहते हैं। सांख्यदर्शनने संस्कार अर्थमें कर्मको ग्रहण किया है। ईश्वरकृष्णकी सांख्यकारिकामें लिखा है—'सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर भी पुरुष संस्कारवश—कर्मके वशसे शरीर धारण करके रहता है, जैसे गति प्राप्त चक्र संस्कारके वशसे भ्रमण करता रहता है।'

वाचस्पति मिश्रका कथन है—“क्लेशरूपी जलसे सिंचित बुद्धिरूपी भूमिमें कर्मरूपी बीज अंकुरोंको उत्पन्न करते हैं। तत्त्वज्ञानरूपी ग्रीष्मकालके द्वारा जिसका संपूर्ण क्लेशरूप जल सूख चुका है, उस शुष्क भूमिमें कर्मबीजोंका अंकुर कैसे उत्पन्न होगा ?”

गीतामें* कार्यशीलता (activity) को कर्म बताया है। “कहा है—“अकर्मण्य रहनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है। ‘संन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही कल्याणकारी हैं; किन्तु कर्मसंन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग विशेष महत्त्वास्पद है।”

महाभारत शांतिपर्वमें लिखा है—

“कर्मणा बध्यते जन्तुः, विद्यया तु प्रमुच्यते।” (२४०, ७)

—यह प्राणी कर्मसे बंधता है, और विद्याके द्वारा मुक्ति लाभ करता है।

पातञ्जलि योगसूत्रमें कहते हैं—“क्लेशका मूल कर्माशय—कर्मकी वासना है। वह इस जन्ममें वा जन्मान्तरमें अनुभवमें आती है। अविद्यादिरूप मूलके सद्भावमें जाति आयु तथा भोगरूप कर्मोंका विपाक होता है। वे आनन्द तथा संताप प्रदान करते हैं, क्योंकि उनका कारण पुण्य तथा अपुण्य है।”

न्यायमंजरीमें लिखा है—“जो देव, मनुष्य तथा तिर्यचोंमें शरीरोत्पत्ति देखी जाती

(१) “उल्लेपणं ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चनं तथा । प्रसारणं च गमनं कर्माण्येतानि पञ्च च ॥”

—सि० मुक्तावली ६ ।

(२) “सम्यक्ज्ञानाधिगमाद्वर्मादीनामकारणप्राप्तौ । तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवदधृतशरीरः ॥”

—सां० त० कौ० ६७ ।

(३) “क्लेशसलिलावसिकायां हि बुद्धिभूमौ कर्मबीजान्यङ्कुरं प्रसुवते । तत्त्वज्ञाननिदाघनिपीतसकलक्लेश-सलिलायामूपायां कुतः कर्मबीजानामङ्कुरप्रसवः ?” —सां० त० कौ० पृ० ३१५ ।

(४) “योगः कर्मसु कौशलम् ।”

(५) “कर्मज्यायो ह्यकर्मणः ।” —गी० ३।८ ।

(६) “संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ । तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥” —गी० ५।२ ।

(७) “क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्यवेदनीयः । सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः । ते ह्यादपरि-तापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।” —यो० सू० २।१२-१४ ।

(८) “यो ह्ययं देव मनुष्य-तिर्यग्भूमिषु शरीरसर्गः, यश्च प्रतिविषयं बुद्धिसर्गः, यश्चात्मना सह मनसा संसर्गः स सर्वः प्रवृत्तेरेव परिणामविभवः । प्रवृत्तेश्च सर्वस्याः क्रियात्वात् क्षणिकत्वेऽपि तदुपहितो धर्माधर्मशब्दवाच्य आत्मसंस्कारः कर्मफलोपभोगपर्यन्तस्थितिरस्त्येव ।” —न्या० सं० पृ० ७० ।

हैं, जो प्रत्येक पदार्थके प्रति बुद्धि उत्पन्न होती है, जो आत्माके साथ मनका संसर्ग होता है, वह सब प्रवृत्तिके परिणामका वैभव है। सर्व प्रवृत्ति क्रियात्मक हैं, अतः क्षणिक हैं; फिर भी उससे उत्पन्न होनेवाला धर्म अधर्म पदवाच्य आत्म-संस्कार कर्मके फलोपभोग पर्यन्त स्थिर रहता ही है।”

अशोकके शिलालेख नं० ८ में लिखा है—“इस प्रकार देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी अपने भले कर्मोंसे उत्पन्न हुए सुखका उपभोग करता है।”

भिक्षु नागसेनने मिलिन्द सम्राट्से जो प्रश्नोत्तर किये थे उससे कर्मोंके विषयमें बौद्ध दृष्टिका अवबोध होता है—

“राजा बोला—भन्ते ! क्या कारण है, कि सभी आदमी एक ही तरहके नहीं होते ? कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्दे, कोई बड़े सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बड़े प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँच कुलवाले, कोई मूर्ख, कोई बुद्धिमान् क्यों होते हैं ?

स्थविर बोले—महाराज ! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियां एकसी नहीं होती ? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तिक्त, कोई कड़वी, कोई कषायली और कोई मधुर क्यों होती हैं ? भन्ते ! मैं समझता हूँ कि बीजोंकी भिन्नताके कारण ही वनस्पतियोंमें भिन्नता है।

महाराज ! इसी प्रकार सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होनेसे वे सभी एक ही प्रकारके नहीं हैं। महाराज ! बुद्धदेवने भी कहा है—हे मानव ! अपने कर्मोंका सभी जीव उपभोग करते हैं। सभी जीव अपने कर्मोंके स्वामी हैं। अपने कर्मोंके अनुसार नाना योनियोंमें जन्म धारण करते हैं। अपना कर्म ही अपना बंधु है, अपना आश्रय है। कर्मसे ही लोग ऊँचे नीचे हुए हैं।

भन्ते—“आपने ठीक कहा।”

इस प्रकार दार्शनिक साहित्यके अवगाहनसे और भी सामग्री प्राप्त होगी, जो यह ज्ञापित करेगी, कि कर्मसिद्धान्तकी किसी न किसी रूपमें दार्शनिक जगतमें अवस्थिति अवश्य है।

(१) बुद्ध और बुद्धधर्म पृ० २५६।

(२) “राजा आह—भन्ते नागसेन, केन कारणेन मनुस्सा न सत्त्वे समका, अञ्जे अप्पायुका, अञ्जे दीघायुका, अञ्जे बह्वावाधा, अञ्जे अप्पावाधा, अञ्जे दुव्वण्णा, अञ्जे वण्णवन्तो, अञ्जे अप्पेसक्खा, अञ्जे महेसक्खा, अञ्जे अप्पभोगा, अञ्जे महाभोगा, अञ्जे नीचकुलीना, अञ्जे महाकुलीना, अञ्जे दुप्पज्जा, अञ्जे पज्जावन्तोति।”

धेरो आह, किस्स पन, महाराज ! रुक्खा न सत्त्वे समका, अञ्जे अंविळा, अञ्जे लवणा, अञ्जे तिक्तका, अञ्जे कटुका, अञ्जे कसावा, अञ्जे मधुराति।”

मज्झिम भिंते ! बीजानं नानाकरणेनाति। एवमेव खा महाराज कम्मनं नानाकरणेन मनुस्सा न सत्त्वे समका०। भासितं पेतं महाराज ! भगवता कम्मस्स कामाणवत्तत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोनी, कम्मबंधु, कम्मरिसरणा, कम्मं सत्त्वे विभज्जति यद्दिदं हीनप्पणीततापीति। वल्लोचि भंते नागसेनाति।”

—Pali Reader P. 39 मिलिन्दपम्ह in संगुत्तनिकाय मिलिन्दप्रश्न ८६

जैनवाङ्मयमें कर्मसिद्धान्तपर बड़े-बड़े ग्रंथ बने हैं। उनसे विदित होता है, कि जैनसिद्धान्तमें कर्मका सुव्यवस्थित, शृङ्खलाबद्ध तथा विज्ञानदृष्टिपूर्ण वर्णन किया गया है।

जैनदर्शनमें कर्म

जैनदृष्टिसे कर्मपर विचार करनेके पूर्व यदि हम इस विश्वका विश्लेषण करें, तो हमें सचेतन (जीव), तथा अचेतन (अजीव) ये दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। पुद्गल (matter), आकाश, काल तथा गमन और स्थितिके माध्यमरूप धर्म और अधर्म ये पांच द्रव्य अचेतन हैं। ज्ञान-दर्शन गुणसमन्वित जीव द्रव्य है। इस प्रकार छह द्रव्योंमें जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिस्पन्दात्मक क्रियाशील हैं। धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। इनमें प्रदेश-संचलनरूप क्रिया नहीं पाई जाती। इनमें अगुरुत्व गुणके कारण पङ्गुणीहानि-वृद्धिरूप परिणमन अवश्य पाया जाता है। इस परिणमनको अस्वीकार करनेपर द्रव्यका स्वरूप परिणमनहीन कूटस्थ बन जाता।

इसी बातको पञ्चाध्यायीकार दूसरे शब्दोंमें प्रकट करते हैं—

“भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्गलौ ।

तौ च शेषचतुष्कं च पडेते भावसंस्कृताः ॥

तत्र क्रिया प्रदेशानां परिस्पन्दश्चलात्मकः ।

भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाह्यैकवस्तुनि ॥” २।२५, २६

—“जीव तथा पुद्गलमें भाववती तथा क्रियावती शक्ति पाई जाती है। शेष चार द्रव्योंमें तथा पूर्वके दो द्रव्योंमें भी भाववती शक्ति उपलब्ध होती है। प्रदेशोंका संचलनरूप परिस्पन्दनको क्रिया कहते हैं। धारावाही एक वस्तुमें जो परिणमन है, वह भाव है।”

इससे यह स्पष्ट होता है, कि जीव पुद्गलमें ही प्रदेशोंका हलन, चलन पाया जाता है। जीव और पुद्गल विशेषका परस्परमें बन्धन होता है, कारण जीवमें बंधका कारण वैभाविक शक्तिका सद्भाव है। यदि वैभाविक शक्ति न होती, तो जीव और पुद्गलका संश्लेष नहीं होता।^१

जिस प्रकार चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाविक शक्तिविशिष्ट जीव रागादि भावोंके कारण कार्माणवर्गणा^२ तथा आहार, तैजस, भापा तथा मनरूप नोर्कर्मवर्गणाओंको अपनी ओर आकर्षित करता है। पुद्गलद्रव्यके तेईस प्रकारोंमें कार्माण वर्गणा नामका एक भेद है।^३ अनंतानंत परमाणुओंके प्रचयरूप वर्गणा होती है। रागादिभावोंके कारण जीवका कर्मोंके साथ सम्बन्ध होता है।

(१) “अयत्क्रान्तोपलकृष्टसूचीवचद्वयोः पृथक् । अस्ति शक्तिः विभावाख्या मियो बन्वाधिकारिणी ॥”

—पञ्चा० २।४२।

(२) “देहोदयेण सहियो जीवो व्याहरदि कम्मणोकम्मं ।

पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिण्डञ्चोव्व जलं ॥” —गो० क० ३।

(३) “परमाणूहि अणंतहि वगणसण्णा दु होदि एक्का हु ।” —गो० जी० २४४।

परिभाषा

परमात्मप्रकाशमें कर्मकी इस प्रकार परिभाषा की गई है—

“विसयकसायहिं रंगियहं, जे अणुया लगंति ।

जीवपएसहं मोहियहं, ते जिण कम्म भणंति ॥ ६२ ॥”

—विषय-कषायोंसे रागी मोही जीवोंके आत्मप्रदेशोंमें जो परमाणु लगते हैं, उनको जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं ।

प्रवचनसार टीकामें अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—“क्रिया खल्व्वात्मना प्राप्यत्वा-
त्कर्म, तन्निमित्तप्राप्तपरिणामः पुद्गलोऽपि कर्म ।” (पृ० १६५)

—“आत्माके द्वारा प्राप्य होनेसे क्रियाको कर्म कहते हैं । उसके निमित्तसे परिणमनको प्राप्त पुद्गल भी कर्म कहा जाता है ।” इसका अभिप्राय यह है, कि आत्मामें कंपनरूप क्रिया होती है, इस क्रियाके निमित्तसे पुद्गलके विशिष्ट परमाणुओंमें जो परिणमन होता है, उसे कर्म कहते हैं । यह व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टिसे की गई है ।

जीवके परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गलकी अवस्था, जिससे जीव परतन्त्र—सुख दुःखका भोक्ता किया जाता है, कर्म कहलाती है ।

अकलंकदेव अपने राजवार्तिक (पृ० २९४) में लिखते हैं—“यथा भाजनविशेषे प्रक्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामः, तथा पुद्गलानामपि आत्मनि स्थितानां योगरूपायवशात् कर्मभावेन परिणामो वेदितव्यः ।” जैसे पात्रविशेष में डाले गए अनेक रसवाले बीज, पुष्प तथा फलोंका मदिरारूपमें परिणमन होता है, उसी प्रकार योग तथा कषायके कारण आत्मामें स्थित पुद्गलोंका कर्मरूप परिणाम होता है ।

महर्षि कुंदकुंद समयसारमें कहते हैं—

“जीवपरिणामहेतुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति ।

पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ ॥ ८० ॥”

—“जीवके परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गलका कर्मरूप परिणमन होता है । इसी प्रकार पौद्गलिक कर्मके निमित्तसे जीवका भी परिणमन होता है ।” उदाहरणार्थ, मेघके अवलंबनसे सूर्यकी किरणोंका इंद्रधनुषादि विचित्ररूप परिणमन होता है ।

“ण वि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।

अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि ॥ ८१ ॥”

—“तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय, तो जीव न तो कर्ममें गुण करता है और न कर्म ही जीवमें कोई गुण उत्पन्न करता है । जीव तथा पुद्गलका एक दूसरेके निमित्तसे विशिष्ट परिणमन हुआ करता है ।”

प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभावमें स्थित है । उसके परिणमनमें अन्य द्रव्य उत्पादन कारण

नहीं बन सकता। जीव न पुद्गलका कारण है और न पुद्गल जीवका उपादान हो सकता है। उनमें उपादान-उपादेयभावके स्थानमें निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। इससे जो सिद्धान्त स्थिर होता है, उसके विषयमें कुन्दकुन्द स्वामीका कथन है—

“एण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।

पुगलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८२ ॥”

—“इस कारण आत्मा अपने भावका कर्ता है। वह पुद्गलकर्मकृत समस्त भावोंका कर्ता नहीं है।”

इस विषयपर अमृतचन्द्रसूरि इन शब्दोंमें प्रकाश डालते हैं—

“जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये ।

स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन ॥” -पु० सि० १२ ।

—“जीवके रागादि परिणामोंका निमित्त वा पुद्गलोंका कर्मरूपमें परिणमन स्वयमेव हो जाता है।”

इसी प्रकार स्वयं अपने चैतन्यमय भावोंसे परिणमनशील जीवके रागादिरूप परिणमनमें पौद्गलिक कर्म निमित्त पड़ा करता है। यदि जीव और पुद्गलमें निमित्त भावके स्थानमें उपादान उपादेयत्व हो जाय, तो जीव द्रव्यका अभाव होगा, अथवा पुद्गल द्रव्य नहीं रहेगा। दोनोंमें भिन्नत्वका अभाव होकर ऐक्य स्थापित होगा।

प्रवचनसारमें लिखा है—

“कम्मत्तण-पाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।

गच्छंति कम्मभावं ण हि ते जीवेण परिणमिदा ॥” -२।७७ ।

—“जीवकी रागादिरूप परिणतिविशेषको प्राप्तकर कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गलस्कन्ध कर्मभावको प्राप्त करते हैं। उनका कर्मत्वपरिणमन जीवके द्वारा नहीं किया गया है।”

“ते ते कम्मत्तगदा पोगलकाया पुणोवि जीवस्स ।

संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा ॥” -२।७८ ।

—“कर्मत्वको प्राप्त पुद्गलकाय जीवके देहान्तररूप संक्रम-परिवर्तनको पाकर पुनः देहरूपको प्राप्त करते हैं।”

“आदा कम्ममलिसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं ।

तत्तो सिलसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो ॥” -२।२९ ।

—“कर्मके कारण मलिनताको प्राप्त आत्मा कर्म-संयुक्त परिणामको प्राप्त करता है, इससे कर्मोंका सम्बन्ध होता है। अतः परिणामको भी कर्म कहते हैं।”

इस विषयको स्पष्ट करते हुए अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—

‘परमार्थ दृष्टिसे देखा जाय, तो जीव आत्मपरिणामरूप भाव कर्मका कर्ता है। पुद्गल

(१) “परिणममानस्य चित्तश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावेः ।

भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि ॥” -पु० सि० १३ ।

परिणामरूप द्रव्यका कर्ता नहीं है। द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है? पुद्गलका परिणाम स्वयं पुद्गलरूप है। इससे परमार्थदृष्टिसे पुद्गलात्मक द्रव्यकर्मका कर्ता पुद्गलका परिणाम स्वयं है। वह आत्म-परिणाम स्वरूप भावकर्मका कर्ता नहीं है। इससे जीव आत्मस्वरूपसे परिणमन करता है, पुद्गल-रूपसे परिणमन नहीं करता है।

कर्मके द्रव्यकर्म और भावकर्म ये दो भेद कहे गए हैं। आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती कहते हैं—“पुद्गलका पिण्ड द्रव्य कर्म है। उस पिण्डस्थित शक्तिसे उत्पन्न अज्ञानादि भावकर्म हैं।” अध्यात्म शास्त्रकी दृष्टिसे आत्माके प्रदेशोंका सकंप होना भावकर्म है। इस कंपनके कारण पुद्गलोंकी विशिष्ट अवस्थाकी उत्पत्तिको द्रव्यकर्म कहा है।

बंधका स्वरूप

कर्मोंकी अवस्थाविशेषको बन्ध कहते हैं। जीव और कर्मोंके सम्बन्ध होनेपर दोनोंके गुणोंमें विकृतिकी उत्पत्ति होना बंध है। उदाहरणार्थ, हल्दी और चूनाके सम्बन्धसे जो विशेष लालिमाकी उत्पत्ति हुई है, वह वर्ण एक जात्यन्तर है। वह न हल्दीमें है और न चूनेमें ही पाया जाता है। इसी प्रकार रागद्वेषादि विकारी भाव न शुद्ध आत्मामें उपलब्ध होते हैं और न जीवसे असम्बद्ध पुद्गलमें उनकी प्राप्ति होती है। बंधकी अवस्थामें जिन दो वस्तुओंका परस्परमें बन्ध-बन्धक भाव उत्पन्न होता है, उन दोनोंके स्वगुणोंमें विकृति उत्पन्न होती है। कहा भी है—

“हरदी ने जरदी तजी, चूना तज्यो सफेद।

दोऊ मिल एकहि भए, रह्यो न काहू भेद ॥”

पञ्चाध्यायीमें कहा है—

“बन्धः परगुणाकारा क्रिया स्यात् पारिणामिकी।

तस्यां सत्यामशुद्धत्वं तद्द्वयोः स्वगुणच्युतिः ॥२।१३०॥”

—“अन्यके गुणोंके आकाररूप परिणमन होना बन्ध है। इस परिणमनके उत्पन्न होनेपर अशुद्धता आती है। उस समय उन दोनों बन्ध होनेवालोंके स्वगुणोंका विपरिणमन होता है।”

जीवके रागादि भाव न शुद्ध जीवके हैं और न शुद्ध पुद्गलके हैं। ‘बन्धोऽयं द्वन्द्वजः स्मृतः’—यह बन्ध दो से उत्पन्न होता है। एक द्रव्यका बन्ध नहीं होगा।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं—

“वज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।

कम्मादपदेसाणं अण्णोणपवेसणं इदरो ॥”—३० सं० ३२।

जिस चैतन्य परिणतिसे कर्मोंका बन्ध होता है, उसे भावबंध कहते हैं। आत्मा और कर्मके प्रदेशोंका परस्परमें प्रवेश हो जाना द्रव्य बन्ध है।

सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करने पर विदित होता है, कि जिस प्रकार कर्मोंको यह जीव बांधता है—पराधीन करता है, उसी प्रकार कर्म भी इस जीवको पराधीन बनाते हैं। बन्धमें दोनोंकी स्वतंत्रताका परित्याग होता है। दोनों विवश किये जाते हैं।

पंडित प्रवर आशाधरजी लिखते हैं—

“स बन्धो बध्यन्ते परिणतिविशेषेण विवशी-
क्रियन्ते कर्माणि प्रकृतिविदुषो येन यदि वा ॥
स तत्कर्माम्नातो नयति पुरुषं यत् स्ववशतां ।
प्रदेशानां यो वा स भवति मिथः श्लेष उभयोः ॥”

—अन० धर्मा० २।३८ ।

—‘जिस परिणतिविशेषसे कर्म अर्थात् कर्मत्व परिणत पुद्गल-द्रव्यकर्मविपाक-अनुभव करने वाले जीवके द्वारा परतंत्र बनाए जाते हैं—योगद्वारसे प्रविष्ट होकर पाप-पुण्य-रूपपरिणमन करके भोग्यरूपसे सम्बद्ध किए जाते हैं, वह बंध है। अर्थात् आत्माके जिन भावोंसे कर्मत्व-परिणत पुद्गल जीवके द्वारा परतंत्र किया जाता है, वह बन्ध है। अथवा, जो कर्म जीवको अपने अधीन करता है वह बन्ध है, अथवा जीव और पुद्गलके प्रदेशोंका परस्पर मिल जाना बन्ध है।’

बन्धके विषयमें यह बात तो सर्वसाधारणके दृष्टिपथमें रहती है, कि जीव कर्मोंको बांधता है, किन्तु कर्म भी जीवको बांधते हैं, प्रायः यह बात ध्यानमें नहीं लाई जाती। पं० आशाधर जीने यही विषय बताया कि बंधमें दोनोंकी स्वतंत्रताका परित्याग होता है।

यह बन्ध आत्मा और कर्मकी परस्पर अनुकूलता होनेपर ही होता है। प्रतिकूलोंका बन्ध नहीं होता है। यही बात पञ्चाध्यायीमें कही गई है—

“सानुकूलतया बन्धो न बन्धः प्रतिकूलयोः ॥” —२।१०२ ।

मुनीन्द्र कुंदकुंद कहते हैं—

“फासेहिं पुगलानं बंधो जीवस्स रागमादीहिं ।

अण्णोणस्सवगाहो पुगलजीवप्पणो भणिदो ॥” —प्रव० सा० २।८५ ।

—‘यथायोग्य स्निग्धरुक्षत्वरूप स्पर्शसे पुद्गल-कर्म-वर्गणाओंका परस्परमें पिण्डरूप बन्ध होता है। रागद्वेष मोहरूप परिणामोंसे जीवका बंध होता है। जीवके परिणामोंका निमित्त पाकर जीव-पुद्गलका बंध होना जीव-पुद्गलका बन्ध है।’

“सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पुगला काया ।

पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति हि जंति वज्झंति ॥” —२।८६ ।

यह आत्मा असंख्यातप्रदेशी है। उसके प्रदेशोंमें आत्मप्रदेश-परिस्पंदनरूप योगके अनुसार मन-वचन-कायवर्गणाओंकी सहायतासे पुद्गलकर्म-वर्गणारूप पिण्ड आकर प्रविष्ट होता है। वे कार्माण-वर्गणां रागद्वेष तथा मोहके अनुसार अपनी स्थिति प्रमाण ठहरकर क्षीण हो जाती हैं।

यथार्थ बात यह है, कि रागद्वेष, मोहके कारण आत्मामें एक उत्तेजनाविशेष उत्पन्न होती है, उससे वह कर्मोंको आकर्षित कर बांधता है, जैसे गरम लोहपिण्ड जलराशिको आत्मसात् किया करता है। समयसारमें संक्षेपमें बन्धतत्त्वको इस प्रकार समझाया है—

रागादिसे बन्ध होता है

समयसारमें संक्षेपमें बन्धतत्त्वको इस प्रकार समझाया है—

“रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा ।

एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥”—२।८७ ।

रागपरिणाम विशिष्ट जीव कर्मोंका बन्ध करता है । रागरहित आत्मा कर्मोंसे मुक्त होता है । जीवोंके बंधका संक्षेपमें यही तात्त्विक वर्णन है ।

रागद्वेषसे बन्ध होता है, रागादिके अभाव होनेपर क्रियाओंके होते हुए भी बन्ध नहीं होता, इसे सोदाहरण कुन्दकुन्द स्वामी इन शब्दोंमें स्पष्ट करते हैं—

“जह णाम कोवि पुरिसो णेहमत्तो दु रेणुबहुलम्मि ।

ठाणम्मि ठाइदूण य करेहिं सत्थेहिं वायामं ॥ २३७ ॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।

सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥ २३८ ॥

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।

णिच्छयदो चिंतिज्जहु किं पच्चयगो दु रयबंधो ॥ २३९ ॥

जो सो दु णेहभावो तम्मि णरे तेण तस्स रयबंधो ।

णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २४० ॥

एवं मिच्छादिट्ठी वडंतो बहुविहासु चिट्ठासु ।

रायाई उवओगे कुव्वंतो लिप्पइ रयेण ॥ २४१ ॥”

—आचार्य महाराजके कथनका भाव यह है, कोई व्यक्ति अपने शरीरमें तेल लगाता है तथा धूलिपूर्ण स्थलमें जाकर शस्त्र-संचालनरूप व्यायाम करता है तथा ताड़ केला बांस आदिके वृक्षोंका छेदन-भेदन करता है । इन क्रियाओंके करते हुए जो धूलि उड़कर उसके शरीरपर चिपकती है, उसका कारण व्यायाम क्रिया नहीं है । उसका वास्तविक कारण है शरीरमें तेलका लगाना ।

इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अनेक चेष्टाओंको करता है । अपने उपभोग-परिणामोंमें रागादि धारण करता है, इससे वह कर्मरूपी धूलिके द्वारा लिप्त होता है ।

यहां यह शंका उत्पन्न होती है, कि शरीरमें रज-लेपका कारण तेलके स्थानमें व्यायाम क्रियाको क्यों न माना जाय ? इसका समाधान स्वामी कुन्दकुन्द अधिक स्पष्टतापूर्वक करते हुए लिखते हैं—

“जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वत्ति अदणिय संते ।

रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं ॥ २४२ ॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।

सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥ २४३ ॥

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
 णिच्छयदो चिंतिज्झु किं पचयगो ण रयवन्धो ॥ २४४ ॥
 जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण रयवन्धो ।
 णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २४५ ॥
 एवं सम्मादिट्ठी वट्ठतो बहुविहेसु जोगेसु ।
 अकरंतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥ २४६ ॥”

इसका भाव यह, कि वही पूर्वोक्त पुरुष अपने शरीरके तैल को पोंछकर उसी प्रकार धूलि पूर्ण प्रदेशमें शस्त्रद्वारा व्यायाम तथा वृक्ष-छेदनादि कार्य करता है। अब तैलका अभाव होने से उसके शरीर पर धूलि नहीं जमती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकारके योगोंमें विद्यमान रहता है, किन्तु उसके उपयोगमें रागादिका अभाव रहता है, इस कारण वह कर्म-रजसे लिप्त नहीं होता।

शरीर पर धूलि जमनेका कारण व्यायाम नहीं है, कारण शस्त्रसंचालनका अन्वय व्यतिरेक धूलि जमने के साथ नहीं देखा जाता। शस्त्र संचालन दोनों अवस्थाओंमें होते हुए भी धूलि लेप तब होता है, जब शरीर तैललिप्त रहता है। शरीरपर तैलके अभावमें धूलिका लेप भी नहीं पाया जाता, इससे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि धूलिके जमनेमें कारण तैलका लेप है। इसी प्रकार रागादिके होने पर कर्मोंका लेप होता है। आसक्तिजनक रागादिके अभाव वश कर्मोंका भी लेप नहीं होता। आशाधरजीने इसीलिए कहा है—

“भूरेखादिसदृक्कषायवशगो यो विश्वदृश्वाज्ञया
 हेयं नैपयिकं सुखं निजमुपादेयं त्विति श्रद्धयत् ।
 चौरौ मारयितुं धृतस्तलवरेणेवात्मनिन्दादिमान् ।
 शर्माक्षं भजते रुजत्यपि परं नोत्तप्यते सोऽप्यघैः ॥” -सा० ध० १।१३।

अप्रत्याख्यानावरणादि कषायके अधीन रहने वाला अविरत सम्यक्त्वो सर्वज्ञदेवके वचनानुसार विषय सुखको त्याग्य और आत्मीक आनन्दको ग्राह्य श्रद्धान करता हुआ भी, जैसे कोट्टपालके द्वारा मारनेके लिए पकड़ा गया चोर आत्मनिन्दा-गर्हा आदि में प्रवृत्ति करता है, उसी प्रकार वह कषायोद्रेकवश इंद्रियजन्य सुखका अनुभव करनेमें प्रवृत्त होता है, और प्राणियोंकी पीड़ा भी देता है किन्तु वह पापोंसे पीड़ित नहीं होता। अनासक्त भावसे विषय सेवन करनेके कारण वह बंधनकी व्यथा नहीं उठाता।

कर्मबंध पर परमार्थदृष्टि

जीव परमार्थदृष्टिसे अपने भावोंका कर्ता है फिर उसे कर्मका कर्ता क्यों कहते हैं ? इसके समाधानार्थ समयसारकार कहते हैं—

“जीवन्नि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
 जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण ॥

जोधेहि कदे जुद्धे राएण कदं ति जप्पदे लोगो ।

तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ॥”—समयसार १०५।६ ।

‘जीवके निमित्तको पाकर कर्मबन्धरूप परिणमन देखकर उपचारवश कहते हैं कि जीवने कर्मबन्ध किया । उदाहरणार्थ, यद्यपि योद्धा लोग ही युद्ध करते हैं, किन्तु लोग कहते हैं, राजा युद्ध करता है, इसी प्रकार व्यवहारनयसे कहते हैं कि जीवने ज्ञानावरणादिका बंध किया है ।’

अमृतचन्द स्वामीकी इसी प्रसंग पर बड़ी सुन्दर उक्ति है—

“जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशाङ्कयैव ।

एतर्हि तीव्ररयमोहनिबर्हणाय संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ ॥” ३।१८ ।

‘यदि जीव पुद्गलकर्मका कर्ता नहीं है, तो उसका कर्ता कौन है ? ऐसी आशंका होने पर शीघ्र मोह निवारणार्थ कहते हैं, उसे सुन लो कि पौद्गलिक कर्मोंका कर्ता पुद्गल ही है ।’

आत्मा परभावोंका कर्ता नहीं होगा, वह अपने निज भावका कर्ता है, यह बात समझाते हुए कहते हैं—

आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् परः सदा ।

आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥” —स० सार पृ० १४४ ।

‘आत्मा सदा अपने भावोंका कर्ता है, पर अर्थात् पुद्गल सदा पौद्गलिक भावोंका कर्ता है । आत्माके भाव आत्मरूप ही हैं, इसी प्रकार पुद्गलके भाव भी पुद्गलरूप हैं ।’

उपरोक्त सत्यको हृदयंगम करनेवाले ज्ञानी जीवके विषयमें कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

“परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो ।

सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि ॥” —स० सार ९३ ।

‘ज्ञानी जीव परको आत्मरूप न मानता है और न आत्माको पर ही करता है, वह कर्मोंका अकर्ता होता है ।’

यहां यह गंभीर बात समझाते हैं, कि जब आत्मा अपने भाव के सिवाय परमार्थसे परभावोंका कर्ता नहीं है, तब जीवमें कर्मोंका कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व नहीं रहेगा ।

नाटक समयसारमें कहा है—

“जो लों ज्ञानको उदोत तोलों नहिं बंध होत वरतै मिथ्यात्व तव नानाबंध होहि है ।
ऐसो भेद सुनके लग्यो तूं विषय भोगनसुं जोगनिसुं उद्यमकी रीति तै चिछोहि है ॥
सुनो भैया संत तू कहे मैं समकितवंत यहू तो एकंत परमेश्वरका द्रोही है ।
विपैसुं विमुख होहि अनुभव दशा आरोहि मोक्ष सुख टोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥३९॥”

जिस आत्माके हृदयमें सम्यक्ज्ञानकी निर्मल ज्योति प्रदीप्त होती है, उस आत्माका जीवन सहज पवित्रताके रससे शोभित होता है । वह विषय सुखोंमें आसक्त होता है, ऐसा जिन्हें भ्रम है, उनके समाधान निमित्त कविवर बनारसीदासजी कहते हैं—

“ज्ञानफला जिसके घट जागी । ते जग मांदि सहज वैरागी ॥
 ज्ञानी मगन विपै सुख मांही । यह विपरीत संभवं नांही ॥ ४० ॥
 ज्ञानशक्ति वैराग्यबल शिवसाधे समकाल ।
 ज्यों लोचन न्यारे रहें, निरखे दोऊ ताल ॥ ४१ ॥”

आत्मा सर्वथा अकर्ता नहीं है

कोई कोई कर्मके मर्मको न समझकर आत्माको सर्वथा अकर्ता मानते हैं, और कहते हैं, कि जो कुछ भी परिणमन होता है, सबका कर्तृत्व कर्म पर है । सांख्य दर्शन भी पुरुषको कमलपत्र सम मानकर कर्म-जलसे उसे पूर्णतया अलिप्त बताता है । यह प्रकृतिको ही सब कुछ कर्ता धर्ता मानता है । इस प्रकारकी दृष्टिको महर्षि कुन्दकुन्द एकान्तवादी कहते हैं—

“कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहि ।

कम्मेहि सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहि ॥ ३३२ ॥”

—‘यह जीव कर्मके ही द्वारा अज्ञानी किया जाता है । उसके द्वारा ही यह ज्ञानी किया जाता है । कर्म ही जीवको सुलाता है और कर्म ही उसे जगाता है ।’

“कम्मेहिं भमादिज्जइ उद्धमहो चावि तिरियल्लोयं च ।

कम्मेहि चेव किज्जइ सुहासुहं जित्थियं किंचि ॥ ३३४ ॥”

—‘कर्मके कारण ही जीव ऊर्ध्व, मध्य तथा अधोलोकमें भ्रमण करता है । जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म हैं, वे भी कर्मके ही द्वारा किए जाते हैं । इस प्रकार कर्मैकान्त माननेवालेके अनुसार कर्मको ही कर्ता, धर्ता, दाता आदि माना जाय, तो क्या आपत्ति है ? इस पर कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

“जम्हा कम्मं कुव्वइ कम्मं देइ हरत्ति जं किंचि ।

तम्हाउ सव्वे जीवा अकारया हुंति आवण्णा ॥ ३३५ ॥”

‘यतः कर्म ही सब कुछ करता है, देता है, हरण करता है, अतः सर्व जीवोंमें अकार-कत्व आ गया ।’

पुनः इस एकान्त मान्यतामें दोषोद्घावन करते हैं—

“पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छीकम्मं च पुरिसमहिलसइ ।

एसा आयरियपरंपरागया एरिसि दु सुई ॥ ३३६ ॥

तम्हा ण कोवि जीवो अवंभचारी उ अम्ह उव्वएसे ।

जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ॥ ३३७ ॥

जम्हा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी ।

एएच्छणेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ॥ ३३८ ॥

तम्हा ण कोवि जीवो बधायओ अत्थि अम्ह उवदेसे ।

जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं घाएदि इदि भणियं ॥ ३३९ ॥

एवं संखुवएसं जेउ परुवित्ति एरिसं समणा ।

तेसिं पयडी कुव्वई अप्पा य अकारया सव्वे ॥ ३४० ॥”

इस विषयमें आचार्य कहते हैं—‘पुरुष नामक कर्मके उदयसे स्त्रीकी अभिलाषा उत्पन्न होती है । स्त्रीकर्मके कारण पुरुषकी वाञ्छा होती है । ऐसी बात स्वीकार करनेपर कोई भी अन्नह्यचारी नहीं होगा, कारण कर्म ही कर्मकी अभिलाषा करता है, यह कहा जायगा ।

कोई जीव दूसरेको मारता है या मारा जाता है, इसका कारण परघात, उपघात नामकी प्रकृतियां हैं । यह माननेपर कोई भी वध करनेवाला न होगा । कारण यह कथन किया जायगा, कि कर्म ही कर्मका घात करनेवाला है । इस प्रकार जो सांख्यसिद्धान्तके अनुसार मानते हैं, उनके यहां प्रकृति ही करती है और सर्व आत्मा अकारक हुए । इस जटिल समस्याको सुलझाते हुए अनेकान्त विद्याके मार्मिक आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं—

“मा कर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः

कर्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादधः ।

ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेव स्वयं

पश्यन्तु च्युतकर्मभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥”—समयसारकलश २०५ ।

—‘अर्हन्त भगवान्के भक्तोंको यह उचित है कि वे सांख्योंके समान जीवको कर्ता न माने, किन्तु उनको भेदविज्ञान होनेके पूर्व आत्माको सदा कर्ता स्वीकार करना चाहिये । जब भेदविज्ञानकी उत्पत्ति हो जाय, तब आत्माको कर्मभावरहित, अविनाशी, प्रवृद्ध ज्ञानका पुंज, प्रत्यक्षरूप एक ज्ञातारूपमें दर्शन करो ।’

आचार्य महाराजकी देशनाका भाव यह है कि जबतक भेदविज्ञान ज्योतिके प्रकाशसे आत्मा आलोकित नहीं हुई हैं, तबतक आत्माको रागादिरूप भाव कर्मोंका कर्ता मानो । भेद-विज्ञानकी उपलब्धिके पश्चात् आत्माको ज्ञाता द्रष्टा मानो । बहिरात्मामें कर्म-कर्तृत्वका भाव मानना चाहिए । अन्तरात्माको अपने ज्ञान स्वभावका कर्ता जानना उचित है । इस प्रकार दृष्टि-भेदसे आत्मामें कर्तृत्व और अकर्तृत्वका समन्वय किया जाता है ।

आत्मा कर्म स्वरूप नहीं होता

मुनीन्द्र कुन्दकुन्दका कथन है—

“जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ णय सो उ तम्मओ होइ ।

तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण तम्मओ होइ ॥”—समयसार ३४५ ।

—जैसे शिल्पकार आभूषण आदिके निर्माण कार्यको करता है, किन्तु वह स्वयं आभूषण स्वरूप नहीं होता ; उसी प्रकार यह जीव कर्मोंको बांधता हुआ भी कर्मस्वरूप नहीं होता ।

है। अथवा सत्त्वमें अनन्तगुणोंका अभाव मानना होगा किन्तु ऐसी बात नहीं पाई जाती ; इससे कर्मोंको जीवसे अभिन्न श्रद्धान करना चाहिए।

अमूर्त स्वभाव आत्माको मूर्तीक कर्मोंने क्यों बाँधा ?

प्रस्तुत समस्या पर प्रकाश डालते हुए अकलंकदेव आत्माको कथंचित् मूर्तीक और कथंचित् अमूर्तीक बताते हैं। उनसे लिखा है :

“अनादिकर्मबन्धसन्तानपरतन्त्रस्यात्मनः अमूर्तिः प्रत्यनेकान्तो बन्धपर्यायः प्रत्येकत्वात् स्यान्मूर्तम्, तथापि ज्ञानादिस्वलक्षणापरित्यागात् स्यादमूर्तिः। ...मद-मोहविभ्रमकरीं सुरां पीत्वा नष्टस्मृतिर्जनः काष्ठवदपरिस्पन्द उपलभ्यते, तथा कर्म-न्द्रियाभिभवादात्मा नाविर्भूतस्वलक्षणो मूर्त इति निश्चीयते ॥”—त० रा० पृ० ८१।

“अनादिकालीन कर्मबन्धकी परंपराके अधीन आत्माके अमूर्तत्वके विषयमें अनेकान्त है। बन्धपर्यायके प्रति एकत्व होनेसे आत्मा कथंचित् मूर्तीक है, किन्तु अपने ज्ञानादि लक्षणका परित्याग न करनेके कारण कथंचित् अमूर्तीक भी है। मद, मोह तथा भ्रमको उत्पन्न करनेवाली मदिराको पीकर मनुष्य स्मृतिशून्य हो काष्ठकी भाँति निश्चल हो जाता है तथा कर्मन्द्रियोंके अभिभव होनेसे अपने ज्ञानादि स्वलक्षणका अग्रकाशन होनेसे आत्मा मूर्तीक निश्चय किया जाता है ॥”

इस विषयमें प्रवचन सारमें एक मार्मिक बात कही गई है—

“रूपादिर्हि रहिदो ऐच्छदि जाणादिरूढमादीणि ।

द्रव्याणि गुणे य जधा तह बंधो तेण जाणीहि ॥”—२।२८।

—‘जिस प्रकार रूपादिरहित आत्मा रूपी द्रव्यों तथा उनके गुणोंको जानता देखता है, उसी प्रकार रूपादिरहित जीव रूपी पुद्गल कर्मोंसे बाँधा जाता है। कदाचित् ऐसा न माना जाय, तो यह शंका उत्पन्न होती है, कि अमूर्तीक आत्मा मूर्तीक पदार्थोंको क्यों देखता जानता है। निष्कर्ष यह है, अमूर्तीक आत्मा अपने विशिष्ट स्वभावके कारण जैसे मूर्तीक पदार्थोंका ज्ञाता-द्रष्टा है, उसी प्रकार वह अपनी वैभाविक शक्तिके परिणामन विशेषसे मूर्तीक कर्मोंके से बंधको प्राप्त करता है। वस्तुस्वभाव तर्कके अगोचर है।

तत्त्वार्थसारमें कहा है—“आत्मा अमूर्तीक है, फिर भी उसका कर्मोंके साथ अनादि-नित्य सम्बन्ध है। उनके ऐक्यवश आत्माको मूर्तीक निश्चय करते हैं ॥”

आत्माको कर्मबद्ध माननेका कारण ?

कोई कोई सोचते हैं यह हमारा भ्रम है, जो हम अपनी आत्मासे कर्मोंका बन्धन स्वीकार करते हैं। यथार्थज्ञान होनेपर विदित होता है, कि आत्मा कर्मादि विकारोंसे रहित

(१) “वण्ण-रस-पंचगंधा दो फासा अट्ट णिच्चया जीवे ।

णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ द्रव्यसंग्रह ७७।

(२) “अनादिनित्यसम्बन्धात् सह कर्मभिरात्मनः ।

अमूर्तस्यापि सत्यैक्ये मूर्तत्वमवसीयते ॥”—५।१७।

पूर्णतया परिशुद्ध है। ऐसे विचारवालोंके समाधाननिमित्त विद्यानांदिस्वामी आत्मपरीक्षा (पृ० १) में लिखते हैं—

“विचारप्राप्त संसारी जीव बँधा हुआ है, कारण यह परतंत्र है जैसे हस्तिशालाके स्तंभमें बँधा हुआ हाथी परतंत्र रहता है। इसी प्रकार संसारी जीव भी पराधीन होनेके कारण बँधा हुआ है।”

जीवकी पराधीनताको सिद्ध करनेके लिए आचार्य कहते हैं—“यह संसारी जीव पराधीन है, कारण इसने हीनस्थानको ग्रहण किया है। कामवासनावश श्रोत्रिय ब्राह्मण वेश्याके घरको अंगीकार करता है। वेश्याका घर निन्द्य स्थान है। वहाँ उच्च ब्राह्मणकी उपस्थिति प्रमाणित करती है कि वह अपनी वासनाके वेगसे अत्यन्त पराधीन बन चुका है। इसी प्रकार हीन-स्थानको अंगीकार करने वाला संसारी जीव परतंत्र सिद्ध होता है।”

हीनस्थान क्या है, इसपर प्रकाश डालते हैं कि “संसारी जीवका शरीर ही हीनस्थान है, कारण वह शरीर दुःखका कारण है। जैसे कारागार दुःखप्रद होनेके कारण हीनस्थान माना जाता है, उसी प्रकार यह शरीर भी हीनस्थान है।”

आत्मा यदि स्वतंत्र होता, तो वह मूत्रपुरीषभंडारीरूप इस देहको अपना आवास-स्थल कभी भी न बनाता। विवश हो जीवको इस शरीरमें रहना पड़ता है। मोहवश वह फिर इसमें आसक्त हो जाता है। प्रबुद्ध पुरुष शरीरमें ममत्वभावका त्याग करते हैं। जीवको विवश करनेवाला कर्म है।

यह विश्ववैचित्र्य कर्मोंके कारण दृष्टिगोचर होता है। कोई धनवान् है, कोई गरीब है, कोई बीमार है तो कोई नीरोग है आदि विविधताओंका कारण कर्म है। यह आत्मा तात्त्विक दृष्टिसे विचार करे तो उसे प्रतीत होगा कि यह जगत् एक रंग-मंचके समान है। यहाँ जीव विविध वेष धारण कर अपना अभिनय दिखाते हैं। अपना खेल दिखानेके अनन्तर वे वेष बदलते हैं। कर्मविपाकके अनुसार उनका वेष और अभिनय हुआ करता है।^१

विश्ववैचित्र्य कर्मकृत है, ईश्वरकृत नहीं है।

कोई लोग कर्मकृत विश्ववैचित्र्यको स्वीकार करते हुए भी कहते हैं, ईश्वर ही कर्मोंके अनुसार इस जीवको विविध योनियोंमें पहुँचाकर दुःख और सुख देता है। महाभारतमें लिखा है—

“अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥” वनपर्व ३०।२८।

कोई ईश्वरको सुखदुःखका केवल निमित्त कारण मानते हैं, इस विषयमें स्वामी समन्तभद्र अपनी आत्ममीमांसामें कहते हैं—

१ All the world's a stage,
And all the men and women merely players;
They have their exits and their entrances;
And one man in his time plays many parts,
Shakespeare :- AS YOU LIKE IT. Act. II, Sc. VII.

“कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः ।

तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धयशुद्धितः ॥ ९९ ॥”

“काम, क्रोध, मोहादिका उत्पत्तिरूप जो भावसंसार है, वह अपने-अपने कर्मके अनुसार होता है। वह कर्म अपने कारण रागादिकोंसे उत्पन्न होता है। वे जीव शुद्धता, अशुद्धता से समन्वित होते हैं।”

इसपर तार्किक पद्धतिसे विचार करते हुए आचार्य विद्यानंदी अष्टसहस्रोमें लिखते हैं^१ कि अज्ञान, मोह, अहंकाररूप यह भाव-संसार है। वह एक स्वभाववाले ईश्वरकी कृति नहीं है, कारण उसके कार्यमें सुखदुःखादिमें विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। जिस वस्तुके कार्यमें विचित्रता पाई जाती है, उसका कारण एक स्वभाव विशिष्ट नहीं होता है। जैसे अनेक धान्य अंकुरादिरूप विचित्र कार्य अनेक शालिव्रीजादिकसे उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सुखदुःख-विशिष्ट विचित्र कार्यरूप जगत् एक स्वभाववाले ईश्वरकृत नहीं हो सकता।

जब कारण एक प्रकारका है, तब उससे निष्पन्न कार्यमें विविधता नहीं पाई जाती। एक धान्य-बीजसे एक ही अंकुरकी उद्भूति होती है। इस प्राकृतिक नियमके अनुसार एक स्वभाव-वाला ईश्वर क्षेत्र, काल तथा स्वभावकी अपेक्षा भिन्न शरीर, इन्द्रिय तथा जगत् आदिका कर्ता नहीं सिद्ध होता है।^२

अनादि कर्मबंधका अन्त क्यों है ?

जब कर्मबन्ध और रागादिभावका चक्र अनादि कालसे चलता है, तब उसका भी अंत नहीं होना चाहिए।

यह शंका ठीक नहीं है। अनादिकी अनंतताके साथ कोई व्याप्ति नहीं है। अनादि होते हुए भी सांतताकी उपलब्धि होती है। वृक्ष-बीजकी संततिको परंपराकी अपेक्षा अनादि कहते हैं। बीजको यदि दग्ध कर दिया जाय, तो फिर वृक्ष-परंपराका अभाव हो जायगा। कर्म-बीजके नष्ट हो जाने पर भवांकुरकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। तत्त्वार्थसारमें कहा है—

“दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।

कर्मबीजे तथा दग्धे न प्ररोहति भवाङ्कुरः ॥”—८।७।

अकलङ्क स्वामीका कथन है कि^३ आत्मामें आनेवाला कर्ममल प्रतिपक्षरूप है, अतः वह आत्मगुणोंके विकास होनेपर क्षयशील है।

जैसे प्रकाशके आते ही सदा अन्धकाराक्रान्त प्रदेशसे अन्धकार दूर होता है अथवा सदा शीत भूमिमें गर्मीके प्रकर्ष होनेपर शीतका अपकर्ष होता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादिके प्रकर्षसे

(१) अष्टस० पृ० २६८-२७३।

(२) इस सम्बन्धमें विशद चर्चा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड, आत्मपरीक्षा आदि जैन ग्रंथोंमें की गई है।

(३) “प्रतिपक्ष एवात्मनामागन्तुको मलः परिक्षयी, स्वनिर्हासनिमित्तविवर्धनवशात् ।”—अष्टाशी।

मिथ्यात्वादि विकारोंका अपकर्ष होता है। रागादि विकारोंके अपकर्षमें हीनाधिकता देखकर तार्किक समन्तभद्र कहते हैं कि^१ ऐसी भी आत्मा हो सकती है जिसमें रागादिका पूर्णतया क्षय हो चुका हो। उसे ही परमात्मा कहते हैं।

अनादि-सादि बन्धके विषयमें अनेकान्त

शंकाकार कहता है—आपका यह कथन कि ‘कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः’ ‘विचित्र कामादिककी उत्पत्ति कर्मबन्धके अनुसार होती है’, निर्दोष नहीं है। हम पूछते हैं, जीव और कर्मोंका सम्बन्ध कबसे है ?

द्रव्यदृष्टि अथवा संततिकी अपेक्षा यह बन्ध अनादि है। पर्यायकी अपेक्षा यह सादि कहा जाता है। पंचाध्यायीकारका कथन है —

“यथानादिः स जीवात्मा यथानादिश्च पुद्गलः।

द्वयोर्वन्धोऽप्यनादिः स्यात् सम्बन्धो जीवकर्मणोः ॥”—२।३५।

जिस प्रकार जीवात्मा अनादि है उसी प्रकार पुद्गल भी अनादि है। जीव आर कर्मोंका सम्बन्धरूप बंध भी अनादि है।

‘द्वयोरनादिसम्बन्धः कनकोपलसन्निभः।

अन्यथा दोष एव स्यादितरेतरसंश्रयः ॥”—२।३६

जीव और कर्मोंका अनादि सम्बन्ध है जैसे सुवर्ण पाषाणमें सुवर्ण किट्टकाल्मिादि विशिष्ट पाया जाता है, उसी प्रकार संसारी जीव भी अशुद्ध रूपमें उपलब्ध होता है। ऐसा न माननेपर अन्योन्याश्रयदोष आता है।

“तद्यथा यदि निष्कर्मा जीवः प्रागेव तादृशः।

बन्धाभावेऽथ शुद्धेऽपि बन्धश्चेन्निवृत्तिः कथम् ॥”

यदि जीव पूर्वमें कर्मरहित माना जाय, तो उसके बन्धका अभाव होगा। शुद्धात्माके भी बन्ध माननेपर मुक्ति कैसे होगी ?

यहाँ आचार्यका भाव यह है कि पूर्व अशुद्धताके बिना बन्ध नहीं होगा। पूर्वमें शुद्ध जीवके भी कर्मबन्ध मान लेनेपर निर्वाणका लाभ अलम्भव हो जायगा। जब शुद्ध जीव कर्म बांधने लगेगा तब संसारका चक्र पुनः पुनः चलनेसे मुक्तिका अभाव हो जायगा।

यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध माना जाय, तो क्या बाधा है ? पंचाध्यायीकार कहते हैं—

“अथ चेत्पुद्गलः शुद्धः सर्वतः प्रागनादितः।

हेतोर्विना यथा ज्ञानं तथा क्रोधादिरात्मनः ॥

एवं बन्धस्य नित्यत्वं हेतोः सद्भावतोऽथवा।

द्रव्याभावो गुणाभावे क्रोधादीनामदर्शनात् ॥”—२।३८, ३९।

(१) “दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषाऽस्त्यतिशयनात्

क्वचिदथा स्वरेतुभ्यो वदिरन्तर्गतक्षयः ॥”—भा० नो० ४।

—यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध मान लिया जाय तो जैसे विना कारणके स्वभावतः जीव ज्ञानमें पाया जाता है उसी प्रकार क्रोधादि भी जीवके स्वभाव या गुण हो जावेंगे। क्रोधादिके सदा सद्भाववश बंधमें नित्यता आ जायगी। अथवा यदि क्रोधादि गुणोंका अभाव माना जायगा तो स्वभाववान् या गुणी जीवका भी लोप हो जायगा। क्रोधादिका अदर्शन पाया जाता है।

यहाँ अभिप्राय यह है, कि कामादिक कर्मबन्धसे उत्पन्न नहीं हुए, कारण पुद्गल सदा शुद्ध रहता है, ऐसी स्थितिमें क्रोधादिक जीवके स्वभाव हो जावेंगे। संयमी पुरुषोंमें क्रोधादि विकारोंका अदर्शन पाया जाता है। क्रोधरूप स्वभावका अभाव होनेपर स्वभाववान् आत्माका भी लोप हो जायगा। अतः पुद्गलको अनादि शुद्ध मानकर क्रोधादिको जीवका स्वभाव मानना अनुचित है। क्रोधादि भावोंको कर्मकृत मानना ही श्रेयस्कर है। आचार्य कहते हैं—

“पूर्वकर्मोदयाद्भावो भावात्प्रत्यग्रसंचयः।

तस्य पाकात्पुनर्भावो भावाद् बन्धः पुनस्ततः ॥

एवं सन्तानतोऽनादिः सम्वन्धो जीवकर्मणोः।

संसारः स च दुर्मोच्यो विना सम्वन्धगादिना ॥” पंचाध्यायी ४२।४३

—पूर्वकर्मोदयसे रागादि भाव होते हैं। उन भावोंसे आगामी कर्मका संचय होता है। उस कर्म-विपाकसे पुनः रागादिभाव होते हैं। उन भावोंसे पुनः बंध होता है। इस प्रकार जीव कर्मका सम्वन्ध संतानकी अपेक्षा अनादि है। सम्यग्दर्शनादिके विना यह संसार दुर्मोच्य है।

आत्मा और कर्मका सादि सम्वन्ध स्वीकार करनेपर दोषोंका उद्भावन ऊपर किया जा चुका है। यह भी कहा जा चुका है कि वर्तमान आत्मा परतंत्र है। वह कर्मोंके अधीन है। यह कर्मबंधन सादि स्वीकार करनेमें भयंकर आपत्तियाँ आती हैं; ऐसी स्थितिमें एक ही मार्ग निरापद वचता है कि कर्म और आत्माका अनादि सम्वन्ध माना जाय। इसके सिवाय कोई और मध्यम मार्ग नहीं है। आत्मशक्तिके विकसित होनेपर कर्मोंका बंधन शिथिल होने लगता है और शक्तिके पूर्ण प्रवृद्ध होनेपर कर्मोंका नाश हो जाता है।

कर्मोंके आस्रवका कारण योग है

इस जीवके कर्मबंधनका कारण रागादिभावोंको कहा है; कर्मोंके आगमनमें कारण है आत्म-प्रदेशोंका परित्पदन होना। मनोवर्गणा, वचनवर्गणा अथवा कायवर्गणाके अवलंबनसे आत्मप्रदेशोंमें सकंपपना पाया जाता है। मन वचन कायका क्रियारूप योगके द्वारा नवीन कर्मोंका आस्रव—आगमन होता है। योगोंके त्रयात्मक भेदोंपर प्रकाश डालते हुए आचार्य वीरसेन धवलाटीका (१, २७९) में लिखते हैं—“कः पुनः मनोयोग इति चेद्भावमनसः समुत्पत्त्यर्थः प्रयत्नो मनोयोगः। तथा वचसः समुत्पत्त्यर्थः प्रयत्नो वाग्योगः। कायक्रियासमुत्पत्त्यर्थः प्रयत्नः काययोगः।”—‘मनोयोगका क्या स्वरूप है? भावमनकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे मनोयोग कहते हैं। इसी प्रकार वचनकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है उसे वचनयोग कहते हैं और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे काययोग कहते हैं।’

योगके द्वारा कर्मोंका आस्रव होता है, इसके पश्चात् आत्मा और कर्मोंका एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धरूप बंध होता है ।^१ उस समयकी अवस्थाको पंचाध्यायीकार इस प्रकार समझाते हैं—

“जीवः कर्मनिबद्धो हि जीववद्धं हि कर्म तत् ॥” —२।१०४

—जीव कर्मसे निबद्ध हो जाता है और कर्म जीवसे वद्ध हो जाता है । दोनोंका परस्परमें संश्लेष होता है । इस संश्लेष तथा परस्पर बंधनवद्धताका भाव यह है कि कर्म अपना फलोपभोग दिए बिना आत्मासे पृथक् नहीं होते ।

आस्रवके उत्तर क्षणमें बंध होता है

आस्रव और बंधके पौर्वापर्यके विषयमें विचार करते हुए पंडितप्रवर आशाधरजी अपने अनगारधर्माश्रितमें लिखते हैं—

“प्रथमक्षणे कर्मस्कन्धानामागमनमास्रवः, आगमनानन्तरं द्वितीयक्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववस्थानं बन्ध इति भेदः ॥” —पृ० ११२ ।

प्रथम क्षणमें कर्मस्कन्धोंका आगमन—आस्रव होता है । आगमनके पश्चात् द्वितीय क्षणादिकमें कर्मवर्गणाओंकी आत्मप्रदेशोंमें अवस्थिति होती है उसे बंध कहते हैं । यह उनमें अन्तर है ।^१ और भी ज्ञातव्य बात यह है—

“आस्रवे योगो मुख्यो बन्धे च कृपायादिः । यथा राजसभायामनुग्राह्यनिग्राह्ययोः प्रवेशने राजादिष्टपुरुषो मुख्यः, तयोरनुग्रहनिग्रहकरणे राजादेशः” (११२)
“आस्रवमें योगकी मुख्यता है तथा बंधमें कृपायादिककी प्रधानता है । जैसे राजसभामें अनुग्रह करने योग्य तथा निग्रह करने योग्य पुरुषोंके प्रवेश करानेमें राज्य-कर्मचारी मुख्य है; किन्तु प्रवेश होनेके पश्चात् उन व्यक्तियोंको सत्कृत करना या दंडित करना इसमें राजाज्ञा मुख्य है ।” इस प्रकार योगकी मुख्यतासे कर्मोंके आगमनका द्वार खोल दिया जाता है । आगत कर्मोंका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना कृपायादिकी मुख्यतासे होता है ।

योगकी प्रधानतासे आकर्षित किए गए तथा कृपायादिकी प्रधानतासे आत्मासे सम्बन्धित कर्म किस भांति जगत्की अनंत विचित्रताओंको उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है ? कोई एकेन्द्रिय है, कोई दो इन्द्रिय है आदि ८४ लाख योनियोंमें जीव कर्मवश अनंत वेष धारण करता फिरता है । यह परिवर्तन किस प्रकार संपन्न होता है; इस विषयको कुन्दकुन्दस्वादी इन शब्दों द्वारा स्पष्ट करते हैं—

“जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणेषविहं ।

मंसवसारुहिरादीभावे उयरगिसंजुत्तो ॥ १७९ ॥”

तह णाणिस्स दु पुव्वं वद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।

वज्जंते कम्मं ते णयपरिहीणा उ ते जीवा ॥ १८० ॥”—सुनयसार ।

(१) “आत्मकर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशात्मको बन्धः ॥”—सं० सि० ।

जैसे पुरुषके द्वारा खाया गया भोजन जठराग्निके निमित्तवश मांस, चर्बी, रुधिर आदि पर्यायोंको प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञानवान् जीवके पूर्ववद्ध द्रव्यास्तय बहुत भेदयुक्त कर्मोंको बांधते हैं। वे जीव परमार्थ दृष्टिसे रहित हैं।

आ० पूज्यपाद^१ तथा अकलंक स्वामीने सर्वार्थसिद्धि (८।२) और राजवार्तिक (९।७) में भी यही लिखा है।

जिस प्रकार भोज्यवस्तु प्रत्येक आमाशयमें पहुंचकर भिन्न भिन्न रूपमें परिणत होती है, उसी प्रकार योगके द्वारा आकर्षित किए गए कर्मोंका आत्माके साथ संश्लेष होने पर अनन्त प्रकार परिणमन होता है। इस परिणमनकी विविधतामें कारण रागादि परणतिकी हीनाधिकता है।

क्या बन्धका कारण अज्ञान है ?

आत्माके बन्धन-बद्ध होनेका कारण कोई लोग अज्ञान या अविद्याको बताते हैं।^१ अज्ञानसे ही बन्ध होता है और ज्ञानसे मुक्ति लाभ होता है, इस विचारकी भीमांसा करते हुए स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—

“अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।

ज्ञानस्तोकादिमोक्षध्वेदज्ञानाद् बहुतोऽन्यथा ॥”—आ० मी० ९६ ॥

—‘अज्ञानके द्वारा नियमसे बन्ध होता है, ऐसा सिद्धान्त अंगीकार करने पर कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ-केवली न हो सकेगा, कारण ज्ञेय अनन्त हैं। अनन्त ज्ञेयोंका बोध न होगा, अतः जिनका ज्ञान न हो सकेगा, वे बन्धको उत्पन्न करेंगे। इससे सर्वज्ञका सद्भाव न होगा। कदाचित् यह कहा जाय कि समीचीन अल्पज्ञानसे मोक्ष प्राप्त हो जायगा, तो, अवशिष्ट महान् अज्ञानके कारण बन्ध भी होगा। इस प्रकार किसी को भी मुक्तिका लाभ नहीं होगा।

शंकाकार कहता है—आपके सिद्धान्तमें भी तो अज्ञानको बन्ध तथा दुःखका कारण बताया गया है, फिर ‘अज्ञानसे बन्ध होता है’ इस पक्षके विरोध करनेमें क्या कारण है। देखिए, अमृतचन्द्रसूरि क्या कहते हैं ?

“अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगाः

अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।

अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गान्धिवत्

शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः ॥”

(१) “जठराग्न्यट्ठरूपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकपायाशयानुरूपस्थित्यनुभवविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्”

—स० सि० ८।२।२५२।

(२) “ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ॥” —सांख्यकारिका।

—अज्ञानके कारण मृगगण मृगतृष्णामें जलकी भ्रान्तिवश पानी पीनेके लिए दौड़ते हैं। अज्ञानके कारण लोग रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति धारण कर भागते हैं। जैसे पवनके वेगसे समुद्रमें लहरें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार अज्ञानवश विविध विकल्पोंको करते हुए स्वयं शुद्धज्ञानमय होते हुए भी अपनेको कर्ता मानकर ये प्राणी दुःखी होते हैं।

समाधान—यहाँ मिथ्यात्व भाव विशिष्ट ज्ञानको अज्ञान मानकर उस अज्ञानकी प्रधानताकी विवक्षावश उपरोक्त कथन किया गया है। यथार्थमें देखा जाय, तो बन्धका कारण दूसरा है। राग-द्वेषादि विकारों सहित अज्ञान बन्धका कारण है। थोड़ा भी ज्ञान यदि वीतरागता संपन्न हो तो कर्मराशिको विनष्ट करनेमें समर्थ हो जाता है। परमात्मप्रकाश टीकामें लिखा है—

“वीरा वैरगगपरा थोवं पि हु सिक्खिऊण सिज्झंति ।

ण हु सिज्झंति विरागेण विणा पट्ठिदेसु वि सव्वसत्थेसु ॥”-(पृ० २२७)

—वैराग्यसंपन्न वीर पुरुष अल्प ज्ञानके द्वारा भी सिद्ध हो जाते हैं। संपूर्ण शास्त्रोंके पढ़ने पर भी वैराग्यके बिना सिद्ध पदकी प्राप्ति नहीं होती।

समन्तभद्र अपने युक्तिवाद द्वारा इस समस्याको सुलझाते हुए कहते हैं—

“अज्ञानान्मोहिनो बन्धो न ज्ञानाद्वीतमोहतः ।

ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥”-आ० मी० ९८।

—‘मोहविशिष्ट व्यक्तिके अज्ञानसे बंध होता है। मोहरहित व्यक्तिके ज्ञानसे बन्ध नहीं होता है। मोहरहित अल्प ज्ञानसे मोक्ष होता है। मोहीके ज्ञानसे बन्ध होता है।’

यहाँ बन्धका अन्वयव्यतिरेक ज्ञानकी न्यूनाधिकताके साथ नहीं है। इससे ज्ञानको बन्ध या मुक्ति का कारण नहीं माना जा सकता। मोह सहित ज्ञान बन्धका कारण है और मोहरहित ज्ञान मुक्तिका कारण है। अतः यह बात प्रमाणित होती है कि बंधका कारण मोहयुक्त अज्ञान है और मुक्तिका कारण मोहका अभाव युक्त ज्ञान है क्योंकि इसके साथ ही अन्वयव्यतिरेक सुघटित होता है।

यहां यह आशंका सहज उत्पन्न होती है कि इस कथनका सूत्रकार उमास्वामीके इस सूत्रके साथ विरुद्धता है—“मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः”(८, १)—तत्त्वका अनवबोध, असंयम, असावधानता, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मन, वचन, कायकी चंचलताके द्वारा बन्ध होता है।

इस विषयका समाधान करते हुए विद्यानन्दिस्वामी कहते हैं (अष्टसह० पृ० २६७) कि मोह विशिष्ट अज्ञानमें संक्षेपसे मिथ्यादर्शन आदिका संग्रह किया गया है। इष्ट अनिष्ट फल प्रदान करनेमें समर्थ कर्म बन्धनका हेतु कषायैकार्थसमवायी अज्ञानके अविनाभावी मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगको कहा गया है। मोह और अज्ञानमें मिथ्यात्व आदिप्रति समावेश हो जाता है। दोनों आचार्योंके कथन में तार्किक भेद नहीं है, केवल प्रतिपादन-शैलीकी भिन्नता है।

एकान्तदर्शनोंमें कर्म सिद्धान्तकी असंभवपना

स्वामी समन्तभद्र का कथन है कि यह कर्मबन्धकी व्यवस्था स्याद्वाद शासनमें ही निर्दोष रीतिसे बनती है। एकान्त दर्शनोंमें कर्मबन्ध फलानुभवन आदि बातें असंभव हैं। वे कहते हैं—
“हे जिनेन्द्र ! अनित्यैकान्त आदि सिद्धान्तवादियोंके यहां पुण्य कर्म, पाप कर्म, परलोक सिद्ध नहीं होते। एकान्तग्रहाविष्ट लोग अनेकान्त पक्षके विरोधी तो हैं ही, साथ ही वे स्वपक्षके भी घातक हैं।”

नित्यैकान्त अथवा अनित्यैकान्त पक्षमें क्रम तथा अक्रमपूर्वक अर्थक्रिया नहीं बनती। अर्थक्रियाकारित्वपनेके अभावमें पुण्य पाप बंधादिकी व्यवस्था भी नहीं हो सकती।

बौद्धदर्शनमें कर्मकी मान्यता है। यह स्वविर नागसेन और सम्राट् मिलिन्दके पूर्व प्रतिपादित प्रश्नोत्तरसे ज्ञात होता है। किन्तु बौद्धदर्शनकी सर्व क्षणिकवाद तत्त्वके साथ उस कथानकका सामंजस्य नहीं होता। क्षणिक पक्षमें प्रत्येक पदार्थ क्षणस्थितिशील है। अतः उसमें कर्मोंका बंधन और फलोपभोग आदिकी बातें सिद्धान्त विरुद्ध पड़ती हैं। हिंसादि पापोंका कर्त्ता अकुशल कर्मका संपादन तथा फलानुभवन नहीं करेगा, कारण उसका हिंसादि कार्य क्षणमें क्षय हो गया, अतः फलोपभोक्ता अन्य व्यक्ति होगा। क्षणिक पक्षमें वस्तु तथा लोक व्यवस्था नहीं बनती, इसे आसमीमांसाकार इस प्रकार समझाते हैं—^२“हिंसाका संकल्प करनेवाला द्वितीय क्षणमें नष्ट हो चुका, अतः संकल्पविहीन व्यक्तिने हिंसा की, ऐसा कहना होगा। हिंसक व्यक्तिका भी उत्तर क्षणमें विनाश हो गया, इससे हिंसनकार्यके फलस्वरूप पीड़ा प्राप्त करनेवाला और बन्धनमें फँसनेवाला ऐसा व्यक्ति होगा जिसने न तो हिंसाका संकल्प किया है और न हिंसा ही की है। इसी न्यायके अनुसार बंधनयुद्ध व्यक्ति तो नष्ट हो गया, मुक्ति प्राप्तकर्त्ता दूसरा ही होगा।” इस प्रकारकी विचित्र स्थिति और अव्यवस्था क्षणिकैकान्त पक्षमें उत्पन्न होती है।

क्षण क्षणमें पदार्थोंका सर्वथा नाश स्वीकार करने पर किसी भी प्रकारकी नैतिक जिम्मेदारी नहीं होगी। किए गए कर्मोंका नाश और अकृत कर्मोंका फलोपभोग होगा, ऐसे सिद्धान्तमें कर्मबन्ध व्यवस्था नहीं बन सकती।

नित्यैकान्तमें दोष

एकान्त नित्य पक्ष अंगीकार करने पर क्रियाशीलताका अभाव होगा। अतः देशक्रमका कारण देशान्तर गमन नहीं होगा। शाश्वतिक होनेसे कालक्रम नहीं बनेगा। सकलकालकलाव्यापी वस्तुको विशेष कालमें स्थित मानने पर नित्यत्वका विरोध होगा। कदाचित् सहकारी कारणकी अपेक्षा वस्तुमें क्रम मानते तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सहकारी कारण उस पदार्थमें कुछ विशेषता उत्पन्न करते हैं या नहीं? यदि उसमें विशेषताकी उत्पत्ति मानते हो तो नित्यत्वका एकान्त नहीं रहता है। यदि नित्य वस्तुमें विशेषता उत्पन्न किए बिना भी सहकारी कारणोंके

(१) “कुशलकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।

एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥” —आ० मी० ८।

(२) “हिनस्यनभिसन्धातु न हिनस्यभिसन्धिमतु।

व्यथते तद्द्वयापेतं चित्तं वद्धं न मुच्यते ॥” —आ० मी० ५१।

द्वारा क्रम मानते हो, तो यह क्रमवत्त्व सहकारियोंमें ही रहेगा। दूसरी बात यह है कि नित्य वस्तुमें देशक्रम कालक्रम नहीं पाया जाता।

नित्य पदार्थमें युगपद् अर्थक्रियाकारित्व माननेपर एक ही समयमें समस्त कार्योंकी उत्पत्ति हो जायगी और द्वितीय क्षणमें क्रियाके अभावमें अवस्तुत्व हो जायगा। अतः नित्यैकान्त पक्षमें अर्थक्रियाका अभाव होनेसे कर्मबन्धकी व्यवस्था भी नहीं बनती। ऐसी स्थितिमें सांख्यादिकोंकी कर्ममान्यता उनकी मनोनीत तत्त्वस्थितिके प्रतिकूल सिद्ध होती है।

अद्वैत मान्यतामें बाधा

अद्वैत पक्ष माननेपर कर्मव्यवस्था नहीं बनती।^१ लौकिक-वैदिक कर्म, कुशल-अकुशल कर्म, पुण्य-पाप कर्म आदिको स्वीकार करनेपर अद्वैत मान्यतापर वज्रपात होता है। अविद्याके कारण कर्मद्वैत मानना भी युक्तिसंगत नहीं है; कारण ऐसी स्थितिमें विद्या अविद्याका द्वैत उपस्थित होगा। स्वामी समन्तभद्रका (आप्तमी० २६, २७) कथन है कि द्वैतके बिना अद्वैत नहीं बनता, जैसे हेतुके अभावमें अहेतु नहीं पाया जाता है। प्रतिषेध्यके बिना संज्ञावान् पदार्थका प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। उनकी एक सुन्दर युक्ति है। यदि युक्तिसे अद्वैततत्त्व मानते हो, तो साधन और साध्यका द्वैत उपस्थित होता है। कदाचित् अपने वचनमात्रसे अद्वैतको प्रमाणित करते हो, तो इस पद्धतिसे द्वैत पक्ष भी क्यों नहीं सिद्ध किया जा सकता? अतः प्रमाण एवं युक्तिविरुद्ध अद्वैत मान्यतामें कर्मसिद्धान्त सिद्ध नहीं होता।

अनेकान्त शासनमें ही समीचीन रूपसे कर्म-बन्ध व्यवस्था सिद्ध होती है। एकान्तवादी अपने सिद्धान्तके आधार पर कर्म-व्यवस्थाको प्रमाणित नहीं कर सकते।

कर्मसिद्धान्तका अतिरेक

कर्मसिद्धान्तका अतिरेक भी इष्ट साधक नहीं है। इसके अतिरेकवश मनुष्य धर्मकर्मण्यताका आश्रय ले, अपने विकासके मार्गको अवरुद्ध करता है। कर्मको ही सब कुछ समझने वाला कहता है—“यदत्र लिखितं भाले तत्स्थितस्यापि जायते” जो भालमें लिखा है वह उद्यम न करने पर भी प्राप्त हुए बिना न रहेगा। पौरुष करनेमें शक्ति लगाना व्यर्थ है ‘विधिरेव शरणम्’ भाग्य ही का भरोसा है, इस प्रकार दैवैकांतके चक्रमें फँसे हुए व्यक्ति प्रलाप करते हैं। स्वामी समन्तभद्र कहते हैं^२—“दैव से ही यदि प्रयोजन सिद्ध होता है, तो यह यत्ताओ, जीवके प्रयत्नके द्वारा, दैवकी उत्पत्ति क्यों होती है। आज जो हमारा पुरुषार्थ है, भावी जीवनके लिये वह दैव बन जाता है, पूर्वकृत कर्मको छोड़कर दैव और क्या है?

यदि दैवके द्वारा दैवकी उत्पत्ति मानते हो और उसमें बुद्धिपूर्वक किये गये मानव प्रयत्नोंका तनिक भी हस्तक्षेप नहीं मानते तो मोक्षकी प्राप्ति संभव न होगी, क्योंकि पूर्व कर्मबंधके अनुसार ही आगामी कर्मका बंध होगा, इस प्रकारकी परंपरा चलनेसे मोक्षका अवसर नहीं मिलेगा और पौरुष अकार्यकारी ठहरेगा।

(१) “कर्मद्वैतं फलद्वैतं लौकद्वैतं च नो भवेत्। विद्याऽविद्याद्वयं न स्वाह्वयनोऽह्वयं तदा।”

—आ.मी. ३५.

(२) “दैवादेवार्थसिद्धिर्दैवं पौरुषतः कथम्। दैवतक्षेत्रनिर्गोः पौरुषं निष्पन्नं भवेत्।” —आ.मी. ८८.

दैवैकांतकी दुर्बलतासे लाभ उठाते हुए पुरुषार्थवादी कहता है, बिना पौरुषके कोई कार्य नहीं बनता। सोमदेव सूरिके शब्दोंमें वह कहता है—

“येषां बाहुवलं नास्ति, येषां नास्ति मनोबलम् ।

तेषां चंद्रवलं देव । किं कुर्यादम्बरस्थितम् ॥”—यशस्तिलक ३।५४ ।

जिनकी भुजाओंमें बल नहीं है और न जिनके पास मनोबल ही है ऐसे व्यक्तियोंका आकाश में स्थित चन्द्रबल—जन्मकालीन नक्षत्र आदिकी रचना क्या करेगी ?”

केवल भाग्यको ही भगवान् मानने वाले पुरुषोंको कृषि आदि कार्य करना कोई अर्थ नहीं रखता है—

पुरुषार्थका एकान्त भी बाधित है

पुरुषार्थके अनन्य भक्तसे स्वामी संमतभद्र पूछते हैं^१ यदि, पुरुषार्थसे ही तुम कार्य सिद्धि मानते हो तो यह वताओ देवसे तुम्हारा पुरुषार्थ कैसे उत्पन्न होता है ? कदाचित् यह मानो कि हम सब कुछ पुरुषार्थके द्वारा ही सम्पन्न करते हैं तब सम्पूर्ण प्राणियोंका पुरुषार्थ जयश्री समन्वित होना चाहिये ।

समन्वयका मार्ग

इस देव और पुरुषार्थके द्वंद्वमें अनेकांत समन्वय शैली द्वारा मैत्री स्थापित करता है^२ सोमदेव सूरि कहते हैं “इस लोकमें फल प्राप्ति देव—पूर्वोपार्जित कर्म तथा मानुषकर्म—पुरुषार्थ इन दोनोंके अधीन है। ऐसा न मानने वालोंसे आचार्य पूछते हैं कि क्या कारण है, समान चेष्टा करने वालोंके फलोमें—सिद्धिमें भिन्नता प्राप्त होती है ? ।” आचार्य कहते हैंः—

“परस्परोपकारेण जीवितौपधयोरिव ।

दैवपौरुषयोर्वृत्तिः फलजन्मनि मन्यताम् ॥”—यशस्तिलक ३, ६३ ।

जैसे औपधि जीवनके लिये हितप्रद है और आयुर्कर्म औपधिके प्रभावके लिये आवश्यक है, अर्थात् जैसे फलोत्पत्तिमें आयुर्कर्म और औपधिसेवन परस्परमें एक दूसरेको लाभ पहुंचाते हैं उसी प्रकार देव और पौरुषकी वृत्ति समझना चाहिये ।

वे^३ कहते हैं, देव चक्षु आदि इन्द्रियोंके अगोचर अतीन्द्रिय आत्मासे संबंधित है और प्राणियोंकी सम्पूर्ण क्रियायें पुरुषार्थ पर निर्भर हैं, इसलिये उद्यमकी ओर ध्यान रहना चाहिये ।

(१) “पौरुषादेव सिद्धिश्चैत पौरुषं देवतः कथम् । पौरुषाच्चेदमात्रं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥”

—ब्रा० भी० ८९

(२) “दैवं च मानुषं कर्म लोकस्यास्य फलाप्तिषु । कुतोऽन्यथा विचित्राणि फलानि समचेष्टिषु ॥”

—य० ति०, ३, ६०

(३) “तथापि पौरुषायत्ताः सत्त्वानां सकलाः क्रियाः । अतस्त्वच्चिन्त्यमन्वय का चिन्तातीन्द्रियात्मनि ॥”

—य० ति० ३, ६४

संमतभद्र स्वामी इस संबंधमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण मार्ग दर्शन करते हैं—अबुद्धि^१ पूर्वक इष्ट अनिष्ट कार्य अपने दैवकी प्रधानतासे होता है। बुद्धिपूर्वक इष्ट अनिष्ट फल प्राप्तिमें पौरुषकी प्रधानता है।

सोते हुए व्यक्तिका सर्पसे स्पर्श होते हुए भी मृत्यु न होनेमें दैव की प्रधानता है। लेकिन सर्प देखकर बुद्धि पूर्वक आत्मरक्षा करनेमें पुरुषार्थकी विशेषता कारण है।

भोगी प्राणी दैव और पुरुषार्थके महोदधिको मथकर अमृतके स्थान पर विष निकाल कर सोचता है, और तदनुसार निःसंकोच हो प्रवृत्ति भी करता है, मोक्ष मार्गके लिये वह दैवकी ओर निहारा करता है और विषय भोगके लिये कमर कसकर पुरुषार्थी बनता है। मुमुक्षु प्राणी विषयादिकोंके विषयमें पुरुषार्थको अधिक महत्त्व नहीं देता। वह अपने पौरुषका प्रयोग कर्म जालके काटनेमें करता है। इसमें संदेह नहीं कि उसे अपने प्रयत्नमें वास्तविक सफलता तब मिलती है जब विधि विपरीत वृत्ति वाला नहीं रहता है। मुमुक्षुके प्रयत्नसे विरुद्ध भी कर्म क्षीण शक्ति युक्त बनता जाता है। इस प्रकार आत्म विकासका मार्ग अधिक सरल और उज्ज्वल होता जाता है। जैन शासनमें यह बताया है कि रत्नत्रय रूप सच्चे पुरुषार्थके द्वारा यह जीव अनादि कालसे आगत पुरातन कर्म-पुंजको अंतर्मुहूर्तके भीतर ही विनष्ट करनेमें समर्थ होता है।

कर्मोंका विभाजन

इस कर्मके शब्दकी अपेक्षा असंख्यात भेद हैं। अनन्तानंत प्रदेशात्मक स्कन्धोंके परिणमनकी अपेक्षा कर्मके अनन्त भेद होते हैं। ज्ञानावरणादिके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा भी अनन्त भेद कहे जाते हैं।^२ इस कर्मकी बंध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना रूप दस करणात्मक अवस्थाएँ पाई जाती हैं^३। बंधकी परिभाषा की जा चुकी है। उत्कर्षण करणमें कर्मके अनुभाग तथा स्थितिकी वृद्धि होती है। अपकर्षणमें इसके विपरीत बात होती है। संक्रमण करणमें एक कर्मप्रकृतिका अन्य प्रकृति रूप परिणमन किया जाता है। कर्मोंको उदय कालके पूर्व उदयावलीमें लाना उदीरणा करण है। कर्मोंका सत्तामें रहना सत्त्व है। फलदान उदय कहलाता है। उदयावलीमें न आकर कर्मोंकी उपशान्त अवस्था उपशम है। कर्मोंकी ऐसी अवस्था, जिसमें उत्कर्षण, अपकर्षण करणके सिवाय उदीरणा तथा संक्रमण न हो सके, निधत्ति है। ऐसी कर्म-स्थिति, जिसमें उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण तथा अपकर्षण न हो सके, निकाचना कही जाती है।

कर्मोंकी इन दस अवस्थाओं पर ध्यान देनेसे यह बात स्पष्ट होजाती है कि यह जीव अपने परिणामोंके अनुसार कर्मोंको हीनशक्ति और महान शक्तियुक्त बना सकता है। यह उदीरणाके

(१) “अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः। बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥”

—घा० नी० ११।

(२) ज्ञान० धर्मा० पृ० २००।

(३) “बंधुककृष्णकरणं संक्रममोऽष्टुदीरणा सत्त्वं।

उदयुवतागणिष्वधी निराचना होदि पटिःपटी ॥”—गो० क० ४३७

(४) गो० क० ४३८-४०।

द्वारा उदयकालके पूर्व भी कर्मोंको उदय अवस्थामें ला निर्जीर्ण कर सकता है। कभी कर्म शक्तिहीन बनकर निर्जराको प्राप्त होते हैं। कर्मके सार यह है कि जीव अपने परिणामोंके अनुसार कर्मोंको भिन्न रूपमें परिणत कर सकता है। कर्मका फल भोगना ही पड़ेगा—“नाशुक्तं क्षीयते कर्म” यह बात जैन सिद्धांतमें सर्वथा रूपमें सम्भव नहीं है। जब आत्मामें रत्नत्रयकी उद्योति प्रदीप्त होती है तब अनंतानंत कार्माणवर्गणां विना फल दिये हुए निर्जराको प्राप्त हो जाती है। केवली भगवानको असाता प्रकृति कुछ भी विना फल दिये हुए साना रूपमें परिणत होकर निकल जाती है। इसलिये वीतराग शासनमें केवलीके असाता निमित्तक क्षुधा कृपा आदिकी पीड़ाका अभाव माना गया है।

बन्धके प्रकार

कर्मबन्धके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश ये चार भेद बताये गये हैं। महाबन्धके इस प्रधान खंडमें प्रकृतिबन्धका विविध अनुयोग द्वारों से वर्णन किया गया है। प्रकृति शब्दका अर्थ है स्वभाव, जैसे मनुष्यकी प्रकृति मधुरता है। ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव ज्ञानका आवरण करना है। दर्शनावरणकी प्रकृति दर्शन गुणको ढांकना है। वेदनीयका स्वभाव मुखदुःखका अनुभवन कराना है। मोहनीयका स्वभाव है आत्माके दर्शन और चारित्र गुणोंको विकृत करना। यह आत्माके मुख गुणको भी नष्ट करता है। मनुष्यादिके भवधारणका कारण आयु कर्म है। नर नारकादि नामसे जीव संकीर्तित होता है, इसका कारण नामकी रचनाविशेष है। उच्च या नीच शरीरमें जीवको रखना गोत्रकी प्रकृति है। दान भोगादिमें बाधा डालना अंतराय कर्मकी प्रकृति है। इन आठ कर्मोंके नामके अनुसार उनकी प्रकृति कही गई है। इन कर्मोंका स्वभाव समझानेके लिए जैन आचार्योंने निम्नलिखित उदाहरण उपस्थित किए हैं। ज्ञानावरणका उदाहरण परदा है। दर्शनावरणका द्वारपाल है, कारण उसके द्वारा इष्ट दर्शनका आवरण होता है। मधुलिप्त अक्षिधाराके समान वेदनीय कर्म है। यह मधुरताके साथ जीभ कटनेका संताप पैदा करती है। मोहनीय मदिराके समान जीवको आत्म-स्मृति नहीं होने देता है। आयु कर्म काष्ठके खांडा-बन्धन विशेष द्वारा व्यक्तिको कैदी बनानेके समान है। नाम कर्म भिन्न-भिन्न शरीर आदिकी रचना चित्रकारके समान किया करता है। गोत्रकर्म, जीवको उच्च नीच शरीरधारी बनाता है। जैसे कुम्भकार छोटे बड़े वर्तन बनाता है। भंडारी जिस प्रकार स्वामी द्वारा स्वीकृत द्रव्यको देनेमें बाधा पैदा करता है, उसी प्रकार विघ्न करना अंतरायका स्वभाव है। इन आठ कर्मोंके १४८ भेद कहे गए हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय कर्म जीवके क्रमशः ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व तथा अनंत वीर्यरूप अनुजीवी गुणोंको घातनेके कारण घातिया कहे जाते हैं। आयु, नाम, गोत्र तथा वेदनीयका अघातिया कर्म कहा है। ये जीवके अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व तथा अव्यावाधत्त्व नामक प्रतिजीवी गुणोंको घातते हैं।

स्थितिवन्ध उसे कहते हैं, जिसके कारण प्रत्येक कर्मके बन्धनकी कालमर्यादा निश्चित होती है। कर्मोंके रस प्रदानकी सामर्थ्य को अनुभागबन्ध कहा है। कर्मवर्गणांशोंके परमाणुओंकी परिगणनाको प्रदेशबन्ध कहते हैं। कहा भी है—

“स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्ता, स्थितिः कालावधारणम् ।

अनुभागो विपाकस्तु प्रदेशोऽश्विकल्पनम् ॥”

योगके कारण प्रकृति और प्रदेश बंध होते हैं। कपायके कारण कर्मोंमें स्थिति और अनुभागका बंध होता है।

कर्मकृत विचित्र परिणामनपर वैज्ञानिक दृष्टि

गंधक, शोरा, तेजाव आदिके मिलनेपर रासायनिक प्रक्रिया प्रारंभ होती है, तथा भिन्न प्रकारके तत्त्वविशेषकी उपलब्धि होती है इसी प्रकार कर्मोंका जीवके साथ सम्मेलन होनेपर रासायनिक क्रिया (Chemical action) प्रारंभ होती है। और उससे अनंत प्रकारकी विचित्रताएँ जीवके भावानुसार व्यक्त हुआ करती है। जीवके परिणामोंमें वह बीज विद्यमान है जो प्रस्फुटित तथा विकसित होकर अनंतविध विचित्रताओंको विशाल वट वृक्षके समान दिखाता है। कोई जीव मरकर कुत्ता होता है तो श्वान पर्यायमें उत्पन्न होनेके पूर्व व्यक्तिकी मनोवृत्तिमें श्वान वृत्तिके बीज सार रूपमें संगृहीत होंगे, जिनके प्रभावसे गृहीत कार्मागवर्गणा श्वान सन्ध्या सामग्री (Environment) को प्राप्त करा देंगी या उस रूप परिणत होंगी। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिये उसे बांधनेवाली कार्माग वर्गणाओंका पुञ्ज भी बहुत सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म पुञ्जमें अनंत प्रकारके परिणामन प्रदर्शनकी सामर्थ्य है। अणु बममें (Atom bomb) आकारकी अपेक्षा अत्यन्त लघुताका दर्शन होता है, किंतु शक्तिकी अपेक्षा वह सहस्रों विशाल बमोंसे अधिक कार्य करता है। भौतिक विज्ञान प्रयत्न करे तो राईके दानेसे भी छोटा बम बन सकता है जो संसार भरको हिला दे। आत्माके साथ मिली हुई कार्माग वर्गणाओंमें अनंतानंत प्रदेश कहे गये हैं जो अभव्य जीवोंसे अनंत गुणित है फिर भी सूक्ष्म होनेके कारण वे इन्द्रियोंके अगोचर हैं। उनमें विद्यमान कर्मशक्ति (Karmic energy) अदृशुत खेल दिखाती है। किसी जीवको निर्गोद अपर्याप्तक पर्यायवाला जीव बना एक श्वासमें अठारह बार शरीर निर्माण और ध्वंस द्वारा जीवन मरणको प्रदर्शित करती है। वह आत्माकी अनंत ज्ञानशक्तिको टांककर अक्षरके अनंतमें भाग बना देती है। उस कर्म शक्तिके कारण नाच बेल ऊँट आदिका आकार प्रकार प्राप्त होता है। ऐसा फौनसा काम है जो उस शक्तिकी परिधिके बाहर हो। ज्ञानावरणके रूपमें उनके द्वारा कृत्तव्य हीनाधिक्यताका विचित्र दृश्य निर्मित होता है लेकिन जिस प्रकार नाट्यका अभिनय करनेवाला सूत्रधार होता है जिसके संकेतके अनुसार कार्य होता है, इसी प्रकार सूत्रधारण जीवोंका भाग है। उन भावोंकी हीनता, उषता, यमता, सरलता, समलता, विमलता आदि पर जिन बातों का विचार होता है प्रभाव पड़ता है उनसे भिन्न भिन्न प्रकारके कर्म बंधते हैं उनका वर्णन जैन मार्गियोंमें किया है जिनके अध्ययनसे मानव इस बातकी कल्पना कर सकता है कि उनका अतीत क्या था जिससे उसे वर्तमान सामग्री मिली और वर्तमान विकृत अथवा विमल जीवनोंके अनुसार वह अपने जिन प्रकारके भविष्यका निर्माण कर सकता है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति अत्यन्त मन्द इच्छा है। उसका क्या कारण है? शरीरशास्त्री तो शरीरिक कारणोंके द्वारा मस्तिष्कके परमाणुओंकी व्यवस्था को दोषी ठहरायेगा; किंतु कर्मसिद्धान्तका ज्ञाता कहेगा कि इस जीवने पूर्वमें जो कि इससे सम्बन्धित जीवनका निर्माण हो रहा था ज्ञानको ढांकने वाली साधन सामग्रीको संवृत्त किया था जो कि प्रकार अन्य प्रकारके दास और आन्तरिक कारणोंके विषयमें कर्म सिद्धान्तका समर्थन करेगा।

कर्मोंके आगमनके कारणोंका स्वर्गीकरण

ज्ञानावरण कर्मोंमें विशेष कारण निम्नलिखित पाँच बताई गई हैं जैसे—

प्रकाशित होनेपर मनमें दूषित भाव रखना, ज्ञानको छिपाना योग्य व्यक्तिको दुर्भावयश ज्ञान प्रदान न करना, दूसरेकी ज्ञान-साधनामें बाधा डालना, वाणी अथवा प्रवृत्तिके द्वारा ज्ञानवानके ज्ञानका निषेध करना, पवित्र ज्ञानमें लाल्छन लगाना, निरादरपूर्वक ज्ञानका ग्रहण करना, ज्ञानका अग्रिमान तथा ज्ञानियोंका अपमान, अन्याय पक्ष समर्थनमें शक्ति लगाना, अनेकों विषयोंको दूषित करनेवाला कथन करना आदि । इस प्रकारके कार्योंमें जो जीवके मलिनभाव होते हैं उनके द्वारा इस प्रकारका मलिन कर्मपुत्र गृहीत होता है, जो ज्ञानके प्रकाशको ढाकता है । उपरोक्त बातें दर्शनके विषयमें करनेसे दर्शनावरण कर्म आता है । उसके अन्य भी कारण हैं जैसे अधिक सोना, दिनमें सोना, आँखोंको फोड़ देना, निर्मल दृष्टिमें दोष लगाना, मिथ्या मार्ग वालोंकी प्रशंसा करना आदि ।

जिस अज्ञाता वेदनीयके कारण जीव कष्टमय जीवन बिताता है उनके कारण ये हैं:—स्व, पर अथवा दोनोंको पीड़ा पहुँचाना, शोकाकुल रहना, हृदयमें दुःखी बने रहना, गदन करना, प्राणघात करना, अनुकंपा उत्सादक फूट फूट कर रोना, अन्यकी निन्दा और चुगली करना, जीवों पर दया न करना, अन्यको संताप देना, दमन करना, विश्वासघात, कुटिल स्वभाव, हिंसापूर्ण आजीविका, साधुजनोंकी निन्दा करना, उन्हें सदाचारके मार्गमें दिगाना, जाल, पिंजरा आदि जीवघातक पदार्थोंका निर्माण करना, अहिंसात्मक वृत्तिका विनाश करना आदि । जीवको आनन्द-प्रद अवस्था प्राप्त करानेवाले साता वेदनीयके कारण ये हैं—जीवमात्रपर दया करना, सन्त जनोंपर स्नेह रखना, उन्हें दान देना, प्रेमपूर्वक संयम पालन करना, विषयतामें शान्त भावसे कष्टोंको सहन करना, क्रोधादिका त्याग करना, जिनेन्द्र भगवानकी पूजा, सत्पुरुषोंकी सेवा-परिचर्या आदि ।

मोहनीय कर्मके कारण मदोन्मत्त हो यह जीव न आत्मदर्शन कर पाता, और न सच्चे कल्याणके मार्ग में लगता है । दर्शन मोहनीयके कारण देव, गुरु, शास्त्र तथा तत्त्वोंके विषयमें यह सम्यक् श्रद्धासे वंचित रहता है और वैज्ञानिक दृष्टिके श्रेष्ठ और पवित्र प्रकाशको नहीं प्राप्त करता । इसके कारण ये हैं—जिनेन्द्रदेव वीतराग वाणी तथा दिग्गम्बर मुनिराजके प्रति काल्पनिक दोष लगा संसारकी दृष्टिमें मलिन भाव उत्पन्न करना, धर्म तथा धर्मके फल रूप श्रेष्ठ आत्मार्थोंमें पाप प्रवृत्तियोंके पापणकी सामग्रीको वृत्ता भ्रम उत्पन्न करना, मिथ्या मार्गका प्रचार करना आदि । चारित्र मोहनीयके कारण यह जीव अपने निज स्वरूपमें स्थित न रहकर क्रोधादि विकृत अवस्थाको प्राप्त करता है । क्रोधादिके तीव्र वेगवश मलिन प्रचण्ड भावोंका धारण करना, तपस्वियोंकी निन्दा तथा धर्मका ध्वंस करना, संयमी पुरुषोंके चित्तमें चंचलता उत्पन्न करनेका उपाय करनेसे, कपायोंका बंध होता है । अत्यन्त हास्य, बहुप्रलाप, दूसरेके उपहाससे हास्यका पात्र बनता है । विचित्र रूपसे क्रीड़ा करनेसे, औचित्यकी सीमाका उल्लंघन करनेसे रति वेदनीयका आगमन होता है । दूसरेके प्रति चिद्वेप उत्पन्न करना, पापप्रवृत्तिवालोंका संसर्ग करना, निंद प्रवृत्तिको प्रेरणा प्रदान करना आदि श्रुति प्रकृतिके कारण हैं । दूसरेको दुःखी करना और दूसरेको दुःखी देख हर्षित होना शोक प्रकृतिका कारण है । भय प्रकृतिके द्वारा यह जीव भयभीत रहता है, उसका कारण भयके परिणाम रखना, दूसरोंको डराना, सताना तथा निर्दयतापूर्ण प्रवृत्ति करना है । ग्लानि पूर्ण अवस्थाका कारण जुगुप्सा प्रकृति है । पवित्र पुरुषोंके योग्य आचरणकी निन्दा करना, उनसे घृणा करना आदिसे यह बँधती है । स्त्रीत्व विशिष्ट स्त्रीवेदका कारण महान क्रोधी स्वभाव रखना, तीव्र मान, ईर्ष्या, मिथ्यावचन, तीव्रराग, परस्त्रीसेवनके

प्रति विशेष आसक्ति रखना, स्त्री सम्बन्धी भावोंके प्रति तीव्र अनुराग भाव है। पुरुषत्व सम्पन्न पुरुषवेदके कारण क्रोधकी न्यूनता, कुटिल भावोंका अभाव, लोभ तथा मानका त्याग, अल्प राग, स्वस्त्रीसंतोष, ईर्ष्या, परिणामकी मंदता, आभूषण आदिके प्रति उपेक्षाके भाव आदि हैं। जिसके उदयसे नपुंसक वेद मिलता है, उसके कारण प्रचुर प्रमाणमें क्रोध, मान, माया, लोभसे दूषित परिणामोंका सद्भाव, परस्त्रीसेवन, अत्यंत हीन आचरण, तीव्र राग आदि हैं।

नरक आयुके कारण बहुत आरंभ और अधिक परिग्रह हिंसाके परिणाम, मिथ्यात्व-पूर्ण आचरण, तीव्र मान तथा लोभ, दूसरेको संताप पहुंचाना, सदाचार तथा शीलहीनता, काम, भोगसंबंधी अभिलाषामें वृद्धि, वध वंधन करनेके भाव, मिथ्याभाषण, पापनिमित्तक आहार, सन्मार्गमें द्रुपण लगाना, कृष्ण लेश्या युक्त रौद्र ध्यान सहित मरण करना है ।

पशु पर्यायके कारण कुटिल तथा छलपूर्ण मनोवृत्ति तथा प्रवृत्ति, अधर्म प्रचार, चित्तबाद उत्पन्न करना, जाति कुल तथा शीलमें कलंक लगाना, नकली नाप तौलका सामान रखना, नकली सोना मोती घी दूध अगर कपूर कुंकुम आदिके द्वारा लोगोंको ठगना, सद्गुणोंका लोप करना, आर्त्तध्यान युक्त मरण करना आदि हैं ।

मनुष्यायुके कारण अल्पारंभ तथा अल्पपरिग्रह, मृदुल परिणाम, महान् पुत्रपौत्रा सन्मान, संतोष वृत्ति, दानमें प्रवृत्ति, संक्लेशका अभाव, वाणीका संयम, भोगोंके प्रति उदासीनता, पापपूर्ण कार्योंसे निवृत्ति, अतिथि-संविभागशीलता आदि हैं। प्रेमपूर्वक पूर्ण तथा अल्प संयमका धारण करना, संकट आने पर शांत भाव धारण करना, तत्त्वज्ञान शून्य तपश्चर्या, दयापूर्ण अंतःकरण आदि से देवायुकी प्राप्ति होती है।

विकृत अंग उपांग होना, शरीर संबंधी दोषोंका सद्भाव, अपयश आदिका कारण अशुभ नाम कर्म है। वह मन वचन कायकी कुटिलता, मिथ्याप्रचार, मिथ्यात्व, परनिन्दा, मिथ्या कष्टार तथा निरंकुश भाषण, महा आरंभ ओर परिग्रह, आभूषणोंमें आसक्ति, मिथ्यासाक्षी, नकली पदार्थोंका देना, वनमें आग लगाना, पापपूर्ण आजीविका करना, तीव्र क्रोध मान माया लाभके परिणाम, मंदिरके धूप गंध माल्य आदिका अपहरण करना, अभिमान करना, अन्यके यत्नचेंद्र आदि बनाना, दूसरेके द्रव्यका अपहरण करनेसे सम्पादित होता है। इस अशुभ नाम कर्मके कारण आज जगतमें शारीरिक विकृतियोंकी बहुलता दिखती है। शुभ नाम कर्मका कारण प्रवृत्तियोंसे विपरीतपना है।

लोकनिन्दित कुलोंमें जन्म धारण करनेका कारण नीचे गोत्र है । यह जाति, कुल, मय, बल, पेशवय आदिका मद, दूसरोंका तिरस्कार अथवा अपवाद, सत्पुरुषोंकी निन्दा, चमत्कार अपहरण करना, पूज्य पुरुषोंका तिरस्कार करना, अपनेको बड़ा बताना, दूसरोंकी हानि उद्धाना आदि में प्राप्त होता है । धेर कुलोंमें उत्पन्न होकर लोक प्रतिष्ठा लाभका कारण वह गोत्र वर्म है । यह मान रहितपना, सत्पुरुषोंका आदर करना, जाति कुल आदिका उत्कार होने हुए उसका अभिमान नहीं करना, अन्यका तिरस्कार, निन्दा, उपहास न करना, प्रत्युपसन्मूर्तिन होने हुए भी निन्दितमानिता, भक्त्यर्थे लोको हर्ष अग्निके समान अपनी शक्तिमान् शक्ति प्रदर्शित न करना, अर्थ साधनोंका सम्मान करना आदिके प्राप्त होता है ।

प्रत्येक कार्योर्णि दिवस उपरिक्त परीक्षण कराना चाहिये । प्रत्येक परीक्षण परीक्षा काल, प्रत्येक परीक्षा, प्रत्येक कार्योर्णि दिवस उपरिक्त परीक्षण कराना चाहिये ।

करना, भोजन पान आदिमें धिन्न करना, निर्दोष सामग्रीका परित्याग, गुरु तथा देवपूजाका व्याघात करना आदिके द्वारा सम्पन्न होता है। यह अंतराय कर्म दान देना, पदार्थोंकी प्राप्ति उनका भोग तथा उपभोगमें बाधा उत्पन्न करता है। इसके ही कारण जीव शक्तिहीन होता है।

उपरोक्त कारणोंसे ज्ञानावरण आदिको विशेष अनुभाग मिलता है कारण आयु कर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका निरंतर बंध हुआ करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसीने यदि ज्ञानके साधनोंमें बाधा उपस्थित की तो उसे मोहनीय अंतराय आदि कर्मोंका भी आन्त्रव होगा। इतनी विशेषता होगी कि ज्ञानावरणको विशेष अनुभाग मिलेगा, ज्ञानावरणके रसमें प्रकर्षता होगी।

तत्त्वज्ञानीके बंध होता है या नहीं ?

इस बंधतत्त्वके विषय में कुछ लोगोंकी ऐसी समझ है कि सम्यक्त्वकी आत्मनिधि मिलनेपर आत्माकी बंध-परम्परा नष्ट हो जाती है। वे कहते हैं बंधका कारण अज्ञान चेतना है। सम्यग्दृष्टिके ज्ञान चेतना होती है, इसलिये वह बंधनकी व्यथासे मुक्त है। ज्ञानसे मुक्ति लाभका समर्थन सांख्य बौद्ध नैयायिक आदि भी करते हैं। यदि ज्ञान अथवा सम्यग्दर्शनके द्वारा कर्मोंका अभाव हो जाय, तो रत्नत्रय मार्गकी मान्यताके साथ कैसे समन्वय होगा ?

सम्मकृष्टिके बंधके विषयमें अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—“ज्ञानी जीव आन्त्रव-भावनाके अभिप्रायके अभाववश निरास्त्र है। वहां उसके भी द्रव्यप्रत्यय प्रत्येक समय अनेक प्रकारके पुद्गलकर्मोंको बांधते हैं। इसमें ज्ञानगुणका परिणमन कारण है।”

यहां शंकाकार पृच्छता है—ज्ञानगुणका परिणमन बंधका हेतु किस प्रकार है ?

इसपर महर्षि कुन्दकुन्द कहते हैं—

“जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि ।

अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥”—स० सा० १७१ ।

—‘यतः ज्ञानगुण जघन्य ज्ञानगुणसे पुनः अन्यरूप परिणमन करता है, ततः वह ज्ञानगुण कर्मका बंधक कहा गया है ।’

इस प्रकार प्रकाश डालते हुए अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं—“ज्ञानगुणस्य यावज्जघन्यो भावः, तावत् तस्यान्तर्मूर्तविपरिणामित्वात् पुनः पुनरन्यतयाऽस्ति परिणामः । स तु यथाख्यातचारित्र्यावस्थाया अधस्तादवश्यभाविरागसद्भावात् बन्धहेतुरेव स्यात्” “जवतक ज्ञानगुणका जघन्यभाव है—क्षायोपशमिक भाव है, तवतक उसका अंतर्मुहूर्तमें विपरिणमन होता है, इस कारण पुनःपुनः अन्यरूप परिणमन होता है। वह ज्ञानका परिणमन यथाख्यात चारित्ररूप अवस्थाके नीचे निश्चयसे रागसहित होनेसे बंधका ही कारण है।”

यदि ज्ञान गुणका जघन्य भावरूप परिणमन बंधका कारण है, तो ज्ञानीको कैसे निरास्त्र कहा ? इस शंकाके समाधानमें आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं—

“दंसण्णाणचरित्तं जं पस्मिमदे जहण्ण-भावेण ।

णाणी तेण दु वज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥”—समयसार १७२ ।

—“दर्शनज्ञानचारित्रका जघन्य भावसे परिणमन होता है, इससे ज्ञानी जीव अनेक प्रकारके पुद्गल कर्मोंसे बंधता है ।”

इस विषय पर विशेष प्रकाश डालते हुए टीकाकार जयसेनाचार्य लिखते हैं (समयसार पृ० २४५)

—“इस कारण भेदज्ञानी अपने गुणस्थानोंके अनुसार परम्परा रूपसे मुक्तिके कारण तीर्थङ्कर नामकर्म आदि प्रकृतिरूप पुद्गलात्मक अनेक पुण्यकर्मों से बंधता है ।”

कोई स्वाध्यायशील व्यक्ति पूछता है, यदि उपरोक्त कथन ठीक है, तो उसका भगवत्कुन्दकुन्दके इस वचनसे किस प्रकार समन्वय होगा—

“रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ॥” १७७

‘सम्यक्त्वीके राग, द्वेष, मोह रूप आसवोंका अभाव है ।’ इस वाक्यके उत्तरार्धमें आचार्य लिखते हैं—“तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पचया होंति ।”

—अर्थात् इस कारण आसवभावके अभावमें द्रव्य प्रत्यय कर्मबन्धके कारण नहीं होते हैं ।

इस विषयमें विरोधकी कल्पनाका निराकरण करते हुए जयसेनाचार्य लिखते हैं :—

—“सम्यग्दृष्टिके अनंतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, मिथ्यात्वोदय जनित राग द्वेष मोह नहीं हैं, अन्यथा वह चतुर्थगुणस्थानवर्ती सरागसम्यक्त्वी नहीं हो सकेगा । अथवा अनंतानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभोदयजनित राग द्वेष मोह सम्यक्त्वीके नहीं पाए जाते हैं, अन्यथा पंचम गुणस्थानका अविनाभावी सरागसम्यक्त्व नहीं हो सकेगा । अथवा अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभोदयजनित राग द्वेष मोह भाव सम्यक्त्वीके नहीं पाए जाते हैं, कारण षष्ठ गुणस्थानरूप सरागचारित्रके अविनाभावी सरागसम्यक्त्वकी अन्य प्रकारसे उपपत्ति नहीं पाई जाती है । अथवा अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभोदय जनित प्रमादके उत्पादक राग द्वेष मोह सम्यक्त्वीके नहीं हैं, कारण अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्ती वीतरागचारित्रके साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखनेवाले वीतराग सम्यक्त्वकी अन्य प्रकारसे उपपत्ति नहीं पाई जाती है ।”

इस सुव्यवस्थित तथा सुस्पष्ट निरूपण द्वारा आचार्य महाराजने यह नमना दिया है, कि सम्यक्त्वीके बंध अवंधका कथन एकान्तरूपमें नहीं है । अविरत सम्यक्त्वीके मिथ्यात्व तथा अनंतानुबन्धी निमित्तक प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है, किन्तु अन्य कर्मोंके निमित्तक प्रकृतियोंका बंध होता है । मिथ्यात्व, अनंतानुबन्धी निमित्तक प्रकृतियोंके अभावका सुन्दर वन्य अविरत सम्यक्त्वीके अवंधका वर्णन सुसंगत है । इन विषयोंका गौण वन्यत्व बंधने प्रसंगिक प्रकृतियोंकी अपेक्षा बन्धका कथन भी समीचीन है ।

सम्यक्त्वीके धन्याभावका एकान्तपक्षकायें कहते हैं कि अविरत सम्यक्त्वीके दो अनाद्य अनावरण, वक्षुरुपभ संज्ञनन औदारिक शरीर आदिका बंध है, यह बंध नहीं है बलवान् है । इस कथनसे तात्त्विक विचारका अभाव है । जब अविरतसम्यक्त्वीके द्वारा बंधे गए वस्त्र, पाषाण और चोराके कारण प्रकृति प्रवेश, निमित्त, अनुभाव बंध होते हैं, जब इनमें अवरोध ही तुल्य मानता और सर्वथा अवंध पोषित करता है, तब अविरतसम्यक्त्वीके बंधन नहीं कहा जा सकता । जयसेनाचार्यने पूर्णतया विरोध करने सम्यक्त्वीके अवरोधका अभाव और कर्मविह्वलबंधक प्रसंगित कर दिया है ।

क्या सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना ही होती है, जिससे अवंध माना जाय ?

सम्यक्त्वीके बंधाभावका समर्थन शंकाकार अन्य प्रकारसे करता हुआ कहता है। सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना होती है, इससे उसके बंधका अभाव आगमाविरुद्ध है।

मिथ्यात्वीके ज्ञानचेतनाका अभाव सबको इष्ट है। सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना ही होती है, ऐसी बात नहीं है। चेतनाके स्वरूप पर विशेष प्रकाश डालने से प्रस्तुत विषय स्पष्ट हो जायगा, ऐसी आशा है। अमृतचन्द्रसूरि अपनी समयसारकी टीकामें (पृ० ४८५) लिखते हैं :—
—“ज्ञानसे अन्यत्र मैं ‘यह’ हूँ; इस प्रकारका चिन्तन अज्ञानचेतना है। यह कर्मचेतना कर्मफल-चेतनाके भेदसे दो प्रकारकी है। ज्ञानसे पृथक् मैं ‘यह’ करता हूँ, यह चिन्तन कर्मचेतना है। ज्ञानसे अन्य मैं यह अनुभव करता हूँ, इस प्रकारका चिन्तन कर्मफलचेतना है। दोनों चेतनाएँ समान रसवाली हैं तथा संसारकी कारण हैं। संसारका बीज अष्टविध कर्मोंके बीजरूप होता है। अतः मुमुक्षुको उचित है कि वह अज्ञानचेतनाको दूर करनेके लिए सम्पूर्ण कर्मोंके त्यागकी भावना तथा सम्पूर्ण कर्मफल त्यागकी भावनाको नृत्य कराकर आत्मस्वरूपवाली भगवती ज्ञानचेतनाको ही नित्य नृत्य करावे।”

इस विषयको अधिक स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य लिखते हैं—“मेरा कर्म है, मेरे द्वारा किया गया है, इस प्रकार अज्ञानभावसे मन वचन कायकी क्रिया करना कर्मचेतना है। आत्म-स्थभावसे रहित अज्ञानभाव द्वारा इष्ट अनिष्ट विकल्परूपसे, हर्ष, विषाद, सुख दुःख का जो अनु-भवन करना है, वह कर्मफल चेतना है। (पृ० ४५०) कुंदकुंद स्वामी प्रवचनसारमें कहते हैं—

“परिणमदि चेदणा आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा ।

सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥ २।३१ ॥”

—‘चेतनाकी ज्ञानरूप परिणति ज्ञानचेतना है, कर्मरूप परिणति कर्मचेतना तथा फलरूप परिणति कर्मफल चेतना है।’

इससे यह प्रगट होता है कि ज्ञानचेतनामें ज्ञानृत्व भाव है, कर्मचेतनामें कर्तृत्व परिणति है और कर्मफल चेतनामें भोक्तृत्व भाव है।

सम्यक्त्वीके कर्म तथा कर्मफल चेतनाका सद्भाव

सम्यक्त्वीके ज्ञान चेतना ही पाई जाती है, इस भ्रमका निवारण करते हुए पंचा-ध्यायीकार कहते हैं—

“अस्ति तस्यापि सद्दृष्टेः कस्यचित् कर्मचेतना ।

अपि कर्मफले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना ॥ २।२।७५ ॥”

—‘किसी सम्यक्त्वीके कर्म तथा कर्मचेतना भी पाई जाती हैं। किन्तु परमार्थसे सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना पाई जाती है।’

यहां पूर्णज्ञान विशिष्ट सम्यक्त्वीको लक्ष्यमें रखकर उसके ज्ञानचेतनाका परमार्थ रूपसे सद्भाव प्रतिपादित किया है। अपूर्ण ज्ञानीकी अपेक्षा कर्मचेतना तथा कर्मफल चेतना भी कही हैं। इस दृष्टिका स्पष्टीकरण निम्नलिखित पद्यसे होता है—

“चेतनायाः फलं बन्धस्तत्फले वाथ कर्मणि ।

रागाभावान्न बन्धोऽस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना ॥ २।२७६ ॥”

“कर्म तथा कर्मफल चेतनाका फल बन्ध कहा है । उस सम्यक्स्त्रीके रागका अभाव होनेसे बंध नहीं है । अतः उसके ज्ञानचेतना है ।’ कुंदकुंद स्वामीकी यह गाथा इस विषयमें बहुत उपयोगी है—

“सर्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसादि कज्जजुदं ।

पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥”-पं० का० ३९ ।

—“सम्पूर्ण स्थावर जीवोंके कर्मफल चेतना है । त्रस जीवोंमें कर्मफलके सिवाय कर्मचेतना भी पाई जाती है । प्राणी इस व्यपदेशको अतिक्रान्त-जीवमुक्त ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं । यहां जीवमुक्त शब्दका अर्थ अविरत सम्यक्स्त्री नहीं, किन्तु केवली भगवान् हैं, कारण टीकाकार अमृतचन्द्रसूरिने लिखा है कि संपूर्ण मोह कलंकके नाशक, ज्ञानावरण दर्शनावरणके ध्वंस करने-वाले, वीर्यांतरायके क्षयसे अनन्तवीर्यको प्राप्त करनेवाले अत्यन्त कृतकृत्य केवली भगवान् ज्ञान-चेतनाको ही अनुभव करते हैं ।

पंचास्तिकाय टीकाके ये शब्द अधिक विचारपूर्ण हैं तथा प्रकृत विषय पर अच्छा प्रकाश डालते हैं । “तत्र स्थावराः कर्मफलं चेतयन्ते । त्रसाः कार्यं चेतयन्ते । केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयन्ते” (पंचास्तिकाय टीका पृ० १२) स्थावर जीव कर्मफल चेतनाका अनुभवन करते हैं । त्रस जीव कर्मचेतनाका अनुभव करते हैं । केवल ज्ञानी ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं ।

‘अनगार धर्मावृतकी संस्कृत टीका (पृ० १०७) में पंडितप्रवर आशाधर जी लिखते हैं—“जीवमुक्तास्तु मुख्यभावेन ज्ञानम् । गौणतया त्वन्यदपि ।सा चोभयपि जीवमुक्तेर्गौणी बुद्धिपूर्वककर्तृत्व-भोक्तृत्वयोरुच्छेदात्”—जीवमुक्तोंके मुख्यतः ज्ञान-चेतना है । गौणरूपसे उनके अन्य भी चेतनाएं हैं । वे कर्म और कर्मफल चेतनाएं जीवमुक्तोंमें मुख्य नहीं, किन्तु गौणरूप हैं ; कारण उनमें बुद्धिपूर्वक कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अभाव हो चुका है ।

इस विवेचनसे यह विदित हो जाता है, कि केवली भगवान्में नानेके गुणव्यवहारोंमें सम्यक्स्त्री जीवोंमें कर्म और कर्मफल चेतनाएं भी पाई जाती हैं । अविरत सम्यक्स्त्रीके विविध कार्योंको बन्धवहित धताना और उसे सदा सजग ज्ञानचेतनाका ही ग्वानी करना बड़ी आवश्यकता पात है । क्षात्रिक सम्यक्स्त्री धेणिक महाराजने आत्मघात करने प्रण प्रसिद्ध किया । परम धार्मिक सीताके प्रतीन्द्र पर्यायके जीवने तपश्चर्यामें निमग्न महारुनि रामचन्द्रका धर्ममें धितानेका मोहवश प्रयत्न किया, ताकि रामचन्द्रजीका सीताके स्वर्गमें ही उत्साह हो जाय । यह विचार शूरचेतनाके प्रकाशको नहीं बतती है । दूसरे कर्म, कर्मफल चेतनाओंका प्रभाव महारुनि बुद्धि-गोचर होता है । पारिवर्तितोदयवश ये विचार्य हुआ करती हैं । ‘मदन-निर्गती, नदी-उदासी तातें आस्रव छटाछटीसी—यह सम्यक्स्त्री महारुनि विचार मोहमें आकषित होते हैं।

१ “तत्र कर्मफलं मुख्यभावेन स्थावरकायाः । त्रस जीवो ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं ।

नहीं बताता है। मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी तथा असंयम निमित्तक आस्रयक निरोधका शापक है। अतः परमाणुके प्रकाशसे ज्ञात होता है कि सम्यक्त्वकी जयन्त्य अवस्थामें ज्ञानचेतनाके सिवाय कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पाई जाती हैं, उनके कारण वह किन्हीं प्रकृतियोंका बंध नहीं करता है और किन्हीं कर्म प्रकृतियोंका बन्ध भी करता है। इस प्रकारका स्याद्वाद है^१।

महाबन्धके इस पयडिवंधाद्वियार-प्रकृतिवंधाधिकार नामक खण्डमें प्रकृतिसमुत्कीर्तन, सर्वबंध, नो सर्वबंध, उत्कृष्टबंध, अनुत्कृष्टबंध, जयन्त्यबंध, अजयन्त्यबंध, सादिवंध, अनादिवंध, ध्रुवबंध, अध्रुवबंध, बंधस्वामित्वविचय, बंधकाल, बंध-अन्तर, बंधसन्निकर्ष, भंगविचय, भागा-भाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन चौबीस अनुयोगद्वारासे प्रकृतिवंधपर प्रकाश डाला गया है।

इस कर्मबन्धनके कारण अनंत ज्ञान-आनंद-शक्ति आदिका अधिपति यह आत्मा दीनतापूर्ण जीवन बिता कर उठाता है। इस आत्माका यथार्थ कल्याण आत्मीय दोषोंके निर्मूल करनेमें है। समाधिकी प्रचण्ड अग्नि द्वारा इस दोष पुड़का अघिलम्व क्षय होता है। संवर और निर्जरा रूप परिणतिसे उस स्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है, जिसको परम निर्वाण कहते हैं। इस पदका प्रधान कारण भेदज्ञानकी प्राप्ति है। मेरा आत्मा एक है, ज्ञानदर्शनमय है, दोष सर्व अनात्म भाव है। इस विद्याके प्रभावसे सिद्धत्वकी अभिव्यक्ति होती है। बंधकी विपत्तिसे बचनेके लिए योगीन्द्रदेव कहते हैं:—

“अणु जि तित्थु म जाहि जिय, अणु जि गुरुउ म सेवि ।

अणु जि देउ म चिति तुहुं, अप्पा विमलु मुएवि ॥”अध्यात्मप्रकाश ९६।

“आत्मन् ! तू दूसरे तीर्थोंको मत जा; अन्य गुरुकी शरणमें मत पहुंच, अन्य देवका चिंतन मत कर। अपनी निर्मल आत्माका चिंतन कर।”

जब आत्मा यह समझ लेता है, कि मैं कर्मोंके बंधनमें बद्ध हो गया हूं किंतु मैं इससे भिन्न स्वरूप वाला हूं, तब उसे मुक्तिका प्रकाश प्राप्त हो जाता है। तत्त्वकी बात तो इतनी है—

“भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।

तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥”

१ अध्यात्म शास्त्रोंके विशिष्ट अभ्यासी विद्वान् न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णोने एक पत्रमें हमें लिखा था—“ज्ञानचेतना सम्यग्दृष्टिके होती है, परन्तु इसका पूर्ण विकास तो त्रयोदशम गुणस्थानमें होता है। सम्यग्दृष्टिके कर्मचेतना और कर्मफलचेतना यद्यपि मिथ्या दर्शनके सहकारसे जैसी थी, वैसी नहीं है; परन्तु गौणरूपसे है इसमें कौनसी वाधा है। क्योंकि क्षीणकापायके अवाक् वह कर्मका कर्ता भी है और भोक्ता भी है।

२ अर्थात् जगत्में जो जीव सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञान-आत्मबोधके प्रसादसे ही सिद्ध हुए हैं। जो आजतक संसारमें बद्ध हैं वे इस आत्मज्ञानके अभावसे ही बंधे हैं।

ग्रन्थ-विषयसूची

विषय	पृ०	विषय	
अनुवादकर्ताका मंगलाचरण	१-४	आदेश	१४३-१४४
मूलग्रन्थका मंगल वेदना खण्डके	४-१५	परिमाणानुगम	१४६-१८५
आधारसे		ओष	१४६
प्रकृतिसमुत्कीर्तनप्ररूपण (आभिनि-	१६-२०	आदेश	१४७-१८५
बोधिक ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण और		क्षेत्रानुगम	१८६-१९०
अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा)		ओष	१८६-१८७
मूलग्रन्थ	२१-३४८	आदेश	१८७-१९०
प्रकृति समुत्कीर्तन	२१-२९	स्पर्शानुगम	१९१-२३५
अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा	२१-२४	ओष	१९१-१९४
मनःपर्ययज्ञानवरणप्ररूपणा	२४-२६	आदेश	१९४-२३५
कैवलज्ञानवरणप्ररूपणा	२७-२९	कालानुगम नानाजीवोंकी अपेक्षा	२३६-२४९
दर्शनावरणादिकर्मप्ररूपणा	२८-२९	ओष	२३६-२३७
सर्वनोसर्वबन्धप्ररूपणा	२९-३०	आदेश	२३७-४९
उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा	३०	अंतरानुगम	२५०-२५८
सद्यादिवन्धप्ररूपणा	३०-३१	ओष	२५०
बन्धस्वामित्वविषय	३२-४४	आदेश	२५१-२८८
ओषप्ररूपणा	३२-४१	भावानुगम	२५९-२७८
आदेशप्ररूपणा	४१-४४	ओष	२५९-६२
कालप्ररूपणा आदेशसे	४५-६८	आदेश	२६२-७८
अंतरानुगम	६९-९४	अल्पबहुत्व	२७९-३४८
ओष	६९-७०	जीव अल्पबहुत्व	२७९-३३३
आदेश	७१-९४	स्वरूपान	२७९-३३४
सन्निकर्षप्ररूपणा	९५-१३२	ओष	२७९-८३
स्वस्थानसन्निकर्ष	९५-११५	आदेश	२८३-३१४
ओष	९५-११२	परमपान	३१४-३३३
आदेश	११२-११५	ओष	३१४-११६
परमपान सन्निकर्ष	११६-१३२	आदेश	३१६-३३३
ओष	११६-१३०	काल अनुगम	३३४-३४९
आदेश	१३१-१३२	स्वरूपान अनुगम	३३४-३४९
भंगविषय	१३३-१४०	ओष	३३४-३४९
ओष	१३३-१३४	आदेश	३३४-३४९
आदेश	१३४-१४०	परमपान	३४९-३५९
भागभाग	१४१-१४५	ओष	३४९-३५९
ओष	१४१-१४३	आदेश	३५९-३५९

नहीं बताता है। मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी तथा असंयम निमित्तक आत्मवशे निरोधका सापेक्ष है। अतः परमाणविके प्रकाशसे ज्ञात होता है कि सम्यक्त्वकी जयन्य अवस्थामें ज्ञानचेतनाके सिवाय कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पाई जाती हैं, उनके कारण वह किन्हीं प्रकृतियोंका बंध नहीं करता है और किन्हीं कर्म प्रकृतियोंका बन्ध भी करता है। इस प्रकारका स्याद्वाद है^१।

महाबन्धके इस पयटिवंधाद्वियार-प्रकृतिबंधाधिकार नामक खण्डमें प्रकृतिसमुत्कीर्तन, सर्वबंध, नो सर्वबंध, उत्कृष्टबंध, अनुत्कृष्टबंध, जघन्यबंध, अजघन्यबंध, सादिवंध, अनादिवंध, ध्रुवबंध, अध्रुवबंध, बंधस्वामित्वविषय, बंधकाल, बंध-अन्तर, बंधसन्निकर्ष, भंगविषय, भागा-भाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन चौबीस अनुयोगद्वारोंसे प्रकृतिबंधपर प्रकाश डाला गया है।

इस कर्मबन्धनके कारण अनंत ज्ञान-आनंद-शक्ति आदिका अधिपति वह आत्मा दीनतापूर्ण जीवन बिता कर उठाता है। इस आत्माका यथार्थ कल्याण आत्मीय दोषोंके निर्मूल करनेमें है। समाधिकी प्रचण्ड अग्नि द्वारा इस दोष पुड़का अधिलम्ब क्षय होता है। संवर और निर्जरा रूप परिणतिसे उस स्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है, जिसको परम निर्वाण कहते हैं। इस पदका प्रधान कारण भेदज्ञानकी प्राप्ति है। मेरा आत्मा एक है, ज्ञानदर्शनमय है, दोष सर्व अनात्म भाव है। इस विद्याके प्रभावसे सिद्धत्वकी अभिव्यक्ति होती है। बंधकी विपत्तिसे बचनेके लिए योगीन्द्रदेव कहते हैं:—

“अणु जि तित्यु म जाहि जिय, अणु जि गुरुउ म सेवि।

अणु जि देउ म चिति तुहुं, अप्पा विगलु गुणवि ॥”अध्यात्मप्रकाश ९६।

“आत्मन्! तू दूसरे तीर्थोंको मत जा; अन्य गुरुकी शरणमें मत पहुंच, अन्य देवका चिंतन मत कर। अपनी निर्मल आत्माका चिंतन कर।”

जब आत्मा यह समझ लेता है, कि मैं कर्मोंके बंधनमें बद्ध हो गया हूं किंतु मैं इससे भिन्न स्वरूप वाला हूं, तब उसे मुक्तिका प्रकाश प्राप्त हो जाता है। तत्त्वकी बात तो इतनी है—

“भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।

तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥”

१ अध्यात्म शास्त्रोंके विशिष्ट अभ्यासी विद्वान् न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णाने एक पत्रमें हमें लिखा था—“ज्ञानचेतना सम्यग्दृष्टिके होती है, परन्तु इसका पूर्ण विकास तो त्रयोदशम गुणस्थानमें होता है। सम्यग्दृष्टिके कर्मचेतना और कर्मफलचेतना यद्यपि मिथ्या दर्शनके सहकारसे जैसी थी, वैसी नहीं है; परन्तु गौणरूपसे है इसमें कौनसी बाधा है। क्योंकि क्षीणकापायके अवाक् वह कर्मका कर्ता भी है और भोक्ता भी है।

२ अर्थात् जगत्में जो जीव सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञान-आत्मबोधके प्रसादसे ही सिद्ध हुए हैं। जो आज तक संसारमें बद्ध हैं वे इस आत्मज्ञानके अभावसे ही बंधे हैं।

ग्रन्थ-विषयसूची

विषय	पृ०	विषय	पृ०
अनुवादकर्त्ताका संगलचरण	१-४	आदेश	१४३-१७५
मूलग्रन्थका संगल वेदना खण्डके आधारसे	४-१५	परिमाणानुगम	१७६-१८५
प्रकृतिसमुत्कीर्तनप्ररूपण (आभिनि- १६-२०		ओघ	१७६
बोधिक ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण और अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा)		आदेश	१७७-१८५
मूलग्रन्थ	२१-३४८	क्षेत्रानुगम	१८६-१९०
प्रकृति समुत्कीर्तन	२१-२९	ओघ	१८६-१८७
अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा	२१-२४	आदेश	१८७-१९०
मनःपर्ययज्ञानवरणप्ररूपणा	२४-२६	स्पर्शानुगम	१९१-२३५
केवलज्ञानवरणप्ररूपणा	२७-२९	ओघ	१९१-१९४
दर्शनावरणादिकर्मप्ररूपणा	२८-२९	आदेश	१९४-२३५
सर्वनोसर्वबन्धप्ररूपणा	२९-३०	कालानुगम नानाजीवोंकी अपेक्षा	२३६-२४९
उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा	३०	ओघ	२३६-३७
सच्चादिवन्धप्ररूपणा	३०-३१	आदेश	२३७-४९
बन्धस्वामित्वविचय	३२-४४	अंतरानुगम	२५०-२५८
ओघप्ररूपणा	३२-४१	ओघ	२५०
आदेशप्ररूपणा	४१-४४	आदेश	२५१-५८
कालप्ररूपणा आदेशसे	४५-६८	भावानुगम	२५९-२७८
अंतरानुगम	६९-९४	ओघ	२५९-६२
ओघ	६९-७०	आदेश	२६२-७८
आदेश	७१-९४	अल्पबहुत्व	२७९-३४८
सन्निकर्षप्ररूपणा	९५-१३२	जीव अल्पबहुत्व	२७९-३३३
स्वस्थानसन्निकर्ष	९५-११५	स्वस्थान	२७९-३१४
ओघ	९५-११२	ओघ	२७९-८२
आदेश	११२-११५	आदेश	२८२-३१४
परस्थान सन्निकर्ष	११६-१३२	परस्थान	३१५-३३३
ओघ	११६-१३०	ओघ	३१५-१६
आदेश	१३१-१३२	आदेश	३१६-३३३
भंगविचय	१३३-१४०	काल अल्पबहुत्व	३३४-३४८
ओघ	१३३-१३४	स्वस्थानअल्पबहुत्व	३३४-४२
आदेश	१३४-१४०	ओघ	३३४-३८
भागाभाग	१४१-१७५	आदेश	३३८-४२
ओघ	१४१-१४३	परस्थान	३४३-३४४
		ओघ	३४३-३४४
		आदेश	३४४-४८

सङ्केत विवरण

अष्टसह०	अष्टसहस्री	ध० टी० फो०	धवला टीका स्पर्शनानुगम
आप्तप०	आप्तपरीक्षा	ध० टी० भा०	धवला टीका भागाभागा-
आप्तमी०	आप्तमीमांसा		नुगम
इन्द्र धुता०	इन्द्रनन्दिकृत श्रुतानुसार	ध० टी० भावा०	ध० टी० भावानुगम
इष्टोप०	इष्टोपदेश	ध० टी० वे०	} धवला टीका वेदनामष्ट
गो० क० } गो० कर्म० }	गोमन्टसार कर्मकाण्ड	ध० टी० वेदना	
गो० क० टी०	गोमन्टसार कर्मकाण्ड टीका	प्रा० सिद्धभ०	प्राकृत सिद्धभक्ति
गो० जी० } गो० जीव० }	गोमन्टसार जीवकाण्ड	भ० क० य०	भक्तामरकथायन्त्र
गो० जी० जी० प्र०	गोमन्टसार जीवकाण्ड	भक्तामर	भक्तामर स्तोत्र
	जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका	गहापु०	गहापुराण
गो० जी० मं० प्र० टी०	गोमन्टसार जीवकाण्ड	पट्त्वं० अं०	} पट्त्वं० अन्तरा० }
	मन्द प्रबोधिनी टीका	पट्त्वं० अन्तरा०	
जयध०	जयध्वला	पट्त्वं० का०	पट्त्वं० का०
त० रा०	तत्त्वार्थ राजवार्तिक	पट्त्वं० री०	पट्त्वं० री०
त० श्लो०	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक	पट्त्वं० द०	पट्त्वं० द०
त० सू०	तत्त्वार्थ सूत्र	पट्त्वं० फो०	पट्त्वं० फो०
ति० प०	तिलोप पण्यति	स० प्रा०	समय प्राभृत
ध० टी०	धवला टीका	स० सि०	सर्वार्थ सिद्धि
ध० टी० अ० } ध० टी० अन्तरा० }	धवला टीका अन्तरानुगम	गा०	गाथा
ध० टी० अल्पबहु०	धवला टीका अल्पबहुत्वा-	प०	पत्र
	नुगम	पु०	पुस्तक
ध० टी० का० } ध० टी० काल० }	धवला टीका कालानुगम	पृ०	पृष्ठ
ध० टी० क्षे० } ध० टी० खे० }	धवला टीका क्षेत्रानुगम	भा०	भाग
		श्लो०	श्लोक



महाबंधस्स

पयडिबंधो

पढमो अत्थाहियारो

मङ्गलाचरणम्

वारह-ग्रंगिज्जा वियलिय-मल-मूढ-दंसणुत्तिलया ।
विनिह-वर-चरण-भूसा पसियउ गुय-देवया मुइरं ॥ १ ॥

ॐ

पसियउ महु धरसेणो पर-वाइ-गग्रोह-दाण-वर-सीहो ।
सिद्धतामिय-सायर-तरंग-संधाय-धोय-मणो ॥ २ ॥

ॐ

ॐ

पणमह कय-भूय-वलिं भूयवलिं केत-वास-परिभूय-वलिं ।
विणिहय-वम्मह-पसरं वड्ढाविय-विमल-णाण-वम्मह-पसरं ॥ ३ ॥

ॐ

ॐ

ॐ

भूतवलिप्रणीतं तं वन्द्यतत्त्वप्रकायकम् ।
महाधवलविख्यातं महावन्द्यं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

ॐ

ॐ

ॐ

ॐ

सिद्धानां कीर्तनादन्ते यः सिद्धान्त-प्रसिद्ध-वाक् ।
सोज्जाद्यनन्तसन्तानः सिद्धान्तो नोज्ज्वताच्चिरम् ॥ ५ ॥



सिरि भगवंतभूदबलिभडारयपणीदो महाबंधो

[पढमो पयडिबंधाहियारो]

[अनुवादकर्त्ता का मङ्गल]

महाधवल नामसे प्रसिद्ध इस महाबन्ध महाशास्त्रकी टीकानिर्माणका कठिन कार्य निर्दोष तथा निरन्तराय सम्पन्न हो, इस कामनासे वेदनाखण्ड की धवलाटीका के प्रारम्भ में वीरसेनाचार्यकृत मंगलगाथाओं द्वारा पञ्च-परमेष्ठीका पुण्य-स्मरण किया जाता है—

सिद्धा दद्धुमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसव्वत्था ।

तिहुवण-सिर-सेहरया पसियंतु भडारया सव्वे ॥ १ ॥

अर्थ—जिन्होंने ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकारके कर्ममलको दग्ध कर दिया है, जिन्होंने विशुद्ध बुद्धि-केवलज्ञानद्वारा समस्त पदार्थोंकी उपलब्धि की है—उनका पूर्ण बोध प्राप्त किया है, जो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुटके समान विराजमान हैं, वे सम्पूर्ण सिद्ध भट्टारक प्रसन्न होंगे ।

भावार्थ—आत्माका सहज स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य है । मोहनीय ज्ञानावरणादि कर्मोंका मल आत्मामें अनादिसे लगा हुआ है, जिससे यह संसारी आत्मा जगत्में परिभ्रमण किया करती है । सिद्ध भगवान्ने उस कर्ममलका ध्वंस कर दिया है । विशुद्धज्ञानके कारण समस्त पदार्थोंका बोध होता है । जिस प्रकार दर्पणके तलसे मल दूर होनेपर बाह्य वस्तुएँ स्वयमेव दर्पणकी निर्मलताके कारण उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं, उसी प्रकार कर्ममलरहित आत्मामें स्वतः सर्व पदार्थ फलकते हैं ।

निर्मल तथा पूर्णबोधयुक्त होनेसे तथा कर्ममलरहित होनेके कारण सिद्ध परमात्मा जगत्में श्रेष्ठ हैं । उनके द्वारा विश्व शोभित होता है । वे लोकके अग्रभागमें विद्यमान ईषट्प्राग्भार पृथ्वीके ऊपर अवस्थित हैं और ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुट ही हों । यहाँ लोककी पुरुषाकृतिको दृष्टिमें रखकर सिद्धोंको मुकुट कहा गया है ।

सिद्ध भगवान्ने राग-द्वेष, मोहादि विभावोंका त्याग कर स्वभावकी उपलब्धि की है । वे वीतराग हो चुके हैं । किसीकी स्तुतिसे वे प्रसन्न नहीं होते और न निन्दासे खिन्न ही होते हैं । वे राग-द्वेषकी दुविधाके चक्करसे परे पहुँच चुके हैं । ऐसी व्यवस्था होते हुए मङ्गलगाथा-में सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थनाका क्या रहस्य है ? यह विशेष विचारणीय है । यदि भगवान् यथार्थमें प्रसन्न हो गए, तो उनकी वीतरागता कहाँ रही और यदि वे प्रसन्न न हुए, तो प्रसन्नताकी प्रार्थना अप्रयोजनीक ठहरती है ?

यथार्थ वात यह है कि प्रसन्न-निर्मलभावपूर्वक प्रभुकी आराधना करनेवाला भक्त उपचारसे प्रभुमें प्रसन्नताका आरोप करता है ।

(१) “सिद्धा णट्ठमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसव्भावा.....”—प्रा० सिद्धभ० श्लो० ५ ।

आचार्य विद्यानन्दी आप्तपरीक्षामें लिखते हैं—वीतरागमें क्रोधके समान सन्तोषलक्षण प्रसादकी भी सम्भावना नहीं है। अतः प्रसन्न अन्तःकरणद्वारा प्रभुकी आराधना करना वीतरागकी प्रसन्नता मानी जाती है। इसी अपेक्षा से भगवान्‌की प्रसन्न कहते हैं जैसे प्रसन्न अन्तःकरणपूर्वक रसायनका सेवन करके नीरोग व्यक्ति कहता है कि रसायनके प्रसादसे मैं नीरोग हुआ हूँ, उसी प्रकार प्रसन्न चित्तवृत्तिपूर्वक वीतराग प्रभुकी आराधनासे इष्टसिद्धि प्राप्तकर भक्त उपचारसे कहता है कि परमात्माके प्रसादसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है।

इसी दृष्टिसे वीतराग सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गई है।

तिम्रुवण-भ्रवणप्पसरिय-पच्चक्खवोह-किरण-परिवंदो ।

उड्ओ वि अणत्थवणो अरहंत-दिवायरो जयऊं ॥ २ ॥

अर्थ—वे अरहन्त भगवान्‌रूपी सूर्य जयवन्त हों, जो तीन लोक रूपी भवनमें फैली हुई ज्ञानकिरणोंसे व्याप्त हैं, तथा जो उदित होने हुए भी अस्तको प्राप्त नहीं होते हैं।

भावार्थ—यहाँ अरहन्त भगवान्‌की सूर्यके साथ तुलना की है। सूर्य स्वपरप्रकाशक है। अरहन्त भगवान्‌का केवलज्ञान भी स्वपरप्रकाशक है। लोकप्रसिद्ध सूर्यकी अपेक्षा अरहन्त-सूर्यमें विशेषता है। लौकिक सूर्य जब कि मध्यलोकके थोड़ेसे प्रदेशको आलोकित करता है, तब अरहन्त सूर्य सकल विश्वको प्रकाशित करता है। सूर्यका उदय और अस्त होता है, किन्तु केवलज्ञान-सूर्यका उदय तो होता है, पर अस्त नहीं। जब केवलज्ञानका प्रकाश आत्मामें उत्पन्न हो चुका, तब उस सर्वज्ञ आत्माकी ज्ञानव्योतिको कर्मपटल पुनः कैसे ढाँक सकेंगे? अतः केवलज्ञानसूर्य उदययुक्त होते हुए भी अस्तरहित है। वह अनन्तकाल पर्यन्त प्रकाशित रहता है। अरहन्तसूर्यकी किरणें ज्ञानात्मक हैं, लौकिक सूर्यकी किरणें पौद्गलिक हैं।

ति-रयण-खग्ग-विहाण्णत्तारिय-मोह-सेण्ण-सिर-णिवहो ।

आहरिय-राउ पसियउ परिवालिय-भविय-जिय-लोओ ॥ ३ ॥

अर्थ—जिन्होंने शत्रुरूपी खड्गके प्रहारसे मोहरूपी सेनाके शिर-समूहका नाश कर दिया है तथा भव्य-जीव-लोकका परिपालन किया है वे आचार्य महाराज प्रसन्न हों।

भावार्थ—यहाँ आचार्य महाराज की राजासे तुलनाकी गई है। जैसे कोई प्रतापी राजा अपनी प्रचण्ड तलवारके प्रहारसे शत्रुसैन्यका नाश करता है, उसी प्रकार आचार्य परमेष्ठी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र्य रूपी अजेय खड्गसे मोहरूपी सेनाके मस्तकोंका नाश करते हैं। जिस प्रकार राजा अत्याचारीका अन्त करके धर्मपरायण प्रजाका रक्षण करता है, उसी प्रकार आचार्य महाराज मोहका ध्वंस करके भव्यात्माओंका रक्षण

(१) "प्रसादः पुनः परमेष्ठिनस्तद्विनेयानां प्रसन्नमनोविपयत्वमेव, वीतरागाणां तुष्टिलक्षणप्रसादा-सम्भवात् कोपासम्भवत्। तदाराधकजनैस्तु प्रसन्नेन मनसोपास्यमानो भगवान् प्रसन्न इत्यभिधीयते रसायनवत्। यथैव हि प्रसन्नेन मनसा रसायनमासेव्य तत्फलमाप्नुवन्तः सन्तो रसायनप्रसादादिदमस्मा-कमारोग्यादिफलं समुत्पन्नमिति प्रतिपद्यन्ते तथा प्रसन्नेन मनसा भगवन्तं परमेष्ठिनमुपास्य तदुपासन-फलं श्रेयोमार्गाधिगमलक्षणं प्रतिपद्यमानास्तद्विनेयजनाः भगवत्परमेष्ठिनः प्रसादादस्माकं श्रेयोमार्गाधिगमः सम्पन्न इति समनुमन्यन्ते।"—आप्तप० पृ० २, ३। (२) "नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ॥ नाम्मोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि सुनीन्द्र लोके ॥"—भक्तामर० श्लो० १७।

करते हैं। मोहके कारण संसारमें भव्य जीव बहुत कष्ट पा रहे थे। आचार्य महाराजने रत्नत्रयसे अपनी आत्माको सुसज्जित करके अपनी पुण्य अभय वाणी तथा जीवनदात्री लेखनीके द्वारा जो वीतरागताकी धारा बहाई, उससे भव्यात्माओंके अन्तःकरणमें जो मोहका आतङ्क था, वह दूर हुआ और उन्होंने अपने निज रूपकी उपलब्धि की। भव्यात्माओंको जब भी मोहका आतङ्क व्यथा पहुँचाता है, तब ही वे आचार्य महाराजके चरणोंका आश्रय ले अभय अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

अण्णाणयंधयारे अणोरपारे भर्मत-भवियाणं ।

उज्जोओ जेहिं कओ पसियंतु सया उवज्झायो ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसके ओर-छोरका पता नहीं है, ऐसे अज्ञान-अन्धकारमें भटकनेवाले भव्यजीवोंको जिन्होंने प्रकाश प्रदान किया है वे उपाध्याय प्रसन्न होंगे।

भावार्थ—यहाँ अज्ञानको अन्धकारकी उपमा दी गई है। जिस प्रकार अन्धकारके कारण चक्षुष्मान् व्यक्ति अन्धेकी भाँति प्रकाशरहित स्थलमें आचरण करता है, उसी प्रकार सम्यक्-ज्ञानज्योतिके अभावमें यह जीव परद्रव्यको स्व मान कर तथा आत्मतत्त्वको अनात्म पदार्थ मान कर अन्धेके समान प्रवृत्ति करता है। इस मिथ्याज्ञानरूप अन्धकारके आदि-अन्तका पता नहीं चलता है। वह अपार है। उसमें भव्य जीव भटक रहे हैं और परको अपना मानकर दुःखी हो रहे हैं। यह मिथ्याज्ञानका ही प्रभाव है कि जीव कल्याणके मार्गको न पाकर चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता फिरता है। जैसे अन्धकारमें भटकनेवाले जीवोंको प्रकाशका दर्शन होते ही हित-मार्ग सूझने लगता है उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठीके प्रसादसे सम्यक्ज्ञानका प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे यह मोहान्ध प्राणी पञ्च परावर्तन रूप संसारका पर्यटन छोड़कर शिवपुरकी ओर उन्मुख हो जाता है।

उपाध्यायके समीप सविनय आकर भव्यात्माएँ आगमका अभ्यास करती हैं, और सम्यक्-ज्ञानका लाभ करती हैं, इस कारण अज्ञान अन्धकार निवारण करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीसे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गई है।

दुह-तिव्व-तिसा-विणदिय-तिहुवण-भवियाण सुदुराण ।

परिठविया धम्म-पवा सुअ-जल-वाणप्पयाणेण ॥ ५ ॥

अर्थ—दुःखरूप तीव्र प्याससे पीड़ित तीनलोकके भव्योंके प्रति प्रशस्त रागवश जिन्होंने श्रुतज्ञानरूपी जल पिलानेके लिए धर्मरूप प्रपा-प्याऊ स्थापित की है वे उपाध्याय सदा प्रसन्न होंगे।

भावार्थ—इस जगत्के प्राणियोंकी विषयोंकी लालसासे जनित सन्ताप सदा दुःखी करता है। महान् पुण्यशाली देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी विषयतृष्णाके तापसे नहीं बच सके हैं। उनकी तृष्णाग्नि तो और अधिक प्रज्वलित रहती है। इस तृष्णाकी शान्तिके लिए यह जीव विषयोंका सेवन करता है, किन्तु इससे वेदना तनिक भी न्यून न होकर उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुआ करता है। जिस प्रकार पिपासाकुल व्यक्तियोंकी तृप्तानिवृत्ति-निमित्त उदार पुरुष प्याऊकी व्यवस्था

(१) “अण्णाणघोरतिमिरे दुरंततीरमिह हिंडमाणाणं । भवियाणुज्जोवसरा उवज्झाया वरनदिं देतुं ॥” -ति० प० गा० ४। (२) “विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागमं श्रुताख्यमदीयते उ उपाध्यायः ।” -त्त० रा० पृ० ३४६।

आचार्य विद्यानन्दी आप्तपरीक्षामें लिखते हैं—वीतरागमें क्रोधके समान सन्तोषलक्षण प्रसादकी भी सम्भावना नहीं है। अतः प्रसन्न अन्तःकरणद्वारा प्रभुकी आराधना करना वीतरागकी प्रसन्नता मानी जाती है। इसी अपेक्षा से भगवान्को प्रसन्न कहते हैं जैसे प्रसन्न अन्तःकरणपूर्वक रसायनका सेवन करके नीरोग व्यक्ति कहता है कि रसायनके प्रसादसे मैं नीरोग हुआ हूँ, उसी प्रकार प्रसन्न चित्तवृत्तिपूर्वक वीतराग प्रभुकी आराधनासे इष्टसिद्धि प्राप्तकर भक्त उपचारसे कहता है कि परमात्माके प्रसादसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है^१।

इसी दृष्टिसे वीतराग सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गई है।

तिहुवण-भवणप्पसरिय-पच्चक्खवोह-किरण-परिवेदो ।

उड्ओ वि अणत्थवणो अरहंत-दिवायरो जयऊ^२ ॥ २ ॥

अर्थ—वे अरहन्त भगवान्रूपी सूर्य जयवन्त हों, जो तीन लोक रूपी भवनमें फैली हुई ज्ञानकिरणोंसे व्याप्त हैं, तथा जो उदित होते हुए भी अस्तको प्राप्त नहीं होते हैं।

भावार्थ—यहाँ अरहन्त भगवान्की सूर्यके साथ तुलना की है। सूर्य स्वपरप्रकाशक है। अरहन्त भगवान्का केवलज्ञान भी स्वपरप्रकाशक है। लोकप्रसिद्ध सूर्यकी अपेक्षा अरहन्त-सूर्यमें विशेषता है। लौकिक सूर्य जब कि मध्यलोकके थोड़ेसे प्रदेशको आलोकित करता है, तब अरहन्त सूर्य सकल विश्वको प्रकाशित करता है। सूर्यका उदय और अस्त होता है, किन्तु केवलज्ञान-सूर्यका उदय तो होता है, पर अस्त नहीं। जब केवल्यका प्रकाश आत्मामें उत्पन्न हो चुका, तब उस सर्वज्ञ आत्माकी ज्ञानज्योतिको कर्मपटल पुनः कैसे ढाँक सकेंगे? अतः केवल-ज्ञानसूर्य उदययुक्त होते हुए भी अस्तरहित है। वह अनन्तकाल पर्यन्त प्रकाशित रहता है। अरहत्सूर्यकी किरणें ज्ञानात्मक हैं, लौकिक सूर्यकी किरणें पौद्गलिक हैं।

ति-रयण-खग्ग-विहाएणुत्तारिय-मोह-सेण-सिर-णिवहो ।

आहरिय-राउ पसियउ परिवालिय-भविय-जिय-त्तोओ ॥ ३ ॥

अर्थ—जिन्होंने रत्नत्रयरूपी खड्गके प्रहारसे मोहरूपी सेनाके शिर-समूहका नाश कर दिया है तथा भव्य-जीव-लोकका परिपालन किया है वे आचार्य महाराज प्रसन्न हों।

भावार्थ—यहाँ आचार्य महाराज की राजासे तुलनाकी गई है। जैसे कोई प्रतापी राजा अपनी प्रचण्ड तलवारके प्रहारसे शत्रुसैन्यका नाश करता है, उसी प्रकार आचार्य परमेष्ठी सन्यग्दर्शन, सन्यग्ज्ञान तथा सन्यक्चारित्र्य रूपी अजेय खड्गसे मोहरूपी सेनाके मस्तकोंका नाश करते हैं। जिस प्रकार राजा अत्याचारीका अन्त करके धर्मपरायण प्रजाका रक्षण करता है, उसी प्रकार आचार्य महाराज मोहका ध्वंस करके भव्यात्माओंका रक्षण

(१) “प्रसादः पुनः परमेष्ठिनस्तद्विनेयानां प्रसन्नमनोविषयत्वमेव, वीतरागाणां तुष्टिद्वयप्रसादा-सम्भवात् क्रोधासम्भवत् । तदारावकजनैस्तु प्रसन्नेन मनोवशात्प्रमानां भगवान् प्रसन्न इत्यनिर्णीयते रसायनवत् । यथैव हि प्रसन्नेन मनसा रसायनमासेव्य तत्फलमानुष्यन्तः सन्तो रसायनप्रसादादिदमत्मा-कमारोग्यादिकलं समुत्पन्नमिति प्रतिपद्यन्ते तथा प्रसन्नेन मनसा भगवन्तं परमेष्ठिनमुपास्य तदुपासन-फलं श्रेयोमार्गाधिगमलक्षणं प्रतिपद्यमानास्तद्विनेयजनाः सगर्वजन्मेष्ठिनः प्रसादादस्माकं श्रेयोमार्गाधिगमः सम्पन्न इति समनुमन्यन्ते ।”—आप्तप० पृ० २, ३ । (२) “नात्तं कदाचिदुपयाचि न राहुगम्यः स्वर्गकरोपि सहसा युगलज्जगन्ति ॥ नाग्नोपरोदरनिरुद्धमाप्रभावः सूर्यादिशादिभिर्दिशामि मुनीन्द्र लोके ॥”—भक्तार० श्लो० १७ ।

करते हैं। मोहके कारण संसारमें भव्य जीव बहुत कष्ट पा रहे थे। आचार्य महाराजने रत्नत्रयसे अपनी आत्माको सुसज्जित करके अपनी पुण्य अभय वाणी तथा जीवनदात्री लेखनीके द्वारा जो वीतरागताकी धारा बहाई, उससे भव्यात्माओंके अन्तःकरणमें जो मोहका आतङ्क था, वह दूर हुआ और उन्होंने अपने निज रूपकी उपलब्धि की। भव्यात्माओंको जब भी मोहका आतङ्क व्यथा पहुँचाता है, तब ही वे आचार्य महाराजके चरणोंका आश्रय ले अभय अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

अण्णाणयंधयारे अणोरपारे भमंत-भवियाणं ।

उज्जोओ जेहिं कओ पसियंतु सया उवज्झाया ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसके ओर-छोरका पता नहीं है, ऐसे अज्ञान-अन्धकारमें भटकनेवाले भव्यजीवोंको जिन्होंने प्रकाश प्रदान किया है वे उपाध्याय प्रसन्न होवें ।

भावार्थ—यहाँ अज्ञानको अन्धकारकी उपमा दी गई है। जिस प्रकार अन्धकारके कारण चक्षुष्मान् व्यक्ति अन्धेकी भौंति प्रकाशरहित स्थलमें आचरण करता है, उसी प्रकार सम्यक्-ज्ञानज्योतिके अभावमें यह जीव परद्रव्यको स्व मान कर तथा आत्मतत्त्वको अनात्म पदार्थ मान कर अन्धेके समान प्रवृत्ति करता है। इस मिथ्याज्ञानरूप अन्धकारके आदि-अन्तका पता नहीं चलता है। वह अपार है। उसमें भव्य जीव भटक रहे हैं और परकी अपना मानकर दुःखी हो रहे हैं। यह मिथ्याज्ञानका ही प्रभाव है कि जीव कल्याणके मार्गको न पाकर चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता फिरता है। जैसे अन्धकारमें भटकनेवाले जीवोंको प्रकाशका दर्शन होते ही हित-मार्ग सूझने लगता है उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठीके प्रसादसे सम्यक्ज्ञानका प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे यह मोहान्ध प्राणी पञ्च परावर्तन रूप संसारका पर्यटन छोड़कर शिवपुरकी ओर उन्मुख हो जाता है।

उपाध्यायके समीप सविनय आकर भव्यात्माएँ आगमका अभ्यास करती हैं, और सम्यक्-ज्ञानका लाभ करती हैं, इस कारण अज्ञान अन्धकार निवारण करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीसे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गई है।

दुह-तिव्व-तिसा-विणदिय-तिहुवण-भवियाण सुट्टराएण ।

परिठविया धम्म-पवा सुअ-जल-वाणप्पयाणेण ॥ ५ ॥

अर्थ—दुःखरूप तीव्र प्याससे पीड़ित तीनलोकके भव्योंके प्रति प्रशस्त रागवश जिन्होंने श्रुतज्ञानरूपी जल पिलानेके लिए धर्मरूप प्रपा-प्याऊ स्थापित की है वे उपाध्याय सदा प्रसन्न होवें ।

भावार्थ—इस जगत्के प्राणियोंकी विषयोंकी लालसासे जनित सन्ताप सदा दुःखी करता है। महान् पुण्यशाली देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी विषयतृष्णाके तापसे नहीं बच सके हैं। उनकी तृष्णाग्नि तो और अधिक प्रज्वलित रहती है। इस तृष्णाकी शान्तिके लिए यह जीव विषयोंका सेवन करता है, किन्तु इससे वेदना तनिक भी न्यून न होकर उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुआ करती है। जिस प्रकार पिपासाकुल व्यक्तियोंकी तृपानिवृत्ति-निमित्त उदार पुरुष प्याऊकी व्यवस्था

(१) “अण्णाणघोरतिमिरे दुरंततीरिहिं हिंडमाणां । भवियाणुजोवरा उवज्झाया वरमदि देतुं ॥” —ति० प० गा० ४ । (२) “विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागमं धृतास्त्वन्धीयते न उपाध्यायः ।” —त० रा० पृ० ३४६ ।

करते हैं, जिससे सबको मधुर शीतल जलकी प्राप्ति हो, उसी प्रकार उपाध्याय परमेश्वरने परम करुणाभावसे विषयोंकी तृष्णासे सन्तप्त भव्योंके कल्याणार्थ श्रुतज्ञानरूप प्रपा स्थापित की है। उनके द्वारा शास्त्रका उपदेश होते रहनेसे तथा आगमका शिक्षण होनेसे भव्यात्माओंकी विषयतृष्णा कम होती जाती है और वे आत्मोन्मुख बनकर विषयोंकी आशा ही नहीं करती हैं। श्रुतज्ञान प्रपाके जलका पान करनेसे भोगोंकी अभिलाषारूप तृषा दूर होती है तथा आत्मा, स्वरूपकी उपलब्धि कर, महान् शान्तिका लाभ करती है। द्वादशशङ्करूप महाशास्त्र-सिन्धुमें अवगाहन कर अपनी पिपासाकी शान्तिसाधारण आत्माएँ नहीं कर पाती हैं अतः उनके हितार्थ प्रपा बनाई गई, जहाँ अपनी मन्दमतिरूपी चुल्लूमें श्रुतरूपी पानी भर कर आत्मा पिपासाकी शान्ति करती है। जितना जितना यह जाव श्रुतज्ञानके रसका पान करता है और अपनी आत्माको तृप्त करता है, उतना उतना वह संतापमुक्त हो शान्ति लाभ करता है।

संधारिय-सीलहरा उत्तारिय-चिरपमाद-दुस्सीलभरा।

साहू जयंतु सव्वे सिवसुह-पह-संठिया हु णिग्गलियभयो ॥ ६ ॥

अर्थ—जिन्होंने शीलरूप हारको धारण किया है, चिरकालीन प्रमाद तथा कुशीलके भारको दूर कर दिया है, जो शिव-सुखके मार्गमें स्थित हैं तथा निर्भीक हैं, वे सर्व साधु जयवन्त हों।

भावार्थ—हारके धारण करनेसे कण्ठ शोभनीक मालूम पड़ता है, इसीलिए साधुओंने शीलरूप हारसे अपने कण्ठको भूषित किया है। कण्ठमें स्थित हार प्रत्येकके देखनेमें आता है, साधुओंकी अचेल वृत्ति होनेके कारण उनके शीलरूपी हारको प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है। प्रायः संसारी जन प्रमाद तथा कुशील (अनात्मभाव) में निमग्न रहा करते हैं, किन्तु मुनिराज प्रमादोंका परित्याग करते हैं, तथा ब्रह्मचर्यमें निमग्न रहनेके कारण कुशील भावसे दूर रहते हैं। निरन्तर कर्मशत्रुओंका संहार करनेमें संलग्न रहनेके कारण उनके पास प्रमादका अवसर ही नहीं आता है। आत्मकल्याणमें वे सदा सावधान रहते हैं। महर्षि पूज्यपार्दके शब्दोंमें वे मुनिराज बोलते हुए भी मौनीके समान रहते हैं, गमन करते हुए भी नहीं गमन करते हुए सरीखे हैं, देखते हुए भी नहीं देखते हुए सदृश हैं, कारण उन्होंने आत्मतत्त्वमें स्थिरता प्राप्त की है। सम्पूर्ण परिग्रहका परित्याग करके तथा सकल संयमको अङ्गीकार करनेके कारण वे निराकुलतापूर्ण यथार्थ निर्वाण सुखके मार्गमें प्रवृत्त हैं। उन्हें जीवनकी न ममता है, न मृत्युका भय है। तिलतुपमात्र भी परिग्रह न रहनेसे किसी प्रकारकी भीति नहीं है। वे आत्माको अजर-अमर तथा अविनाशी आनन्दका भण्डार समझ भयमुक्त रहते हैं। ऐसे साधुओंके प्रसादसे वन्दक निर्विघ्न ग्रन्थसमाप्तिके लिए मङ्गलकामना करता है।

[मूलग्रन्थका मङ्गल]

महाकर्म-प्रकृति-प्राभृतके प्रारम्भमें गौतम गणधरद्वारा विरचित मङ्गलको वहाँसे उद्धृत कर भूतबलि आचार्य इस शास्त्रका मङ्गल मान ग्रन्थारम्भ करते हैं। द्रव्यार्थिक न्यायित भौव्य जीवोंके अनुग्रहार्थ गौतम स्वामी सूत्रका प्रणयन करते हुए कहते हैं—

(१) “धीरधिरियज्जलमाला ववगयराया जसोहउहत्ता । बहुविगय-भूतिवंगा सुदाइं साहू पयच्छंतु ॥”—
ति० प० गा० ५ । (२) “श्रुक्कमि हि न ब्रूते गच्छमि न गच्छति । स्थिराकृतात्मतत्त्वत्तु पश्यमि न पश्यति ॥”—इटोप० इलो० ४१ । (३) “एवं दच्चट्ठिय-जगायुग्गइण्डं गमोक्कारं गोदममयारधो
महाकम्मयडिगहुडल्ल आदिहि काज्ज”.....—घ० टी० ।

णमो जिणाणं^१ ॥ १ ॥

अर्थ—जिन भगवान्को नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिन शब्दसे तात्पर्य उन श्रेष्ठ आत्माओंसे है—जिन्होंने सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमें निविड रूपसे निबद्ध घातिया कर्मरूप मेघपटलको दूर करके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त दानादि नव केवल लब्धियोंको प्राप्त किया है । जिन्होंने अनेक विषम भवोंके गहन दुःख प्रदान करनेवाले कर्मशत्रुओंको जीता है—निर्जरा की है, वे जिन हैं । जिन्होंने घातिया कर्मोंका नाश किया है वे सकल अर्थात् पूर्णरूपसे जिन कहलाते हैं । उनमें अरहन्त और सिद्ध गर्भित हैं । आचार्य, उपाध्याय तथा साधु एकदेश जिन कहे जाते हैं ।

शङ्का—इसपर विशेष प्रकाश डालने की दृष्टिसे सूत्रके टीकाकार वीरसेनाचार्य कहते हैं—यह सूत्र क्यों कहा गया ?

समाधान—मङ्गलके लिए कहा गया है । पुनः प्रश्न उठता है कि मङ्गल क्या है ? पूर्व-सञ्चित कर्मोंका विनाश मङ्गल है ।

शङ्का—यदि मङ्गलका यह भाव है, तो यह सूत्र निष्फल है कारण जिनेन्द्रके मुखसे विनिर्गत है अर्थ जिसका, जो अविसंवादसे केवल-ज्ञानके समान है तथा वृषभसेनादि गणधर देवोंके द्वारा जिनकी शब्दरचना की गई है ऐसे सर्व सूत्रोंके पठन, मनन तथा क्रियामें प्रवृत्त सम्पूर्ण जीवोंके प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणी रूपसे पूर्व सञ्चित कर्मोंकी निर्जरा होती है । कदाचित् यह मङ्गलसूत्र सफल है, तो ग्रन्थरूप सूत्रका अध्ययन निष्फल है, क्योंकि उससे उत्पन्न कर्मक्षयकी उपलब्धि इसके ही द्वारा हो जायगी ।

समाधान—यह ठीक नहीं है । सूत्राध्ययनद्वारा सामान्यरूपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है, किन्तु इस मङ्गल सूत्रसे स्वाध्यायमें विघ्नकारक कर्मका नाश होता है । इस कारण मङ्गल सूत्रका प्रारम्भ हुआ ।

शङ्का—तीव्र कषाय, इन्द्रिय तथा मोहका विजय करनेसे सकल जिनोंका नमस्कार

(१) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं ।” — भ० क० य० १ । “ॐ ह्रीं जिणाणं” — भ० क० य० २ । (२) “सकलात्मप्रदेश-निविड-निबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्तज्ञानादिनव-केवललब्धिवान् जिनः ।” — गो० जी० जी० प्र० । “अनेकविषमभवगहनदुःखप्रापणहेतून् कर्मारतीन् जयन्ति, निर्जरयन्तीति जिनाः ॥” — गो० जी० मं० प्र० टी० । (३) किमट्टमिदं बुच्यते ? मंगलं । किं मंगलं ? पुण्यसंचयकम्मविणासो । जदि एवं तो जिणवयणविणिग्गयत्थादो अविसंवादेण केवलणागसमाणादो उरहसेणादिगणहरदेवेहि विरइयसहरयणादो सव्वसुत्तादो तप्पडण-गुणण-किरियावावदाणं सव्वजीवाणं पडिसमयमसंखेज्जगुणसेडीए पुण्यसंचिदकम्मणिज्जरा होदि ति णिफफलादिसुत्तमिदि । अह सफलमिदं, णिफफलं सुत्तज्जयणं, ततो समुवजायमाणकम्मकवयस्स एत्थेवोवलंभो ति । ण एस दोसो, सुत्तज्जयणेण सामण्यकम्मणिज्जरा कीरदे एदेण पुण सुत्तज्जयण-विग्य-फल-कम्मविणासो कीरदि ति, भिण्णविसयत्तादो सुत्तज्जयणविग्यफलकम्मविणासो सामण्यकम्मविरोहसुत्तवभासादो चेव होदि ति मंगलसुत्तारंभो । “जिगा दुविहा सयल-देवजिगमेदण । खवियघाइकम्मा सयलजिगा । के ते ? अरिहंतसिद्धा । अयरे आइरिय-उवज्जान-साहू देवजिगा, तिव्वकसाय-इंदियमोहविजयादो ।” — ध० टी० वे० ।

(४) “सयलसयलजिणद्वितिरयणाणं ण समाणत्तं, संपुण्णासंपुण्णाणं समानत्तविरोहादो । संपुण्ण-तिग्य-णज्जसं संपुण्ण-तिरयणाणि ण करेति, असमानत्तादो ति । ण, दंतनगायचरणा-मुप्पन्नसमानत्तवत्तादो ।

पापनाशक हो, कारण उनमें सम्पूर्ण गुणोंका सद्भाव पाया जाता है, किन्तु यह बात देशजिनोंमें नहीं पाई जाती। अतः 'णमो जिणाणं' सूत्रद्वारा अरहन्त-सिद्धके सिवाय आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीका नमस्कार मानना युक्तियुक्त नहीं है।

समाधान—रत्नत्रयकी अपेक्षा पाँचों परमेष्ठी समान हैं, कारण सकलजिनोंके समान एकदेश जिनोंमें भी रत्नत्रय विद्यमान हैं। देवत्वके लिए रत्नत्रयके सिवाय अन्य कारण नहीं है। इससे सकल जिनोंके समान देशजिनोंका नमस्कार भी कर्मक्षयकारी जानना चाहिये।

शङ्का—सकल और असकल जिनोंके रत्नत्रयमें समानता नहीं पाई जाती है। सम्पूर्ण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यरूप रत्नत्रय और असम्पूर्ण रत्नत्रयमें समानताका विरोध है। सम्पूर्ण रत्नत्रयका कार्य असम्पूर्ण रत्नत्रय नहीं करते, कारण वे असमान हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यमें समानताकी उपलब्धि नहीं पाई जाती है ?

समाधान—असमानोंका कार्य असमान ही होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। सम्पूर्ण अग्नि के द्वारा क्रियमाण दाह-कार्यकी उपलब्धि उसके अवयवमें भी देखी जाती है। अमृत-के शतघटोंद्वारा सम्पादित किया जानेवाला निर्विषीकरणरूप कार्य चुल्लू भर अमृतमें भी पाया जाता है। रत्नत्रयकी अपेक्षा देश तथा सकल जिनोंमें भेद नहीं पाया जाता है।

अथ पर्यायार्थिक नयाश्रित जीवोंके कल्याणार्थ गौतमस्वामी आगामी सूत्रोंको कहते हैं—

णमो ओहिजिणाणं ॥ २ ॥

अर्थ—अवधिज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—यहाँ 'जिन' शब्दकी अनुवृत्ति आगे भी करनी चाहिए। अवधिज्ञानी देव, नारकी, मनुष्य तथा तिर्यश्च भी होते हैं। उन सबको नमस्कार करनेसे क्या कर्मोंकी निर्जरा हो सकती है ? उससे तो कर्मोंका बन्ध ही होगा। जिन शब्दका ग्रहण करनेसे ऐसी आशङ्काका निराकरण हो जाता है। इससे रत्नत्रय से भूषित अवधिज्ञानियोंको नमस्कार करना यहाँ इष्ट है।

णमो परमोहिजिणाणं ॥ ३ ॥

अर्थ—परमावधिज्ञानधारी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो सव्वोहिजिणाणं ॥ ४ ॥

अर्थ—सर्वावधिज्ञानधारी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो अणंतोहिजिणाणं ॥ ५ ॥

ण च असमागं कज्जं असमागमेवेत्ति गियमा अत्थि, मंयुग्गआग्गिणा कीरमागदाहकज्जउ तदवयवेवि उवलंभादो । अनियवइसएण कीरमाग-गिज्जिरीकरणादिकज्जल अमिय-चुल्लवेवि उवलंभादो वा । ण च तिरयगानं देनजिगट्ठियागं सयलजिगट्ठिएहि भेओ । एवं.....नोदमनडारओ महाकप्पययडिपाहुइल्ल पज्जवट्ठियगयायुग्गइण्डमुच्चरनुत्तानि भगदि ।"—घ० टी० वेदना० प० ६२३।

(१) परमावयवश्च ते जिनाश्च परमावधिजिनाः तेन्यो नमः (१) “ॐ ह्रीं अहे णमोहि-जिणाणं.....”—भ०क०य०३। “ॐ ह्रीं अहे णमोहिजुडोणं”—भ०क०य०१२। (३) “ॐ ह्रीं अहे णमो सव्वोहिजिणाणं.....”—भ०क०य०४। (४) “ॐ ह्रीं अहे णमो अणंतोहिजिणाणं.....”—भ०क०य०५।

अर्थ—अनन्त अवधि^१वाले जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—अनन्त है अवधि-मर्यादा जिसकी, ऐसे केवल-ज्ञान धारक अनन्तावधि जिनोको नमस्कार हो ।

णमो कोट्टबुद्धीणं^२ ॥ ६ ॥

अर्थ—कोष्ठ बुद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार किसी कोठेमें पृथक्-पृथक् तथा सुरक्षित बहुतसे धान्यके बीजोंका सङ्ग्रह रहता है, उसी प्रकार कोष्ठ बुद्धिनामक ऋद्धिमें परोपदेशके विना ही तत्त्वोंके अर्थ, ग्रन्थ तथा बीजोंका अवधारण करके पृथक्-पृथक् अवस्थान किया जाता है । इस बुद्धि में कोष्ठके समान भिन्न-भिन्न बहुत तत्त्वोंकी अवधारणा रहती है (त० रा० अ० ३, पृ० १४३) ।

तिलोपपण्णत्ति में कहा है कि—उत्कृष्ट धारणासम्पन्न कोई पुरुष गुरुके उपदेशसे नाना प्रकारके ग्रन्थोंसे विस्तारपूर्वक लिङ्गसहित शब्दरूप बीजोंको अपनी बुद्धिसे ग्रहण करके विना मिश्रणके अपनी बुद्धिरूपी कोठेमें धारण करता है, उसे कोष्ठबुद्धि कहते हैं (पृ० २७२) ।

णमो बीजबुद्धीणं^३ ॥ ७ ॥

अर्थ—बीजबुद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जैसे सम्यक् प्रकार हल-बखरसे तैयार की गई उपजाऊ भूमिमें योग्य कालमें बोया गया एक भी बीज बहुत बीजोंको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार नोइन्द्रियावरण, श्रुत-ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम-प्रकर्षसे एक बीज पदके ग्रहण द्वारा अनेक पदार्थोंको जानने वाली बीजबुद्धि है । (राजवा० पृ० १४३) ।

तिलोपपण्णत्तिमें कहा है—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे विशुद्ध हुई किसी भी महर्षिकी जो बुद्धि, संख्यातस्वरूप शब्दोंके बीचमेंसे लिङ्गसहित एक ही बीजभूत पदको परके उपदेशसे प्राप्त करके उस पदके आश्रय से सम्पूर्ण श्रुतको विस्तार कर ग्रहण करती है, वह बीजबुद्धि है (पृ० २७२) ।

णमो पदानुसारीणं^४ ॥ ८ ॥

अर्थ—पदानुसारी ऋद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—दूसरे व्यक्तिसे एक पदके अर्थको सुनकर आदि, मध्य तथा अन्तके शेष ग्रन्थार्थका निश्चय करना पदानुसारित्व है । यह अनुश्रोतृ, प्रतिश्रोतृ तथा उभयरूप तीन प्रकार है । तिलोपपण्णत्तिमें कहा है—जो बुद्धि आदि, मध्य अथवा अन्तमें गुरुके उपदेशसे एक बीज पदको ग्रहण करके उपरिम ग्रन्थको ग्रहण करती है वह अनुसारिणी बुद्धि है । गुरुके उपदेशसे आदि, मध्य अथवा अन्तमें एक बीज पदको ग्रहण करके जो बुद्धि अधस्तन ग्रन्थको जानती है, वह प्रतिसारिणी बुद्धि कहलाती है । जो बुद्धि नियम अथवा अनियमसे एक बीज शब्दको ग्रहण करनेपर उपरिम और अधस्तन ग्रन्थको एक साथ जानती है वह उभय-सारिणी है । ये पदानुसारित्वके तीन भेद हैं । (गा० ९८१-८३) ।

(१) अन्तश्च अवधिश्च अन्तावधिः । न विद्यतेऽन्तो यस्य सः अनन्तावधिः । अभेदाज्ञीवित्सारिणं संशा । अनन्तावधयश्च ते जिनाश्च अनन्तावधिजिनाः तेभ्यो नमः । अगतोहिजिना ज्ञान केवलगान्निने

(२) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्टबुद्धीणं”-भ० क० य० ६ । (३) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं”-

भ० क० य० ७ । (४) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादानुसारीणं”-भ० क० य० ८ ।

णमो संभिण्णसोदराणं ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्भिन्नश्रोतृत्व नामक ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो^२ ।

विशेषार्थ—नौ योजन लम्बी, चारह योजन चौड़ी चक्रवर्तीकी सेनाके हाथी, घोड़ा, ऊँट तथा मनुष्यादिकोंके एक साथमें उत्पन्न अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अनेक प्रकारके शब्दोंको तपोबलविशेषके कारण सर्वजीव-प्रदेशोंमें कर्ण-इन्द्रियका परिणमन होनेसे सर्व शब्दोंका एक कालमें ग्रहण करना सम्भिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है ।

तिलोपपण्णत्तिमें कहा है—श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा आह्वोपाह्व नाम कर्मके उदय होनेपर श्रोत्रेन्द्रियके उत्कृष्ट क्षेत्रसे बाहर दशों दिशाओंमें संख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रमें स्थित मनुष्य एवं तिर्यञ्चोंके अक्षरात्मक-अनक्षरात्मक बहुत प्रकारके उत्पन्न होने वाले शब्दोंको सुनकर जिससे उत्तर दिया जाता है वह सम्भिन्न-श्रोतृत्व है ।

णमो उजुमदीणं ॥ १० ॥

अर्थ—ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो ।

णमो विउल्लमदीणं ॥ ११ ॥

अर्थ—विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो ।

णमो दसपुञ्जीणं ॥ १२ ॥

अर्थ—दश पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वेगवाली महारोहिणी आदि तीन विद्याओंके द्वारा अपने रूप, सामर्थ्य आदिका प्रदर्शन करनेपर भी अडिग चारित्रधारीका जो दशमपूर्व रूप दुस्तर-सागरके पार पहुँचना है, वह दशपूर्वित्व है । यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अभिन्नदशपूर्वित्वका ग्रहण किया है^६ ।

तिलोपपण्णत्तिमें कहा है—दशम पूर्वके पढ़नेमें रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्याओं तथा अंगुष्ठप्रसेनादिक सात सौ क्षुद्र विद्याओंके द्वारा आज्ञा माँगनेपर भी जो महर्षि जितेन्द्रिय होनेके कारण उन विद्याओंकी इच्छा नहीं करते हैं, वे 'विद्याधरश्रमण' या 'अभिन्नदशपूर्वी' कहलाते हैं । (पृ० २७४) ।

णमो चौदसपुञ्जीणं ॥ १३ ॥

अर्थ—चौदह पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जो सम्पूर्ण श्रुत-केवलीपनेको प्राप्त हैं, वे चतुर्दशपूर्वी कहलाते हैं ।

(१) “ॐ ह्रीं अहं णमो अरिहंतां णमो संभिण्णसोदराणं” —भ० क० य० ६ । (२) सम्यक् श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमेन निन्नाः अनुविद्धाः सम्निन्नाः । सम्निन्नाश्च ते श्रोतारश्च सम्भिन्नश्रोतारः । (३) “ॐ ह्रीं अहं णमो ऋजुमदीणं” —भ० क० य० १३ । (४) “ॐ ह्रीं अहं णमो विउल्लमदीणं” —भ० क० य० १४ । (५) “ॐ ह्रीं अहं णमो दसपुञ्जीणं” —भ० क० य० १५ । (६) “एत्थ दसपुञ्जिगो निग्गानिग्गमेदग्ग दुन्निहा होंति । निग्गदसपुञ्जीं कथं पड्डियिस्सं ? जिग्गदसपुञ्जीं । ण च तेसि जिग्गदसपुञ्जि, नग्गदसपुञ्जि जिग्गदसपुञ्जीं ।” —व० टी० । (७) “ॐ ह्रीं अहं णमो चउदसपुञ्जीं” —भ० क० य० १६ ।

णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं ॥ १४ ॥

अर्थ—अष्टाङ्ग महानिमित्त विद्या में प्रवीण जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—^२अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न—ये आठ महानिमित्त कहे जाते हैं । सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, ताराओंके उदय, अस्त आदिसे भूत भविष्यतसम्बन्धी फलका ज्ञान करना अन्तरिक्ष ज्ञान है । पृथ्वीके घन, सुषिर, रुक्षतादिके ज्ञानसे अथवा पूर्वादि दिशाओंमें सूत्रनिवास करनेसे वृद्धि, हानि, जय, पराजय आदिका ज्ञान करना तथा भूमिमें छुपे हुए स्वर्ण, चाँदी आदिका परिज्ञान करना भौम ज्ञान है । अङ्ग प्रत्यङ्गोंके देखने आदिसे त्रिकालवर्ती सुख दुःखादिको जान लेना अङ्गज्ञान है । अक्षरात्मक या अनक्षरात्मक शुभ अशुभ शब्दको सुनकर इष्ट अनिष्ट फलको जान लेना स्वर ज्ञान है । मस्तक ग्रीवा आदि में तिल, मशक आदि चिह्नोंको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हित-अहितका जानना व्यञ्जन ज्ञान है । श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, भृङ्गार, कलश आदि लक्षणोंको देखकर त्रिकालवर्ती स्थान, मान, ऐश्वर्य आदिका विशेष ज्ञान करना लक्षण नामक निमित्त ज्ञान है । वस्त्र, शस्त्र, छत्र, जूता, आसन, शयनादिकोंमें देव, मानुष, राक्षसादि विभागोंसे शस्त्र कण्टक चूहा आदिकृत छेदनको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हानि, लाभ, सुख, दुःखादि को सूचित करना छिन्न नामक ज्ञान है । वात, पित्त, कफ दोषोंके उदयसे रहित व्यक्तिके रात्रिके पिछले भाग में, चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, समुद्र, आदिका मुखमें प्रवेश करना सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका उपगूहन आदि शुभ स्वप्न तथा घृत या तैललिप्त अपना शरीर देखना, गर्दभ, ऊँट पर चढ़े हुए इधर-उधर भटकते फिरना आदि अशुभ स्वप्नके दर्शनसे आगामी जीवन, मरण, सुख, दुःखादिका ज्ञान करना स्वप्नज्ञान है । इन महानिमित्तोंमें जो कुशलता है, वह अष्टांगमहानिमित्तता है । (त० रा० पृ० १४३) ।

णमो विउज्जगपत्ताणं ॥ १५ ॥

अर्थ—वैक्रियिक ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—विक्रियाको विषय करनेवाली ऋद्धिके अनेक भेद हैं । जैसे अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदि । शरीरको अत्यन्त छोटा करना 'अणिमा' है । इस ऋद्धिके प्रभावसे कमल-मृणालके छिद्रमें प्रवेश करके वहाँ ठहरने तथा चक्रवर्तीके परिवारकी विभूतिको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है । अपने शरीरको मेरु पर्वतसे भी विशाल करना 'महिमा' ऋद्धि है । शरीरको वायुसे भी हलका करना 'लघिमा' है । शरीर को वज्रसे भी अधिक भारी बनाना 'गरिमा' है । भूमिपर स्थित रहते हुए भी अंगुलीके कोनेसे मेरु शिखर, सूर्य आदि को स्पर्शन करनेकी सामर्थ्यको 'प्राप्ति' कहते हैं । जलमें पृथ्वीके समान चलना, भूमिपर जलके समान तैरना 'प्राकाम्य' ऋद्धि है । तीन लोककी प्रभुता 'ईशित्व' है । सम्पूर्ण जीवोंको वश करनेकी सामर्थ्य 'वशित्व' है । पर्वतके भीतर भी आकाशमें गमनागमनके समान विना रुकावटके आना-जाना 'अप्रतिघात' है । अदृश्य रूप होनेकी सामर्थ्य अन्तर्धान है । युगपत् अनेक आकार और रूप बनानेकी शक्ति 'कामरूपित्व' है ।

^३यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे देवोंका अष्ट गुण ऋद्धि होते हुए भी ग्रहण नहीं

(१) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं”—भ० क० य० १७ । (२) “वंगं सरो वंजलक्खणाणि छिण्णं च भौमं सुमिणंतरिक्खं । एदे गिनिचे हि पराहि पिच्चा जानंति लोपत्त सुहासुहाइं ॥”—ध० टी० प० ६२७ । (३) “अट्ठगुणद्धिजुत्ताणं देवाणं एतो पमोक्कारो किम पावदे ? ण एस दोत्तो, जिजसद्वाणुवट्टणेण तग्गिराकरणादो । ण च देवाणं जिजत्तन्ति । तत्थ संज्जाभावादो ॥”—ध० टी० ।

किया गया है कारण देवों में संयम का अभाव है ।

णमो विज्जाहराणं ॥ १६ ॥

अर्थ—विद्याधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—विद्या तीन प्रकार की होती हैं । मातृ पक्षसे प्राप्त जातिविद्या है । पितृपक्षसे प्राप्त कुलविद्या है । पृष्ठ अष्टम आदि उपवास करनेसे सिद्ध की गई तपविद्या है । यहाँ देव तथा विद्याधरोंका ग्रहण नहीं किया गया है, कारण वे जिन नहीं हैं ।

णमो चारणाणं ॥ १७ ॥

अर्थ—चारण ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जल, जङ्घा, तन्तु, पुष्प, पत्र, अग्नि-शिखादिके आलम्बनसे गमन करना 'चारण' ऋद्धि है । कुँआ वावड़ी आदिमें जलकायिक जीवोंकी विराधना नहीं करते हुए भूमिके समान चरणोंके उठाने-धरनेकी प्रवीणताको 'जलचारण' कहते हैं । भूमिसे चार अंगुल ऊँचे आकाशमें जङ्घाके उठाने-धरनेकी कुशलतासे सैकड़ों योजन गमन करनेकी प्रवीणता 'जङ्घाचारण' है । इसी प्रकार इस ऋद्धिके अन्य भेद हैं ।

णमो पण्हसमणाणं ॥ १८ ॥

अर्थ—प्रज्ञाश्रमण जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—असाधारण प्रज्ञा शक्तिधारी प्रज्ञाश्रमण कहलाते हैं । अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वार्थ-चिन्तनके प्रभावसे चौदह पूर्वोंके विषयमें पृछे जाने पर जो द्वादशाङ्ग चतुर्दश पूर्वको बिना पढ़े हुए भी उत्कृष्ट श्रुतावरण और वीर्यान्तरायके त्रयोपशमसे उत्पन्न असाधारण प्रज्ञाशक्तिके लाभसे निश्चय हो निरूपण करते हैं वे प्रज्ञाश्रमणधारी हैं ।

तिलोचपण्णत्ति (पृ० २७७) में प्रज्ञाके चार भेद कहे हैं—औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी तथा कर्मजा । भवान्तरमें कृत श्रुतके विनयसे उत्पन्न होनेवाली औत्पत्तिकी, निज निज जाति-विशेषमें उत्पन्न हुई पारिणामिकी, द्वादशाङ्गश्रुतकी विनयसे उत्पन्न वैनयिकी एवं उपदेशके बिना तपविशेषके लाभसे उत्पन्न कर्मजा कहलाती है ।

यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेसे असंयतोंका निराकरण हो जाता है ।

णमो आगासगामीणं ॥ १९ ॥

अर्थ—आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—पल्यङ्गासन वा कायोत्सर्ग आसनसे ही पैरोंको बिना उठाए-धरे आकाशमें

(१) "ॐ ह्रीं अहे णमो विज्जाहराणं"—भ० क० य० १९ । (२) "तत्थ सगमादुपक्खादो लद्धविज्जाओ जादिविज्जाओ णान । पितृपक्खलद्धाओ कुलविज्जाओ । छट्ठमादिउपवासविहाणेहि साहिदाओ तवविज्जाओ । एवनेदाओ तिविहाओ हंति ।"—घ० टी० । (३) "ॐ ह्रीं अहे णमो चारणाणं"—भ० क० य० २० । (४) "ॐ ह्रीं अहे णमो पण्हसमणाणं"—भ० क० य० २१ । (५) "औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा प्रज्ञा । प्रज्ञा एव श्रवणं वेदां ते प्रज्ञाश्रवणाः । असंज्ञदाणं न पण्हसमणाणं गहणं जिगसद्वाणुत्तरीदो ।"—घ० टी० । (६) "ॐ ह्रीं अहे णमो आगासगामीणं"—भ० क० य० २२ ।

गमन करनेको विशेषताको आकाश-गमन ऋद्धि कहते हैं। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेके कारण देव विद्याधरोंका निराकरण हो जाता है।

णमो आसीविसाणं^१ ॥ २० ॥

अर्थ—आशीविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

उग्र विषयुक्त आहार भी जिनके मुखमें जाकर निर्विष हो जाता है वा जिनके मुखसे निकले हुए वचनोंके श्रवणसे महाविषयुक्त व्यक्ति निर्विष हो जाता है, वे 'आस्याविष' ऋद्धिधारी हैं। महान् तपोबलसे विभूषित यतिजन जिसको कहें 'तू मर जा' वह तत्क्षण ही महाविष-युक्त हो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, वह 'आस्यविष' ऋद्धि है। इस प्रकार 'आस्य अविष', तथा 'आस्य विष' दोनों प्रकारके अर्थ कहे गए हैं^२।

णमो दिष्टिविसाणं^३ ॥ २१ ॥

अर्थ—दृष्टिविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके देखने मात्रसे अत्यन्त तीव्र विषसे दूषित भी प्राणी विषरहित हो जाता है वे 'दृष्टिविष' ऋद्धिधारी हैं। उग्र तपस्वी मुनिजन क्रुद्ध हो जिसे देख लें, वह उसी समय उग्र विषयुक्त हो मर जाता है। इसे भी दृष्टिविष ऋद्धि कहते हैं। यहाँ भी 'जिन' शब्द की अनुवृत्ति है, अन्यथा दृष्टिविष सर्पोंको भी प्रणामका प्रसङ्ग आता^४। यद्यपि साधुजन तोष अथवा रोषसे मुक्त हैं, फिर भी तपस्याके कारण उनमें उपर्युक्त विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसका उपयोग बीतराग ऋषिगण नहीं करते हैं।

णमो उगगतवाणं^५ ॥ २२ ॥

अर्थ—उग्र तपवाले जिनों को नमस्कार हो।

विशेषार्थ—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह दिन वा पक्ष मासादिके अनशन योगोंमें किसी भी उपवासको प्रारंभ करके मरणपर्यन्त भी उस योगसे विचलित नहीं होना उग्रतप ऋद्धि है।

णमो दीप्तिववाणं^६ ॥ २३ ॥

अर्थ—दीप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—महान् उपवास करनेपर भी जिनकी मन वचन कायकी शक्ति बढ़ती हुई ही पाई जाती है, जो दुर्गन्धरहित मुखवाले, कमल-उत्पलादिकी सुगंधके समान स्वासवाले तथा शरीरको महाकान्ति से संपन्न हैं, वे दीप्ततपस्वी जिन हैं।

(१) "ॐ ह्रीं अहं णमो आसीविसाणं"—भ० क० प० २३। (२) "अविघ्नानस्तार्यस्य अशंसमाशीः, आशीर्विषं येषां ते आशीर्विषाः। तपोबलेन एवंविहसत्तिसंस्तुतवयना होदूना जे जीवानं गिगाहाणुनाहं ण कुणंति। ते आसीविसा चि धेतवा। कुदो? जिगाणुउत्तीदो। ण च जिगाहाणुगरे हि संदरिसिदरोसतोसाणं जिगत्तमत्थि विरोधादो।"—ध० टी०। (३) "ॐ ह्रीं अहं णमो दिष्टिविसाणं"—भ० क० प० २४। (४) "दृष्टिरिति चक्षुर्नसोग्रहं।" जिगत्तमत्थि अणुवदे, अण्णहा दिष्टिविसाणं तप्पाणं पि णमोकारप्पत्तंगदो।"—ध० टी०। (५) "ॐ ह्रीं अहं णमो उगगतवाणं"—भ० क० प० २५। (६) "ॐ ह्रीं अहं णमो दीप्तिववाणं"—भ० क० प० २६।

णमो तत्तत्तवाणं^१ ॥ २४ ॥

अर्थ—तप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—तप्त लोहेकी कढ़ाई में पतित जलकणके समान शीघ्र ही जिनका अल्प आहार शुष्क हो जाता है उसका मल रुधिरादि रूपमें परिणमन नहीं होता वे तप्ततपस्वी हैं ।

णमो महातपवाणं^२ ॥ २५ ॥

अर्थ—महातपधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—सिंहनिष्क्रोडितादि महान् उपवासादि के अनुष्ठानमें परायण महातपस्वी हैं ।

णमो घोरतवाणं^३ ॥ २६ ॥

अर्थ—घोर तपधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वात, पित्त, कफकी विपमतासे उत्पन्न ज्वर, खाँसी, श्वास, नेत्रपीड़ा, कुष्ठ प्रमेहादि रोगोंसे पीड़ित शरीरयुक्त होते हुए भी जो अनशन, कायक्लेशादि तपोंसे अविचलित रहते हैं तथा भयंकर श्मशान, पर्वत-शिखर, गुहा, दरी, शून्य ग्राम आदिमें, जहाँ अत्यन्त दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच वेताल भयंकर रूपका प्रदर्शन कर रहे हैं एवं जहाँ शृगालके कठोर शब्द, सिंह व्याघ्र सर्प आदिके भीषण शब्द, हो रहे हैं ऐसे भयङ्कर प्रदेशों में सहर्ष रहते हैं वे घोर तपस्वी हैं ।

णमो घोरपरक्रमाणं^४ ॥ २७ ॥

अर्थ—घोर पराक्रमवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त तपस्वी जब ग्रहण किए गए तपकी साधनामें वृद्धि करते हैं, तब वे घोर पराक्रमी कहलाते हैं ।

तिलोपपण्णत्ति (पृ० २८१) में कहा है—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनिजन अपनी अनुपम सामर्थ्यसे कंटक, शिला, अग्नि, पर्वत, धूम्र और उल्का आदिके पात करनेमें तथा सागरके समस्त जल का शोषण करनेमें समर्थ होते हैं, वह घोर पराक्रम ऋद्धि है ।

णमो घोरगुणाणं^५ ॥ २८ ॥

अर्थ—घोर गुणवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

णमोऽघोरब्रह्मचारीणं^६ ॥ २९ ॥

अर्थ—अघोर ब्रह्मचर्यधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वीरसेनाचार्य कहते हैं—जिनमें तपोमाहात्म्यसे मारी आदि रोग, दुर्भिक्ष,

(१) “ॐ ह्रीं अहं णमो तत्तत्तवाणं.....” —भ० क० य० २७ । (२) “ॐ ह्रीं अहं णमो महातवाणं.....” —भ० क० य० २८ । (३) “ॐ ह्रीं अहं णमो घोरतवाणं.....” —भ० क० य० २९ । (४) “घोरा रज्ज्वा गुणा जेवि ते घोरगुणा । कथं चौरासीदिल्लङ्घगुणां घोरत्तं ? घोरकक्कासिच्चिज्जनादो । तेहिं घोरगुणां णमो इदि उच्चं होदि ।” —घ०टी० । (५) “ॐ ह्रीं अहं णमो घोरस्तफलानं.....” —भ० क० य० ३१ । (६) “ॐ ह्रीं अहं णमो घोरगुणां.....” —भ० क० य० ३० । (७) “ॐ ह्रीं अहं णमो घोरगुणब्रह्मचारीणं.....” —भ० क० य० ३२ ।

त्रै, कलह, वध, बंधन आदिके प्रशमन करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, वे अघोर ब्रह्मचारी हैं^१ ।

अकलंक स्वामी राजवार्तिक (पृ० १४४) में अघोरके स्थानमें घोर पाठ मानकर यह अर्थ करते हैं—जो चिरकालसे अखंड ब्रह्मचर्यके धारक हैं और चारित्रमोहके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे जिनके दुःस्वप्नों का विनाश हो चुका है वे घोर ब्रह्मचारी हैं ।

तिलोयपण्णक्तिकार (पृ० २८२) कहते हैं—जिस ऋद्धिसे मुनिके क्षेत्रमें चोरादिककी बाधा, दुष्काल तथा महायुद्ध आदि नहीं होते हैं, वह अघोर ब्रह्मचारित्व है । अथवा चारित्रनिरोधक मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेसे जो ऋद्धि दुःस्वप्नोंको दूर करती है वह अघोर ब्रह्मचारित्व है । अथवा जिस ऋद्धिके होनेसे महर्षिजन सब गुणोंके साथ अघोर अर्थात् अविनाशी ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, वह अघोर ब्रह्मचारित्व है ।

णमो आमोसहिपत्ताणं^१ ॥ ३० ॥

अर्थ—आमर्ष औषधि प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनके हस्त, चरणादिका स्पर्श हो औषधि रूप बन जाता है, उनको आमर्ष औषधिप्राप्त कहते हैं ।

णमो खेलोसहिपत्ताणं^२ ॥ ३१ ॥

अर्थ—क्षेलौषधि प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनका निष्ठीवन (थूक) औषधिरूप अर्थात् रोगनिवारक होता है, वे मुनिराज क्षेलौषधि प्राप्त हैं ।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं^३ ॥ ३२ ॥

अर्थ—जल्लौषधि ऋद्धिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—पसीनेसे मिले हुए धूलिसमूह रूप मलको जल्ल कहते हैं । जिन मुनियोंका जल्ल औषधिरूप होता है, वे जल्लौषधि प्राप्त जिन कहलाते हैं ।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं^४ ॥ ३३ ॥

अर्थ—सर्वौषधि ऋद्धि प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनके अंग, प्रत्यंग, नख, दन्त, केशादि अवयव तथा उनका स्पर्श करनेवाले पत्रनादि जीवोंके लिए औषधिरूप परिणत हो जाते हैं, वे सर्वौषधिप्राप्त जिन हैं ।

(१) “ब्रह्म चारित्रं पञ्चव्रतसमितित्रिगुप्त्यात्मकं शान्तिपुष्टिहेतुत्वात् । अघोराः अन्ताः गुणाः यस्मिन् तदघोरगुणं अघोरगुणं ब्रह्म चरन्तीति अघोरगुणब्रह्मचारिणः । जेसि तवोमाहप्पेण मारिदुब्भिम्व्वैर-कलहवधबंधनरोगादिपसमणसत्ती समुप्पण्णा ते अघोरगुणब्रह्मचारिणो त्ति उत्तं होदि । एत्थ अकारो किन्नि सुणिज्जेदे ? संधिणिहेसादो ।” —ध० टी० । (२) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं”—भ० क० य० ३४ । (३) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं”—भ० क० य० ३५ । (४) “ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं”—भ० क० य० ३३-३७ ।

णमो विद्वोसहिपत्तानं ॥ ३४ ॥

अर्थ—जिनका मल औषधिरूप परिणत हो गया है, उन जिनों को नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनका मूत्र पुरीषादि मल रोगनिवारक होता है, वे विघ्नौषधिप्राप्त हैं । महान् तपश्चर्याके प्रभावसे यह सामर्थ्य प्राप्त होती है ।

णमो मणवलीणं ॥ ३५ ॥

अर्थ—मनवलीवारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—नोडिन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके प्रकर्षसे अन्तर्मुहूर्तमें ही संपूर्ण श्रुतके अर्थ-चिन्तनमें प्रवीण मनोवली हैं ।

णमो वचनवलीणं ॥ ३६ ॥

अर्थ—वचनवली जिनों को नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—मन, रसना तथा श्रुतज्ञानावरण एवं वीर्यान्तरायके क्षयोपशमके अतिशयसे जो अन्तर्मुहूर्तमें संपूर्ण श्रुतके उच्चारण करनेमें समर्थ हैं तथा निरन्तर उच्चस्वरसे उच्चारण करनेपर भी जो श्रमरहित एवं कंठके स्वरमें हीनतारहित हैं वे ऋषि वचनवली हैं ।

णमो कायवलीणं ॥ ३७ ॥

अर्थ—कायवली जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण शरीरबल होनेसे मासिक, चातुर्मासिक, वार्षिक आदि प्रतिमायोग धारण करते हुए भी जिन्हें खेद नहीं होता वे मुनिवर कायवली हैं ।

तिलोपपण्णत्ति(पृ० २८३) में कहा है जिस ऋद्धिके बलसे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर मुनिराज मास या चातुर्मास आदि कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रमरहित होते हैं तथा शीघ्र ही तीनों लोकोंको कतिपय अंगुली पर उठाकर अन्यत्र धरनेमें समर्थ होते हैं, वह कायबल नामको ऋद्धि है ।

णमो क्षीरसवीणं ॥ ३८ ॥

अर्थ—क्षीरसवी ऋद्धिवारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—नीरस भोजन भी जिनके हस्त-पुटमें रखे जानेपर क्षीर-गुणरूप परिणमन करता है वा जिनके वचन क्षीण व्यक्तियोंको दुग्धके समान क्षुद्रि प्रदान करते हैं वे क्षीरसवी हैं । तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृ० १४४) में 'क्षीरसवी' पाठ ग्रहण किया है ।

णमो सप्पिसवीणं ॥ ३९ ॥

अर्थ—सुतन्त्री जिनोंको नमस्कार हो ।

(१) "ॐ ह्रीं अहं णमो विद्वोसहिपत्तानं"—भ० क० य० ३६ । (२) "ॐ ह्रीं अहं णमो मणवलीणं"—भ० क० य० ३८ । (३) "ॐ ह्रीं अहं णमो वचनवलीणं"—भ० क० य० ३९ । (४) "ॐ ह्रीं अहं णमो कायवलीणं"—भ० क० य० ४० । (५) "ॐ ह्रीं अहं णमो क्षीरसवीणं"—भ० क० य० ४२ ।

विशेषार्थ—रूक्ष भोजन भी जिनके कर-पात्रमें पहुँचते ही घृतके समान शक्तिदायक हो जाता है अथवा जिनका संभाषण जीवोंको घृत-सेवनके समान वृत्ति पहुँचाता है, वे घृतस्त्रवी हैं।

णमो मधुसवीर्णं ॥ ४० ॥

अर्थ—मधुस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमें रखा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसपूर्ण तथा शक्ति-संपन्न हो जाता है, अथवा जिनके वचन दुःखी श्रोताओंको मधुके समान संतोष देते हैं, वे मधुस्रवी हैं। यहाँ मधु शब्दका तात्पर्य मधुररसवाले गुड़, खाँड, शर्करा आदिसे है, कारण उन सबमें मधुरता पाई जाती है।^२

णमो अमृसवीर्णं ३ ॥ ४१ ॥

अर्थ—अमृतस्त्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्तपुटमें पहुँचकर कोई भी भोज्य वस्तु अमृतरूप हो जाती है, अथवा जिनकी वाणी जीवोंको अमृततुल्य कल्याण देती है, वे अमृतस्त्रवी हैं।

णमो अक्लीणमहाणसाणं ४ ॥ ४२ ॥

अर्थ—अक्षीण महानस ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—लाभान्तरायके क्षयोपशमके उत्कर्षको प्राप्त मुनीश्वरोंको जिस पात्रसे आहार दिया जाता है, उससे यदि चक्रवर्तीका कटक भी भोजन करे, तो उस दिन अन्नको कमी न पड़े यह अक्षीण महानस ऋद्धि है। तिलोपपण्णत्ति (पृ० २८५) में कहा है—लाभान्तरायके क्षयोपशमसे संयुक्त मुनिराजके भोजनानन्तर भोजनशालाके अवशिष्ट अन्नमेंसे जिस किसी भी प्रिय वस्तुका उस दिन चक्रवर्तीके कटकको भोजन करानेपर भी लेशमात्र क्षीण न होना अक्षीण महानस ऋद्धि है।

णमो सन्वसिद्धायदणाणं ॥ ४३ ॥

अर्थ—संपूर्ण सिद्धायतनोंको नमस्कार हो।

णमो वड्डमाणबुद्धिरिसिस्स ५ ॥ ४४ ॥

अर्थ—वर्धमान बुद्धि ऋद्धिधारी ऋषिको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—वड्डमाणके स्थान पर यदि 'वट्टमाण' पाठ माना जाय, तो उसका अर्थ 'वर्तमान' बुद्धि ऋद्धिधारी होगा।

(१) “ॐ ह्रीं अर्हे णमो मधुरसवाणं”—भ० क० य० ४३ । (२) “मधुवयणेण गुडखंडसक्करादीणं गहणं मधुरसादं पडि एदासिं साहसुवलंभादो ।”—ध० टी० । (३) “ॐ ह्रीं अर्हे णमो अमियसवानं”—भ० क० य० ४४ । (४) “ॐ ह्रीं अर्हे णमो अक्लीणमहाणसाणं”—भ० क० य० ४५ । (५) “ॐ ह्रीं अर्हे णमो वड्डमाणं”—भ० क० य० ४६ । “ॐ ह्रीं अर्हे णमो सन्वसिद्धायं महति महावीरवड्डमाणबुद्धिरिसिणं”—भ० क० य० ४८ । तमस्त मंगल सूत्रोंमें पढ़ी विभिन्न या घंहुवचन प्रयुक्त हुआ है, अतः संभावना होती है कि—‘वड्डमाणबुद्धिरिसिस्स’के स्थानमें ‘वट्टमाण-बुद्धिरिसिणं’ पाठ होना चाहिए ।

[प्रकृति ससुत्कीर्तननिरूपणा]

[इस महावंध अथवा महाधवल शास्त्रका प्रारंभिक ताड़पत्र नं० २९ नष्ट हो गया है उसकी उसी रूप में पूर्ति होना असंभव है। आगेके वर्णनक्रमके साथ सम्वन्ध मिलानेकी दृष्टिसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा अवधिज्ञानावरण का संक्षेपमें वर्णन करते हैं, कारण ग्रंथमें ज्ञानावरण पर आरंभमें प्रकाश डाला गया है।]

जो त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण, पर्यायोंको नाना भेदों सहित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे जानता है, उसे ज्ञान कहते हैं।^१ उस ज्ञानका आवरण करनेवाला ज्ञानावरण कर्म है। यह ज्ञान जीवका स्वभाव है। इसके द्वारा जीव स्व तथा अपूर्व अर्थका व्यवसाय-निरचय करता है। वस्तु सामान्य तथा विशेष धर्मोंसे समन्वित है। वस्तुके विशेष अंशका ग्रहण करनेवाला ज्ञान है। सामान्य अंशका ग्रहण करनेवाला दर्शन कहलाता है। ज्ञान तथा दर्शन जीवके पृथक् पृथक् गुण हैं।^२ चित्-प्रकाशकी वहिर्मुख वृत्तिको ज्ञान कहते हैं और चित्-प्रकाशकी अंतर्मुख वृत्तिको दर्शन कहते हैं। इस दर्शनका आवरण करनेवाला कर्म दर्शनावरण है। जो इन्द्रियोंद्वारा अपने अपने विषयका अनुकूल अथवा प्रतिकूल रूपसे अनुभव करावे, वह वेदनीय कर्म है। जो जीवको मोहित करे, वह मोहनीय कर्म है। भव धारण करने में कारण आयु कर्म है। इस जीवकी नर-नारकादि विविध पर्यायोंमें कारण नाम कर्म है। कुल परम्परासे प्राप्त जीवके उच्च अथवा नीच आचरणका कारण गोत्रकर्म है। इस जीवके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य (शक्ति) में जो अन्तराय-बाधा डालता है, वह अन्तराय कर्म है। इन आठ कर्मोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह तथा अन्तरायको घातिया कर्म कहते हैं, कारण ये जीवके अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख तथा अनंतवीर्य नामक गुणोंका घात करते हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य जीवके अनुजीवी गुण हैं। सिद्धोंके^३ अव्याबाध सुखका घात आठों ही कर्म करते हैं। प्रत्येक कर्मका कार्य जीवके विशेष गुणके घात करनेका है, किन्तु उन सबका सामान्य धर्म जीवके सुख गुणके भी विनाश करनेका पाया जाता है।

वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र ये प्रतिजीवी गुणोंका नाश करते हैं। अनुजीवी गुणोंका घात न करनेके कारण इनको अघातिया कर्म कहते हैं। ये क्रमशः अव्याबाध, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व तथा अगुरुलघुत्व गुणोंका नाश करते हैं। चार घातियाका नाश करनेवाले अरहंत भगवान्में गुण चतुष्टयकी अभिव्यक्ति होती है। तथा सिद्धोंमें कर्माष्टकके ध्वंस करनेसे आठ गुण व्यक्त होते हैं।^४ कर्मोंके ध्वंसका अर्थ पुद्गलका अत्यन्त क्षय नहीं है, कारण सत्का अत्यन्त विनाश नहीं हो सकता। पुद्गलकी कर्मत्वपर्यायका नष्ट हो जाना अर्थात् आत्माके साथ उसका सम्वन्ध न रहना ही कर्मक्षय है।

ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृतियाँ हैं—आभिनिवोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यवज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ये आवरणपंचक आभिनिवोधिक

(१) “जाग्रद्व त्रिकालवितण द्रव्यगुणे पत्रण य बहुमेदे । पञ्चकस्त्वं च परोक्षं अणेण गाणे चि णं वेति ॥”-गो० जी० गा० २९८ । (२) “अन्तर्हिर्मुखोश्चित्प्रकाशयोर्दर्शनज्ञानव्यवदेशमाजोरेकत्व-विरोधात् ।”-घ०टी०भा० १ पृ० १४५ । (३) “कर्माष्टकं विपक्षि त्यात् सुखत्यैकगुणस्य च । अस्ति किञ्चित् कर्मैकं तद्विपक्षं ततः पृथक् ॥”-पञ्चाध्यायी २।११५ । (४) “मणेर्मलादेव्यावृत्तिः क्षयः । सतोऽत्यन्तविनाशानुपपत्तेः । तादृगात्मनोऽपि कर्मणो निवृत्तौ पश्चिद्धिः ।”-अष्टसह० पृ० ५३ ।

ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञान रूप ज्ञानकी पाँच अवस्थाओं-को आवृत्त करते हैं। मिथ्यात्वके उदयसे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानको मत्त्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगज्ञान कहते हैं। इन तीन ज्ञानोंको कुज्ञान भी कहते हैं।

^१इन्द्रिय तथा मनकी सहायतासे अभिमुख तथा प्रतिनियत पदार्थको जानने-वाला आभिनिबोधिक या मतिज्ञान कहलाता है। ^२मतिज्ञानद्वारा गृहीत अर्थसे जो अर्थान्तरका बोध होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। ^३द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षा जिस प्रत्यक्षज्ञानके विषयकी अवधि या सीमा हो, उसे अवधिज्ञान या सीमाज्ञान कहते हैं। परकीय मनमें स्थित पदार्थको जो ज्ञान जानता है, उसे मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं। त्रिकालगोचर सर्वद्रव्यों तथा उनकी समस्त पर्यायोंको ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान है।

[आभिनिबोधिकज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो आभिनिबोधिक ज्ञानावरण कर्म है, वह चार, चौबीस, अट्ठाईस तथा वत्तीस प्रकार-का है। अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणाका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण, ईहावरण, अवा-यावरण तथा धारणावरण कर्म है। विषय और विषयीके सन्निपातके अनंतर पदार्थका आद्य ग्रहण अवग्रह है। इसका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण कर्म है। अवग्रहके द्वारा गृहीत अर्थके विषय-में विशेष जाननेकी इच्छाके बाद भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञानको ईहा कहते हैं। उसका आवारक कर्म ईहावरण कर्म है। इसके अनंतर भाषा, वेष आदिका विशेष ज्ञान होनेसे जो संशयादिका निराकरण करके निर्णयरूप ज्ञान होता है, वह अवाय है। उसका आवारक अवायावरण कर्म है। अवाय ज्ञानके विषयभूत पदार्थके कालान्तरमें स्मरणका कारण धारणा-ज्ञान है। उसका आवारक धारणावरण कर्म है।

अवग्रहावरण कर्मके अर्थावग्रहावरण तथा व्यंजनावग्रहावरण कर्म ये दो भेद हैं। अव्यक्त पदार्थका ग्रहण करना व्यंजनावग्रह है। यह इन्द्रियोंसे सम्बद्ध अर्थका होता है। इसके विपरीत स्वरूपवाला अर्थावग्रह है। व्यंजनावग्रहका आवारक व्यंजनावग्रहावरण कर्म है तथा अर्थावग्रहका आवारक अर्थावग्रहावरण कर्म है। व्यंजनावग्रह चक्षु तथा मनको छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा श्रोत्र इन्द्रियसे होता है। अत एव इसके स्पर्शनेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म, रसनेन्द्रिय-व्यंजनावग्रहावरण कर्म, घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म तथा श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म ये चार भेद होते हैं।

अर्थावग्रह व्यक्त वस्तुका ग्रहण होनेके कारण पाँच इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है। इस कारण उसके आवारक स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्म और नो-इन्द्रियावरण कर्म हैं। ईहा, अवाय तथा धारणा ज्ञान भी पाँच इन्द्रिय तथा मनसे होनेके कारण अर्थावग्रहके समान प्रत्येक छह-छह भेदवाला है। इस कारण व्यंजनावग्रहके चार भेदोंमें अर्थाव-ग्रहादिके चौबीस भेदोंको मिलानेसे २८ भेद होते हैं। अत एव मतिज्ञानावरण कर्मके भी २८ भेद हो जाते हैं। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव, निःसृत, अनिःसृत-इन बारह प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेके कारण प्रत्येकके द्वादश भेद हो जाते हैं। इस प्रकार $28 \times 12 = 336$ भेद मतिज्ञानके हैं। अत एव मतिज्ञानावरण कर्मके भी ३३६ भेद होते हैं।

(१) “तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्”-त० सू० १।१४। (२) “अथादो अतपंकरमुत्पत्तिं तं मति-सुदणाम्। आभिनिबोधियपुर्वं गियमेगिह सहजं पदुम् ॥”-नो० जी० ३१४। (३) “अवहीदि चि ओदः सीमाणापोत्ति वणियं समये। भवगुणवसयविहियं जमोहिणाणे चि मं देति ॥”-नो० जी० ३६९।

[श्रुतज्ञानावरणप्ररूपणा]

मतिज्ञानके द्वारा जाने गए पदार्थसे पदार्थान्तरका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। वह 'नित्य शब्द-निमित्तक है अथवा अन्य-निमित्तक है' ऐसी शंकाका निराकरणके लिए उस श्रुतज्ञानको मति-पूर्वक कहा है। यद्यपि श्रुतज्ञानपूर्वक भी श्रुतज्ञान होता है, फिर भी श्रुतज्ञानके मतिपूर्वकत्वमें बाधा नहीं आती है। श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, इसका तात्पर्य इतना है कि प्रत्येक श्रुतज्ञानके प्रारंभमें मतिज्ञान निमित्त हुआ करता है। पश्चात् मतिपूर्वकत्वका कोई नियम नहीं है।

उस श्रुतज्ञानके शब्दजन्य तथा लिङ्गजन्य ये दो भेद कहे गये हैं। अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक रूपसे भी उसके दो भेद कहे जाते हैं। श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक या शब्दात्मक मानना उपचरित कथन है। 'श्रुतज्ञानका कारण प्रवचन है, इससे प्रवचनको भी श्रुतज्ञान कह दिया है। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके असंख्यात भेद हैं। अपुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके संख्यात भेद हैं। पुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका प्रमाण इससे कुछ अधिक है। ३३ व्यंजन, २७ स्वर तथा ४ अयोगवाह मिलकर कुल चौसठ मूलवर्ण होते हैं। इन चौसठ वर्णोंके संयोगसे १८४४६७४४०-७३७०९५५१६१५ इन बीस अंक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। उपरोक्त अक्षरोंमें १६३४८-३०७८८८ इन एकादश अंक प्रमाण अक्षरात्मक मध्यम पदका भाग देनेपर लब्धिरूपमें प्राप्त संख्याप्रमाण अंगप्रविष्ट पद होते हैं, जो द्वादशांग-आचारांगदिके नामसे ख्यात हैं।

भाग देनेसे शेष बचे हुए अक्षरोंको अंगवाह्य कहते हैं। अंगवाह्यके सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैतयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुंडरीक, महापुंडरीक तथा निषिद्धिका ये चौदह प्रकार हैं^२। बुद्धिके अतिशय तथा ऋद्धिविशिष्ट गणधरदेवके द्वारा अनुस्मृत जो द्वादशांगरूप जिनवाणीकी ग्रंथरचना है, वह अंगप्रविष्ट है। उन गणधरदेवके शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा आरातीय आचार्योंके पाससे श्रुतज्ञानके तत्त्वको ग्रहण करके कालदोषसे अल्पमेधा, अल्पबल तथा अल्प आयुयुक्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिए उपनिबद्ध संक्षिप्तरूपसे अंगोंके अर्थरूप वचनविन्यासको अंगवाह्य कहते हैं। इस दृष्टिसे आचार्यपरंपरासे प्राप्त तथा जिनवाणीके तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले अन्य ग्रन्थान्तर अंगवाह्य श्रुतमें समाविष्ट होते हैं।

अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानका सबसे छोटा रूप पर्यायज्ञान कहलाता है। उससे कम ज्ञान किसी भी जीवके नहीं पाया जा सकता है। उस ज्ञानको नित्य प्रकाशमान तथा निरावरण कहा है। सूक्ष्म निगोदिया लब्धपर्याप्तक जीव अपने योग्य संभवनीय ६०१२ भवोंमें परिभ्रमण कर अंतके अव्याप्तक शरीरको तीन मोड़ाओंसहित जब ग्रहण करता है, तब उसके प्रथम मोड़ाके समयमें सर्व जघन्य ज्ञान होता है।

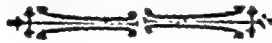
(१) "श्रुतज्ञानस्य कारणं हि प्रवचनं श्रुतमित्युपचर्यते। मुख्यस्य श्रुतज्ञानस्य भेदप्रतिपादनं कथमुपपन्नम् ? तज्ज्ञानस्य भेदप्रभेदरूपत्वोपपत्तेः। द्विभेदप्रवचनजनितं हि ज्ञानं द्विभेदम्। अङ्गवाह्यप्रवचनजनितस्य ज्ञान-स्याङ्गवाह्यत्वात् अङ्गप्रविष्टजनितज्ञानस्याङ्गप्रविष्टत्वात्।" -त० श्लो० पृ० २३६। "तस्य अंगवाहिरस्य चोदस अत्याहियारो, अंगप्रविष्टा अत्याहियारो वारसविहो।" -व० टी० भाग १ पृ० ९६। (२) "तत्राङ्ग-प्रविष्टमङ्गवाह्यं चेति द्विविधमङ्गप्रविष्टमाचारादिद्वादशभेदम्, बुद्धयतिशयार्थयुक्तगगनानुस्मृतग्रन्थरचनम्। आरातीयाचार्यकृताज्ञार्थप्रत्यासन्नरूपमङ्गवाह्यम्। तद्गगनवरशिष्यैः प्रशिष्यैरारातीयैरधिगतश्रुतार्थतत्त्वैः काल-दोषादल्पमेधापुत्रैलानां प्राणिनामनुग्रहार्थमुनिबद्धं संक्षिप्ताज्ञार्थवचनविन्यासं तदङ्गवाह्यम्।" -त० रा० पृ० ५४। (३) "मुहुनिगोदअनज्जत्तस्य जादत्तस्य पदमसमयम्। हवदि तु मज्जज्जत्तं गियुग्घाटं गिराव-रणं ॥ ३१६ ॥ मुहुनिगोदअनज्जत्तस्य पदमसमयम्। चरिमापुण्यतिवक्काणादिमवक्कट्टियेय ह्वे ॥ ३२० ॥" -गो० जी०।

१ इस पर्यायज्ञानसे आगे पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पद-समास, संघात, संघात-समास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत-प्राभृत-समास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व, पूर्व-समास भेद होते हैं।

२ श्रुतज्ञान का विषयभूत अर्थ मनका विषय होता है। श्रुतज्ञानमें मानसिक व्यापार होता है। ऐसी स्थितिमें जिनके मन नहीं है, उन असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके श्रुतज्ञानका अभाव समझा जाना चाहिए था, किन्तु परमागममें कमसे कम छद्मस्थोंके मति तथा श्रुत ये दो ज्ञान नियमतः कहे गए हैं। श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे एकेन्द्रियादिके मन न होते हुए भी श्रुतज्ञानका सद्भाव आगममें वर्णित है। इसका कारण यह है कि असंज्ञी जीवोंमें जो कुछ ऐसी क्रियाएँ पाई जाती है, जिनसे उनके मनके सद्भावको कल्पना होने लगती है उनका कारण मन नहीं है, किन्तु श्लोकवार्तिककार विद्यानन्दी स्वामीके शब्दोंमें मतिसामान्यके समान स्मृतिसामान्य, धारणासामान्य तथा उनके निमित्तरूप अवायसामान्य, ईहासामान्य,^३ अवग्रहसामान्य पाए जाते हैं, जो कि अनादिभवाभ्यासके कारण उत्पन्न होते हैं। उनके क्षयोपशमनिमित्त भावमन नहीं है, कारण वह प्रतिनियत संज्ञी प्राणियोंके होता है। इसका भाव यह है, कि पिपीलिका आदिमें योग्य आहारका ग्रहण, अनुसंधान, अयोग्यका परिहार आदि बातें पाई जाती हैं, उसका कारण मन न होकर स्मृतिसामान्य, धारणा-सामान्य, ईहासामान्य, अवायसामान्य आदि हैं।^३

यहाँ श्रुतज्ञान की प्ररूपणा की गई है। इससे श्रुतज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा कैसे हो जायगी ?' इसके समाधानमें बीरसेनाचार्य* लिखते हैं—यह दोष नहीं है, आवरण किए जानेवाले ज्ञानके स्वरूपकी प्ररूपणाका ज्ञानावरणके स्वरूप-परिज्ञानके साथ अविनाभाव है। इस अविनाभावके कारण श्रुतज्ञानके स्वरूपनिरूपणद्वारा श्रुतज्ञानावरणका परिज्ञान कराया गया है।

इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणकी प्ररूपणा हुई।



(१) "पञ्चायक्खरपदसंघादं पडिवच्चियाणिजोगं च । दुग्गारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुच्चं च ॥
तेसिं च समासेहि य बीसविहं वा हु होदि सुदणाणं । आवरणत्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवन्ति चि ॥"—गो० जी०
३१६, १७ । (२) "श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम् । स विषयोऽनिन्द्रियत्व । अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतम् । तदनिन्द्रिय-
स्यार्थः प्रयोजनमिति यावत् ।"—स० सि० पृ० १०५ । (३) "न चामनस्कानां स्मरणत्वान्नान्वाभावोऽनादिभवंतं नूत-
विषयानुभवोद्भवायाः सामान्यधारणायास्तद्वतोः सद्भावात् आहारसंशसिद्धेः प्रवृत्तिविशेषोपलब्धेः.....ततो
नाममतिवदाहारादिसंज्ञातदेतुश्च स्मृतिसामान्यं धारणासामान्यं च तन्निमित्तमवायसामान्यमीहासामान्यमवग्रह-
सामान्यं च सर्वप्राणिनाधारणमनादिभवाभ्याससम्भूतमनुसंगन्तव्यम् । न पुनः क्षयोपशमनिमित्तं भावमनः,
तस्य प्रतिनियतप्राणिविषयतयानुभूयमानत्वात् ॥"—त० श्लो० पृ० ३२९, ३३० । (४) "सुदणाणं एत्तं पदं
भणिस्समाणा कथं सुदणाणावरणीयत्तं कम्मत्तं परवज्जा होव्व ? ए एत्तं दोहो, आवरणित्त्वरूपवत्त्वत्वात्
तदाहरणत्वरूपधारणाणिनामादितादो ।"—घ० टी० प० १२५५ ।

[अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो अवधिज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकार का है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक भवप्रत्यय अवधिज्ञान, दूसरा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान। अवधिज्ञान सीमाज्ञान भी कहा जाता है, कारण यह द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी मर्यादा से रूपी पदार्थको विषय करता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भव निमित्त है। उस भवमें नियमसे क्षयोपशम होता ही है। जैसे^१ पक्षियोंकी पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके गगन-गमन विषयक क्षयोपशम पाया जाता है, इसी प्रकार देव तथा नारकियोंकी पर्यायमें जानेवाले सम्पूर्ण जीवधारियोंको नियमसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तीर्थंकर भगवान्‌के भी जन्मसे जो अवधिज्ञान होता है, उसे भवप्रत्यय कहा है।^२

सम्यग्दर्शनादि निमित्तोंके सन्निधान होते हुए शान्त तथा क्षीण कर्मवालोंके जो अवधिज्ञान होता है, उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय अवधि कहते हैं। यह जीवके विशेष प्रयत्नपर अवलम्बित रहता है भवमात्र इसमें कारण नहीं है। गुण या क्षयोपशम निमित्तक होनेसे इसे क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं।

अवधिज्ञान के देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि रूपसे तीन भेद और किये जाते हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि के जघन्य भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय तीनों भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय देशावधिका जघन्य असंयमी मनुष्य, तिर्यञ्चोंके पाया जा सकता है। इसके आगेके विकल्प संयमी मनुष्यके ही पाए जाते हैं। परमावधि, सर्वावधि चरमशरीरी मुनिराजके ही पाया जाता है। सर्वावधि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि भेदोंसे रहित है।

^३सम्यक्त्वरहित अवधिज्ञानको विभंगावधि कहते हैं। अवधिज्ञानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व, मिथ्यात्वके सहचारवश उनमें नाममात्रका भेद है।

कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानके समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिवस, पक्ष, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग (पंचवर्ष), पूर्व (सत्तरकोटि छप्पनलक्ष, सहस्र कोटि वर्ष), पर्व (चौरासी लाख पूर्व प्रमाण), पल्योपम, सागरोपम आदि विधान जानना चाहिए।

महावन्धके त्रुटित पत्रमें जो प्रथम पंक्ति है उसमें लिखा है 'अयन, संवत्सर, पल्योपम, सागरोपम आदि होते हैं।' धवला टीकाके प्रकरणसे तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ अवधिज्ञानसम्बन्धी कालका निरूपण चल रहा है।



(१) "यथाकाशे सति पक्षिणो गतिर्भवति तथा ज्ञानावरणक्षयोपशमेऽन्तरङ्गे हेतौ सत्यवधेर्भावः, भवस्तु बाह्यो हेतुः। कथं पुनर्भवो हेतुः? इति चेत् ;व्रतनियमाद्यभावात्। यथा तिरश्चां मनुष्याणां चाहंसादिव्रतनियमहेतुकोऽवधिर्न तथा देवानां नारकाणां चाहंसादिव्रतनियमाभिसन्वित्रति। कुतो भवं प्रतीत्य क्रमोदयस्य तथाभावात्। तस्मात् तत्र भव एव बाह्यसाधनमुच्यते।"—त० रा० पृ० ५४, ५५। "यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसन्निधाने सति शान्तक्षीणकर्मणां तस्य उपलब्धिर्भवति।"—त० रा० पृ० ५६। (२) "देसोहिंस्र य अवरं परतिरिये होदि संजदन्दि वरं। परमोही सञ्जोही चरमशरीरस्स विरदस्स। पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवंति सेसाओ। निच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥ दव्वं खेत्तं कालं भावं पडिह विजागदे ओही। अवरादुक्कसोत्ति य विषयपरदिदो दु सञ्जोही ॥"—गो० जी० २०३-७५। (३) "दोष्णं पि ओहिणागत्तं पडि मेदाभावाद्। ण च सम्मत्त-निच्छत्तसहचारेण कदणाममेदादो मेदो अत्थि. अहप्पसंगादो।.....कालदो ताव समवावल्लियखण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उदु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पल्लिदोवम-सागरोवमादो विधवो णादव्वा भवंति।"—व० टी० प० १२५८।

.....[अत्र सप्तविंशतितमं ताडपत्रं त्रुटितम्].....

§ १ अयणं-संवच्छर-पलिदोवम-सागरोवमादयो भवन्ति ।
 ओगाहणा जहण्णा णियमादो सुहुमणियोदजीवस्स ।
 यद्देहो तद्देही जहण्हयं खेत्तदो ओधी ॥ १ ॥
 अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जा ।
 अंगुलमावलियंतो आवलियं अंगुलपुधत्तं ॥ २ ॥
 आवलियपुधत्तं पुण हत्थोवथा (हत्थं तह) गाउदं मुहुत्तंतो ।
 जोजण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णवीसं तु ॥ ३ ॥
 भैरदं च अद्धमासं साधियमासं [च] जंबुदीवं हि ।
 वासं च मणुसलोगे वासपुधत्तं च रुजु(ज)गम्हि ॥ ४ ॥
 संखेज्जदिमे कालं दीवसमुद्दा हवन्ति संखेज्जा ।
 कालं हि असंखेज्जो दीवसमुद्दा हवन्ति असंखेज्जा ॥ ५ ॥

५

१०

§ १.....अयन संवत्सर पत्योपम सागरोपम आदि होते हैं ।

अवधिज्ञानके क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—सूक्ष्मलघ्वपर्याप्तक निगोदिया जीवकी जघन्य अवगाहना है । जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र उसके शरीरप्रमाण है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्म लघ्वपर्याप्तक निगोदिया जीवके अपनी भवपरंपराके अन्तिम भवके तीसरे समयमें सर्वजघन्य शरीरकी अवगाहना होती है । विग्रहगतिमें तीसरे समयमें निगो-दियाकी शरीराकृति वर्तुलाकार होनेसे सबसे कम क्षेत्रफल रहता है । उतना जघन्या-वधिका क्षेत्र है ।

अब क्षेत्र तथा कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानसम्बन्धी १९ काण्डकोंका निरूपण करते हैं ।

प्रथम काण्डमें अंगुलका असंख्यातवाँ भाग जघन्य क्षेत्र है । आवलीका असंख्यातवाँ भाग जघन्य काल है । अंगुलका संख्यातवाँ भाग उत्कृष्ट क्षेत्र है, आवलीका संख्यातवाँ भाग उत्कृष्ट काल है । दूसरे काण्डकमें घनाङ्गुलप्रमाण क्षेत्र है, कुछ कम आवलीप्रमाण काल है ।

विशेषार्थ—यहाँ दूसरे तीसरे आदि काण्डकोंमें उत्कृष्टकी अपेक्षा वर्णन किया गया है ।

तीसरे काण्डकमें अंगुलपृथक्त्व क्षेत्र है, आवलीपृथक्त्वप्रमाण काल है ॥ २ ॥

चतुर्थ काण्डकमें आवलीपृथक्त्व काल है, हस्तप्रमाण क्षेत्र है । पञ्चम काण्डकमें अंतर्मुहूर्त काल है, एक कोश क्षेत्र है । छठवेंमें भिन्न मुहूर्त (एक समय कम मुहूर्त) काल है । एक योजन क्षेत्र है । सप्तममें कुछ कम एक दिन काल है, २५ योजन क्षेत्र है ॥ ३ ॥

अष्टममें अर्धमास काल है, भरतवर्ष क्षेत्र है । नवममें साधिक मास काल है, जम्बूद्वीप क्षेत्र है । दशममें वर्षप्रमाण काल है, मनुष्य लोकप्रमाण क्षेत्र है । ग्यारहवेंमें वर्षपृथक्त्व काल है, रुचक द्वीप क्षेत्र है ॥ ४ ॥

बारहवेंमें संख्यात वर्ष काल है, संख्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र है । तेरहवेंमें असंख्यात वर्ष काल है, असंख्यात द्वीप समुद्रप्रमाण क्षेत्र है ॥ ५ ॥

(१) गो० जी० गा० ४०३ । (२) “आवलियपुधत्तं पुण हत्थं तह.....”-गो० जी० गा० ४० ।

(३) “भरहम्मि अद्धमासं साधियमासं च जंबुदीवम्हि.....”-गो० जी० गा० ४०५ । (४) “संखेज्जदिमे कालं दीवसमुद्दा हवन्ति असंखेज्जो दीवसमुद्दा हवन्ति असंखेज्जा.....”-गो० जी० गा० ४०६ ।

- तेजाकम्म-सरीरं तेजादव्वं च भासदव्वं च (भासमणदव्वं) ।
 चोद्धव्वमसंखेज्जा दीवसमुदा य वासा य ॥ ६ ॥
 कालो (काले) चदुण्हं बुड्ढी कालो भजिदव्वं खेत्तबुड्ढीए ।
 उड्ढीयं दव्वपज्जयं भजिदव्वं खेत्तकालो य ॥ ७ ॥
 ५ पैरमोधिमसंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय-कालो दु ।
 रूवगदं लभदि दव्वं खेत्तोवममगणि-जीवेहिं ॥ ८ ॥
 पणुवीसं जोयणाणं ओधी वेंतरकुमारवग्गाणं ।
 संखेज्जजोयणाणं जोदिसियाणं जहण्णोधी ॥ ९ ॥
 असुराणमसंखेज्जा जोजणकोडी सैसजोदिसंताणं ।
 संखादीदसहस्सा उक्कस्सेणोधिविसयो दु ॥ १० ॥
 १० संकीसाणे पढमं दो चदु (विदियं) सणक्कुमार-माहिंदे ।
 तच्चदु (तदियं तु) वम्हलंतय सुक्कसहस्सारया चउत्थी ॥ ११ ॥

विशेष, आगामी पञ्च काण्डकोंका द्रव्यकी अपेक्षा कथन है ।

चौदहवेंमें देशावधिके मध्यम विकल्परूप विस्रसोपचयसहित तेजस शरीररूप द्रव्य विषय है । पन्द्रहवेंमें विस्रसोपचयसहित कार्माण शरीर स्कन्ध विषय है । सोलहवेंमें विस्र-सोपचयरहित केवल तेजोवर्गणा विषय है । सत्रहवेंमें विस्रसोपचयरहित केवल भाषावर्गणा विषय है । अठारहवेंमें विस्रसोपचयरहित केवल मनोवर्गणा विषय है ।

तेरहवें, चौदहवें आदि काण्डकोंमें असंख्यातगुणित क्षेत्र तथा असंख्यातगुणित काल है । अर्थात् चारहवें काण्डकके काल तथा क्षेत्रसे असंख्यातगुणित काल तथा क्षेत्र तेरहवें काण्डकमें है । इसी प्रकार आगे जानना चाहिए ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—उन्नीसवें काण्डकमें एक समय कम पत्यप्रमाण काल है, सम्पूर्ण लोकाकाश क्षेत्र है ।

१ कालकी वृद्धि होनेपर द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावरूप चारों वृद्धियाँ होती हैं । क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर कालकी वृद्धि भजनीय हैं अर्थात् हो भी, न भी हो । द्रव्य और भाव (पर्याय) की वृद्धि होनेपर क्षेत्र, काल की वृद्धि भजनीय है ॥ ७ ॥

परमावधिका काल एक समय अधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है, क्षेत्र असंख्यात लोक-प्रमाण है, जो अग्निकायिक जीवोंकी संख्याप्रमाण है । एक प्रदेशाधिक लोकाकाशप्रमाण इसका द्रव्य है ० ॥ ८ ॥

व्यन्तरो तथा भवनवासी देवोंमें जघन्य क्षेत्र पचीस योजन प्रमाण है, ज्योतिषी देवोंका जघन्य क्षेत्र संख्यात योजन है । असुरकुमारोंका उत्कृष्ट क्षेत्र संख्यात कोटि योजन है । शेष नव भवनवासी तथा व्यन्तरो-ज्योतिषियोंका उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात हजार योजन है ॥ ९-१० ॥

सौवर्मद्विकका क्षेत्र प्रथम नरकर्यन्त है । सनत्कुमार माहेन्द्रका दूसरे नरकर्यन्त है ।

(१) “काले चउण्ण उड्ढी...”- गो० जी० गा० ४११ । (२) यह गाथा १६ वें नंबरपर भी पाई जाती है । वर्णनक्रमकी दृष्टिसे यह १६ वें नंबरपर विशेष उल्लेख प्रतीत होती है । (३) गो० जी० गा० ४२५ । (४) गो० जी० गा० ४३६ । (५) “संकीसाणा पढमं विदियं तु सणक्कुमार माहिंदा । तदियं तु वम्हलंतय...”-गो० जी० गा० ४२९ । (६) त० रा० पृ० ५७ । (७) त० रा० पृ० ५७ ।

‘आणदपाणदवासी तथ आरणअरणच्चुदा देवा ।
 पस्संति पंचमखिदिं छट्ठी गेवेज्जया देवा ॥ १२ ॥
 सच्चं पि लोगणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
 ‘संखेते (सक्खेत्ते) य सक्कम्मे रुवगदमणंतभागो य ॥ १३ ॥
 तेजासरीरलंभो उक्कस्सेण दु तिरिक्खजोणीणं ।
 गाउदजहण्णमोधी गिरयेसु य जोजणुक्कस्सं ॥ १४ ॥
 उक्कस्समणुस्सेसु य मणुस्स तेरच्छिण जहण्होधी ।
 उक्कस्सं लोगमेत्तं पडिवादी तेण परं अप्पडिवादी ॥ १५ ॥
 परमोधि असंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय कालो दु ।

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठवासियोंका तीसरे नरकपर्यन्त ; शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार-
 वाले चौथे नरकपर्यन्त जानते हैं ॥ ११ ॥

आनत, प्रानत, आरण, अच्युत स्वर्गवासी पाँचवें नरकतक, नवभ्रैवेयकवासी छठवीं
 पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं ॥ १२ ॥

नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानवासी देव सर्व त्रसनालीको देखते हैं ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—सौधर्मादिकके देव अपने विमानकी ध्वजाके दण्डके शिखरपर्यन्त ऊपर जानते
 हैं । नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानवासी देव अपने विमानके शिखरपर्यन्त ऊपर
 देखते हैं । नीचे बाह्य तनुवात वलयपर्यन्त सम्पूर्ण त्रसनालीको देखते हैं । अनुदिश विमानवाले
 कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण तथा अनुत्तर विमानवाले कुछ कम २१ योजनरहित चौदह राजू
 प्रमाण क्षेत्रको देखते हैं । गाथाके उत्तरार्धमें अवधिके विषयभूत द्रव्यको जाननेका क्रम कहते
 हैं—अपने अपने अवधिज्ञानावरण कर्मके द्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देनेपर अपने क्षेत्रके
 प्रदेशमें से एक एक प्रदेश कम करते जाना चाहिए और यह कार्य नव तक करते जाना चाहिए,
 जब तक कि क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घटते घटते समाप्त न हो जाय । इस प्रकार करनेके
 अनन्तर जो अनन्तभाग प्रमाण द्रव्य अवशिष्ट रहेगा वहाँ वहाँ उतना उतना ही द्रव्यका प्रमाण
 समझना चाहिए ।

३ तिर्यञ्चगतिमें अवधिका उत्कृष्ट द्रव्य तैजस शरीरके द्रव्यप्रमाण है; क्षेत्र भी इतना ही है ।
 अर्थात् तैजस शरीर द्रव्यके परमाणुप्रमाण आकाश प्रदेशोंसे जितने द्वीप, समुद्र व्याप्त किए
 जाँय, उतना है । वह असंख्यात द्वीप समुद्रप्रमाण होता है ॥ १४ ॥

नरकगतिमें अवधिका जघन्य क्षेत्र एक कोस, उत्कृष्ट क्षेत्र एक योजन है ।

उत्कृष्ट देशावधि मनुष्योंमें ही होता है । जघन्य देशावधि मनुष्य, तिर्यञ्चोंमें होता है ।
 उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोकप्रमाण है । यह प्रतिपाती होता है अर्थात् इसके धारकका
 मिथ्यात्वादिमें पतन सम्भव रहता है । परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं ॥ १५ ॥

४ परमावधिका क्षेत्र असंख्यात लोकप्रमाण है जो अभ्रिकायिक जीवोंकी संख्याप्रमाण है ।

(१) गो० जी० गा० ४३० । (२) “सक्खेत्ते य सक्कम्मे” — गो० जी० गा० ४३१ ।

(३) “तिरिक्खज्जुल्लुदेशावधिरुच्यते” — “तेजसरीरप्रमाणं द्रव्यम् । किंच तत् ? अस्संखेज्जुल्लु-
 प्राकाशप्रदेशपरिच्छिन्नाभिरसंख्येयान्निस्त्रेजःशरीरद्रव्यवर्गानिनिर्वर्तितं तावदसंख्येयवर्गाननन्तप्रदेशान्
 जानातीत्यर्थः ।” — त० रा० पृ० ५७ । (४) “परमावधिरुच्यते” — कालः प्रदेशाधिकृतोऽकाशप्रदेशान्तर-
 प्रमाणा अविभागिनः समपास्ते चासंख्याताः संवत्तराः ।” — उ० रा० पृ० ५७ ।

रूवगदं लभदि द्ध्वं खेत्तोवममगणिजीवेहिं ॥ १६ ॥

एवं ओधिणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

§ २. जं तं मणपज्जवणाणावरणीयं कम्मं वंधंतो (कम्मं) तं एयविधं । तस्स दुविह-
परूवणा—उज्जुमदिणाणं चेव विपुलमदिणाणं चेव । यं तं उज्जुमदिणाणं तं तिविधं—उज्जुगं
५ मणोगदं जाणदि । उज्जुगं वचिगदं जाणदि । उज्जुगं कायगदं जाणदि । मण्णेण माणसं
पडिबिंदइत्ता परेसिं सण्णासदि मदिचिंतादि विजाणदि, जीविदमरणं लाभालाभं

परमावधिका काल समयाधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है । इसका द्रव्य प्रदेशाधिक लोकाकाश
प्रमाण है । इसका असंख्यात वर्ष प्रमाण होता है ॥ १६ ॥

विशेष—अवधि ज्ञानके जितने भेद कहे गए हैं, उतने ही अवधिज्ञानावरण कर्म के भेद हैं ।
अवधिज्ञानका अवधिज्ञानावरण कर्मके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है । अतः श्रुतज्ञानके समान
यहाँ भी अवधि ज्ञानके वर्णनद्वारा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका वर्णन हुआ समझना चाहिए ।

इस प्रकार अवधिज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई ।

[मनःपर्ययज्ञानावरणप्ररूपणा]

§ २. यह जो मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है । उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा
है । एक ऋजुमतिज्ञान है, दूसरा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है । जो ऋजुमतिज्ञान है, वह तीन
प्रकारका है । वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है । सरल वचनगत पदार्थको जानता है ।
सरल कायगत पदार्थको जानता है । यह ऋजुमति ज्ञान मनसे—मतिज्ञानसे अन्य जीवके मनको
अथवा मनःस्थित पदार्थको ग्रहण करके मनःपर्ययज्ञानके द्वारा अन्यकी सञ्ज्ञा (प्रत्यभिज्ञान)
स्मृति, मति, चिन्तादिको जानता है ।

विशेषार्थ—मनसे अर्थात् मतिज्ञानसे मनको अर्थात् मानसिक पदार्थको पर्यय—ग्रहण
करना मनःपर्यय ज्ञान है । मतिज्ञानको मन व्यपदेश हुआ । यहाँ मतिज्ञानरूप कार्यमें कारणरूप
मनका उपचारसे व्यपदेश किया गया है । मतिज्ञान मनःपर्ययमें अवलम्बनमात्र है, कारण-
रूप नहीं है । जैसे आकाशमें स्थित चन्द्रदर्शनके लिए वृक्षकी शाखादिकी सीध का
अवलम्बनमात्र लिया जाता है, ^२ चन्द्रदर्शनमें कारण नेत्रकी शक्ति है । इसी प्रकार मनोगतादि
भावोंका परिज्ञान करनेमें मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम कारण है । मन अथवा
मतिज्ञान अवलम्बनमात्र हैं । विपुलमति मनःपर्ययज्ञान मनके द्वारा अचिन्तित अथवा
अर्धचिन्तित पदार्थको भी ग्रहण करता है ।

(१) “परूवणा णाम किं उच्चं होदि ? ओधादेसेहि गुणेणु जीवसमासेणु पज्जत्तीणु णाणेणु सण्णाणु
गदीणु इंदिएणु काएणु जोगेणु वेदेणु क्खाएणु णाणेणु संजमेणु दंसणेणु लेत्ताणु भविएणु अभविएणु सम्मत्तेणु
सणिअसणीणु आहारिअगाहारीणु उवजोगेणु च पत्रचापत्रतविससणेहि विसेसिज्जण जा जीवपरिक्खा गा
परूवणा णाम ।” —व०टी० भा० २ पृ० ४१२ । (२) “यथाऽग्रे चन्द्रमसं पश्यति अग्रमपेक्षाकारणमात्रं भवति,
न च चक्षुरादिवन्निर्वर्तकं चन्द्रज्ञानस्य । तथाऽन्यदीयमनोप्यपेक्षाकारणमात्रं भवति । परकीयमनसि व्यवस्थित-
मर्थं जानाति मनःपर्ययः । ततो नास्त्य तदावच्छः प्रभव इति न मतिज्ञानप्रसङ्गः ।” —त० रा० पृ० ५८ ।

सुहदुक्खं णंगरविणासं देह (देस) विणासं जणपदविणासं अदिबुद्धिं अणावुद्धि-
सुबुद्धिं दुबुद्धिं सुभिक्षं दुभिक्षं खेमाखेमं भयरोगं उब्भमं इब्भमं संभमं वत्त-
माणानं जीवाणं, णो अवत्तमाणानं जीवाणं जाणदि । जहण्णेण गाउदपुथत्तं । उक्कस्सेण
जोजणपुथत्तस्स अब्भंतरादो, णो वहिद्धा । जहण्णेण दो तिणिण भवग्गहणाणि, उक्कस्सेण
सत्तट्ठभवग्गहणाणि गदिरागदि पदुप्पादेदि ।

५

यह ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान 'वत्तमाणानं'-व्यक्तमनवाले (संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय-
रहित मनयुक्त) अन्य जीवोंके एवं अपने अथवा 'वत्तमाणानं'^३-'वर्तमान' जीवोंके, वर्तमानमें
मनःस्थित त्रिकालसम्बन्धी पदार्थको जानता है । अतीत अथवा अनागत मनोगत पदार्थ-
को यह ऋजुमति नहीं जानता है । यह वर्तमान अथवा व्यक्तमनवाले जीवोंके जीवन, मरण,
लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि,
सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय, रोग, उद्भ्रम, इद्भ्रम तथा संभ्रमको
जानता है । यह ऋजुमति जघन्यसे कोसपृथक्त्व, उत्कृष्टसे योजनपृथक्त्वके भीतर जानता है ।
बाहर नहीं जानता है । कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो तीन भव, उत्कृष्टसे सात आठ भव ग्रहण-
सम्बन्धी गति-आगतिका प्रतिपादन करता है ।

(१) "चतुर्गोपुरान्वितं नगरम् । अंगवंगकलिंगमगधादभो देसा णाम । देसस्स एगदेसो जणवओ णाम
जहा सूरसेणकासिगांधारआवन्ति आदओ । सत्थसम्पादिका वृष्टिः सुवृष्टिः । सालीवीहीजवगोधूमादिघाणाणं
सुलहत्तं सुहिक्वं णाम । अरादीणामभावो खेमं णाम । परचक्रागमादओ भयं णाम ।"-ध० टी० प० १२९६ ।

(२) उद्धृतमिदम्-"आगमे ह्युक्तं मनसा मनः परिच्छिद्य परेषां संज्ञादीन् जानातीति ।"-त० राज०
पृ० ५८ । "मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा-सदि-मदि-चित्ता-जीविद-मरणं लाएलाहं सुहदुक्खं
णयरविणासं देसविणासं जगवयविणासं, खेडविणासं, कव्वडविणासं, मडवविणासं, पट्टणविणासं दोणमुह-
विणासणं अइबुद्धि-अणावुद्धि-सुबुद्धि-दुबुद्धि-सुभिक्षं दुभिक्षं खेमाखेम-भयरोगकालसंजुत्ते अत्थे विजा-
णदि ।"-ध० टी० प० १२५८ । "मणेण मदिणाणेण । कथं मदिणाणत्थ मणववएसो ? कजे
कारणोवयारादो । मणम्मि भवं लिंगं माणसं । अथवा मणो चेव माणसो, पडिविंदइत्ता घेत्तूण पत्था
मणपज्जवणाणेण जाणदि ।""मदिणाणेण परेसिं मणं घेत्तूण चेव मणपज्जवणाणेण मणम्मि द्विदमत्थं जानदि चि
भणिदं होदि । एसो गियमो ण विउलमइस्स, अचित्तिदाणं पि अट्टाणं विसईकरणादो ।"-ध० टी० ।

(३) "व्यक्तमनसां जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम् । व्यक्तः स्फुटीकृतोऽर्थश्चिन्तया मुनिर्यतितां
यैस्ते जीवा व्यक्तमनसस्तैरर्थं चिन्तितं ऋजुमतिर्जानाति नेतरैः ।"-त० राज० पृ० ५८ । (४) "पट्टमा-
णभवग्गहणेण विणा दोणि, तेण सह तीणि भवग्गहणाणि जाणदि चि ।"-ध० टी० । पट्टमा
टीका में वीरसेन स्वामी उपरोक्त दोनों दृष्टियों का समन्वय करते हुए लिखते हैं-"व्यक्तं निष्पन्नं
संशयविपर्ययानध्यवसायरहितं मनः येषां ते व्यक्तमनसाः; तेषां व्यक्तमनसां जीवानां परेमानागतदध
सम्प्रन्धि वस्त्वन्तरं जानाति, नाव्यक्तमनसां जीवानां सम्प्रन्धि वस्त्वन्तरम्, तत्र तत्र सामर्थ्यान्नाहम् । अस्मा
वर्तमानानां जीवानां वर्तमानमनोगतं त्रिकालसम्बन्धिनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविपर्ययम् ।"

~ध० टी० प० १२६९ ।

§ ३. यं तं विउलमदिणाणं तं छव्विहं—उज्जुगं मणोगदं जाणदि, उज्जुगं वचिगदं जाणदि, उज्जुगं कायगदं जाणदि, अणुज्जुगं मणोगदं जाणदि, एवं वचिगदं कायगदं च । एवं याव वत्तमाणाणं पि जीवाणं जाणदि । जहण्णेण जोजणपुधत्तं, उक्खस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरादो, णो वहिद्धा । जहण्णेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्खस्सेण ५ असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि गदिरागदिं पदुप्पादेदि ।

एवं मणपज्जवणाणावरणस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

विशेषार्थ—यदि वर्तमान भवको ग्रहण करते हैं तो तीन भव होते हैं । यदि वर्तमानको छोड़ दिया जाय, तो दो भव होते हैं । इस कारण दो भव या तीन भव सम्बन्धी कथनमें विरोधका सङ्काव नहीं रहता है । सात आठ भवकी गति—आगतिके विषय में भी यही समाधान है । वर्तमान भवको सम्मिलित करनेपर आठ भव, उसको छोड़ने पर सात भव होते हैं ।

§ ३. जो विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है, वह छह प्रकारका है । वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है, सरल वचनगत पदार्थको जानता है, सरल कायगत पदार्थको जानता है, कुटिल मनोगत पदार्थको जानता है, कुटिल वचनगत पदार्थको जानता है, कुटिल कायगत पदार्थको जानता है । यह वर्तमान जीव तथा अवर्तमान जीवोंके अथवा व्यक्तमनवाले तथा अव्यक्त मनवाले जीवोंके सुखादिको जानता है ।^१

इसका क्षेत्र जघन्यसे योजन पृथक्त्व, है । यह उत्कृष्टसे मानुपोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर जानता है । बाहर नहीं जानता है ।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानका क्षेत्र ४५ लाख योजन वर्तुलाकार न होकर^२ विष्कम्भात्मक है, चौकोर रूप है । अत एव मानुपोत्तर पर्वतके बाहरके कोणमें स्थित विषयोंको भी विपुलमति-ज्ञानवाला जानता है ।

फालकी अपेक्षा यह जघन्यसे सात आठ भव, उत्कृष्टसे असंख्यात भवोंकी गति आगतिक प्ररूपण करता है ।^३

विशेष—शङ्का—इस मनःपर्ययज्ञानावरण प्ररूपणामें मनःपर्ययज्ञानका निरूपण क्यों किया गया ? ज्ञानमें कर्मत्वका समन्वय कैसे होगा ?

समाधान—मनःपर्ययज्ञानावरणके द्वारा मनःपर्ययज्ञान आवृत्त होता है । यहाँ आवरण किए जानेवाले ज्ञानमें आवरण अर्थात् मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मका उपचार किया गया है ।

इस प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा की गई ।

(१) “चित्थियमचित्थियं वा अदचित्थियमण्यमेयगयं । ओहिं वा विउलमदी ल्हिज्जण विजाणए पच्छा ॥”—गो० जी० गा० ४४८ । (२) “णरलोएत्ति य वयगं विक्कम्मणियामयं ण वट्टमस । तद्दहा तग्गणनदरं मणवज्जवत्तेत्तमुद्धिं ॥”—गो० जी० गा० ४५५ । (३) “दुसतिगम्या हु अवरं सन्टमया हयंति उक्कस्सं । अडगमया हु अवरमसंखेजं विउलउक्कस्सं ॥”—गो० जी० गा० ४५६ ।

§ ४. यं तं केवलणाणावरणीयं कम्मं तं एयविधं । तस्स परूवणा क्कादव्वा भवदि । सयं भगवं उप्पण्णणाणदरिसी सदेवासुरमणुसस्स लोगस्स अगदि-गदिं चयणोपवादं वंधं मोक्खं इद्धिं जुंदिं अणुभागं तक्कं कलं मणो-माणुसिक-भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोगे सव्वजीवाणं सव्वभावे समं सम्मं जाणदि ।

एवं केवलणाणावरणिगस्स कम्मस्स परूवणा क्का भवदि ।

[केवलज्ञानावरण-प्ररूपणा]

§ ४. जो केवलज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है । उसकी प्ररूपणा की जाती है । जिनेन्द्र भगवान्‌को केवलज्ञान तथा केवलदर्शनकी उपलब्धि हो चुकी है । ये स्वयं स्वर्गवासी देव, असुर^३ अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, तिर्यश्च तथा मनुष्यलोककी गति, आगति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, युति (जीवादि द्रव्योंका मिलना) अनुभाग, तर्क, पत्रछेदनादि कला, मनजनित ज्ञान, मानसिक विषय, राज्यादि एवं महाप्रतादिका पालन करना, भुक्ति, कृत, प्रतिसेवित (त्रिकालमें पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा सेवित), आदि कर्म, अनादिकर्म-अरह कर्मको, सर्वलोकमें, सर्वजीवोंके सर्वभावोंको युगपत् सम्यक् प्रकारसे जानते हैं ।

विशेषार्थ—^४केवली भगवान् त्रिकालावच्छिन्न लोक-अलोकसम्बन्धी सम्पूर्ण गुण पर्यायोंसे समन्वित अनन्त द्रव्योंको जानते हैं । “ऐसा कोई ज्ञेय नहीं हो सकता है, जो केवली भगवान्‌के ज्ञानका विषय न हो । ज्ञानका धर्म ज्ञेयको जानना है और ज्ञेयका धर्म है ज्ञानका विषय होना । इनमें विषयविषयिभाव सम्बन्ध है । जब मति और श्रुतज्ञानके द्वारा भी यह जीव वर्तमानके सिवाय भूत तथा भविष्यत कालकी बातोंका परिज्ञान करता है, तब केवली भगवान्‌के द्वारा अतीत, अनागत, वर्तमान सभी पदार्थोंका ग्रहण करना युक्तियुक्त ही है । प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्मके क्षय होने पर आत्मा सकल पदार्थोंका साक्षात्कार कर लेता है । जैसे प्रदीपका प्रकाशन करना स्वभाव है, उसी प्रकार ज्ञानका भी स्वभाव स्व तथा परका प्रकाशन करना है । यदि क्रम-पूर्वक केवली भगवान् अनन्तानन्त पदार्थोंको जानते तो सम्पूर्ण पदार्थोंका साक्षात्कार न हो पाता । अनन्तकाल व्यतीत होने पर भी पदार्थोंकी अनन्त गणना अनन्त ही रहती । आत्माकी असाधारण निर्मलता होनेके कारण एक समयमें ही सकल पदार्थोंका ग्रहण होता है । ‘जब ज्ञान एक समयमें सम्पूर्ण जगत्‌का या विश्वके तत्त्वोंका बोध कर चुकता है, तब आगे वह कार्यहीन

(१) “असुराश्च भवनवासिनः, देवासुरवचनं देशार्पकमिति ज्योतिषां व्यन्तराणां तिरश्चां ग्रहणं कर्तव्यम् ।”-ध० टी० । (२) “जीवादिदव्वाणं मेलणं जुदी । पत्तच्छेद्यादि कला णाम । मणोज्झिदं माणं वा मणो बुध्दे । रजमहव्वयादिपरिपालणं भुत्ती णाम । पंचहि इदि एहि तिसुवि कालेसु जं सेविदं तं पडिसेविदं णाम । आद्यकम्मं आदिकम्मं णाम, अत्यव्वज्जणपज्जायभावेण सव्वेसिं दव्वाणमादि जाणदि चि भणिदं होदि । रहः अन्तरम् । अरहः अनन्तरम् । अरहः कम्मं अरहकम्मं तं जानाति । सुद्धदव्वट्ठियणवदिस्स एण सव्वेसिं दव्वाणमणादिचं जाणदि चि भणिदं होदि ।”-ध० टी० प० १२७२ । (३) असुर व्यन्तरीके भेदविरोधका शापक होते हुए भी यहाँ सुरोंसे भिन्न असुर इत अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । इस वाक्य विषय में असुर शब्दके द्वारा गृहीत हुए हैं ।-ध० टी० । (४) “उर्वद्रव्यसंपादेषु केवलत्वं ।”-त० नू० ११२९ ।

(५) “न खलु शब्दभावस्य कश्चिदगोचरोऽस्ति यत्तु मनसि, तत्त्वगोचान्तरप्रतिषेधत्वात् ।”

श्री शैवे कथमलः स्यादसति प्रतिबन्धने । दाहोऽग्निर्दाहो न स्यादसति प्रतिबन्धने ।”

—अष्टसह० पृ० ४९/५० ।

§ ५. दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पगदीओ। वेयणीयस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ। मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसपगदीओ। आयुगस्स कम्मस्स चत्तारि पगदीओ। णामस्स कम्मस्स चादालीसं बंध-पगदीओ।

§ ६. यं तं गदिणामं कम्मं तं चट्ठविधं-णिरयगदि यात्र देवगदि त्ति। यथा पगदिभंगो

हो जायगा' यह आशङ्का भी युक्त नहीं है; कारण काल द्रव्यके निमित्तसे तथा अगुरुलघुगुणके कारण समस्त वस्तुओंमें क्षण क्षणमें परिणमन-परिवर्तन होता है। जो कल भविष्यत् था, वह आज वर्तमान बनकर आगे अतीतका रूप धारण करता है। इस प्रकार परिवर्तनका चक्र सदा चलनेके कारण ज्ञेयके परिणमनके अनुसार ज्ञानमें भी परिणमन होता है। जगत्के जितने पदार्थ हैं, उतनी ही केवलज्ञानकी शक्ति या मर्यादा नहीं है। केवलज्ञान अनन्त है। यदि लोक अनन्तगुणित भी होता, तो केवलज्ञानसिन्धुमें वह बिन्दुतुल्य समा जाता। इस केवलज्ञानकी प्राप्ति मुख्यतासे ज्ञानावरणके क्षयसे होती है; किन्तु ज्ञानावरणके साथ दर्शनावरण तथा अन्तरायका भी क्षय होता है। इन तीन घातिया कर्मोंके पूर्व मोहका क्षय होता है। मोहक्षय हुए बिना केवल्यकी उपलब्धि नहीं होती है। उज्ज्वल तथा उच्छृष्ट ज्ञानोंको प्राप्तिके लिए मोहज्वरका निवारण होना आवश्यक है। अनन्त केवलज्ञानके द्वारा अनन्त जीव तथा अनन्त आकाशादिका ग्रहण होनेपर भी वे पदार्थ सान्त नहीं होते हैं। अनन्त ज्ञान अनन्त पदार्थ या पदार्थोंको अनन्त रूपसे वताता है, इस कारण ज्ञेय और ज्ञानकी अनन्तता अबाधित रहती है।

इस प्रकार केवलज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई।

[दर्शनावरणादिकर्म-प्ररूपणा]

§ ५. दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृतियाँ हैं-चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल-दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि।

वेदनीय कर्मकी साता तथा असाता-ये दो प्रकृतियाँ हैं।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं-अनन्तानुबन्धो क्रोध, मान, माया, लोभ, अत्रत्या-ख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक्त्व-मित्यात्व, मित्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, लीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

नरक, मनुष्य, तिर्यञ्च, देवायु ये आयु कर्मकी चार प्रकृतियाँ हैं।

नाम कर्मकी बयालीस प्रकृतियाँ हैं-गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अङ्गोपाङ्ग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, द्योत, विहायोगति, त्रस-स्थावर, चादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुखर-दुःखर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थद्वार।

§ ६. इस नामकर्ममें जो गति नामका कर्म है, उसके चार भेद हैं-नरकगति, देवगति, मनुष्य-गति, तिर्यञ्चगति। इस प्रकार जिस प्रकृतिके जितने भेद हैं, उतने भेद समझ लेना चाहिए।

तथा कादव्वो । गोदस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ । अंतराङ्गस्स कम्मस्स पंच पगदीओ ।
एवं पगदिसमुक्तित्तणा समत्ता ।

§ ७. जो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो दुविहो णिद्देसो-ओघेण
आदेसेण य । ओघे णाणंतराङ्गस्स पंच पगदीओ किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो ?
[सव्वबंधो ।] दंसणावरणीयस्स कम्मस्स किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो ? सव्वाओ पगदीओ
बंधमाणस्स सव्वबंधो । तदूणबंधमाणस्स णोसव्वबंधो । एवं मोहणीय-णामाणं ।

गतिके सिवाय नामकर्मकी ये प्रकृतियों भी भेदयुक्त हैं । एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय जाति । औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण शरीर । औदारिकादि रूप पञ्च बन्धन तथा पञ्च संघात । समचतुरस्स, न्यग्रोधपरिमण्डल, कुञ्ज, स्वाति, वामन, हुण्डक-संस्थान । औदारिक-शरीराङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिक-शरीराङ्गोपाङ्ग, आहारक-शरीराङ्गोपाङ्ग । वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, धर्धनाराच, कोलित, असम्प्राप्तासुपाटिका-संहनन । शुक्ल, कृष्ण, नील, पीत, लाल वर्ण । सुगन्ध, दुर्गन्ध । खट्टा, मीठा, चिरपिरा, कटु, कपायला रस । ठंडा, गरम, स्निग्ध, रूक्ष, हलका, भारी, नरम, कठोररूप-स्पर्श । नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी । प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति । ये ६५ उत्तर प्रकृतियों हैं, जो पिण्डरूप से १४ कही गई हैं । ६५ उत्तरभेदवाली पिण्ड प्रकृतियोंमें २८ भेदरहित अपिण्ड प्रकृतियों को जोड़नेपर नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियों होती हैं ।

उच्चगोत्र नीचगोत्रके भेदसे गोत्रकर्म दो प्रकारका है ।

दान-लाभ-भोग-उपभोग तथा वीर्यान्तराय ये अन्तरायकी पाँच प्रकृतियों हैं । सव प्रकृतियों १४८ होती हैं ।

विशेष-इन कर्म प्रकृतियों के विशेष भेद किए जाँय, तो अनन्त भेद हो जाते हैं ।

इस प्रकार प्रकृति-समुत्कीर्तन समाप्त हुआ

[सर्वबन्धनोसर्वबन्ध-प्ररूपणा]

§ ७. जो सर्वबन्ध तथा नोसर्वबन्ध है, उसका ओघ अर्थात् सामान्य और आदेश अर्थात् विशेषसे दो प्रकार निर्देश होता है ।

ओघसे ५ ज्ञानावरण तथा ५ अन्तरायकी प्रकृतियोंका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्व बन्ध ?
[इनका सर्वबन्ध होता है ।]

विशेषार्थ-ज्ञानावरण अथवा अन्तरायके पञ्च भेदोंमें से अन्यतमका बन्ध होनेपर शेष चार भेदोंका नियमसे बन्ध होता है । सर्व भेदोंका बन्ध होनेके कारण इनका सर्वबन्ध कहा गया है ।

प्रश्न-दर्शनावरण कर्मका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है ?

उत्तर-सम्पूर्ण प्रकृतियोंके बन्ध करने वालेके सर्वबन्ध होता है । सर्व प्रकृतियोंमेंसे न्यून प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध है ।

मोहनीय तथा नाम कर्ममें दर्शनावरणके समान जानना चाहिए अर्थात् सर्व प्रकृतियोंके बन्ध करने वालेके सर्वबन्ध और कुछ न्यून प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध होता है ।

वेयणीय-आयु-गोदाणं किं सच्चवंधो णोसच्चवंधो ? णोसच्चवंधो ।

§ ८. एवं याव अणाहारग त्ति, णवरि अणुदिसादि याव सच्चट्ठत्ति दंसणावरणीयमोहणीयाणं णोसच्चवंधो । एदेण वीजेण णेद्वं ।

§ ९. एवं उक्कस्स-वंधो अणुक्कस्स-वंधोपि णेद्वं ।

५ § १०. यो सो जहण्णवंधो अजहण्णवंधो णाम तस्स इमो दुविहो णिहेसो । ओघेण आदेसेण य । णाणंतराह्मस्स पंचविहस्स किं जहण्णवंधो, अजहण्णवंधो ? अजहण्णवंधो । दंसणावरणीय-मोहणीय-णामाणं वि किं जहण्णवंधो, अजहण्णवंधो ? जहण्णवंधो वा अजहण्णवंधो वा । वेदणीय-आयु-गोदाणं किं जहण्णवंधो अजहण्णवंधो ? जहण्णवंधो ।

§ ११. एवं याव अणाहारग त्ति णेद्वं ।

१० § १२. यो सो सोदिय-वंधो अणादिय वंधो ४, तस्स इमो दुविहो णिहेसो । ओघेण आदेसेण य ।

वेदनीय, गोत्र तथा आयुकर्ममें क्या सर्ववन्ध है, अथवा नोसर्ववन्ध है ? नोसर्ववन्ध है ।

विशेषार्थ—साता, असाता वेदनीय, उच्च, नीच गोत्र इन युगलोंमेंसे किसी एकका वन्ध होगा तथा अन्यका अवन्ध होगा । इसी प्रकार आयुचतुष्टयमेंसे अन्यतमका वन्ध होगा, शेषका अवन्ध होगा । इसलिए वेदनीय, गोत्र तथा आयुका नोसर्ववन्ध कहा है ।

§ ८. आदेशसे यह क्रम अनाहारक पर्यन्त जानना चाहिए । विशेषतः यह है कि अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त देवोंमें दर्शनावरण तथा मोहनीयका नोसर्ववन्ध होता है । इस कथन को आगे भी अन्य मार्गणाओंमें सर्व नोसर्ववन्धका वीजभूत समझना चाहिए ।

[उत्कृष्टवन्ध अनुत्कृष्टवन्ध-प्ररूपणा]

§ ९ इसी प्रकार उत्कृष्टवन्ध तथा अनुत्कृष्टवन्धमें भी जानना चाहिए ।

विशेष—सर्ववन्ध नोसर्ववन्धमें ओघ तथा आदेशसे जैसा वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए ।

[जघन्यवन्ध-अजघन्यवन्ध-प्ररूपणा]

§ १०. जो जघन्यवन्ध तथा अजघन्यवन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं । ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तरायका क्या जघन्यवन्ध है या अजघन्यवन्ध है ? अजघन्यवन्ध है । दर्शनावरण, मोहनीय तथा नामकर्मका क्या जघन्यवन्ध है या अजघन्यवन्ध ? जघन्यवन्ध है तथा अजघन्यवन्ध है । वेदनीय, आयु तथा गोत्रका क्या जघन्यवन्ध है या अजघन्यवन्ध ? जघन्यवन्ध है ।

§ ११. अनाहारक मार्गणापर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुववन्ध-प्ररूपणा]

§ १२. जो सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव वन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारका निर्देश है ।

(१) “सादि अगादी ध्रुव अद्धुवो य वंधो दु कम्मट्ठक्कस्स ।

तदियो सादिय सेसो अगादि ध्रुव सेसगो आज्ज ॥” -नो० कर्म० गा० १२२ ।

१३. सादिय-बंधो णाम तत्थ इमं अट्ठपदं एका वा छा वा पगदीओ वोच्छि
ण्णाओ संतिओ भूयो वज्झदि त्ति । एसो सादियबंधो णाम ।

§ १४ एवं मूलपगदि-अट्ठपदमंगा कादच्चा । एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिदेसो-
ओघेण आदेसेण य । ओघेण पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त-सोलसकसाय-
भय-दुगुंछा-तेजा-कम्मइय-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-णिमिण० पंचंतराइयाणं किं सादि० ५
४ ? सादियबंधो वा० ४ । सादासादं सत्तणोकसाय-चदुआयु-चदुगदि-पंचजादि-तिणि-
सरीर-छस्संठाण-तिणि अंगोवंग-छस्संवडण-चत्तारि आणुपुत्वि-परघादुस्सास-आदावुज्जोवं
दोविहायगदि-तसादि-दसयुगलं तित्थयर-णीचुचागोदाणं किं सादि० ४ ? सादिय-
अधुवबंधो ।

§ १५ एवं अचक्खु० । भवसिद्धि० धुवरहिदं । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं । १०

§ १३. सादि बन्धका यह अर्थपद है कि एक कर्म अर्थात् आयु कर्मका, छह कर्मोंका
अर्थात् वेदनीयको छोड़कर शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तराय
रूप छह कर्मोंका बन्ध व्युच्छिन्न होनेके पश्चात् पुनः बन्ध होना सादिवन्ध है ।

विशेषार्थ—आयुका निरन्तर बन्ध नहीं होता है । आयुका बन्ध होकर रुक जाता है,
पुनः बन्ध होता है अत एव इसका सादिवन्ध कहा है । सदा बन्ध न होनेके कारण अध्रुव
भी है । उपशान्त कपाय गुणस्थानमें जब कोई जीव पहुँचता है, तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण,
मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तरायका बन्ध रुक जाता है, वहाँ केवल साता वेदनीयका ही
बन्ध होता है । जब वह जीव गिरकर सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें आता है, तब ज्ञानावर-
णादिका बन्ध पुनः प्रारम्भ हो जाता है । इस कारण ज्ञानावरणादिका सादिवन्ध कहा गया है ।

§ १४. इस प्रकार मूल कर्मप्रकृतिके अर्थपदमंग (प्रयोजनभूत पदोंके भङ्ग) करना चाहिए ।
इस अर्थपदसे इस वातको लक्ष्यमें रखते हुए अर्थात् ओघ तथा आदेश द्वारा दो प्रकार
निर्देश करते हैं ।

ओघका अर्थ सामान्य तथा आदेशका अर्थ विशेष है । ओघसे ५
ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा तेजस, कार्माण, वर्ण, ४
अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके क्या सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये चारों
बन्ध होते हैं ? सादि, अनादि ध्रुव अध्रुव बन्ध होते हैं ।

साता, असाता, भय जुगुप्सा विना ७नोकपाय, ४आयु, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६मन्यान,
३ आङ्गोपाङ्ग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विद्यायोगति, व्रणादि
दस युगल, तीर्थङ्कर, नीचगोत्र, उच्चगोत्र इनके क्या सादि आदि चार बन्ध होते हैं ? सादि
तथा अध्रुव बन्ध है ।

§ १५. ऐसा अचक्खु दर्शनमें जानना चाहिए । भव्यसिद्धियोंमें ध्रुव भंग नहीं है ।
अनाहारकपर्यन्त ऐसा जानना चाहिए ।

(१) "सादी अवन्धवन्धे सेदि अपारुद्धने अपादी हु । अममग्गिहिदं हुते, भवसिद्धि अट्ठपदो ववरी ।"

(२) "पादितिमिच्छकसायभय-तेजस-दुग-णिमिण-वण्णबंधो । एवेण अट्ठपदेण चदुआयु-चदुगदि-पंचजादि-तिणि-
सरीर-छस्संठाण-तिणि अंगोवंग-छस्संवडण-चत्तारि आणुपुत्वि-परघादुस्सास-आदावुज्जोवं
दोविहायगदि-तसादि-दसयुगलं तित्थयर-णीचुचागोदाणं किं सादि० ४ ? सादिय-
अधुवबंधो ।"

—मो० कर्म० ना० १२३-१२४ ।

§ १६. यो सो वंधसामित्तविचयो णाम तस्स इमो [दुविहो] णिहेसो ओघेण आदेसेण य । ओघेण चोद्दस-जीवसमासा णादब्बा भवंति । तं यथा मिच्छादिद्वि याव अजोगिकेवलि त्ति । एदेसिं चोद्दस-जीवसमासाणं पगदिवंधवोच्छेदो कादब्बो भवदि ।

[वन्धस्वामित्वविचय-प्ररूपणा]

§ १६. जो वन्धस्वामित्वविचय है-उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं । ओघसे-मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त चौदह ^१जीवसमास-गुणस्थान होते हैं । इन चौदह जीवसमासों-गुणस्थानोंमें प्रकृतिवन्धकी व्युच्छित्ति कहना चाहिए ।

गुणस्थान	वन्ध व्युच्छित्ति प्राप्त प्रकृतियाँ	विवरण
मिथ्यात्व	१६	मिथ्यात्व, हुण्डसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्मत्रय, विकलेन्द्रिय, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु ।
सासादन	२५	४ अनन्तानुबन्धी, स्थानत्रिक, दुर्भगत्रिक, संस्थान ४, संहनन ४, दुर्गमन, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यञ्चायु ।
मिश्र	०	×
अविरत	१०	अप्रत्याख्यानावरण ४, वज्रवृषभसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिक-आंगोपांग, मनुष्यद्विक तथा मनुष्यायु ।
देशविरत	४	प्रत्याख्यानावरण ४ ।
प्रमत्त संयत	६	अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशकीर्ति, अरति, शोक ।
अप्रमत्तसंयत	१	देवायु ।
अपूर्वकरण	३६	निद्रा प्रचला ये प्रथम भागमें । छठवेंमें तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पंचेन्द्रिय, तैजस, कामांग, आहारद्विक, समचतुरस्र संस्थान, सुरद्विक, दैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुखर, आदेय । चरममें हास्य रति भय जुगुप्सा ।
अनिवृत्तिकरण	५	प्रथम भागमें पुरुषवेद, दूसरेमें सं० क्रोध, ३ रेमें सं० मान, ४ थेमें सं० माया, ५वेंमें सं० लोभ ।
सूक्ष्मसाम्भराय	१६	५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यशःकीर्ति, उद्यगोत्र
उपशांतकपाय	०	×
क्षीणमोह	०	×
सयोगकेवली	१	सातावेदनीय ।
अयोगकेवली	०	×
	१२०	गो० क० गा० ९४-१०२ ।

(१) “एतो इमेसि चोद्दसहं जीवसमासाणं मग्गयट्ठयाए तस्य इमाणि चोद्दस चेव द्वाणाणि णायव्वाणि भवंति । जीवाः समस्यन्ते एवमिति जीवसमासाः । तेषां चतुर्दशानां जीवसमासानां चतुर्दशगुणस्थानानामित्यर्थः ।”—ध० टी० भा० १ पृ० ९१, १३१ ।

§ १७. पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-जसगिति-उच्चागोद-पंच-अंतराइयाणं को बंधगो, अवंधगो ? मिच्छादिट्ठिप्पहुडि याव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा त्ति बंधा । सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजददच्चाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अवंधा ।

§ १८. थीणगिद्धित्तिगं-अणंताणुबंधि० ४-इत्थिवेद-तिरिक्खायु०-तिरिक्खगइ-च- ५ दुसंठाण-चदुसंधाद-तिरिक्खगदिपा० उज्जो० अप्पसत्थविहाय० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो, को अवंधो ? मिच्छादि० सासणसम्मादिट्ठिवंधा । एदे बंधा, अवसेसा अवंधा ।

§ १९. णिदापयलाणं को बंधगो, अवंधो को ? अवंधो (?) मिच्छादिट्ठिप्पहुडि याव अपुव्वकरणपविट्ठ सुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागं १० गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा अवसेसा अवंधा ।

§ २०. सादावेदणीयस्स को बंधगो, को अवंधो ? मिच्छादिट्ठिप्पहुडि याव सयोगकेवली बंधा सजोगकेवलदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे-बंधा, अवसेसा अवंधा ।

§ २१. असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजसगिति को बंधगो को १५ अवंधो ? मिच्छादिट्ठि पहुडि याव अपमत्त (पमत्त) संजदा त्ति बंधा । एदे बंधा अवसेसा अवंधा ।

§ २२. मिच्छत्त-णवुसंगवेद-णिरयाउ-णिरयगदि-चदुजादि-हुं डसंठाण-असंपत्तसेव-

§ १७. ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है, कौन अवन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतपर्यन्त बन्धक हैं । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत द्रव्यके चरम समयतक पहुँच कर अन्तमें बन्धकी व्युच्छित्ति हो जाती है । इसलिये आदिके १० गुणस्थानवाले जीव बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ १८. स्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धो ४, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, ४ संस्थान, ४ संघात, तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशरतविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रके बन्धक-अवन्धक कौन हैं ? मिथ्यादृष्टिसे सासादन सन्यक्त्वोपर्यन्त बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ?

§ १९. निद्रा प्रचलाका कौन बन्धक है, कौन अवन्धक हैं ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्व-करणप्रविष्ट शुद्धिसंयतोंमें उपशमकों तथा क्षयोंपर्यन्त बन्धक हैं । अपूर्वकरणके कालमें संख्यातवें भाग घीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ २०. सातावेदनीयका कौन बन्धक-अवन्धक हैं, मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीपर्यन्त बन्धक हैं । सयोगकेवलीके कालके अन्तिम समय व्यतीत होने पर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ २१. असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्ति का कौन बन्धक है ? कौन अवन्धक हैं ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयतपर्यन्त बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ २२. मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, ४ जाति, हृष्टकसंस्थान, असंयतसंयत

इसंघडण-णिरयगदिपाओग्गाणुपुन्वि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणाणं को बंधगो, को अवंधो ? मिच्छादिट्ठी बंधा अवसेसा अवंधा ।

§ २३. अपच्चक्खाणावरण० ४-मणुसगादि-ओरालियसरीर-ओरालियअंगोवंगवज्जरिस-हसंघडण-मणुसगादिपाओग्गाणुपुन्वीणं को बंधको, अवंधो ? मिच्छादिट्ठिपहुडि ५ याव असंजद० बंधा । एदे बंधा अवसेसा अवंधा ।

§ २४. पच्चक्खाणावरणीय० ४ को बंधको, को अवंधो ? मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा बंधा । एदे बंधा अवसेसा अवंधा ।

§ २५. पुदिसवेद-क्रोध० संज० को बंधको को अवंधो ? मिच्छादिट्ठि याव अणियट्ठिउवसमा खवा बंधा । अणियट्ठिवादरद्धाए = संखेज्जभागं गंतूण वोच्छिज्जदि ।
१० एदे बंधा अवसेसा अवंधा ।

§ २६. एवं माणमायसंजलणाणं । णवरि सेसे सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधा । एदे बंधा अवसेसा अवंधा ।

§ २७. एवं लोभसंजलणस्स । णवरि अणियट्ठिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो (०) । एदे वं० अवसेसा अवंध० ।

१५ § २८. हस्सरदिभयदुगुच्छाणं को बंधगो ? मिच्छादिट्ठि याव अपुव्वकरण-उवसमा खमा (खवा) बंधा । अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा अवसेसा अवंधा ।

संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त तथा साधारणका कौन बन्धक, कौन अवन्धक है ? मिथ्यादृष्टि बन्धक है । शेष अवन्धक हैं ।

§ २३. अप्रत्याख्यानावरण ४, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रवृष-भनाराच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का कौन बन्धक है ? कौन अवन्धक है ? मिथ्या-दृष्टिसे लेकर असंयत सम्यक्त्वपर्यन्त बन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं ।

§ २४. प्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक, अवन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत-पर्यन्त बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ २५. पुरुषवेद, संज्वलन क्रोधका कौन बन्धक, अवन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनि-वृत्तिकरणमें उपशमक क्षपक पर्यन्त बन्धक हैं, अनिवृत्तिवादरके कालके संख्यात भाग धीतने पर व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ २६. मान-माया-संज्वलनमें भी यही बात जाननी चाहिए । विशेष यह है कि शेष शेषके संख्यात भाग धीतनेपर्यन्त बन्ध होता है । ये बन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं ।

§ २७. इसी प्रकार संज्वलन लोभमें है । विशेष-अनिवृत्तिकरणके कालके चरम समयपर्यन्त बन्ध होता है । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ २८. हास्य, रति, भय, जुगुप्साका कौन बन्धक है ? मिथ्यात्वसे लेकर अपूर्वकरणके उपश-मक तथा क्षपकपर्यन्त बन्धक हैं । अपूर्वकरणके चरम समयके धीतने पर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं ।

§ २९. मणुसायुगस्स को वंधको को अवंधको ? मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजद० वंधा । एदे वंधा अवसेसा अवंधा ।

§ ३०. देवा० मिच्छादि० सासण० असंजदसं० संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्प-मत्तसंजद० । अप्पमत्तसंजदद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूण वंधो वोच्छिज्जदि । एदे वंधा अवसेसा अवंधा ।

§ ३१. देवगदि० पंचिदि० वेगुव्वि० तेजाकम्म० समचदु० वेउव्वियं अंगोवंग-वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० ४ पसत्थविहायगदि० थीरा (थिर) सुम-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं को वंधको को अवंधको ? मिच्छादिट्ठि याव अपुव्वकरण० उवसमा खवा वंधा० । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जं भागं गंतूण वंधो वोच्छिज्जदि । एदे वंधा अवसेसा अवंधा ।

§ ३२. आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगणं को वंधको को अवंधको ? अप्पमत्त-अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जभागं गंतूण वंधो वोच्छिज्जदि । एदे वंधा अवसेसा अवंधा ।

§ ३३. तित्थयरस्स को वंधको, को अवंधो ? असंजदसम्माइट्ठि याव अपुव्वकरण० वंधा० । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जभागं गंतूण० । एदे वंधा अवसेसा अवंधा ।

§ ३४. कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदकम्मं वंधदि ? तत्थ इमेणाहि १५ सोलसकारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदं कम्मं वंधदि । दंसणविसुज्झदाए,

§ २९. मनुष्य आयुका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन तथा असंयतसम्यक्त्वी बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३०. देवायुका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयतसम्यक्त्वी, संय-तासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत बन्धक हैं । अप्रमत्तसंयतके समयके संख्यातवें भाग बीतने-पर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३१. देवगति, पंचेन्द्रिय, वैक्रियिकशरीर, तैजस, कार्माण, समचतुरस्रसंरधान, वैक्रियिक आंगो-पांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुखर, आदेय, निर्माणका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानके उदयमक क्षपकपर्यन्त बन्धक हैं । अपूर्वकरणके संख्यातवें भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३२. आहारक शरीर, आहारक आहोपाहक कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? अप्रमत्त, अपूर्वकरणके संख्यातवें भाग व्यतीत होनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३३. तीर्थक्षरप्रकृतिका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? असंयत सन्दृष्टिसे अपूर्व-करणपर्यन्त बन्धक है । अपूर्वकरणके संख्यात भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३४. शङ्खा-कितने कारणोंसे जीव तीर्थक्षर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है ?

समाधान-इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थक्षर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है ।

विणयसंपण्णदाए, सीलवदेसु णिरदिचारदाए, आवासएसु अपरिहोणदाए, खणलव-
पडिमज्झ(बुज्झ)णदाए, लद्धिसंवेगसंपण्णदाए, यथा छामे (थामे) तथा
तवे, सामाणं समाधिसंधारणदाए, सामाणं वेज्जावच्चजोगयुत्तदाए, सामाणं पासु-
गपरिच्चागदाए, अरहंतभत्तीए, बहुस्सुदभत्तीए, पवयणभत्तीए, पवयणवच्छल्लदाए,
५ पवयणप्रभावणदाए, अभिक्खणं णाणोपयुत्तदाए । एदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवो
तिथयरणामागोदं कम्मं बंधदि ।

दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेषु-निरतिचारता, आवश्यकपु अपरिहीनता, क्षण-
लव-प्रतिबोधनता, लद्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुसमाधिसन्धारणता, वैयावृत्ययोग-
युक्ता, साधु-प्रासुकपरित्यागता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता,
प्रवचनप्रभावनता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्ता, इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थङ्कर नाम-
गोत्र कर्मका बन्ध करता है ।

विशेषार्थ—यहाँ यह शङ्का उत्पन्न होती है, कि जब अन्य कर्मोंके बन्धके कारण नहीं बताए
गए, तब तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धके कारणोंका सूत्रकारने क्यों पृथक् रूपसे उल्लेख किया है ?

इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य धवलाटीकामें लिखते हैं कि तीर्थङ्करके बन्धके कारण
ज्ञात न होनेसे उनका पृथक् उल्लेख करना उचित है । उसके बन्धका कारण मिथ्यात्व नहीं
है, कारण मिथ्यात्वी जीवके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । सम्यग्दृष्टिके ही तीर्थङ्कर
प्रकृतिका बन्ध होता है । असंयम भी बन्धका कारण नहीं है, क्योंकि संयमी जीव भी उसके
बन्धक होते हैं । कपाय भी बन्धका कारण नहीं है, कारण कपायके होते हुए भी इसके बन्धका
विच्छेद देखा जाता है अथवा बन्धका आरम्भ भी नहीं होता है । कदाचित् मन्द कपायको
बन्धका कारण कहें, तो यह भी नहीं बनता है, कारण तीव्र कपाययुक्त नारकियोंमें भी तीर्थङ्कर
प्रकृतिका बन्ध देखा जाता है । तीव्र कपाय भी उसका कारण नहीं है, क्योंकि मन्द कपाय-
वाले सर्वार्थसिद्धिके देवों और अपूर्वकरणगुणस्थानवालोंमें भी उसका बन्ध होता है । बन्धका
कारण कदाचित् सम्यक्त्वको कहें, तो यह भी ठीक नहीं है । सम्यग्दर्शन होते हुए भी
बन्धका कहीं कहीं अभाव देखा जाता है । यदि दर्शनकी निर्मलताको कारण कहें तो दर्शन-
मोहके क्षय करनेवाले सभी व्यक्तियोंके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होना चाहिए था, किन्तु ऐसा भी
नहीं है । अतः दर्शनकी शुद्धता भी कारण नहीं है । कार्यकारणभावका नियम तो तब
बनता है, जब कारणके होनेपर नियमसे कार्य बन जाय । सब क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तो

(१) धवला टीकामें जो षोडशकारणोंके नाम गिनाए हैं, उनके क्रममें थोड़ा अन्तर है । यहाँ
आठवें नंबर पर 'साधुसमाधिसंधारणता'के स्थानमें 'साधुप्रासुकपरित्यागता' पाठ है । ९वें नंबर पर वैयावृत्य-
योगयुक्तताके स्थानमें 'समाधिसंधारणता' पाठ है । नं० १० में 'साधु-प्रासुकपरित्यागता' के स्थानमें
वैयावृत्ययोगयुक्तता पाठ है । शेष पाठ समान है । तत्त्वार्थसूत्रमें इस प्रकार पाठभेद है—नं० ४ में
अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, नं० ५ में संवेग, ६ में शक्तिः त्याग, नं० १० में अर्हद्भक्ति, नं० १४ में आवश्यक-
परिहानि, नं० १६ में प्रवचनवत्सलता पाठ है । तत्त्वार्थसूत्र तथा भूतवर्त्तिस्वामी द्वारा कथित
भावनाओंके नामोंमें भी कहीं कहीं अन्तर है । तत्त्वार्थसूत्रमें 'संवेग', 'साधुसमाधि', 'शक्तिः त्याग',
'मार्गप्रभावनता' पाठ है, उसके स्थानमें क्रमशः 'लद्धिसंवेगसंपन्नता' 'साधु-समाधि संधारणता', 'प्रासुक
परित्यागता', 'प्रवचन प्रभावनता' पाठ है । आचार्यभक्तिका महाबंधमें पाठ नहीं है । एक नवीन
भावना क्षणलवप्रतिबोधनता सम्मिलित की गई है ।

तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं करते हैं । ऐसी स्थितिमें उत्पन्न होने वाली शङ्काके निराकरणके लिए भूतबली स्वामीने कहा है कि इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थङ्कर नामगोत्रका बन्ध करते हैं ।

तीर्थङ्करके बन्धका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है, इस बातका परिज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'तत्थ' शब्दका ग्रहण किया है ।

शङ्का—^१तीर्थङ्करके बन्धका प्रारम्भ अन्य गतियोंमें क्यों नहीं होता है ?

समाधान—तीर्थङ्करप्रकृतिमें सहकारी कारण केवलज्ञानसे उपलक्षित जीवद्रव्य है ।

उसके बिना बन्धका प्रारम्भ नहीं होता । मनुष्यगतिमें केवलज्ञानसे उपलक्षित जीव पाया जाता है । इससे मनुष्यगतिमें ही बन्धका प्रारम्भ कहा है । इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यगतिमें केवलज्ञान उत्पन्न होकर तीर्थङ्करप्रकृति पूर्ण विकसित हो अपना कार्य कर सकती है; अन्य गतिमें यह बात नहीं है । अतः तीर्थङ्करप्रकृतिका अङ्कुरारोपण मनुष्यगतिमें ही होता है ।

पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा इस प्रकृतिके बन्धके कारण सोलह कहे गए हैं । द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेसे एक कारण भी इसके बन्धका हेतु है, दो भी कारण होते हैं, अतः सोलह ही होते हैं या नहीं इस संशयके निवारणके लिए सोलह कारणोंकी गणना सूत्रमें की है ।

इन भावनाओंके स्वरूपपर वीरसेनाचार्यने धवलाढीकामें अच्छी तरह विशद विवेचन किया है । उसका मर्म इस प्रकार है—

दर्शनविशुद्धता—यह भावना सोलह कारण भावनाओंमें प्रथम संगृहीत की गई है । इसका भाव तीन मूढता तथा अष्टमलरहित निर्मल सम्यग्दर्शन का लाभ होना है ।

शङ्का—यदि इस एक ही भावनासे तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध होता है, तो सभी सम्यक्त्वी जीव उसका बन्ध क्यों नहीं करते ?

समाधान—शुद्ध नयसे मात्र तीन मूढता तथा अष्टमलोंसे व्यतिरिक्तपना ही दर्शनविशुद्धता नहीं है, इसके साथ ही साथ साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु-समाधि-संधारणता, साधुवैयाघृत्य-युक्तता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावनता, अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगयुक्तता आदिका भी समावेश होना आवश्यक है । इस प्रकार अन्य भावनाओंका भी संग्रह करनेवाली दर्शनविशुद्धता तीर्थङ्करका बन्ध करती है ।

विनयसम्पन्नता भी तीर्थङ्करकर्मको बाँधती है । विनयके ज्ञान, दर्शन तथा पारिव्रज्य अपेक्षा तीन भेद हैं । ज्ञानविनयमें अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, बहुश्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति संगृहीत है । दर्शनविनयका अर्थ है प्रवचनोपदिष्ट सम्पूर्ण वृत्तोंका श्रद्धान तथा प्रसूतता और अष्टमलका त्याग करना । इसमें अरहन्त-सिद्धभक्ति, सत्त्वव्यवस्थायुक्तता, लब्धि-संवेगसम्पन्नता तथा प्रवचनप्रभावनताका सङ्काय पाया जाता है । चरित्र विनयमें शीलप्रवेष-निरतिचारिता, आवश्यकेषु अपरिहीनता, यथाशक्ति तप, साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु-समाधि-सन्धारणता, साधुवैयाघृत्य योगयुक्तता, प्रवचनवत्सलता संगृहीत है । इस प्रकार अनेक भावनाओंसे समन्वित एक विनयसम्पन्नता रूप भावना तीर्थङ्कर नामकर्मका बन्ध करती है । यह दर्शन तथा ज्ञानकी विनय देव तथा नारदियोंमें कैसे सम्भव हो सकती है । इसमें इसे मनुष्योंमें ही कहा है ।

(१) 'अप्यगदीनु कि प वारंभी होदिदि हुने प होदि. केवलज्ञानसे उपलक्षित जीव पाया जाता है. कारणसे तत्परा-ज्ञानकर्मबन्धकारणसे तत्परा सङ्कल्पविरहादे' ।—पृ० टी० १०० पृ० ५३५ ।

शङ्का—जिस प्रकार यहाँ देव-नारकियोंके दर्शन और ज्ञान-विनयका अभाव कहा है उसी प्रकार चरित्र-विनयका अभाव क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—ज्ञानदर्शन विनयका विरोधी चारित्र भी नहीं हो सकता । अर्थात् ज्ञानदर्शन विनयके अभावमें चारित्र विनयका भी अभाव होगा । यह बात प्रकट करनेको चारित्र विनयका पृथक् उल्लेख नहीं किया है ।

शीलव्रतेषु-निरतिचारतासे भी तीर्थङ्कर नामकर्मका बन्ध होता है । हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रहसे विरति होना व्रत है । व्रतका रक्षण करनेवाला शील कहलाता है । मद्यपान, मांसभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदका अपरित्याग अतिचार कहलाता है । इनका अभाव करना शीलव्रतेषु-निरतिचारता है । इससे तीर्थङ्कर कर्मका बन्ध होता है ।

शङ्का—यहाँ शेष पन्द्रह कारण किस प्रकार सम्भव होंगे ?

समाधान—सम्यग्दर्शन, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवैगसम्पन्नता, साधुसमाधिसंधारणता, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, साधु-प्रासुकपरित्यागता, अरहन्त बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावनताके विना शीलव्रतेषु-अनतिचारता सम्भव नहीं है । असंख्यात गुणश्रेणियुक्त कर्मनिर्जरा में जो हेतु है, उसे व्रत कहते हैं । सम्यक्त्वके विना केवल हिंसा, असत्य, चौर्य, अन्नह्रा तथा परिग्रहके त्यागमात्रसे ही यह गुणश्रेणी निर्जरा नहीं हो सकती, कारण दोनोंके द्वारा होनेवाले कार्यका एकके द्वारा सम्पन्न होनेका विरोध है । पट्द्रव्य नवपदार्थके समूह रूप लोकको विषय करनेवाली अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके विना शीलव्रतोंमें कारणभूत सम्यक्त्वकी अनुपपत्ति है । इस प्रकार उसमें सम्यग्दर्शनके समान सम्यक्ज्ञानका भी सद्भाव पाया जाता है । यथाशक्ति तप, आवश्यकपरिहीनता तथा प्रवचनवत्सलत्वरूप चारित्रविनयके विना यह शीलव्रतेषु-निरतिचारिता नहीं बन सकती है । इस प्रकार व्यापक अर्थयुक्त यह भावना तीर्थङ्करनामकर्मके बन्धका कारण है ।

आवश्यकेषु-अपरिहीनता-समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्गके भेदसे आवश्यक छह प्रकार कहा गया है । शत्रु-मित्र, मणि-पापाण, सुवर्ण-मृत्तिका में राग-द्वेषका अभाव समता है । अतीत अनागत तथा वर्तमान कालसम्बन्धी पंचपरमेष्ठियोंका भेद न करके 'णमो अरहन्ताणं णमो सिद्धाणं' इत्यादि द्रव्यस्तुतिका कारण नमस्कार स्तुति कहलाता है । घृषमादि चौबीस तीर्थङ्कर, भरतादि क्षेत्रोंके केवली, आचार्य, चैत्यालयादिकका पृथक् पृथक् रूपसे नमस्कार करना अथवा गुणोंका अनुस्मरण करना वन्दना है । पंच महाव्रतों तथा ८४ लाख उत्तरगुणोंमें लगे हुए कलङ्कोंका प्रक्षालन करना प्रतिक्रमण है । महाव्रतोंके विनाशके कारण अथवा उनमें मलिनता लगानेवाले दोषोंका जिस प्रकार अभाव होगा, उस प्रकार मैं करूँगा इस प्रकार चित्तसे आलोचना करके ८४ लाख व्रतोंकी शुद्धिका प्रतिग्रह करना प्रत्याख्यान है । शरीर, आहारादिकसे मन वचन की प्रवृत्तिको अलग करके ध्येयमें रोकनेको व्युत्सर्ग कहते हैं । इन छह आवश्यकोंकी अपरिहीनता-अखण्डताको आवश्यकपरिहीनता कहते हैं । इसके द्वारा तीर्थङ्करधर्मका बन्ध होता है ।

यहाँ शेष कारणोंका अभाव नहीं होता है । दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, व्रतशीलनिरति-चारता, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवैगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधु-समाधि-संधारण, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, प्रासुकपरित्यागता, अरहन्त-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावनता, प्रवचनवत्सलता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके विना छह आवश्यकोंकी निरतिचारता नहीं बन सकती है । अतः आवश्यकेषु-अपरिहीनता तीर्थङ्करनामकर्मका चतुर्थ कारण है ।

क्षण-लव-प्रतिबोधनता—‘क्षणलव’ शब्द कालविशेषका द्योतक है। उस कालविशेषमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत तथा शीलरूप गुणोंका उज्ज्वल करना अर्थात् कलंकका प्रक्षालन करना अथवा व्रतादिकी प्रदीप्ति अर्थात् वृद्धि करना प्रतिबोध है। उसका भाव प्रतिबोधनता है। क्षणलवोंकी प्रतिबोधनताको क्षणलवप्रतिबोधनता कहते हैं। यह अकेली भावना भी तीर्थङ्करनामकर्मका बंध करती है। यहाँ भी पूर्वकी भाँति शेष कारणोंका अंतर्भाव रहता है।

लब्धिसंवेगसंपन्नता—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्रमें जीवके समागमका नाम लब्धि है। लब्धिके लिए जो संवेग है—वह लब्धिसंवेग है। उसकी संपन्नताको लब्धिसंवेगसंपन्नता कहते हैं। शेष कारणोंके अभावमें इसका सद्भाव नहीं बनता है, कारण उनके अभावका और लब्धिसंवेग-संपन्नताके सद्भावका विरोध है।

यथाशक्ति तप-बल-वीर्यको प्राकृतमें ‘धाम’ कहते हैं। अनशनादि बाह्य, विनयादि अंतरंग द्वादश प्रकारके तप हैं। शक्तिके अनुसार तप करनेसे तीर्थङ्करकर्मका बंध होता है। यह भावना ज्ञान, दर्शनके बलसे संपन्न धीर पुरुषके होती है तथा दर्शनविशुद्धतादिके अभावमें यह नहीं पाई जा सकती है। इससे अकेली इस भावनाको तीर्थङ्करनामकर्मका कारण कहा है।

साधुप्रासुक-परित्यागता—जो अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति, ध्यायिक सम्यक्त्वकी साधना करता है उसे साधु कहते हैं। प्रासुकका एक अर्थ है ‘वह वस्तु, जिससे जीव निकल गए हों’, दूसरा अर्थ है निरवच-निर्दोष वस्तु। साधुओंको ज्ञान, दर्शन, चरित्रका परित्याग अर्थात् दान प्रासुकपरित्यागता है। ज्ञानदर्शनचरित्रका परित्यागरूप दान गृहस्थोंमें संभव नहीं हो सकता, कारण वहाँ चारित्रका अभाव है। रत्नत्रयका उपदेश भी गृहस्थोंमें नहीं बन सकता है। कारण उनमें दृष्टिवादादि ऊपरके सूत्रोंके उपदेशका अधिकार नहीं है। अतः यह साधु-प्रासुकपरित्यागतारूप कारण महर्षियोंके होता है।

(१) “आवलि असंखसमया संखेजावलिसमूहमुत्सासो । सत्तुत्सासा थोवो सत्तथोवो लयो भगियो ॥” —गो० जी० । एक विशेष बात यह है कि महाबन्धकी प्रतिमें ‘क्षणलवपटिमज्जणदा’ पाठ है, उसकी संस्कृत छाया क्षणलवप्रतिमाध्ययन होगी। इसके सम्बन्धमें सिद्धान्तशास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान् प० यशोभरती न्यायालङ्कार इंदौर कहते हैं कि जगत्में समवधारणकी विभूति सर्वोत्कृष्ट है, उसकी प्राप्तिमें कारणरूप संस्कार भावनाओंमें श्रावक तथा मुनिधर्मसम्बन्धी क्रियाओंका समावेश पाया जाता है। समवधारणमें विद्यमान साक्षात् अरहन्त देवकी पूजाका भाव अरहन्तभक्तिद्वारा निष्पन्न होता है, किन्तु मूर्तिपूजा देवपूजाका भाव क्षणलवप्रतिमाध्ययन भावनाके द्वारा समर्थित होता है। क्षणलव-शब्द विशेष पर्यन्त प्रतिमाका अध्ययन-स्वरूप दर्शन, चिन्तन करना क्षणलवप्रतिमाध्ययन है। हमने क्षणलवप्रतिबोधनताका अर्थ वीरसेनाचार्यकी व्याख्यानुसार लिया है, तथा इसी पाठका यत्र तत्र प्रयोग किया है।

(२) “खणलवा णाम कालविसेसा । सम्महंसणणाणवदसीलशुण्णाणमुज्जालणं वत्तवसक्ताणमं मंहुक्खणा वा पटिवुज्जणं णाम । तस्स भावो पटिवुज्जणदा । खणलवाणं पटिवुज्जणदा खणलवपटिवुज्जणदा ॥” —ध० टी० प० ५५४ । (३) ‘संवेगः परमोत्साहो धर्मे धर्मफले चितः ।’—पट्टा० ।

(४) यहाँ यदि ‘साहूणं’ पाठ लिया जाय, तो वह ‘साधूनाम्’ साधुओंका द्योतक होता है, यदि ‘सामाणं’ पाठ लिया जाय, तो संस्कृतरूप ‘धम्मणानाम्’—धम्मियोंका होता। धम्म भी साधु, द्रविडा धर्म-पात्री है। जब भूतबलि आचार्य एक बार पट्टसंज्ञागममें ‘साहूणं’ पाठ देते हैं और उसीसे धर्ममेवाचार्यकी टीका है, तब उक्त आचार्यके द्वारा उक्त आगमके पद अंत महर्षिधर्म पुनः अज्ञात संसार वस्तु भावना वाले सूत्रमें ‘साहूणं’ पाठका प्रयोग विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है। वैसे साधु और धम्म समान धर्म-पात्रों हैं अतः ‘सामाणं’ पाठ भी अयुक्त नहीं है।

§ ३५. जस्स इणं कम्मस्स उदयेण सदेवासुरमाणुसस्स लोगस्स अचणिज्जा पूजणिज्जा

यहाँ भी शेष कारणोंका अभाव नहीं है । अरहंतादिककी भक्ति, नवपदार्थोंका श्रद्धान, शीलव्रतोंमें निरतिचारिताके अभावमें ज्ञान, चारित्रिका परित्याग अर्थात् दान असंभव है, कारण इसमें विरोध आता है । अतः केवल इस भावनासे भी तीर्थङ्कर कर्मका बंध होता है ।

साधुसमाधिसंधारणता—ज्ञान, दर्शन, चारित्रमें सम्यक् प्रकारसे अवस्थान होना समाधि है । भले प्रकार धारण करनेको संधारण कहते हैं । साधुओंकी समाधिका भले प्रकार धारण करना साधुसमाधिसंधारण है । किसी कारणसे प्राप्त होनेवाली समाधिको देखकर सम्यक्त्वी प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना, विनयसंपन्नता, शीलव्रतातिचारवर्जित अरहंतादिकमें भक्तिवश जो धारण करता है, वह समाधिसंधारण है । यहाँ भी शेष कारणोंका अभाव नहीं है, क्योंकि इसका सद्भाव उन कारणोंके अभावमें नहीं बन सकता है ।

वैयावृत्ययोगयुक्तता—जिस कारणसे जीव सम्यक्त्व, ज्ञान, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचनवत्सलतादिके द्वारा वैयावृत्यमें लगता है, उसे वैयावृत्ययोगयुक्तता कहते हैं । इस प्रकार अकेली इस भावनासे भी तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध होता है । यहाँ शेष कारणोंका यथासम्भव अन्तर्भाव जानना चाहिए ।

अरहन्त-भक्ति—घातिया कर्मोंके नाश करनेवाले, केवलज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंके देखने वाले अरहन्त हैं । उनकी भक्तिसे तीर्थङ्करनामकर्मका बन्ध होता है । यह भावना दर्शनविशुद्धतादिके अभावमें नहीं पाई जाती है, कारण इसमें विरोध आयागा ।

बहुश्रुतभक्ति—द्वादशाङ्गके पारगामीको बहुश्रुत कहते हैं । उनमें भक्तिका अर्थ है, उनके द्वारा व्याख्यान किए गए आगमका अनुगमन करना अथवा अनुष्ठानका प्रयत्न करना बहुश्रुत भक्ति है । दर्शनविशुद्धतादिके बिना यह सम्भव नहीं है ।

प्रवचनभक्ति—सिद्धान्त अर्थात् बारह अङ्गोंको प्रवचन कहते हैं । 'प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनम्' श्रेष्ठ आत्माके वचनोंको प्रवचन कहा है । उनके प्रति भक्तिको प्रवचनभक्ति कहते हैं । इसमें भी शेष कारणोंका अन्तर्भाव रहता है ।

प्रवचनवत्सलता—महाव्रती, देशसंयमी तथा असंयत सम्यग्दृष्टिमें प्रेम रखना प्रवचनवत्सलता है । इससे ही तीर्थङ्करनामकर्मका बन्ध कैसे होता है—यह शङ्का नहीं करनी चाहिए, कारण महाव्रतादि आगमिक विषयोंमें गाढानुरागका दर्शनविशुद्धतादिसे अविनाभाव है ।

प्रवचनप्रभावना—प्रवचन अर्थात् आगमकी प्रभावना करनेका भाव प्रवचनप्रभावना है । उत्कृष्ट प्रवचनप्रभावनाका दर्शनविशुद्धताके साथ अविनाभाव है ।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता—अभीक्ष्ण अर्थात् 'बहुवार'भावश्रुत अथवा द्रव्यश्रुतमें उपयोगको लगाना अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता है । इससे तीर्थङ्करनामकर्मका बन्ध होता है । दर्शनविशुद्धतादिके बिना इसकी अनुपपत्ति है ।

इन सोलह कारणोंसे तीर्थङ्करनामकर्मका बन्ध होता है । अथवा सम्यग्दर्शनके होने पर शेष कारणोंमेंसे एक दो आदिके संयोगसे भी बन्ध होता है ।

§ ३५. इस कर्मके उदयसे सुर असुर तथा मनुष्यलोकके द्वारा अर्चनीय, पूजनीय, वन्दनीय-

(१) महाबन्धमें आगत षोडशकारण भावनाओंके पाठ पर विद्वद्भर पं० चंडीधरजी शारंगी इन्दौरका यह सुझाव है कि—दर्शनविशुद्धता तथा अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता नामक भावनाएँ असंयत, देशसंयत, संयतके पाई जाती हैं । विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेषु निरतिचारिता, आचर्यकेषु अपरिहीनता, ये तीन भावनाएँ मुख्यतः तृतीयोंको लक्ष्यमें रखकर बड़ी गई हैं तथा भगवत्पदविमर्शगदा आदि विशेषकर गृहस्थोंको लक्ष्य करके कही गई हैं ।

वंदणिज्जा णमंसणिज्जा धम्मतित्थयरा जिणा केवली (केवलियो) भवंति ।

§ ३६, एवं ओघसंगो पंचिंदियत्तसं २ भवसि० ।

§ ३७, आदेसेण णिरएसु पंचणाणावरण-छद्दंसणावरण-सादासादं चारसकसाय-स-
त्तणोकसायाणं मणुसगइ-पंचिंदिय-ओरालियतेजाकम्मइय-समचदुरससंठाण-ओरालिय०
अंगोवंग-वण्ण० ४ मणुसगदिपाओग्गाणुपुन्वि-अगुरुगलहुग० ४ पसत्थविहायगदि-त्तसं ४ ५
थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमिणं उच्चागोदं पंचंत-
राइयाणं को वंधको ? सन्वे वंधा, अवंधा णत्थि । त्थीणगिद्धिआदि-पणुवीसं ओघं ।
मिच्छत्त-णउंसकवेद-हुंडसंठाणं असंपत्तसेवट्ठाणं को वंधको० ? मिच्छादिट्ठी वंधा ।
एदे वंधा अवसेसा अवंधा । मणुसायु ओघं । तित्थयरं को वंधको० ? असंजदसम्मा-
दिट्ठी । एदे वंधा अवसेसा अवंधा । एवं पढम-विदिय-तदियासु । चउत्थि-पंचमि-छट्ठीसु १०
एवं चेव, णवरि तित्थयरं णत्थि । सत्तमाए छट्ठिमंगो, णवरि मणुसायु णत्थि ।
मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुन्वि-उच्चागोदाणं को वंधको ? सम्मामिच्छाइट्ठि-
असंजदसम्माइट्ठी । एदे वंधा । अवसेसा अवंधा । तिरिक्खायु० को वं० ?
मिच्छाइट्ठी वंधा । एदे वंधा अवसेसा अवंधा ।

तथा नमस्करणीय धर्म तीर्थके कर्ता जिन केवली होते हैं ।

§ ३६, इस प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्तक तथा भव्यसिद्धिकोंमें ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

§ ३७, आदेशसे, नारकियोंमें-५ ज्ञानःवरण, ६ दर्शनावरण, साता असाता देदनीय, अनन्तानु-
बन्धी ४ को छोड़कर शेष १२ कषाय, (स्त्रीवेद, नपुंसकवेद विना) ७ नोकषाय, मनुष्य गति,
पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक असोपास्य,
वर्ण ४, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, प्रशस्तविद्यायोगति,
त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशः-
कीर्ति, निर्माण, उद्योगोत्र तथा ५ अन्तरायका कौन वन्धक हैं ? सर्व वन्धक हैं । अवन्धक नहीं हैं ।
स्त्यानगृद्धि आदि २५ प्रकृतियोंको ओघवत् जानना चाहिए, अर्थात् सासादन गुणस्थान पर्यन्त
वन्धक हैं । मिथ्यात्व नपुंसकवेद, हुण्डक संस्थान, असम्प्राप्तात्प्रापिका संहननका कौन वन्धक है ?
मिथ्यादृष्टि वन्धक है । ये वन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं । मनुष्यायुके वन्धकका ओघवत् जानना
चाहिये, अर्थात् अविरत गुणस्थान पर्यन्त वन्धक हैं । तीर्थद्वारप्रकृतिका कौन वन्धक है ? अन्तर्गत
सम्यग्दृष्टि वन्धक है । ये वन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं । प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पृथ्वी पर्यन्त
ऐसा ही जानना चाहिए । चौथी, पाँचवी तथा छठवीं पृथ्वियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।
विशेष, यहाँ तीर्थद्वार प्रकृति नहीं है । तीर्थद्वार प्रकृतिका वन्ध तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है ।

सातवीं पृथ्वीमें-छठवीं पृथ्वी के समान भंग है । विशेष, यहाँ मनुष्यायु नहीं है । मनुष्यगति,
मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्रका कौन वन्धक है ? सम्यग्मिथ्यात्वा तथा अत्यंत-
सम्यग्दृष्टि जीव वन्धक हैं । ये वन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं । तिरिक्खायुका कौन वन्धक
है ? मिथ्यादृष्टि वन्धक है । ये वन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं ।

(१) “विदियगुणे वणभीगति दुग्गतिवन्ता संरदिनउव्वं ।

दुग्गमिथी-वीसं तिरिक्खुत्तुव्वोव तिरिक्ख ॥” - गो० ६० गा० ९६ ।

- § ३८. तिरिक्खेसु-पंचणाणावरणं छद्दंसणावरणं सादासादं अट्ठकसा० सत्तणोक० देवगदि० पंचिंदिय० वेउव्विय-तेजा-कम्म० समचदु० वेगुव्वि० अंगोवंग-वण्ण०४-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुगलहुग०४-पसत्थविहायगदि-तस०४-थिराथिर-सुभासुभसु-भग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णियिण-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं को वंधको ?
- ५ मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा त्ति सव्वे वंधा, अवंधा णत्थि । थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४-इत्थिवेद०- तिरिक्खायु-मणुसायु-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-ओरालिय० चदुसंठा० ओरालिय० अंगोवंग-पंचसंवडण-दोआणुपुव्वि-उज्जोवं अप्पसत्थविहायगइ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को वंधको ? मिच्छादिट्ठि-सासणसम्माइट्ठी । एदे वंधा, अवसेसा अवंधा । मिच्छत्तदंडओ ओघो । अपच्चक्खाणावरण ४ को वंधको ?
- १० मिच्छादिट्ठि याव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति । एदे वंधा, अवसेसा अवंधा । देवायु० को वंधको ? मिच्छादि० सासणसम्मा० असंजद० संजदासंजदा त्ति वंधा । एदे वंधा अवसेसा अवंधा ।

विशेषार्थ—सातवीं पृथ्वीवाला मरकर नियमसे तिर्यञ्च होता है । इस कारण वहाँ मनुष्यायुका बन्ध नहीं बताया है^२ । मरण मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही होता है । तिर्यञ्चायुका बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही होता है । मनुष्यद्विक तथा उच्चगोत्रका बन्ध मिश्र तथा अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थानमें ही होता है, नीचे नहीं होता है ।

§ ३८. तिर्यञ्चोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन रूप ८ कपाय, स्त्रीवेद नपुंसकवेद बिना सात नोकपाय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, वर्ण ४, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४ (त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक) स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि से लेकर देशसंयमी पर्यन्त सर्व बन्धक हैं । अवन्धक नहीं हैं ।

स्त्यानगृद्धिब्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, ४ संस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी (तिर्यञ्च-मनुष्या-नुपूर्वी), उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रका कौन बन्धक हैं ? मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं । मिथ्यात्व दण्डकमें ओघवत् जानना चाहिए ।

विशेष—मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थानादि सोलह प्रकृतिर्यौ मिथ्यात्व दण्डकमें सम्मिलित हैं । उनके बन्धक मिथ्यादृष्टि होते हैं । वे बन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त बन्धक हैं । ये बन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं । देवायुका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यक्त्वी, असंयत सम्यक्त्वी तथा देश संयमी बन्धक हैं । ये बन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं ।

§ ३९. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३ । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-पंच णाणावरणं णव दंसणावरणं सादासादं मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-तिरिक्खमणुसायु-तिरिक्ख-मणुसगइ-पंचिंदिय-ओरालि० तेता (तेजा) कम्म० छस्संठाणं ओरालिय-सरीर-अंगोवंग० छस्संघडण-वण्ण०४-दोआणुपुच्चि-अगुरुगलहुग०४-आदाउज्जोव-दोविहायगदि-तसादिदसयुगलं णिमिणं णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को वंधको ? सव्वे ५ वंधा, अवंधा णत्थि ।

§ ४०. एवं सव्व-अपज्जत्ताणं सव्व-एइंदियाणं सव्वविगलंदियाणं च ।
.....[अत्र अष्टाविंशतितमं पत्रं त्रुटितम् ।].....

§ ३९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिमतीमें तिर्यञ्चोंके समान भंग जानना चाहिए ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, साता, असाता, मिथ्यात्व, १६ कपाय, ९ नोकपाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, ६ संस्थान, औदारिक शरीराङ्गोपाङ्ग, ६ संहनन, वर्ण ४, मनुष्य-तिर्यञ्चानुपूर्वी, अगुरुलघु ४ (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास), आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल (त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर. आदेय, यशःकीर्ति) निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र, तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक हैं ? सर्व बन्धक हैं । अवन्धक नहीं हैं ।

§ ४०. संपूर्ण लब्ध्यपर्याप्तकों, संपूर्ण एकेन्द्रियों, सर्व विकलेन्द्रियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[ताडपत्र नं० २८ नष्ट हो जानेसे इस प्रकरणका आगामी विषय नष्ट होगया है । ग्रंथके प्रकरणसे ज्ञात होता है, कि आचार्य महाराजने देवगति, मनुष्य गति, आदि मार्गणाओंकी अपेक्षा 'बंध सामित्त-विचय' प्ररूपणाका वर्णन दिया होगा । सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे धी गोम्मटसार कर्मकांडके आश्रयसे कुछ प्रकाश डाला जाता है]

मनुष्यगति—यहां मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थान हैं । बन्ध योग्य १२० प्रकृतियों हैं । यहाँका वर्णन ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थङ्कर, आहारकष्टिक का बन्ध न होनेसे शेष ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्ध १०१ का होता है । मिश्र गुणस्थानमें ६९ का बन्ध होता है । यहाँ सासादन गुणस्थानमें बन्ध-व्युच्छिन्न होनेवाली अनन्तानुबन्धी ४, त्यागगृह्णिक आदि २५ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होगा । इसके सिवाय मनुष्यगति-द्विक, मनुष्यायु, वरुणभन रात्र नंदनन औदारिक शरीर, औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग इन छह प्रकृतियोंकी भी सासादन गुणस्थानमें बन्धव्युच्छिन्ति होती है । साधारणतया इनकी अविरतमें बन्धव्युच्छिन्ति होती थी । मिश्र गुणस्थान में आयु का बन्ध न होनेसे देवायु का अबन्ध हो गया । इस प्रकार ३२ प्रकृतियोंके घटानेसे मिश्र गुणस्थानमें ६९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । अविरत सन्यस्तीके देवायु तथा तीर्थङ्करका बन्ध प्रारंभ हो जानेसे ७१ का बन्ध होता है । अत्रत्याख्यानवरण ४ का देवभिरतमें बन्ध न होनेसे वहाँ ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । प्रमत्तगुणस्थान में ६३ प्रकृतियोंका बन्ध है, कारण, यहाँ प्रत्याख्यानवरण ४ का बन्ध नहीं है । अन्नतत्त्वपतके अस्थिर, असाता, अशुभ, अरति, शोक, अपशःपीति इन लहका बन्ध नहीं होगा, किन्तु यहाँ आहारकष्टिक का बन्ध होनेसे ५९ का बन्ध होता है । अपूर्वकरणमें ५८ का बन्ध है, कारण, यहाँ देवायु का बन्ध नहीं होता, देवायुकी बन्धव्युच्छिन्ति अन्नतत्त्व गुणस्थानमें हो जाती है । कनिष्ठगुणस्थानमें

वन्ध योग्य २२ हैं, कारण, अपूर्वकरण, गुणस्थानमें निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, आहारकद्विक आदि ३६ प्रकृतियोंकी वन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे २२ प्रकृति ही वन्धके लिए शेष रहती हैं। सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थानमें १७ का वन्ध होता है, कारण, अनिवृत्तिकरणमें पुरुषवेद तथा ४ संज्वलन कपायोंकी वन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। उपशान्तकपायमें केवल एक सातावेदनीयका ही वन्ध होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय, यशःकीर्ति तथा उच्चगोत्रकी वन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। क्षीणकपाय तथा सयोगोजिन पर्यन्त एक सातावेदनीय का ही वन्ध होता है। अयोगकेवलीके वन्ध नहीं है, कारण वहाँ वन्धके हेतुओं का अभाव हो चुका है।

सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनीमें मनुष्यगतिके समान भंग है।

देवगति—यहाँ नरकगतिके समान भंग है। यहाँ भवनत्रिक तथा सौधर्म, ईशान स्वर्ग पर्यन्त वन्ध योग्य १०४ प्रकृतियाँ हैं। भवनत्रिकमें तीर्थंकर का अभाव होनेसे १०३ रह जाती हैं। सामान्य वन्धकी १२० में से मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, अतन्प्राप्तासृष्टादिका संहनन, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, चिकलत्रय, मुरचतुष्क, आहारकद्विक, नरकद्विक, नरकायु तथा देवायु इन सोलह प्रकृतियोंको घटानेसे १०४ प्रकृतियाँ शेष रहेंगी। भवनत्रिकके समान कल्पवासिनियोंमें १०३ का वन्ध है। सानत्कुमारादि सहस्रार पर्यन्त एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतापको घटानेसे १०१ प्रकृतियाँ वन्ध योग्य रहती हैं। आनतादि प्रवेयक पर्यन्त ९७ वन्ध योग्य रहती हैं, कारण, यहाँ तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु तथा उद्योत इन शतार चतुष्क नामक प्रकृतियोंका अभाव हो जाता है। अनुदिश अनुत्तर विमानवासी देवोंमें सभी अविरत सम्यग्दृष्टि होते हैं अतः वहाँ वन्ध योग्य ७१ प्रकृतियाँ रहेंगी।

पञ्चन्द्रियोंमें मनुष्यगतिके समान भंग है। त्रसोंमें भी मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए। सत्य मन, सत्य वचन, अनुभय मन, अनुभय वचन योगमें सयोग केवली पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। यहाँ मनुष्यगतिके समान रचना जाननी चाहिए। असत्य मन, असत्य वचन, उभय मन तथा उभय वचन योगमें क्षीणकपाय पर्यन्त गुणस्थान होते हैं, अतः ओघवत् इनकी रचना जाननी चाहिए। औदारिक काययोगमें मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए। औदारिक मिश्र काययोग में १,२,४ तथा १३ वाँ गुणस्थान होता है। इसमें वन्ध योग्य ११४ प्रकृतियाँ हैं, कारण, आहारकद्विक, देवायु, नरकायुका वन्ध नहीं होता है। मिथ्यात्व तथा सासादनमें तीर्थंकर तथा मुरचतुष्कका वन्ध नहीं होता है। वैक्रियिक काययोगमें देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्रमें इसी प्रकार भंग है। विशेष, यहाँ मनुष्य तथा तिर्यञ्चानुका वन्ध नहीं होता है। आहारक-काययोग में—प्रमत्त संयतके समान ६३ प्रकृतियों का वन्ध है। आहारक मिश्रमें—देवायुके वन्धका अभाव होनेसे ६२ रहती हैं, कारण 'मिस्त्रुणे आउत्स'—मिश्र अवस्थामें आयुका वन्ध नहीं होता, ऐसा सामान्य नियम है। कर्मायकाययोग में—औदारिक मिश्रके समान है। यहाँ मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चानुका भी अवन्ध होनेसे ११२ वन्ध योग्य हैं।

स्त्री वेदमें—आदिके नव गुणस्थान होते हैं, ओघवत् वर्णन है। पुरुष वेदमें भी इसी प्रकार है। नपुंसक वेदमें भी ऐसा ही जानना चाहिए। कपायोंमें—मिथ्यात्वसे लेकर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त ओघवत् भंग हैं। मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगज्ञान में—मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान हैं। यहाँ तीर्थंकर तथा आहारकद्विकका वन्ध न होनेसे ११७ वन्ध योग्य हैं। मनःपर्यय ज्ञानमें—प्रमत्तगुणस्थानसे क्षीणकपाय पर्यन्त है। यहाँ आहारकद्विकका वन्ध होनेसे वन्ध योग्य ६५ हैं। आहारकद्विकका उद्यम मनःपर्यय ज्ञानीके नहीं होता, वन्धका विरोध नहीं है।

[कालपरूषणा]

§४१. जहण्णेण एगसमओ, उकस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।
तित्थयर-जहण्णेण चदुरासीदि-वाससहस्साणि, उकस्सेण तिण्णि साग० सादिरेयाणि ।
पढमाए याव छट्ठित्ति पढमदंड-यंधकालो जहण्णे० दस वाससहस्साणि सागरोवम-

केवलज्ञान में—सयोगी जिनके साताका बन्ध है । अयोगीमें बन्ध नहीं है । केवलदर्शनमें ऐसा ही जानना । आभिनिबोधक-श्रुत-अवधिज्ञानमें—अविरत सम्यक्त्वोके समान ७९ का बन्ध है । अवधिदर्शनमें—अवधिज्ञानका भंग है । असंयममें—आहारकद्विक विना ११८ बन्ध योग्य हैं ।

देशसंयममें—ओघवत् भंग है । सामायिक छेदोपस्थापना संयममें—ननःपर्ययज्ञानके समान जानना चाहिए । यहाँ प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त गुणस्थान हैं । परिहार-विशुद्धिमें—प्रमत्त-अप्रमत्तकी ओघवत् रचना जाननी चाहिए । सूदनसाम्परायमें—ओघवत् है । यथाख्यातमें—११ वें से १४ वें गुणस्थान पर्यन्त ओघवत् है । चक्षु, अचक्षुदर्शनमें क्षीणकषाय पर्यन्त ओघवत् भंग है ।

कृष्णादि लेश्यात्रयमें—आहारकद्विक विना ११८ बन्ध योग्य हैं । वर्णन आदिके चार गुणस्थानोंके समान जानना चाहिए । पीतलेश्यामें—नरकायु, नरकद्विक, विकलत्रय तथा सूक्ष्मत्रय को छोड़कर १११ बन्ध योग्य हैं । अप्रमत्तपर्यन्त ओघवत् भंग है । पद्मलेश्या में—पीतके समान भंग है । यहाँ एक्रेन्द्रिय, आताप तथा स्थावर का भी अभाव है । शुक्ल लेश्यामें—पद्मवत् भंग है । यहाँ उपात, तिर्यञ्चद्विक, तिर्यञ्चायुका बन्ध न होनेसे १०४ बन्धयोग्य हैं । सयोगकेवलीपर्यन्त ओघवत् जानना चाहिए । भव्यसिद्धिकोंमें—ओघवत् हैं । अभव्यसिद्धिकोंमें—मिथ्यात्व गुणस्थान है । तीर्थङ्कर आहारकद्विक विना ११० बन्ध योग्य हैं । उपशम सम्यक्त्वमें—बन्ध योग्य ७५ हैं । यहाँ मनुष्यायु, देवायुका बन्ध नहीं होता है । चतुर्थसे ग्यारहवें पर्यन्त ओघवत् भंग है । देवका सम्यक्त्वमें—ओघवत् है । ४ थे से ७ वें तक गुणस्थान हैं । क्षायिकमें—ओघवत् भंग जानना चाहिए । संक्षीमें—ओघवत् है । क्षीणकषायपर्यन्त गुणस्थान हैं । असंज्ञामें—ओघवत् है । आदिके दो गुणस्थान हैं । आहारकोंमें—ओघवत् वर्णन है । अनाहारकोंमें—१, २, ४, १३, १४, गुणस्थान हैं । नरक-द्विक, आहारकद्विक, देव-नरकायु-मनुष्य-तिर्यञ्चायुका बन्ध न होनेसे ११२ बन्ध योग्य हैं ।

काल परूषणा

[ताड़पत्र नं० २८ नष्ट हो जानेके कारण इस प्ररूपणाका प्रारंभिक अंश भी विनष्ट हो गया । प्रकरणको देखने हुए ज्ञात होता है कि यहाँ आदेशकी अपेक्षा नरकगति का वर्णन चल रहा है और ओघ का वर्णन नष्ट हो गया है]

विशेष—यहाँ एक जीवकी अपेक्षा वर्णन किया गया है ।

§४१. नरकगतिमें—जपन्यसे एक सप्तम, उत्पत्तसे द्वाविंश नरकगति है । एक जीवकी अपेक्षा तीर्थङ्कर प्रकृतिका जपन्य बंधकाल ८४ हजार वर्ष, तथा उत्पत्त न भिन्न होने पर प्रमाण है । प्रथम नरकसे छठवें नरक पर्यन्त प्रथम बंधकाल जपन्यसे द्वाविंश वर्ष,

तिणिण-सत्त-दस-सत्तारस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि । उक्कस्सेण अप्पप्पणो ढिदी कादव्वो (दव्वा) । साद[दं]डगे तिरिक्खगदितियं पविट्ठं जह० एयस० उक्क० अंतो० । श्रीणगिद्धिदण्डओ णिरयोधो । णवरि अप्पप्पणो ढिदी भा(भ)णिदव्वा । एवं मिच्छत्त-दंडओ । पुरिसवेददंडओ अप्पप्पणो ढिदी० देसुणा । आयु० ओधं । तित्थयर० पढ-
 ५ माए जहण्णेण चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्क० सागरो० देसु० । विदियाए जह० सागरोवम० सादिरेयाणि । उक्क० तिणिण सागरो० देसु० । तदियाए जह० तिणिण साग० सादिरेयाणि । उक्क० तिणिण साग० सादिरेयाणि । [सत्तमाए णेरइ ओधो । णवरि दंसणतियं मिच्छत्तं अणंताणुवंधि० ४ तिरिक्खपगदितियं च जह० अंतो० । मणुस० मणुसाणुपुव्वि० उच्चागो० जह० अंतो० । तित्थयर० णत्थि ।
 १० § ४२. तिरिक्खेसु पंचणाण० छदंसण० मिच्छ० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचंतराइयाणं वंधकालो जह० खुद्धाभवग्गाहणं, उक्क० अणंतकालं

एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर से कुछ अधिक है तथा उत्कृष्ट अपने २ नरककी स्थिति प्रमाण जानना चाहिए । अर्थात् क्रमशः एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर तथा बाईस सागर प्रमाण है । साता दंडकमें तिर्यचगति-त्रिक अर्थात् तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी और तिर्यचायुमें प्रविष्ट जीवका वंधकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । स्त्यानगृद्धि दंडकका वंधकाल नरक गतिकी ओघ रचनाके समान है । विशेष यह है कि यहाँ अपनी २ स्थिति कहनी चाहिए ।

विशेष—ओघ रचना वाला ताड़पत्रका अंश नष्ट हो गया, अतः ओघ रचना अज्ञात है ।

मिथ्यात्व दंडकमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पुरुषवेद दंडकमें अपनी २ स्थिति प्रमाण किंतु कुछ कम वंधकाल है ।

आयुका वंधकाल ओघके समान है । तीर्थंकर प्रकृतिका वंधकाल प्रथम पृथ्वीमें जघन्यसे चौरासी हजार वर्ष है, उत्कृष्ट देशोंन एक सागर है ।

विशेषार्थ—इस वर्णनसे विदित होता है, कि तीर्थंकर प्रकृतिका वंधक नरकमें कमसे कम ८४ हजार वर्ष की आयुको प्राप्त करेगा । श्रेणिक महाराजके जीवने नरकमें जाकर ८४ हजार वर्ष की आयु प्राप्त की है । यह जघन्य आयु तीर्थंकर प्रकृतिके साथ होती है ।

दूसरी पृथ्वीमें जघन्य साधिक एक सागर, उत्कृष्ट किंचित् ऊन तीन सागर है । तीसरी पृथ्वीमें जघन्य साधिक तीन सागर, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है ।

विशेषार्थ—तीसरी पृथ्वीमें यद्यपि सामान्य रूपसे सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है किन्तु यहाँ साधिक तीन सागर प्रमाण कालके वर्णनसे प्रतीत होता है, कि तीर्थंकर प्रकृतिका वंधकाल साधिक तीनसागर प्रमाण होगा ।

सातवीं पृथ्वीमें—नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि दर्शनावरण ३, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधो ४, तिर्यचगतित्रिकका जघन्य वंधकाल अंतर्मुहूर्त है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है । यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है ।

§ ४२. तिर्यचगतिमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तेजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुक्त्यु, उपचात, निर्माण और ५ अंतरायाँका जघन्यसे वंधकाल

असंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं । एवं थीणगिद्धित्तिगं अणंताणु० आदि० (?) अट्ठकसाय
ओरालिय०, णवरि जह० एगसमओ । सादासाद-छण्णोकसाय-दोगादि-चदुजादि-
पंचसंठाणं ओरालिय० अंगो० छसंघडण-दो आणुपु०-आदाउज्जोव० अप्पसत्थवि०
थावरादि० ४ थिरादि दो युग० दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति जह० एग-
समओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पुरिसवेद-देवगदि-वेउव्वि० समच० वेउव्वि० अंगो० ५
देवाणुपु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागोद० जह० एगस० । उक्क०
तिण्णि पलिदो० । चदुआयु० तिरिक्खगदि ओघं । पंचिंदिय० परघादुस्सासं तस० ४ जह०
एगस० । उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । पंचिंदि० तिरिक्ख० ३ ओघं ।
पढमदंडओ जह० खुद्दाम० । पज्जत्तजोणिणीसु [जहण्णेण] अंतो० । उक्क० तिण्णि
पलिदो० पुव्वकोटिपुधत्त० । एवं थीणगिद्धित्तिगं अट्ठकसा० । णवरि जह० एगस० । १

क्षुद्रभव ग्रहण, उत्कृष्टसे अनंतकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है^१ । त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानु-
बंधी आदि आठ कपाय, तथा औदारिक शरीरमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए^२ । विशेष यह
है, कि यहाँ जघन्य एक समय है । साता-असातावेदनोय, ६ नोकपाय, २ गति, ४ जाति, ५
संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविद्यायोगति,
स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिका जघन्य
बंधकाल एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र
संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविद्यायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और
उच्चगोत्रका जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट तीन पत्य है । चार आयु और तिर्यचगतिका
ओषके समान जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का जघन्य एक
समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पत्य प्रमाण है । पंचेन्द्रिय-तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्तक,
पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यचमें—ओषके समान जानना चाहिये । प्रथम बंधकमें जघन्य बंधकाल
क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है । तिर्यच पर्याप्तक तथा योनिमतियोंमें (जघन्य) अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट
पूर्वकोटि प्रथक्त्वाधिक तीन पत्य प्रमाण है ।

विशेषार्थ—एक देव, नारकी, मनुष्य अथवा विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यचसे विभिन्न पत्य
तिर्यच सरकर विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यच हुआ । वहाँ संशी स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदोंमें प्रथम
आठ आठ पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तथा असंशी स्त्री, पुरुष, नपुंसकमें पूर्वद्वि आठ आठ
पूर्व कोटि प्रमाण काल-क्षेप करके पश्चान् लब्धपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ ।
वहाँ अंतर्मुहूर्त रहकर पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यच असंशी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर जनमें देव स्त्री,
पुरुष, नपुंसकवेदी जीवोंमें पुनः आठ आठ पूर्वकोटि प्रमाण काल व्यतीत करके पश्चात् संशी
पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ पूर्व कोटियों तथा पुरुष वेदियोंमें

(१) “तिरिक्खगदीए तिरिक्खेहु निज्जादिही केचिरं कालादो होति ? एतत्तं कालं जघन्येण
अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं”-पट्ठ० का० ४८ । (२) “अणंतकालं
केचिरं कालादो होति ? एतत्तं कालं जघन्येण एतत्तं कालं”-पट्ठ० का० ५०, ५१, ५२ ।
(३) “पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खज्ज-पंचिंदियतिरिक्खज्ज-पंचिंदियतिरिक्खज्ज-पंचिंदियतिरिक्खज्ज-
होति ? एतत्तं कालं जघन्येण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि”-पट्ठ० का० ५७-५९ ।

साददंडओ तिरिक्खोवं । णवरि तिरिक्खगदितिंगं ओरालियं च पविट्ठं । पुरिसवेददंडओ तिरिक्खोवं । णवरि जोणिणीसु देसूणा । चट्ठ आयु० ओवं । पंचिंदियदंडओ तिरिक्खोवं । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-पंचणाणा० णवदंसणा० मिच्छत्त-सोलसकसाय-भयदुगुं० ओरालियं तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचंत० जह० खुद्धा० । उक्क० अंतो० । ५ दो आयु ओवं । सेसाणं जह० एगस० । उक्क० अंतो० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं थावरारणं च ।

§ ४३. मणुस० ३-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिणं पंच०-(पंचंत०) जह० एगस० । [उक्कस्सेण] तिणिण पल्लिदो० पुव्वकोडिपुध० । एवं मिच्छ० । णवरि जह० खुद्धा० । पज्जत्तमणुसिणि अंतो० [उक्कस्सेण

सात पूर्वकोटियां भ्रमण करके पश्चात् देवकुल, वा उत्तरकुलमें तिर्यचोंमें पूर्ववद्वायुके वश पुरुष या स्त्री तिर्यच हुआ तथा तीन पल्योपम काल व्यतीत करके मरा और देव हुआ । इस प्रकार पूर्वकोटि पृथक्त्व वर्ष अधिक तीन पल्य कहे हैं । (ध० टी० का० पृ० ३६७, ३६७)^१

इसीप्रकार स्थानगृद्धिन्निक तथा आठकपायका भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ जघन्य एक समय है । साता दंडकमें तिर्यचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष तिर्यचगति, तिर्यच्चायु, तिर्यच्चानुपूर्वी तथा औदारिक शरीरमें जानना चाहिए । पुरुषवेद दंडक का तिर्यच्चोंके ओघवत् है । इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यच्चोंमें कुछ कम जानना चाहिये । चार आयुका बन्ध काल ओघवत् जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय दंडकमें तिर्यच्चोंके ओघवत् है ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यच्च लब्धपर्याप्त क्रोमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पञ्च अंतरायों का बंधकाल जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है^२ ।

मनुष्य तिर्यचायुका बंधकाल ओघवत् है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । इसप्रकार संपूर्ण अपर्याप्तक त्रसों तथा स्थावरों में जानना चाहिए ।

§ ४३. मनुष्य सामान्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायों का जघन्य बंधकाल एक समय, (उत्कृष्ट) पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण है । इसी प्रकार मिथ्यात्वका भी बंधकाल है । विशेष इतना है कि जहाँ जघन्य क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ।^३

(१) यहाँ चारह भवोंमें से ११ भवोंमें पूर्व कोटिपृथक्त्ववर्ष अर्थात् आठ आठ पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमण का काल और अन्तके चारहवें भवमें सातपूर्व कोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमण करनेका काल मिलकर ९५ पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होता है । इस काल को पूर्वकोटिपृथक्त्व शब्द से ग्रहण किया है ।

(२) “पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो हांति ? एगजीवं पटुच्च जहण्णेग खुद्धाभयग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।”—पट्खं० का० १५, ६९ ।

(३) “मनुवगदीए मणुस-मणुसन्नच-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पटुच्च जहण्णेग अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिणिण पल्लिदोवमाणि पुव्वकोडिपुव्वत्तेगग्गहियाणि ।”—पट् खं० का० ६८-७० ।

यहाँ यह विशेष है कि मनुष्य निष्कार्त्वा के ४७ पूर्व कोटि अधिक तीन पल्य है, पर्याप्त निष्कार्त्वा मनुष्य के २३ पूर्वकोटियाँ अधिक हैं । मनुष्यनी निष्कार्त्वा के सात पूर्वकोटि अधिक है । यथा—“मणुस-मिच्छादिट्ठित्ते च सत्तेतालपुव्वकोडीओ अहिया होति, पज्जत्तमिच्छादिट्ठिं गं त्वंमिपुव्वकोडीओ, मणुसिणि मिच्छादिट्ठिंतु सत्त पुव्वकोडीओ अहियाओ ।”—ध० टी० का० पृ० ३७३ ।

तिणिणपलिदो० पुव्वकोडिपुध०] सादावे० चटुआयु ओव० । असाद०-छण्णोको-
 तिणिणगदि-चटु जादि-ओरालिय०-पंचसंठा०-ओरालिय-अंगोवंग-छसंध०-तिणिणआणु०-
 आदाउज्जो०अप्पसत्थ०-थावरादि०४-थिरादिदोयुग०दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजस
 गित्ति-णीचागो० जहण्णेण एगसमओ । उक्क० अंतो० । पुरिस० देवग० ४ समच०
 पसत्थ० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस० । उक्क० तिणिण पलिदो० ५
 सादिरे० । मणुसिणीसु देख्ख० । पंचिंदिय० परघाटु० तस० ४ तिरिक्खोव० । आहार० २
 जह० एग० । उक्क० अंतो० । तित्थ० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेख्खणा ।

§ ४४. देवेषु-पंचणा० छदंसणा०वारसक०भयदुगुं० ओरालिय०तेजाक०वण्ण०४
 अगु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पंचंत० जह० दसवस्ससहस्सा० । उक्क० तेतीसं
 सा० । थीणगिद्धित्तिग० मिच्छ० अणंताणुवांधि० ४ जह० एगस० [णवरि] मिच्छ० १०

पर्याप्त मनुष्यनीमें जघन्य बंधकाल अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । (उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पत्य है) । सातावेदनीय, चार आयुका बंधकाल ओघवत् जानना चाहिए । असातावेदनीय, ६ नोकपाय, तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पांच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग दुःस्वर अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा नीचगोत्रका जघन्य बंधकाल एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, देवगति ४, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पत्य प्रमाण है^१ । विशेष यह है कि मनुष्यनीमें देशोन तीन पत्य है । पंचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का बंधकाल तिर्यद्वां के ओघवत् है । आहारकट्टिका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । तीर्थकरका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है ।

§ ४४. देवगतिमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा पद्म अंतरायांका जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है ।

विशेषार्थ-देवोंकी जघन्य उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षा यह वर्णन हुआ है ।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबन्धी ४ का जघन्य बंधकाल एक समय है । (इतना विशेष है कि) मिथ्यात्वका जघन्य बंधकाल अंतर्मुहूर्त है किन्तु सबका उत्कृष्ट बंधकाल ३१ सागर प्रमाण है ।

१ “असंजदसग्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि ? एगवीवं पुरुषजहण्णेण अंतोमुहूर्तं, उअसमंति तिणिण पलिदोवमाणि सादिरेयाणि तिणिण पलिदोवमाणि देख्खामि ।”-पट्ठं० का० ७९-८१ ।

“मणुस-मणुसपज्जत्तएसु सादिरेयाणि तिणिण पलिदोवमाणि अण्णत्थ देख्खामि ।”-२०टी० पा० २०३-३३ ।

पूर्वकोटि आयु के विभाग में मनुष्यायुको बांधनेवाले मनुष्यने अंतर्मुहूर्तमें सम्भवतः प्रायः विना तथा सम्भवतः सहित भोग भूमिमें तीन पत्य बिताए और भरकर देव हुआ । इस प्रकार सातवें पत्य प्राप्त है । कुछ कम तीन पत्य प्रमाणकाल मनुष्यनिषों में है । कोई मिथ्यात्वी मनुष्य भोगभूमिमें तीन पत्य के विना वाला मनुष्य हुआ । ९ माह गर्भमें बिताए, पश्चात् ४९ दिनोंमें सम्भवतः ताने बिना और सम्भवतः ताने शेष तीन पत्य पूर्ण कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार ९ माह ४९ दिन कम तीन पत्य प्रमाण प्राप्त हुआ ।-५० टी० का० ४० ३७८ ।

अंतो० । उक्क० एककत्तीसं सा० । सादासाद० छण्णोक० तिरिक्ख० एइंदि० पंचसं०
 पंचसंव० तिरिक्खगदिपाओ० आदाउज्जोव-अप्पसत्थवि०-थिरादिदोयुग० दूभगदुस्सर०-
 अणादेज्ज-जस०-अजस० णीचा० जह० एग० । उक्क० अंतो० । पुरिस० मणुस०
 पंचिंदि० समच० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसहं० मणुसाणु० पसत्थवि० तस० सुभग०
 ५ सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस० । उक्क० तेत्तीसं सा० । दो आयु ओघो
 (ओघं) । तित्थय० जह० वेसाग० सादिं० । उक्क० तेत्तीसं सा० । एवं सच्चदेवाणमप्प-
 प्पणो ण्हिदिकालो णेदच्चो याव सच्चट्ठा त्ति । णवरि भवणवासि-वाण-वेंतर-जोदिसियाणं
 तित्थयरं णत्थि । सणक्कुमारादि पंचिंदियसंयुतं कादच्चं । एवं एइंदिय थावरि(रं)णत्थि ।
 आणदादितिरिक्खायु-तिरिक्खगदि० ३ णत्थि । मणुसगदि ध्रुवं कादच्चं ।

विशेष—कोई मिथ्यात्वी द्रव्यलिङ्गी मरकर ३१ सागरकी आयुवाले प्रैवेयक वासी देवों
 में उत्पन्न हुआ । वहाँ उसने जीवन भर मिथ्यात्वादिका बंध किया । इस अपेक्षा ३१ सागर प्रमाण
 बन्धकाल कहा है ।^१

साता असाता वेदनीय, ६ नोकपाय, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय, पञ्च संस्थान, पञ्च संहनन,
 तिर्यचगत्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिरादि दो युगल, दुर्भंग, दुस्वर, अनादेय,
 यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, मनुष्य-
 गति, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी,
 प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्र का जघन्य एक समय है,
 उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—यह उत्कृष्ट बन्धकालका कथन सर्वार्थसिद्धिके देवों की अपेक्षा है ।

दो आयुका बन्धकाल श्रोगवत् जानना चाहिए । तीर्थकर प्रकृति का जघन्य बन्धकाल
 साधिक दो सागर है, उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—देवगति की अपेक्षा तीर्थकर प्रकृति का बन्ध कल्पवासी ३ देवोंमें होता है ।
 सौधर्मद्विकमें आयु साधिक द्विसागरोपम है और सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागरोपम है । इस अपेक्षा
 यहाँ वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार सब देवोंमें अपनी अपनी स्थिति-प्रमाण बन्ध का काल सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त
 जानना चाहिए । इतना विशेष है कि भवनवासी, व्यंतर तथा ज्योतिषी देवोंमें तीर्थकर प्रकृति
 नहीं है। सनत्कुमारादि देवोंमें पंचेन्द्रियका संयोग करना चाहिए । वहाँ एकेन्द्रिय तथा स्थावर नहीं हैं ।

विशेष—सौधर्मद्विकके आगे केवल पंचेन्द्रिय जातिका बन्ध होता है, एकेन्द्रिय,
 स्थावर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है ।

आनतादि स्वर्गोंमें—तिर्यचायु, तिर्यचगति, तिर्यच्चाणुपूर्वी तथा उद्योत का बन्ध नहीं है ।
 यहाँ मनुष्यगति का ध्रुव रूपसे भंग करना चाहिए । (कारण, यहाँ मनुष्यगतिका ही बन्ध होता है) ।

विशेष—शतारचतुष्टय नामसे ख्यात तिर्यचायु, तिर्यचगति, तिर्यचाणुपूर्वी तथा उद्योतका
 बन्ध शतार सहस्रारसे ऊपर नहीं होता है ।

(१) “देवगदीए देवेनु निच्छद्विही केवचिरं काळादो होदि ? एगवीयं पटुच जहणेग अंतोमुटुचं,
 उक्कस्सेग एककत्तीसं सायरोमनाणि ।” —पट्ट ख० का० ८७-८९ ।

(२) “कप्पिस्सीनु ण तित्थं” —गो० क० गा० ११२ । पट्ट० टी० भा० १ पृ० ९१, १३१ ।

§ ४५, एइंदिएसु-पंचणा०णवदंसणा०मिच्छ०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय०तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्धा० । उक्क० अणंतकालम० । वादरे०
अंगुल० असं० । सुहुमे असंखेज्जा लोगा । वादरे इंदिय-पज्जत्ता० जह० अंतोमु० । उक्कस्सेण
संखेज्जवस्ससहस्सा० । सुहुम-एइंदि० पज्जत्त जहण्णु० अंतोमु० । तिरिक्खगदितियं जह०
एयस० । उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं सुहुमवादरे अंगुलस्स असंखे० । पज्जत्ते संखे- ५
ज्जाणि वस्ससहस्साणि । सुहुम-पज्ज० जह० एगस० उक्क० अंतोमु० । सेसाणं सादादीणं
जह० एयस० । उक्क० अंतोमु० । दो आयु० ओघं । एवं सन्व-एइंदियाणं णेदव्वं ।

§ ४६, विगलिंदियाणं-पंचणा०णवदंसणा०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय-
तेजाकम्मइयशरीर-वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचंतराइयाणं जहण्णेण खुद्धाभ०
पज्जत्ते अंतोमु० , उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । दो आयु ओघं । सेसाणं १०
सा[दा] दीणं जह० एयस० । उक्क० अंतोमु० ।

§ ४५ एकेन्द्रियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-
तजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, पांच अंतरायका बन्धकाल क्षुद्रभव
प्रमाण जघन्यसे है तथा उत्कृष्ट अनंतकाल प्रमाण जानना चाहिए । वादर एकेन्द्रियोंमें जघन्यसे
अंगुलके असंख्यातमें भाग प्रमाण है । सूक्ष्ममें असंख्यात लोक प्रमाण है ।

विशेष—यहाँ 'अंगुल का असंख्यातवां भाग' क्षेत्रकी मर्यादा का द्योतक शब्द, काल
के लिए प्रयुक्त हुआ है । इसका तात्पर्य यह है कि आकाशके उक्त क्षेत्रमें जितने प्रदेश आवें
उतनी संख्या-प्रमाण समयरूप काल को ग्रहण करना चाहिए ।

१ वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमें जघन्य बन्धकाल अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष प्रमाण
है । २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकमें जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण है ।

तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी तथा उद्योतका जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट अनंतकाल लोक
प्रमाण है । इस प्रकार सूक्ष्म वादर एकेन्द्रियोंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाणकाल है ।
किन्तु इनके पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल है । सूक्ष्मपर्याप्तकोंमें जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त हैं । शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त
प्रमाण बंधकाल है । मनुष्य तथा तिर्यचायुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिये । इस प्रकार
सम्पूर्ण एकेन्द्रियोंमें जानना चाहिये ।

§ ४६, विकलेन्द्रियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा,
औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका
जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है । किन्तु पर्याप्तकोंमें अंतर्मुहूर्त प्रमाण जघन्यकाल है ।

(१) "इंदियाणुवादेण एगजीवं पट्ठं जहण्णेण खुद्धाभयभयानं, उक्कस्सेण अणंतकालमं णेदव्वं
परियहं ।"—पट्ठं खं० का० १०७-१०९ । (२) "वादरेइंदियवज्जा केवलिं बालो णिमिणं एयसं
पट्ठं जहण्णेण अंतोमुहूत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।"—पट्ठं खं० का० ११३-११५ । (३) "सन्व-
इंदियाणं णेदव्वं एगजीवं पट्ठं जहण्णेण अंतोमुहूत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहूत्तं"—पट्ठं खं० का० १२३-१२४ ।

- § ४७. पंचिदि० तस० २-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्धा० पज्जत्ते० अंतोमु० । उक्क० सागरोवमसह० पुव्वकोडिपुध० । पज्जत्ते सागरोवमसद-पुध० । तसेसु-वेसाग० सहस्साणि पुव्वकोडिपुध०, पज्जत्ते वेसागरोवमसहस्साणि ।
- ५ सादावे० चदुआयु ओधं । असादा० छण्णोको० णिरयगदि-चदुजादि-आहारदुगं पंच-संठाण-पंचसंघडण-णिरयाणुपुव्वि-आदाउज्जो-अप्पसत्थवि० थावर० ४ थिरादि दोयुग० दूभग० दुस्सर० अणादेज्ज० जस० अज्जस० जह० एग० । उक्क० अंतोमु० । पुरिस० ओधं । तिरिक्खगदितिगं ओरालि० ओरालिय० अंगोवंग० जह० एयस० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । मणुसगदि० वज्जरि० मणुसाणु० जह० एगस० ।
- १० उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि० ४ जह० एयस० । उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । पंचिदि० परघादुस्सास-तस० ४ जह० एगस० । उक्क० पंचासीदि-

उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है^१ । मनुष्य तथा तिर्यच आयुका ओघवत् जानना चाहिये । शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त प्रमाण है ।

§ ४७. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तकोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है । विशेष यह है कि पर्याप्तकोंमें जघन्य बन्धकाल अन्तमुहूर्त प्रमाण है ।^२ इनका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सहस्र सागरोपम है । विशेष यह है कि पर्याप्तकोंमें सागरोपम शतपृथक्त्व प्रमाण है । त्रसोंमें दो हजार सागर पूर्वकोटिपृथक्त्वाधिक है । इनके पर्याप्तकोंमें दो हजार सागरोपम प्रमाण बन्धकाल है । सातावेदनीय तथा आयु ४ का बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिये । असातावेदनीय, ६ नोकपाय, नरकगति, ४ जाति, आहारकद्विक, पंच संस्थान, पंच संहनन, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःखर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिका बन्धकाल जघन्य से एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है । पुरुषवेदका बन्धकाल ओघकी तरह जानना चाहिये । तिर्यचगतित्रिक, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । मनुष्यगति, वज्रयुपम संहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । देवगति चतुष्क का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्यापम है । पंचेन्द्रिय, परघात, उच्छ्वास,

(१) "वीहंदिया-त्तीहंदिया-चउरिंदिया बीहंदिय-तीहंदिय-चउरिंदियपन्नत्ता केवचिरं कालादो होति ? एगजीवं पटुच्च जहण्णेग खुद्धानवगदणं, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेग संत्तेज्जाणि वामसहस्साणि ।" -पट्खं-का० १२८-१३० ।

(२) "पंचिदिय-पंचिदियपन्नत्तएनु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो-होति ? एगजीवं पटुच्च जहण्णेग अंतो-मुहुत्तं, उक्कस्सेग सागरोवमसहस्साणि, सागरोवमसदपुधत्तं ।" -पट्खं० का० १३४-१३६ ।

(३) "तसकाइय-तसकाइयपन्नत्तएनु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति ? एगजीवं पटुच्च जहण्णेग अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेग वेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेगम्महियाणि वेसागरोवमसहस्साणि ।" -पट्खं० का० १५२-१५७ ।

सागरोवमसदपु० समचदु० पसत्थवि० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोद० जह०
एगस० । उक्क० वेछावट्ठि-सागरो० सादिरे० तिणिण-पलिदोवमाणि देसणाणि ।
तित्थयर० जह० अंतोमु० उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरेयाणि ।

§ ४८. पंचकायाणं-पंचणा०णवदंसणा०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं० ओरालिय-
तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुदा० । उक्क० असंखेज्जा ५
लोणा अणंतकालं असंखेज्जा पोग्गलपरि०, अड्ढाज्ज पोग्गल० । वादरेसु कम्मट्ठिदि
अंगुलस्स असंखे० कम्मट्ठिदि० । वादरे पज्जत्ते जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्स-
सहस्साणि । सुहुमे पज्जत्ते सुहुमएइंदियभंगो । सेसाणं सादादीणं जह० एगस० ।

त्रस, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ८५ सागरोपम
शतपृथक्त्व प्रमाण बन्धकाल है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुधर,
आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो छयासठ सागरोपममें कुछ कम तीन
पल्योपमसे न्यूनकाल जानना चाहिए।^१ तीर्थंकरका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक
३३ सागर है।

§ ४८. पंच कार्योंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भयजुगुप्सा, आदा-
रिक, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण तथा पांच अंतरायों का जघन्य बंधकाल
^२ क्षुद्रभव है, उत्कृष्ट असंख्यात लोक, अनंतकाल, असंख्यात पुद्गलपरावर्तन, अर्द्धा पुद्गल परा-
वर्तन है।^३ वादरकाय में कर्मस्थिति अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। वादर पर्याप्तकोंमें
कर्मस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है।

विशेषार्थ—यहां 'कर्मस्थिति' शब्दसे केवल दर्शनमोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम
उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण हुआ है। दर्शनमोहनीय कर्मकी स्थितिकी प्रधानता देनेका कारण यह
है कि उसमें सर्व कर्मोंकी स्थिति संगृहीत है। (ध० टी० का० पृ० ४०५)

सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रियके समान भंग है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य

(१) "असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति ? एगजीवं पणुज जण्णेण अंतोमुगुत्तं, उच्चरंति
तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।"—पट् खं० का० १३-१५ ।

(२) "पुट्टविकाइया आउआइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होति ? एगजीवं पणुज
जण्णेण सुताभवग्गहणं उवकस्सेण असंखेज्जा लोणा ।"—पट् खं० का० १३९-४६ । (३) "वादरपुट्ट-
काइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवाउकाइया वादरवममदिगाइपस्सेसर्गसि केवचिरं
कालादो होति ? एगजीवं पणुज जण्णेण सुताभवग्गहणं, उवकस्सेण कम्मट्ठिदि ।"—पट् खं० का० १४२-४७ ।
"वादरपुट्टविकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवाउकाइया वादरवममदिगाइपस्सेसर्गसि
पणत्ता केवचिरं कालादो होति ? एगजीवं पणुज जण्णेण अंतोमुगुत्तं, उवकस्सेण सहेससि जह
सहस्साणि ।"—पट् खं० का० १४५-४७ ।

शुद्ध पृथ्वीकाधिक पर्याप्तकों की आहु-स्थिति १२ हजार वर्ष है, कच्छुसोद्विह पर्याप्तकों की ३
हजार है। जलकाधिक पर्याप्तकों की ७ हजार वर्ष है, तेजस्विक पर्याप्तकों की तीन हजार, वायुकाधिक
पर्याप्तकों की ३ हजारवर्ष, वनस्पतिकाधिक पर्याप्तकों की स्थितिका प्रमाण अज्ञात है।^४ ध० टी०
की स्थितिमें संगृहीत हजार बार उत्पन्न होने पर संख्यात सहस्र है जो है। (ध० टी० का० पृ० ४०५)

उक्क० अंतो० । दो आयु ओधं । णवरि तेज० वाउ० मणुसगदि० ४ वज्जरिस० [वज्जं] तिरिक्खगदितिगं ध्रुवभंगो ।

§ ४९. पंचमण० पंचवचि०—सच्चपगदीणं वंधे (बंध) कालो जह० एगस० । उक्क० अंतो० । एवं वेउच्चिय० आहारका० का[य]जोगि०—पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० ५ सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय—तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० ४ उपघा० णिमिणं पंच-तरा० जह० एगस० । उक्क० अणंतकालं असंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं । तिरिक्खगदितिगं ओधं । सेसाणं सादादीणं जह० एगस० । उक्क० अंतोमु० ।

§ ५०. ओरालियकायजोगीसु—पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय—तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचतरा० जह० एग० । उक्क० १० वावीस-वस्स-सहस्साणि देस्सणाणि । तिरिक्खगदि-तिगं जह० एगस० उक्क० तिण्णि-वस्स-सहस्साणि देसू० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० ।

§ ५१. ओरालियमिस्स०—पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय—तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचतरा० जह० खुद्धाभव०

एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यायु तथा तिर्यचायुका ओघवत् जानना चाहिये । इतना विशेष है कि तेजकाय और वायुकायमें, मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्र रूप चतुष्क तथा वज्रर्पभनाराच संहनन को (छोड़कर) तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी तथा तिर्यचायुका ध्रुवभंग है ।

§ ४९. पांच मनोयोग, पांच वचनयोगमें—सर्व प्रकृतियोंका वन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट से अंतर्मुहूर्त है । वैक्रियिक काययोग तथा आहारक काययोग में—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुगलवु ४, उपघात, निर्माण, ५ अंतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनंतकाल, असंख्यात पुद्गल-परावतन है । तिर्यङ्गगतित्रिकका ओघवत् है । शेष सातादि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§ ५०. औदारिक काययोगियों में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलवु, उपघात, निर्माण, तथा ५ अंतरायों का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम २२ हजार वर्ष है ।

विशेषार्थ—एक तिर्यङ्ग, मनुष्य या देव २२ हजार वर्ष को आयुवाले एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ और जघन्य अंतर्मुहूर्तके पश्चात् पर्याप्तियों को पूर्ण किया । इससे अपर्याप्त दशा में औदारिकमित्रके कालको घटाकर औदारिक काययोग का काल कुछ कम २२ हजार वर्ष रहा । अथवा देवका यहाँ एकेन्द्रियोंमें उत्पाद नहीं कहना चाहिए, कारण, उसके जघन्य अपर्याप्त काल नहीं होगा । (घ० टी० का० पृ० ४११)

तिर्यङ्गगति-त्रिकका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे तीन हजार वर्षसे कुछ कम है । शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५१. औदारिकमित्रकाययोग में—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय,

तिसमऊणं उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । देवगदि० ४ तित्थय० जहणु०
अंतोयु० । सेसाणं सादासादादीणं जह० एयस० उक्क० (उक्क०) अंतो० ।

§ ५२. वेउच्चियमिस्स०-पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं०ओरालिय-
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय०-णिमिण-तित्थयर पंचंत० जहणु०
अंतो० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० ।

§ ५३. आहारमिस्स०-पंचणा०छदंसणा-चदुसंजलण-पुरिसवेद-भयदुगुं० देवगदि०
पंचिदि० वेउच्चिय-तेजाक० समचदु० वेउच्चिय-अंगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगु० ४-
पसत्थ०-तस० ४-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थयं० (य०) उच्चागो० पंचंत०

जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका
जघन्य बन्धकाल तीन समय कम क्षुद्रभव प्रमाण है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीव अधोलोके अन्तर्में तीन मोढ़े करके क्षुद्रभव-प्रमाण आयुवाला
सूक्ष्म वायुकायिक जीव हुआ । वहाँ ३ समय कम क्षुद्रभवग्रहण कालतक लब्ध्यपर्याप्तक हो
जीवित रहकर मरा । पुनः विग्रह करके कार्माणकाययोगी हुआ । इस प्रकार तीन समय कम
क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल सिद्ध हुआ । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण इसप्रकार जानना
चाहिए कि कोई जीव लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहण प्रमाण उनमें परावर्तन
करके पुनः पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी बन गया । इन सब संख्यातभवोंका काल
मिलकर भी अंतर्मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है । (ध० टी० का० पृ० ४१९)

दो आयुमें ओघवत् जानना चाहिए । देवगति ४ और तीर्थंकरका जघन्य तथा उत्कृष्ट
बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है । शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय तथा
उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

§ ५२. वैक्रियिकमिश्र काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ काराय,
भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४ अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक,
निर्माण, तीर्थंकर तथा पांच अन्तरायका जघन्य उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिमग्रैवेयकमें दो विग्रह करके उत्पन्न हो सर्वलघु
अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्तक हुआ अथवा एक भावलिंगी मुनि दो विग्रह करके सर्वार्थनिक्षिप्त नरक
हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्त हुआ । इसप्रकार वैक्रियिकमिश्र काययोगमें जघन्य
बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त इस प्रकार है कि कोई मिथ्यावर्ती
जीव सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालके अन्तर्गत पर्याप्त हुआ ।
इसीप्रकार एक नरक-बलायुक्त जीव सम्यक्त्वो हो दर्शनमोहदा रूपण करके नरक पर भयमें
बड़े अन्तर्मुहूर्त कालमें पर्याप्तियोंकी पूर्णताको करता है । यहाँ दोनोंमें जघन्य कालमें दोनोंका
उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । (ध० टी० का० पृ० ४२८-४२९)

शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५३. आहारमिश्र काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ काराय, भय, जुगुप्सा,
देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस-कार्माण शरीर, समचदुसंजलण, पुरिसवेद,
वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, वर्ण ४, देवालुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रसन्न विहावगति, अग ४, सुभग, सुस्सर,
आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चागो तथा ५ अन्तरायका जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५७. णउंसक०—पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एगस०, मिच्छत्तं खुद्दाम० । उक्क० अणंतकालं-असंखे० । पुरिस० मणुस० समचदु० वज्जरिसहसं० मणुसाणु० पसत्थ० सुभगसुस्सर-आदेज्ज० जह० एगस० । उक्क० तेत्तीसं सा० देख्ठु० । तिरिक्खगदितिगं ओघं । देवगदि० ४ जह० एगस० उक्क० पुण्वकोडिदेस्स० । पंचिंदिय० ओरालिय-अंगो० परघादुस्सास-तस० ४ जह० एगस० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । तिस्थय० जह० एग० । उक्क० तिण्णि सागरो० सादिरे० ।

§ ५८. अवगद०—पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पु० जस० उच्चागो० पंचंत० जह० एग० । उक्क० अंतो० । सादावे० ओघं ।

१० § ५९. सुहमसंप०—पंचणा० चदुदंस० सादा० जस० उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क० अंतो० ।

छथासठ सागरोपममें कुछ कम तीन पत्य न्यून जानना चाहिए । सातादिकका जघन्यसे [एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है] आयुचतुष्कका स्त्रीवेदके समान भंग है । तीर्थंकर का ओघवत् है ।

§ ५७. नपुंसक वेदमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पाँच अन्तरायोंका जघन्य एक समय^१ है, किन्तु मिथ्यात्वका का क्षुद्रभव प्रमाण है । इनका उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यत पुद्गल परावर्तन है । पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर आदेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण है ।

विशेषार्थ—मोहनीयको २८ प्रकृतियोंको सत्तावाला कोई जीव मरणकर सप्तम पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । छह पर्याप्तियोंको पूर्णकर तथा विश्राम ले, विशुद्ध होकर, सम्यक्त्वको प्राप्त किया, एवं आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्वको प्राप्तकर आगामी भवकी आयुका बन्ध किया । अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके मरण किया । उसके छह अन्तर्मुहूर्त कम ३३ सागरप्रमाण बन्धकाल होगा । (घ० टी० काल० ४४३)

तिर्यचगतित्रिकका ओघके समान भंग है । देवगति ४ का जघन्य बंधकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है । पंचेन्द्रिय, औदारिक आंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । साता आदिक प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है ।

§ ५८. अपगत वेदमें—५ ज्ञानावरण, पंच निद्राओंका अभाव होनेसे शेष चार दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अंतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । साता वेदनीयका ओघवत् है ।

§ ५९. सूक्ष्म सांपराय संयम में—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अंतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त बंधकाल है ।

(१) “पञ्चमवेदेन मिच्छादिद्वी केवचिरं कान्यदो ह्येति ? एगसं पदुच्च जहण्णं अंतोमुहुरं, उक्कस्सं अणंतकालं असंखेनोणावपरियट्ठं ।” —पट्ठं का० २४०, ४२ ।

§ ६०. क्रोधादि० ४-पंचणा० चतुर्दश० चतुर्दश० पंचत० जहणु० अंतो० ।
सेसाणं जह० एगस० । उक्क० अंतो० । णवरि माणे तिणि संज० । मायाए दोणि
संज० । लोभे०-पंचणा० चतुर्दश० लोभसंज० पंचतरा० जहणु०-अंतो० । सेसाणं
जहणोण एगस० । उक्क० अंतो० ।

§ ६१. अकसाई०-सादावे० ओघं । एवं यथाखादं । एवं चैव केवलणाण-केवलदं- ५
सणाणं । णवरि जह० अंतो० ।

§ ६२. मदि०-सुद०-पंचणा० णवदं० मिच्छत्तं सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०
४ अगु० उप० णिमि० पंचत० तिणि भंगो ओघं । तिरिक्खगदि-तिगं ओघं । मणुसग०
मणुसाणुपु० जह० एगस० । उक्क० एककतीसं० सादिरे० । देवगदि-वेउवियस०
समचदु० वेउविय० अंगो० देवगदिपाओ० पसत्थं सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चा० १०
जह० एग० । उक्क० तिणि पल्लिदो० देसु० । पंचिदि० ओरालि० अंगो० परघादु०

विशेष-उपशम श्रेणी की अपेक्षा यह काल कहा गया है । क्षपककी अपेक्षा जघन्य
और उत्कृष्ट दोनों अंतर्मुहूर्त प्रमाण हैं ।

§ ६०. क्रोधादि चतुष्कमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायका जघन्य
और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । विशेष यह है
कि सानकपायमें तीन संज्वलन, माया कपायमें दो संज्वलनका बंध है । लोभ कपायमें-५
ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, संज्वलन लोभ, ५ अंतराय का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण
है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§ ६१. अकपायियोंमें-सातावेदनीयका ओघवत् बंधकाल है । इसी प्रकार यथाख्यात संयम,
केवलज्ञान, केवलदर्शनमें भी जानना चाहिए । इतना विशेष है कि जघन्य बंधकाल
अंतर्मुहूर्त है ।

§ ६२. मत्तज्ञान, श्रुताज्ञानमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय,
जुगुप्सा, तैजस, कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण, ५ अंतरायके तीनों भंग
ओघवत् जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-अभिव्यक्तिक्रम की अपेक्षा अनादि सपर्यवसित काल है । भगवत्सिद्धिके
मिथ्यात्वका अनादि सपर्यवसित काल है । तीसरा भंग सादि सान्तका है । इसी तीसरे भंगमें जघन्य
अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण काल है । (ध०टी० पृ० ३२-३५)
तिचर्यगति-त्रिकका ओषके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी का जघन्य एक समय
उत्कृष्ट साधिका ३१ सागर प्रमाण बंधकाल है । देवगति, वैकिपिक क्षीर, समचतुरस्र संयम,
वैकिपिक अंगोपांग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रसन्न विद्यायोगति, सुभग, सुस्सर, आदेज और
उच्चगोत्र का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन तीन पर प्रमाण है । पंचेन्द्र जति, धौर्जनिक

(१) 'चउरं उपसमा वेसरिं कालो वेति । एगवीरं पुरुष जणोण एगससं, पण्यो-
अंतोहृत्तं, चउरं ससमा एगवीरं पुरुष जणोण अंतोहृत्तं उवससो' अंतोहृत्तं-पट्ट मरि-
काल० २२-२८ ।

(२) 'एगवीरं पट्ट ससमिस्सो सज्जसन्दिदो, ससिस्सो सससन्दिदो । एगो ससिस्सो सससन्दिदो
सस इतो भिदो उवसो अंतोहृत्तं, उवससो अंतोहृत्तं सससन्दिदो' अंतोहृत्तं-पट्ट मरि-
काल० २९-३५ ।

सा० (दुस्सा०) तस० ४ जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । ओरालियस० जह० एग० । उक्क० अणंतकालमसंखे० । आयु ओघं । सेसं जह० एग० । उ० अंतो० ।

§ ६३. एवं मिच्छादिद्धि० । अब्भवसिद्धि० एवं चेव । णवरि धुवियाणं अणादि-ओ अपज्जवसिदो ।

५ § ६४. विभंगे०—पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगुं० तिरिक्खगदि० पंचिदि० ओरालिय-तेजाक० ओरालिय० अंगो० वण्ण० ४ तिरिक्खगदि-पाओ० अगु० ४, तस० ४ णिमिणं णीचां० पंचंत० जह० एग०, मिच्छत्त० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । मणुसग० मणुसाणु० जह० एग० । उक्क० एकत्तीसं देसू० । आयु ओघं । सेसाणं जह० एगस० । उक्क० अंतो० ।

१० § ६५. आभि० सुद० ओधिणा०—पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उचा० पंचंत० जह० अंतो०, उक्क० छावद्धि० सागरोव० सादिरे० । सादासा० हस्सरदि०

अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास तथा व्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । औदारिक शरीर का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनंतकाल, असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है । आयुका ओघवत् है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§ ६३. इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिमें भी जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिकोंमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है, कि अभव्योंमें ध्रुव प्रकृतियोंका वंधकाल अनादि अपर्यवसित अर्थान् अनन्त काल है ।

§ ६४. विभंगावधि में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यचगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कामाण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, तिर्यचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुगुलधु ४, व्रस ४, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अंतरायोंका जघन्य एक समय, किन्तु मिथ्यात्वी का जघन्य अंतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट देशोन ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—एक मिथ्यात्वी सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न होकर अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विभंगज्ञानी हुआ । आयुके ३३ सागर पूर्ण कर मरण करके निकला, तब उसका विभंग ज्ञान नष्ट हो गया, कारण अपर्याप्त कालमें विभंग ज्ञानका विरोध है । इस प्रकार उत्कृष्ट बंधकाल देशोन ३३ सागर प्रमाण है । (घ० टी० काल० पृ० ४५०)

मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्विका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन इक्कीस सागर है ।

विशेषार्थ—एक द्रव्यलिंगी साधु मरण कर प्रवेयकमें उत्पन्न हुआ । ३१ सागरकी आयु प्राप्त की । यहाँ अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्त हो विभंगावधिको प्राप्त करके शेष ३१ सागर प्रमाण काल व्यतीत करके मरा । उसके अंतर्मुहूर्त कम ३१ सागर प्रमाण मनुष्यद्विकका बंधकाल होगा ।

आयुका ओघके समान बंधकाल है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त होता है ।

§ ६५. आभिनिर्वायिक, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, ४ मंच्यलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कामाण शरीर, समचतुरम्यमंथान, वर्ण ४, अगुगुलधु ४, प्रसन्न विज्ञाचगति, व्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अंतरायका जघन्य

अरदि० सो० आहारदुगं थिरादितिणि० युग० जह० एग० उक्क० अंतो० । अप्पच्चक्खाणा-
वर० ४ तित्थयरं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । अप्पच्चक्खाणा०
(पच्चक्खाणा०) ४ जह० अंतो० । उक्क० वादालीसं सा० सादि० । अथवा तेत्तीसं सा०
सादिरे० परिज्जदि । दो-आयु ओघं । मणुसगदि-पंचगं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं
सा० । देवगदि० ४ जह० एग० । [उक्क०] तिणि-पलिदो० सादि० । ५

§६६. एवं ओधिदं० । एवं चेव सम्मादिट्ठि० । णवरि सादं ओघं ।

§६७. मणपज्जव०—पंचणा० छदंसण० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० देवगदि० पंचिदि०
वेउ० तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगोवंग० [वण्ण०] ४ देवगदि-पाओ० अगु० ४ पसत्थवि०
तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज० णिमिणं तित्थयरं उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क०
पुव्वकोडिदेखणा । सादासा० चदुणोक० आहारदुगं० थिरादि-तिणि-युग० जह० एग० । १०
उक्क० अंतो० । देवायु ओघं ।

§६८. एवं संजदासामाइय-छेदो० । णवरि संजदे सादं ओघं । परिहार-संजदासंजदाणं

अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर प्रमाण है । साता, असाता वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक,
आहारकट्टिक और स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । अप्रत्या-
ख्यानावरण ४, तीर्थकरका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । प्रत्याख्यानावरण ४
का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ४२ सागर प्रमाण है । अथवा, कुछ अधिक तेतीस
सागर जानना चाहिए । दो आयुका ओघके समान है । मनुष्यगति-पंचक का जघन्य अंतर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट ३३ सागर है । देवगति ४ का जघन्य एक समय, [उत्कृष्ट] साधिक तीन पत्य है ।

§६६. अवधिदर्शनमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । सम्यग्दृष्टियोंमें—इसी प्रकार जानना
चाहिए । विशेष यह है कि साता वेदनीयका ओघके समान भंग जानना चाहिए ।

§६७. मनःपर्ययज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति,
पञ्चेन्द्रिय जाति, वैकिचिक-तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रमंत्रधान, वैकिचिक अंगोवंग,
[वर्ण ४] देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रसास्तविहायोगति, व्रत ४, सुभग, सुग्ग
आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चोत्र और ५ अंतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर
पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ—एक कोटि पूर्वको अनुवाले किन्ती मनुष्यने गर्भकालमें तेकर आठवरी अंतर्मुहूर्त
प्रमाणकाल व्यतीत करके सकल संयमी वन मनःपर्यय ज्ञानको उत्पन्न किया । जीवन भर
मनःपर्ययसंयुक्त रहा, किन्तु मरणके अंतर्मुहूर्त रहने पर नीचेके गुणमगनमें आकर मरण किया,
अथवा आयुके अंतर्मुहूर्त शेष रहनेपर अस्तीका आरोहण पर मोहादिता अथ जन्म निर्माण प्रारंभ
किया । इस प्रकार देशोन पूर्वकोटि प्रमाणकाल है ।

साता-असाता वेदनीय, ४ नोरुपाय, आहारकट्टिक, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक
समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त पंचकाल है । देवायुका ओघके समान है ।

§६९. इस प्रकार सामायिक, छेदोन्स्थापना संयतमें जानना चाहिए । इसमें विशेष है कि
संयम मार्गणमें साता वेदनीयका ओघवत् जानना चाहिए ।

परिहारविश्लिखंतों तथा संयतानंदतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, अथ
प्रकृतियोंका जघन्य अंतर्मुहूर्त है, किन्तु अनंदतोंमें अथ प्रकृतियोंका अंतर्मुहूर्त जानना चाहिए ।

सा० (दुस्सा०) तस० ४ जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । ओरालियस० जह० एग० । उक्क० अणंतकालमसंखे० । आयु ओघं । सेसं जह० एग० । उ० अंतो० ।

§ ६३. एवं मिच्छादिद्वि० । अन्मवसिद्धि० एवं चेव । णवरि भुवियाणं अणादि-ओ अपज्जवसिदो ।

५ § ६४. विभंगे०—पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगुं० तिरिक्खगदि० पंचिदि० ओरालिय-तेजाक० ओरालिय० अंगो० वण्ण० ४ तिरिक्खगदि-पाओ० अगु० ४, तस० ४ णिमिणं णीचां० पंचंत० जह० एग०, मिच्छत्त० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । मणुसग० मणुसाणु० जह० एग० । उक्क० एक्कत्तीसं देसू० । आयु ओघं । सेसाणं जह० एगस० । उक्क० अंतो० ।

१० § ६५. आभि० सुद०ओधिणा०—पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उच्चा० पंचंत० जह० अंतो०, उक्क० छावडि० सागरोव० सादिरे० । सादासा० हस्सरदि०

अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास तथा त्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । औदारिक शरीर का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनंतकाल, असंख्यात पुद्गलपरवर्तन है । आयुका ओघवत् है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§ ६३. इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिमें भी जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिकोंमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है, कि अभव्योंमें भ्रुव प्रकृतियोंका वंधकाल अनादि अपर्यवसित अर्थात् अनन्त काल है ।

§ ६४. विभंगावधि में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यचगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, तिर्यचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अंतरायोंका जघन्य एक समय, किन्तु मिथ्यात्वी का जघन्य अंतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट देशोन ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—एक मिथ्यात्वी सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न होकर अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विभंगज्ञानी हुआ । आयुके ३३ सागर पूर्ण कर मरण करके निकला, तब उसका विभंग ज्ञान नष्ट हो गया, कारण अपर्याप्त कालमें विभंग ज्ञानका विरोध है । इस प्रकार उत्कृष्ट वंधकाल देशोन ३३ सागर प्रमाण है । (घ० टी० काल० पृ० ४५०)

मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन इक्कीस सागर है ।

विशेषार्थ—एक द्रव्यलिङ्गी साधु मरण कर त्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ । ३१ सागरकी आयु प्राप्त की । यहाँ अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्त हो विभंगावधिको प्राप्त करके शेष ३१ सागर प्रमाण काल व्यतीत करके मरा । उसके अंतर्मुहूर्त कम ३१ सागर प्रमाण मनुष्यद्विकका वंधकाल होगा ।

आयुका ओघके समान वंधकाल है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त होता है ।

§ ६५. आभिनिवोधिक, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान में—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अंतरायका जघन्य

अरदि० सो० आहारदुगं थिरादितिणि० युग० जह० एग० उक्क० अंतो०। अप्पच्चक्खाणा-
वर० ४ तित्थयरं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । अप्पच्चक्खाणा०
(पच्चक्खाणा०) ४ जह० अंतो० । उक्क० वादालीसं सा० सादि० । अथवा तेत्तीसं सा०
सादिरे० परिज्जदि । दो-आयु ओघं । मणुसगदि-पंचगं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं
सा० । देवगदि० ४ जह० एग० । [उक्क०] तिणि-पलिदो० सादि० । ५

§६६. एवं ओधिदं० । एवं चेव सम्मादिद्धि० । णवरि सादं ओघं ।

§६७. मणपज्जव०—पंचणा० छदंसण० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० देवगदि० पंचिदि०
वेउ० तेजाक० समचदु० वेउन्वि० अंगोवंग० [वण्ण०] ४ देवगदि-पाओ० अगु० ४ पसत्थवि०
तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज० णिमिणं तित्थयरं उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क०
पुन्वकोडिदेखणा । सादासा० चदुणोक० आहारदुगं० थिरादि-तिणि-युग० जह० एग० । १०
उक्क० अंतो० । देवायु ओघं ।

§६८. एवं संजदासामाइय-छेदो० । णवरि संजदे सादं ओघं । परिहार-संजदासंजदाणं

अंतमुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर प्रमाण है । साता, असाता वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक,
आहारकद्विक और स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतमुहूर्त है । अप्रत्या-
ख्यानावरण ४, तीर्थकरका जघन्य अंतमुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । प्रत्याख्यानावरण ४
का जघन्य अंतमुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ४२ सागर प्रमाण है । अथवा, कुछ अधिक तेतीस
सागर जानना चाहिए । दो आयुका ओघके समान है । मनुष्यगति-पंचक का जघन्य अंतमुहूर्त,
उत्कृष्ट ३३ सागर है । देवगति ४ का जघन्य एक समय, [उत्कृष्ट] साधिक तीन पत्य है ।

§६६. अवधिदर्शनमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । सम्यग्दृष्टियोंमें—इसी प्रकार जानना
चाहिए । विशेष यह है कि साता वेदनीयका ओघके समान भंग जानना चाहिए ।

§६७. मनःपर्ययज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति,
पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग,
[वर्ण ४] देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर
आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र और ५ अंतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम
पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ—एक कोटि पूर्वकी आयुवाले किसी मनुष्यने गर्भकालसे लेकर आठवर्ष अंतमुहूर्त
प्रमाणकाल व्यतीत करके सकल संयमी वन मनःपर्यय ज्ञानको उत्पन्न किया । जीवन भर
मनःपर्ययसंयुक्त रहा, किन्तु मरणके अंतमुहूर्त रहने पर नीचेके गुणस्थानमें आकर मरण किया,
अथवा आयुके अंतमुहूर्त शेष रहनेपर श्रेणीका आरोहण कर मोहादिका क्षय करके निर्वाण प्राप्त
किया । इस प्रकार देशोन पूर्वकोटि प्रमाणकाल है ।

साता-असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक
समय, उत्कृष्ट अंतमुहूर्त बंधकाल है । देवायुका ओघके समान है ।

§६९. इस प्रकार सामायिक, छेदोपस्थापना संयतमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि
संयम मार्गणमें साता वेदनीयका ओघवत् जानना चाहिए ।

परिहारविशुद्धिसंयतों तथा संयतासंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, ध्रुव
प्रकृतियोंका जघन्य अंतमुहूर्त है, किन्तु असंयतोंमें ध्रुव प्रकृतियोंका बंधकाल मत्त्यज्ञानके समान

सादिरे० । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

§७२ पम्माए-पंचणा० णवदंसण० (णा०) मिच्छत्तं सोलसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसग० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसह० वण्ण० ४ मणुसाणु० अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उच्चागो० तित्थयरं पंचंतरा० जह० ५ अंतो० । थीणगिद्धि० अणंताणु० ४ एगसं० (स०) । उक्क० अट्टारस० सादि० । णवरि केसिंच एगस० । ओरालि० ओरालि० अंगो० जहण्णे० वेसाग० सादिरे० । उक्क० अट्टारस० सादिरे० सेसं तेउभंगो । णवरि एइंदि० आदाव-थावरं णत्थि ।

§७३ सुक्काए-पंचणा० छदंसण० (णा०) वारसक० पुरिसवे० भयदु० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण० ४ अगु० पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं तित्थयरं० उच्चा० १० पंचंतरा० जह० एग० । धुविगाणं अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे० । थीणगिद्धितिगं अणंताणु० ४ जह० एग०, मिच्छ० अंतो० । उक्क० एकत्तीसं० सादि० । दो आयु० सादा-

है । शेषका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§७२. पद्मलेश्या में-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंघनन, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, तीर्थकर और ५ अंतरायों का जघन्य बंधकाल अंतर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंता-नुबंधी ४ का जघन्य एक समय, तथा पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि सबका उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है । विशेष, उपरोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियों का जघन्य काल किन्हीं आचार्यों के मतमें 'अंतर्मुहूर्त' की जगह एक समय प्रमाण है ।

विशेषार्थ—वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई एक मिथ्यात्वी जीव अपने कालके क्षीण होने पर पद्मलेश्यावाला हो गया । उसमें अंतर्मुहूर्त रहकर मरा और शतार-सहस्रारस्वर्गवासी देवोंमें जाकर पल्लोपमके अस्खंड्यातवे भागसे अधिक १८ सागर जीवित रहकर च्युत हुआ, तब पद्मलेश्या नष्ट हो गयी । उसकी अपेक्षा इस लेश्यामें ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट बंधकाल कहा है ।

औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग का जघन्य साधिक दो सागर, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है । शेष प्रकृतियोंका बंधकाल तेजोलेश्याके समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि पद्मलेश्यामें पंचेन्द्रिय, आताप और स्थावरका बंध नहीं है ।

§७३. शुक्ललेश्यामें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र तथा ५ अंतरायोंका जघन्य बंधकाल एक समय है । ध्रुव प्रकृतियों का जघन्य अंतर्मुहूर्त है । इनका उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—एक मनुष्य शुक्ललेश्यासहित अंतर्मुहूर्त रहकर मरा और सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागर पर्यन्त शुक्ललेश्यायुक्त रहा । पश्चात् मरण किया । इस प्रकार शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर प्रमाण रहा (ध० टी० काल० ३४७, ४७३)

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनंतानुबंधी ४ का जघन्य एक समय, मिथ्यात्वका जघन्य बंधकाल अंतर्मुहूर्त प्रमाण है, तथा इनका उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है ।

दीणं च ओघं । मणुसगं० ओरालियं० ओरालियं० अंगो० मणुसाणु० जह० अट्टारसं० सादिरे०, उक्क० तेत्तीसं० । वज्जरिसभं० जह० एगं० । उक्क० तेत्तीसं० । सेसाणं जह० एगं०, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§७४. भवसिद्धिया ओघं । णवरि अणादिओ अपज्जवसिदो णत्थि ।

§७५. खइगं—आभिणि-भंगो । णवरि धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि- ५ रे० । मणुसगदि- पंचगं जह० चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । सादावे० दो आयु० देवगदि० ४ ओघं ।

§७६. वेदगसं०—धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० छावट्टिसागं० । मणुसगदिपंचगं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि० ४ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि-पलिदोवमाणि

विशेषार्थ—एक द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु मरणके समीपमें अंतर्मुहूर्त पर्यन्त शुक्ल-लेश्या धारण कर मरा और द्रव्यसंयमके प्रभावसे उपरिम ग्रैवेयकमें शुक्ललेश्या युक्त ३१ सागर की आयुवाला अहमिन्द्र हुआ और अपनी स्थिति पूर्ण होने पर उसी क्षण शुक्ललेश्या रहित होकर च्युत हुआ । उसके प्रथम अंतर्मुहूर्त अधिक ३१ सागर प्रमाण बंधकाल होगा । (ध. टी. काल. पृ० ४७२)

दो आयु तथा साता आदिक प्रकृतियोंका बंधकाल ओघके समान है । मनुष्यगति, औदारिक-शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य बंधकाल साधिक १८ सागर तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—यहाँ शतार सहस्रार स्वर्गकी अपेक्षा साधिक १८ सागर कहा है और सर्वार्थ-सिद्धिकी अपेक्षा ३३ सागर बंधकाल बताया है ।

वज्रवृषभ संहननका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य बंधकाल एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण है ।

§७४. भवसिद्धिकों में—ओघके समान है । विशेष, यहाँ अनादि अनंत रूप भंग नहीं है ।

§७५. ज्ञायिकसम्यक्त्व में—आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है । विशेष ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बंधकाल अंतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है^१ । मनुष्यगति ५ का जघन्य ८४ हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागर है । साता वेदनीय, २ आयु, देवगति ४ का ओघके समान है ।

§७६. वेदकसम्यक्त्वमें ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बंधकाल अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर है ।

विशेष—वेदकसम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर प्रमाण है । इससे ध्रुव प्रकृतियोंका बंधकाल भी उतना ही कहा है ।

मनुष्यगति ५ का जघन्य बंधकाल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ३३ सागर है । देवगति ४ का

(१) “असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ।..... खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लि चि ओघं ।”—पट्. खं० काल० १४, १५, ३१७ ।

देहणाणि । सेसं ओधिभंगो ।

§७७. उवसम०—पंचणा० छदंस० वारसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसगदिपंचंगं पंचिदिय० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं तित्थयरं उच्चागो० पंचंत० जहण्णुक० अंतो० । सेसाणं पगदीणं जहण्णेण ५ एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§७८. सासणे—पंचणा० णवदंसण० (णा०) सोलसक० भयदु० तिण्णिगदि० पंचिदि० चदुसरी० समचदु० दो-अंगो० वण्ण० ४ तिण्णि-आणुपुब्बि० अगु० ४ पसत्थवि० । तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं णीचुच्चागो० पंचंतरा० जह० एग०, उक्क० छाव-

जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम तीन पत्य है । शेष प्रकृतियोंका अवधिमानके समान बंधकाल है ।

§७७. उपशमसम्यक्त्वमें—५ ज्ञानावरण, स्थानगृद्धित्रिक के बिना ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति ५, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थ-कर तथा उच्चगोत्र एवं ५ अंतरायोंका जघन्य और उत्कृष्ट बंधकाल अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—असंयतसम्यक्त्वी अथवा देशसंयमीकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त है । प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशांतकपाय बीतरागद्वन्द्वपर्यंत एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । (ध. टी. काल. ४८२-४८४)

§७८. सासादनसम्यक्त्वमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तीन गति (नरकगति रहित) पंचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो अंगोपांग, वर्ण ४, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीच-उच्च-गोत्र तथा ५ अंतरायोंका जघन्य बंधकाल एक समय और उत्कृष्ट ६ आवली प्रमाण है ।

विशेषार्थ—कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका एक समय शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ, उसकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय प्रमाण है । कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका छह आवली प्रमाणकाल शेष रहनेपर सासादनमें आ गया । वहाँ छह आवली-प्रमाण काल व्यतीत कर मिथ्यात्वमें पहुँचा । इसप्रकार जघन्य बंधकाल एक समय और छह आवली कहा है ।

(१) “उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति ? एकजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थात्ति केवचिरं कालादो होति ? एकजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।” —पट् खं० काल० ३१६-२४ ।

(२) “एकजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयो उक्कस्सेण छावावलिवाओ ।” —पट् खं० काल० ७, ८ ।

लियाओ । तिणिण-आयु० ओघं । सेसाणं जह० एगस०, उक्क० अंतो० ।

§७९.सम्मामि०-सादासा० चटुणोक० थिरादि-तिणिण युग० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सेसाणं जहणु० अंतो० ।

§८०. सणिण०-धुविगाणं जह० खुदाभ०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । सेसं पंचिंदियपज्जत्तभंगो । णवरि सादि ओधिभंगो ।

§८१.असणीसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगुरु० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुदाभ० । उक्क० अणंतकालं, असंखे० । चटु-आयु० तिरिक्खगदि-तिगं ओरालि० ओघं० । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

तीन आयुका ओघके समान काल है । विशेष-यहाँ नरकायुका बंध नहीं होता है ।

शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

§७९. सम्यक्समिथ्यादृष्टिमें-साता, असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त बन्धकाल है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

विशेषार्थ-कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणामयुक्त हो मिश्र गुणस्थानमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त रहकर चतुर्थ गुणस्थानमें चला गया, अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी संक्लेशवश मिश्र गुणस्थानी हुआ, वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत कर पुनः संक्लेशवश मिथ्यात्वी हुआ । इसी प्रकार कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणाम-युक्त हो उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त-प्रमाण मिश्र गुणस्थानी रहा, बादमें मिथ्यात्वी हो गया अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी संक्लेशवश मिश्र गुणस्थानमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण काल व्यतीत करके पुनः अविरतसम्यक्त्वी हो गया । इनकी अपेक्षा मिश्र गुणस्थानका जघन्य, उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§८०. संज्ञी में-' ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है, उत्कृष्ट शत-पृथक्त्व सागर है । शेष प्रकृतियोंका पंचेन्द्रिय पर्याप्तके समान भङ्ग है । विशेष यह है कि साता वेदनीय में अवधिज्ञानके समान भङ्ग जानना चाहिए ।

§८१. असंज्ञीमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्वं, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, निर्माण, तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है^२ । चार आयु, तिर्यचगति-त्रिक, औदारिक शरीरका बन्ध-काल ओघवत् जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

(१)“एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।”-षट् खं०काल० ३३०-३२ । “तं जघा एगो असणिसणीसु उप्पण्णो सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव भमिय पुणो असणित्तं गदो ।”-ध० टी० काल० पृ० ४८५ ।

(२)“एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेजपोग्गलपरियट्ठं । -षट्. खं०काल० ३३५-३६ । “तं जघा-एगो सणी मिच्छादिट्ठी असणी होदूण आवलियाए असंखेजदि-भागमेत्तपोग्गलपरियट्ठी तत्थ परियट्ठूण सणित्तं गदो ।”-ध० टी० काल० ४८६ ।

§८२. आहारगे०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलक० भयदु० तिरिक्खगदि-
ओरालिय० तेजाकम्म० वण्ण० ४ तिरिक्खगदिपा० अगु० उप० णिमिणं णीचा०
पंचतं० जह० एग० । मिच्छत्तस्स खुद्धाभवग्गहणं तिसमऊणं । उक्क० अंगुलस्स
[असंखेज्जदिभागो] असंखेजाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । तित्थय० जह० एग०,
५ उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरे० । सेसा ओघं० ।

§८३. अणाहार० कम्मइग-भंगो ।

एवं कालं समत्तं ।



§८२. आहारकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यचगति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, तिर्यचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र, ५ अंतरायोंका बन्धकाल जवन्य एक समय है । मिथ्यात्व का तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है । इनका उत्कृष्ट काल अङ्गुलका [असंख्यातयां भाग] तथा असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है^१ । तीर्थंकर प्रकृतिका जवन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । शेष प्रकृतियोंका ओघवत् जानना चाहिए ।

§८३. ^२अनाहारकोंमें—कार्माण काययोगके समान जानना चाहिए ।

इसप्रकार (एक जीवकी अपेक्षा) बन्धकालका वर्णन समाप्त हुआ ।



(१) “आहाराणुवादेण-एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुचं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेजासंखेजाओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणी ।”-पट् खं० का० ३३८-३९ ।

(२) “अणाहारेसु.....कम्मइयकायजोगिभंगो ।”-पट् खं० का० ३४१ ।

[अंतराणुगमपरूवणा]

§=४. अंतराणुगमे दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।

§=५. तत्थ ओघेण-पंचणाणावरण-छदं सणावरण-सादासाद-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्सरदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिदिय-तेजाकम्मइय-समचदुरससंठाण-वण्ण०
४ अगुरु० ४ पसत्थविहायगदितस० ४ थिरादि-दोण्णि-युगल-सुभग-सुस्सर-
आदेज्ज-णिमिण-तित्थयर-पंचंतराइयाणं वंधंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण
एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । णवरि णिहा-पचला जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।
थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणुवं० ४ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण वेछावड्ढि-
सागरोवमाणि देसूणाणि । अट्ठकसाय जह० अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडिदेसूणा ।

[अन्तराणुगम]

§८४. अन्तराणुगममें यहां (एक जीवकी अपेक्षा) ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते हैं।

§८५. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेंद्रिय जाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अंतरायके बंधका अंतर कितने काल पर्यन्त होता है ? जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। विशेष यह है कि-निद्रा और प्रचलाका जघन्य और उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है। स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी चारका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागर है।

विशेषार्थ—कोई एक तिर्यच या मनुष्य चौदह सागर स्थितिवाले लान्तव, कापिष्ठ देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां एक सागरोपम काल वित्ताकर द्वितीय सागरोपमके आरंभमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, तथा तेरह सागर काल सम्यक्त्व सहित व्यतीत कर मरा और मनुष्य हुआ। वहां संयम अथवा संयमासंयमका पालनकर इस मनुष्यभव सम्बंधी आयुसे कम बाईस सागर वाले आरण, अच्युत कल्पमें उत्पन्न हुआ। वहांसे मरकर पुनः मनुष्य हुआ। संयमको पालन कर उपरिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ और मनुष्य आयुसे न्यून इकतीस सागरकी आयु प्राप्त की। वहां अंतर्मुहूर्त कम छयासठ सागर कालके चरम समयमें मिश्र गुणस्थानवाला हुआ। अंतर्मुहूर्त विश्राम कर पुनः सम्यक्त्वी हुआ। विश्राम ले, चयकर मनुष्य हुआ। संयम या संयमासंयमको पालन कर इस मनुष्य भव की आयुसे न्यून बीस सागरकी आयुवाले आनत-प्राणत देवों में उत्पन्न होकर पुनः यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम बाईस तथा चौबीस सागरके देवोंमें उत्पन्न होकर अंतर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागर कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इसप्रकार अंतर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागर अर्थात् एकसौ बत्तीस सागर काल प्रमाण अंतर हुआ। यह क्रम अव्युत्पन्न लोगोंको समझानेको कहा है। परमार्थ-दृष्टिसे किसी भी तरह छयासठ सागरका काल पूर्ण किया जा सकता है। (ध०टी०अंतरा०पृ०६-७)

प्रत्याख्यानावरण तथा अप्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट

इत्थिवेदाणं जह० एगस०, उक्क० वेच्छावट्ठि—सागरोवमाणि सादिरेयाणि । णउंसक० पंचसंठा० पंचसंध० अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० एग०, उक्क० वेच्छावट्ठिसागरो० सादिरे० तिण्णि पलिदोवमाणि देसुणाणि । णिरय-मणुस-देवायु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । तिरिक्खायु० ५ जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । णिरयगदि-देवगदि० वेउच्चि० वेउच्चि० अंगो० दोआणुपु० जह० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्ज० । तिरिक्खगदि० तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवम-सद० । मणुसगदि-मणुसाणु० उच्चागो० जह० एग० उक्क० असंखेज्जा लोगा । चदु-जादि-आदाव-थावरादि० ४ जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदपुधत्तं । १० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसह० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । [आहार०] आहार० अंगो० जह० अंतो०, उक्क० अद्वपोग्गल० देसुणा ।

कुछ कम एक कोटि पूर्व है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मनुष्य उत्पन्न हुआ । गर्भसे आठ वर्ष पूर्ण होनेपर वेदकसम्यक्त्वी हो, सकलसंयम को प्राप्त हुआ । अंतर्मुहूर्तके पश्चात् मिथ्यात्वी हो गया । पश्चात् एक कोटि पूर्वके अंतमें बद्धायुष्क होकर पुनः सकलसंयमी हुआ और मरण किया । इसप्रकार सकलसंयमकी अपेक्षा देशोन एक कोटि पूर्वकाल कपायाष्टक का अंतर कहलाया ।

स्त्रीवेदका अंतर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक एकसौ बत्तीस सागर है । नपुंसक वेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक एकसौ बत्तीस सागर किंचित् न्यून तीन पत्य प्रमाण है । नरक-मनुष्य-देवायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्य-चायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट शतसागरपृथक्त्व है । नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, नरक-देवानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल—असं-ख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट त्रेसठसौ सागरपृथक्त्व है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात लोक प्रमाण है । ४जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पचासी-सौ सागरपृथक्त्व प्रमाण है । औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहनन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक तीन पत्य है । [आहारक शरीर] आहारक अंगोपांग का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन है ।

विशेषार्थ—एक अनादि मिथ्यादृष्टिजीवने अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण रूप तीन करण करके उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर अनन्त संसारका छेद करके अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया । इस अप्रमत्त गुणस्थानमें अंतर्मुहूर्त रहकर प्रमत्त हुआ और अंतरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरावर्तन काल व्यतीत

§८६. आदेसेण-गेरइएसु पंचणाणावरण-छदंसेणावरण-चारसकसाय-भय-दुगुच्छा-
पंचिन्द्रिय-ओरालिय-तेजाकम्मइय-ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण०४ अगु० ४ तस० ४
णिमिणं तित्थयरं पंचंतराइयाणं णत्थि अंतरं । थोणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणुबंधि०
४ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं० देसणा । सादासा० पुरिस० चटुणोक० समचटु०
वज्जरिसभसं० पसत्थवि० थिरादि-दोण्णि-युगल-सुभग-सुस्सर-आदेज्जाणं जह० एग ५
समओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । इत्थिवेद-गवुंसयवेद-दोगदि० पंचसंठा० पंचसं० दोआयु०

कर अंतिम भवमें सम्यक्त्व अथवा देशसंयमको प्राप्त कर दर्शन-मोहनीय ३ और अनन्तानुबंधी
४ अर्थात् ७ प्रकृतियोंका क्षय करके अप्रमत्तसंयत होगया । इसप्रकार अप्रमत्तसंयतका अनन्तर
काल उपलब्ध हुआ । पुनः प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानमें हजारों बार परावर्तन करके अप्रमत्त-
संयत हुआ । पुनः अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली
अयोगकेवली होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इसप्रकार दस अंतर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरि-
वर्तन काल अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अंतर है । यही अंतर आहारक-द्विकके बंधके विषयमें होगा ।
कारण, आहारकद्विकका बंध अप्रमत्तसंयतमें होता है । (ध०टी०अंतरा०पृ०१७)

§८६. आदेशसे—नरकगतिमें—पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा
पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कामाण शरीर, औदारिकशरीर अंगोपांग, वर्ण चार, अगुरु-
लघु चार, त्रस चार, निर्माण, तीर्थकर और पांच अंतरायोंके बंधका अंतर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक,
मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी चार का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुल कम तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ —मोहनीय कर्म की अट्टाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई मनुष्य या तिर्यच
नीचे सातवीं पृथ्वीके नारकियोंमें पैदा हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर (१) विश्राम ले (२)
विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अल्प आयुके रहने पर अंतरको प्राप्त हो, मिथ्यात्व
को पुनः प्राप्त हुआ (४) पुनः तिर्यच आयुको बांधकर (५) विश्राम लेकर (६) निकला ।
इसप्रकार छह अंतर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण काल मिथ्यात्वके अंतरका है । यही अंतर
स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबंधी चारका भी होगा । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

एक मिथ्यात्वी मनुष्य या तिर्यच सप्तम नरकमें उत्पन्न हुआ । उसने छह पर्याप्तियोंको पूर्ण
करके, विश्रामले, उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न किया । पुनः सासादनको प्राप्त कर मिथ्यात्वी बना ।
आयुके अंतमें मिथ्यात्वको बांधकर विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्वी हुआ और उसके कालका एक
समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वमें अंतर्मुहूर्त विश्राम कर
मरण कर निकला । इसप्रकार समय अधिक पांच अंतर्मुहूर्तसे कम तेतीस सागरोपम सासादन
का अंतर हुआ । यही बात अनन्तानुबंधी स्त्यानगृद्धित्रिकमें जानना चाहिए ।

(ध०टी०पु०५, पृ०२३ तथा २६)

साता-असाता वेदनीय, पुरुषवेद, चार नोकषाय, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन,
प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट
अंतर्मुहूर्त है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पांच संस्थान, पांच संहनन, दो आयु, अप्रशस्त

अप्पसत्थवि० उज्जोवं दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचुचागोदाणं जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं० देसूणा । दो आयु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसूणा । एवं पढमादि याव छट्ठित्ति । धुविगाणं तित्थयरं णत्थि अंतरं । साददंड० ओवं । णवरि मणुस० मणु-सगदिपाओग्गाणुपुब्बि-उचागोदं पविट्ठस्स । सेसं णिरयोवं । णवरि अप्पण्णो द्विदी भाणिदव्वा । सत्तमाए पुढवीए णिरयोवं । णवरि दोगदि-दो आणुपुब्बि-दोगोदं० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसूणा ।

§८७.तिरिक्खेसु-पंचणा० छदंसण० अट्ठकसाय-भय-दुगुंछा-तेजा-कम्म० वण्ण०४ अगु० उपघाद-णिमिणं पंचतराइयाणं णत्थि अंतरं । श्रीणागिद्धि ३ मिच्छत्त-अणंताणु० ४ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि । एवं इत्थिवेदस्स । णवरि जह० एगस० ।

विहायोगति, उद्योत. दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीच, उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है । दो आयु का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम छह माह है ।

विशेषार्थ-नारकियों में भुज्यमान आयु के अधिक से अधिक छह माह और कमसेकम अंतर्मुहूर्त शेष रहनेपर आगामी वध्यमान मनुष्य-तिर्यच आयुका वंध होता है । किसी जीवने छह महीने जीवन शेष रहने पर प्रथम अंतर्मुहूर्तमें नरकगतिमें परभवकी आयुका वंध किया और पश्चात् मरणसमयमें पुनः वंध किया । इसप्रकार उत्कृष्ट अंतर होगा ।

इसप्रकार प्रथमसे छठवीं पृथिवी पर्यंत जानना चाहिए । यहां ध्रुव प्रकृतियों तथा तीर्थंकर का अंतर नहीं है ।

विशेषार्थ-यहां तीर्थंकर प्रकृतिको अंतर रहित कहनेसे प्रतीत होता है कि नरकगतिमें कोई न कोई तीर्थंकर प्रकृतिका वंधक अवश्य पाया जायगा । यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि तीर्थंकर प्रकृति वाला जीव मिथ्यात्व-सहित मरण कर मेघा नामकी तीसरी पृथ्वीसे नीचे नहीं जाता ।

सातादण्डकका ओघके समान अर्थात् जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रमें विशेष जानना चाहिए ।

१ शेष प्रकृतियोंमें नारकियोंके ओघके समान है । विशेष यह है कि यहां प्रत्येक नरक की अपनी-अपनी स्थिति-समान अंतर जानना चाहिए । सातवीं पृथ्वीमें सामान्य नरकके समान अंतर है । इतना विशेष है कि दो गति, दो आनुपूर्वी, दो गोत्रका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछकम तेतीस सागर है ।

§८७. तिर्यच गतिमें—५ क्षानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । स्त्यानगृद्धि-त्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछकम तीन पल्य है । इसी प्रकार स्त्रीवेदका अंतर समझना चाहिए । विशेष यह है कि यहां जघन्य एक समय (और उत्कृष्ट कुछकम तीन पल्य) है ।

(१) “पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिद्धि-अणंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं काला-दो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुच्चं, उक्कस्सेण सागरोवमं, तिण्णि, सत्त, दस, सत्तारस, बावीस, तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि”—पट्खं० अन्तरा० २८-३० ।

सादासाद-पंचणोक० पंचिदि० समचदु० परघादुस्सास-पसत्थवि० तस० ४ थिरादि-
 दोणि-युगल-सुभग-सुस्सर-आदेज्जाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अपच्चक्खा-
 णावरण ४-णुंस०तिरिक्खगदि-चदुजादि-ओरालिय० पंचसंठा०-ओरालियअंगोवंग-
 छसंघडण-तिरिक्खाणु०-आदा०-उज्जोव-अप्पसत्थवि०-थावरादि० ४-दूभग-दुस्सर-
 अणादेज्ज-णीचागोदाणं जह० एगसमओ । अपच्चक्खाणा० ४ जह० अंतो०, उक्क० ५
 पुव्वकोडिदेसूणा । तिणि आयु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसूणा ।
 तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिसादिरे० । वेउव्वियलक्क० जह० एग०,
 उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठं । मणुसगदि-मणुसाणु० उच्चागोदाणं ओघं ।
 पंचिदिय-तिरिक्ख तिग० धुविगाणं णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु०

विशेषार्थ-एक मनुष्य या तिर्यच, अट्टाईस मोहनीयकी प्रकृतियोंकी सत्ता वाला तीन पत्यकी आयुवाले मुर्गा, बन्दर आदिमें उत्पन्न हुआ । दो माह गर्भमें रहकर बाहर निकला । यहाँ आचार्य-परंपरागत दक्षिण-प्रतिपत्तिके अनुसार ऐसा उपदेश है कि तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ जीव दो माह और मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्तर-प्रतिपत्तिके अनुसार तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ जीव तीन पत्त तीन दिन और अंतर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्वको प्राप्त होता है । पश्चात् आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्तकर मरण किया । इस प्रकार आदिके मुहूर्त-पृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे और आयुके अंतमें उपलब्ध दो अंतर्मुहूर्तोंसे न्यून तीन पत्योपम काल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अंतर है । (ध० टी० अन्तरा० पृ० ३२)

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसच्चतुष्क, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका अंतर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । अप्रत्याख्यानावरण ४, नपुंसकवेद, तिर्यचगति, चार जाति, औदारिकशरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, तिर्यचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादिचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का अंतर जघन्य एक समय है ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम एक कोटिपूर्व है ।

विशेषार्थ-कोई मिथ्यात्वी जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्धन पर्याप्तक एक कोटिपूर्वकी आयुवाले तिर्यच में उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर विश्रामले विशुद्ध हो वेदक सम्यक्त्व तथा संयमासंयमको प्राप्त किया । मरणसमय अप्रत्याख्यानावरण ४ का बंध होनेसे देशसंयमसे च्युत हो गया । उसके एक कोटि पूर्वमें कुछ कम कालपर्यन्त अप्रत्याख्यानावरण ४ का अंतर होगा ।

तीन आयुका जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक कोटि पूर्वके तीन भागोंमें से एक भाग प्रमाण है । तिर्यचायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक कोटिपूर्व है । वैक्रियिकषट्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनंतकाल, असंख्यात पद्मगलपरिवर्तन है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका ओघके समान जानना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय-तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमितीमें—ध्रुव प्रकृतियों का अंतर नहीं है । स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधो ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त तथा

४ जह० अंतोमुहुत्तं, इत्थिवेदस्स जह० एग०, उक्क० तिणिण पलिदोवमाणि देमणाणि । सादासादं पंचणोक० देवगदि० ४ पंचिदि० समचदु० परघादुस्सास-पसत्थवि०-तस० ४ थिरादिदोणिण-युगल-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदाणं जह० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अपचक्खाणा० ४ जह० अंतो०, उक्क० पुच्चकोडिदेमणा । णत्तुंसयवेद-
५ तिगदि-चदुजादि-ओरालियसरीर-पंचसंठाण-ओरालियअंगोवंग-छसंघड० तिणिण आणुपुच्चि-अप्पसत्थवि० आदाउज्जोव-थावरादि० ४ दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचा-गोदाणं जह० एगस०, उक्क० पुच्चकोडिदेमणा । आयु-चत्तारि तिरिक्खोव ।

§=, पंचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भय-दुगु० ओरालिय-तैजाक० वण्ण० ४ अगु० उपघाद-णिमिणं पंचतराह्याणं णत्थि अंतरं ।
१० सादासाद० सत्तणोक० दोगदि-पंचजादि-छसंठा०-ओरालिय० अंगो० छसंघडण-दोआणुपु० परघादुस्सास-आदा-उज्जोव-दोविहायगदि-तसादिदस-युगल-णीचुच्चा-गोदाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । दोआयु० जहणुक्कस्सं अंतोमुहुत्तं । एवं सच्च-
स्त्रीवेदका जघन्य एक समय तथा इन सबका उत्कृष्ट कुछ कम ३ पत्य है ।

विशेषार्थ-मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तिर्यच अथवा मनुष्य तीन पत्योपमकी आयुवाले पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक कुक्कुट, मर्कट आदिमें उत्पन्न हुए वा दो माह गर्भमें रहकर निकले । मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अंतमें आगामी आयुको बांधकर मिथ्यात्व-सहित गरण किया । पुनः इसप्रकार दो अंतर्मुहूर्तोंसे तथा मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे न्यून तीन पत्योपम काल तीनों प्रकारके तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अंतर होता है । यही अंतर मिथ्यात्व आदिका भी है ।

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, देवगति ४, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, और उच्चगोत्रका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है ।

नपुंसकवेद, देवगतिके बिना ३ गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, पांच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, ३ आनुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । चार आयुका तिर्यचोंके ओष समान है ।

§८८. पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कामाणि शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पंच अंतरायोंका अंतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ७ नोकपाय, २ गति (मनुष्य-तिर्यचगति) ५ जाति ६ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि-दस-युगल, नीच-उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । दो आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

अणज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च ।

§९८. मणुस० ३-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिण० तिथ्यर-पंचंतराइयाणं जहण्णुक्कस्सं अंतोमुहुत्तं । थीणगिद्धितिग-दंडओ इत्थिदंडओ साददंडओ णवुंसदंडओ आयुदंडओ पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-भंगो । णवरि मणुसाणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिसादिरेयं । आहारदुगं ५ जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं ।

§९९. देवेसु-पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमिणं तिथ्यरं पंचंतराइयाणं णत्थि अंतरं । थीण-गिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु० ४ जह० अंतो० । इत्थि० णवुंसक० पंचसंठा० जह० एग०, उक्क० अट्टारस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एइंदिय-आदाव-थावराणं जह० १० एग०, उक्क० वे साग० सादिरे० । एवं सव्वदेवेसु अप्पण्णो द्विदिअंतरं कादव्वं ।

सभी अपर्याप्तक त्रस-स्थावरोंका इसी प्रकार अंतर समझना चाहिए ।

§८९. मनुष्य-सामान्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यिनी में-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संव्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थकर और ५ अंतरायोंका जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर अंतर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धित्रिक-दंडक, स्त्रीदंडक, सातादंडक, नपुंसकदंडक, आयुदंडकमें पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-पर्याप्तकके समान अंतर है । विशेष, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटि है ।

आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व है ।

विशेषार्थ-२८ मोहनीयकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला अन्य गतियोंसे आकर कोई जीव मनुष्य हुआ । गर्भको आदि लेकर ८ वर्षका हुआ । सम्यक्त्व एवं अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ । (१) पुनः प्रमत्तसंयत हो अंतरको प्राप्त हुआ और ४८ पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर अंतिम पूर्वकोटिमें देवायुको बांधता हुआ अप्रमत्तसंयत हो गया । (२) इसप्रकार अंतर प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव हुआ । ऐसे तीन अंतर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम ४८ पूर्वकोटियाँ उत्कृष्ट अंतर होता है । (ध० टी० अंत० पृ० ५२)

आहारकद्विकके बंधक अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती होते हैं । इसकारण यह वर्णन-क्रम उसमें भी सुघटित होता है ।

§९०. देवगतिमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-शरीर, तैजस-कार्माण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थकर और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद तथा पांच संस्थानका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है । एकेन्द्रिय, आताप और स्थावरका जघन्य एक समय अंतर है, उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है । इसीप्रकार सम्पूर्ण देवों में अपनी २ स्थितिका अंतर लगाना चाहिए ।

§ एहंदिणु पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगुं० ओरालियतेजाकम्म० वण्ण० ४ जह० एग०, उक्क० अंतोमुहूत्तं । [दोआयु० णिरयमंगो० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोवाणं जह० एग०, उक्क० अट्टारससागरोवमाणि सादिरेयाणि । § एहंदिण-आदाव-थावराणं जह० एग०, उक्क० वे साग० सादिरेयाणि । एवं सच्चदेवेसु ५ अप्पणोद्विदि अंतरं कादच्चं । §

§ ९१. एहंदिणु-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्तं० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय-तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतराहमाणं णत्थि अंतरं । सादासाद-सत्तणोक्क० तिरिक्खगदि-पंचजादि० छसंदा० ओरालिय० अंगोवंग-छसंव० तिरिक्खवाणु० परवाहुस्सासं आदाउज्जोवं दोविहाय० तसादि-दसयुगलं णीचागो० जह० १० एग०, उक्क० अंतो० । तिरिक्खवायु० जह० अंतो०, उक्क० वावीसवस्ससहस्साणि सादिरेयाणि । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवस्ससहस्साणि सादिरेयाणि । मणुसगदि-मणुसाणु० उचागो० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । वादरेसु अंगुलस्स असंखे० । वादरपज्जत्ते० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । मुहुमं असंखेज्जा लोगा । मुहुम-

विशेषार्थ-सौधर्म-ईशान स्वर्ग पर्यन्त एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावर प्रकृतियोंका वन्ध होता है । इनके वंधका अन्तर देवगतिकी अपेक्षा साधिक दो सागर उक्त स्वर्ग-युगलकी अपेक्षा है ।

दो आयुका नरकगतिके समान अंतर है अर्थात् जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है तथा जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ६ माह है । तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है ।

विशेष-शतार-सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, तथा उद्योतका वंध होता है । इन स्वर्ग-युगलमें आयु साधिक १८ सागर प्रमाण कही है । इस दृष्टिसे यहाँ वंधका अंतर कहा है ।

§ ९१. एकेन्द्रियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पांच अंतरायोंका अंतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, तिर्यचगति, पंच जाति, ६ संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, ६ संहनन, तिर्यचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, तसादि दसयुगल और नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

तिर्यचायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष कुछ अधिक है ।

मनुष्यायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक ७ हजार वर्ष है । मनुष्यगति; मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य अंतर एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात लोक है । वादरोंमें अंगुलका असंख्यातवां भाग अंतर है । वादर पर्याप्तकमें संख्यात हजार वर्ष है । सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोक है । सूक्ष्मपर्याप्तकोंमें जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठोऽधिकः प्रतिमाति ।

पज्जत्ते जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं पुढवि० आउ० वणप्फदिकाइय—वादरवणप्फदि-
पत्तेय-णियोदाणं च अप्पप्पणो—योगेहि० णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो। तिरिक्खायु०
जह० अंतो०, उक्क० वावीसं वस्ससहस्साणि, सत्त वस्ससहस्साणि, दस वस्ससहस्साणि
सादिरेयाणि। णियोदाणं अंतोमुहुत्तं। मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सत्त वस्स-
सहस्साणि, वे वस्ससहस्साणि तिण्णि वस्ससहस्साणि सादिरेयाणि। णियोदाणं जहण्णु० ५
अंतोमुहुत्तं। तेउ० वाउ० एइंदियभंगो। णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्जं। तिरिक्खगदि-
तिगं धुवभंगो कादब्बो। तिरिक्खायुगं जह० अंतो०, तिण्णि रादिंदियाणि, तिण्णि
वस्ससहस्साणि सादिरेयाणि।

§९२. विगलिंदियेसु एइंदियभंगो। णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो। तिरिक्खायु०
जह० अंतो०, उक्क० वारसवस्ससहस्साणि (वारसवस्साणि) एगूणवण्ण रादिंदियाणि १०
छम्मासाणि सादिरेयाणि। मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० चत्तारि वस्साणि देसूणाणि,

पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय. वादर वनस्पति, प्रत्येक तथा निगोद जीवोंका अपने-
अपने योग्य अंतर जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यगति-त्रिकमें साताके समान
भंग जानना चाहिए। तिर्यचायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट साधिक बाईसहजार वर्ष,
साधिक सात हजारवर्ष, साधिक दस हजारवर्ष तथा निगोदियोंमें अंतर्मुहूर्त है।

विशेष—खर पृथ्वीकायिकोंमें बाईस हजार, अप्कायिकोंमें सात हजार, वनस्पति-
कायिकोंमें दस हजार और निगोदिया जीवोंकी अंतर्मुहूर्त आयुको^१ लक्ष्यमें रख कर तिर्यचायुका
अंतर कहा गया है।

मनुष्यायुका अंतर जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक सात हजार वर्ष, साधिक दो
हजार वर्ष और साधिक तीन हजार वर्ष है। निगोदियोंका जघन्य-उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है।
तेजकाय, वायुकायमें एकेंद्रियके समान अंतर जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहां
मनुष्यगतिचतुष्कको नहीं ग्रहण करना चाहिए। यहां तिर्यचगतित्रिकका ध्रुव भंग जानना
चाहिए। तिर्यचायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तीन रात्रि-दिन और साधिक तीन
हजार वर्ष है।

§९२. विकलत्रयमें—एकेंद्रियके समान अंतर है। यहां इतना विशेष है कि मनुष्यगति-
त्रिकका साताके समान भंग है। तिर्यचायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक बारहवर्ष,
साधिक उनचास रात्रि-दिन, साधिक छह मास है^२। मनुष्यायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट

(१) “तत्र पृथ्वीकायिकाः द्विविधाः, शुद्धपृथ्वीकायिकाः खरपृथ्वीकायिकाश्चेति। तत्र शुद्धपृथ्वी-
कायिकानामुत्कृष्टा स्थितिर्द्वादशवर्षसहस्राणि। खरपृथ्वीकायिकानां द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि। वनस्पति-
कायिकानां दशवर्षसहस्राणि। अप्कायिकानां सप्तसहस्राणि, वायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि। तेजः-
कायिकानां त्रीणि रात्रिदिवानि।”—त० रा० पृ० १४९।

(२) “द्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टा स्थितिर्द्वादशवर्षाः, त्रीन्द्रियाणां एकान्नपंचाशद्रात्रिदिवानि, चतुरिन्द्रि-
याणां षण्मासाः।”—त० रा० पृ० १४९।

सोलस रादिंदियाणि सादिरेयाणि, वे मासाणि देसूणाणि ।

§९३. पंचिंदिय-तस-तेसिं चैव पज्जत्ताणं-पंचणा० छदंसणा० सादासा० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पगत्थवि० तस० ४ थिरादिदोणिण्युगलं-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थयरं पंचंतराद्वयाणं जह० ५ एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । णवरि णिहापयत्ताणं जहण्णु० अंतो० । थ्रीणगिद्धि ३ मिच्छ० अणंताणुबंधि० ४ इत्थिवे० जह० अंतो० । इत्थि० [जह०] एगस० उक्क० वे छावट्टिसागरो० सादिरे० देसूणाणि । अट्ठकसा० जह० अंतो०, उक्क० पुच्चकोडिदेसूणं णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० एग०, उक्क० वे छावट्टिसागरो० सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । तिण्णि १० आयु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुध० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदसहस्साणि० पुच्चकोडिपुधत्तेण्भहियाणि । पज्जत्ते सागरोवमसदपुध० ।

§९४. तसेसु-तिण्णि-आयु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुध० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० वेसागरोवमसह[द]पु० पुच्चकोडिपु० । पज्जत्ते वेसागरोवम० देसू-

देशोन चारवर्ष, कुछ अधिक सोलह रात्रि-दिन तथा कुछ कम दो माह है ।

§९३. पंचेंद्रिय, त्रसकाय तथा उनके पर्याप्तकों में—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असात वेदनीय, ४ संज्वलन, ७ नोकपाय, पंचेंद्रियजाति, तैजस, कामाण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुल्लु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर और पांच अंतरायों का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । विशेष, निद्रा, प्रचला का जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है, स्नानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ और स्त्रीवेद का जघन्य अंतर्मुहूर्त है । विशेष स्त्रीवेदका [जघन्य] एक समय है तथा इन सबका साधिक दो छयासठ सागरमें किंचित् न्यून उत्कृष्ट अंतर है । आठ कपाय का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो छयासठ सागर कुछ कम तीन पल्य प्रमाण है । तीन आयुका जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सागर शतपृथक्त्व है । मनुष्यायु का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट शतसहस्रसागरोपम पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक है । पर्याप्तकों में सागर शतपृथक्त्व है ।

§९४. त्रसोंमें—तीन आयुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागरोपम शतपृथक्त्व है । मनुष्यायु का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो सागरोपम शतपृथक्त्व पूर्व कोटि पृथक्त्वसे अधिक है ।

(१) “पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु ... सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेजादिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुच्चकोडिपुधत्तेण्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं । असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुच्चकोडि-पुधत्तेण्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ।”—पट्खं० अंतरा० ११४-१२१।

णाणि । गिरयगदि-चदुजादि-गिरयाणुपुन्वि-आदाव-थावरादि० ४ जह० एग० उक्क०
पंचासीदि-सागरोवमसदं । तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोव० जह० एग०,
उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं । मणुस० मणुसाणु० उच्चा० देवगदि० ४ जह० एग०, उक्क०
तेत्तीसं साग० सादिरेयाणि । ओरालि० ओरालि० अंगो० वज्जरिसभसंघडण० जह०
एग०, उक्क० तिणिण पलिदोव० सादिरेयाणि । आहारदुग० जह० अंतो०, उक्क० सगट्टिदी० । ५

§९५. पंचमण० पंचवचि०-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदुगुं०
चदुआयु० तेजाकम्म० आहारदुग० वण्ण० ४ अगुरु० उपघाद-णिमिणं तित्थयरं
पंचतराइयाणं णत्थि अंतरं । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

§९६. कायजोगीसु०-पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० णवणोक्क०
तिणिणगदि-पंचजादि-चदुसरीर-छसंठा०-दो अंगोवंग-छसंघडण वण्ण० ४ तिणिण- १०
आणुपु० अगुरु० ४ आदाउज्जोव-दोविहाय० तसादि-दस-युगल-णिमिणं तित्थयरं
णीचागो० पंचतराइयाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । थीणगिट्ठि० ३ मिच्छत्त०

पर्याप्तिकोमें दो सागरोपम शतपृथक्त्वमें कुछ कम है । नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी,
आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पच्चासी सागरोपमशत है । तिर्यञ्चगति,
तिर्यञ्चानुपूर्वी और उद्योत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट त्रैसठ सागरोपमशत है । मनुष्यगति,
मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, देवगतिचतुष्क का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिकं तेत्तीस सागर
है । औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपांग, वज्रवृषभ संहनन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट
साधिक तीन पत्य है । आहारकट्टिक का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अपनी स्थिति प्रमाण है ।

§९५. पांच मनोयोग, पांच वचनयोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय,
भय, जुगुप्सा, ४ आयु, तैजस, कार्माण, आहारकट्टिक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण,
तीर्थकर और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§९६. काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता, ४ संज्वलन, ९ नोकषाय,
३ गति, ५ जाति, ४ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, वर्ण ४, ३ आनुपूर्वी, अगुरु-
लघु ४, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि १० युगल, निर्माण, तीर्थकर, नीचगोत्र और
पांच अंतरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय,

(१) “तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु” सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि? एगलीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि
पुव्वकोडि-पुघत्तेणभ्महियाणि वे सागरोवमसहस्साणि देस्सणाणि, असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त
संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो, होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे सागरोवम-
सहस्साणि पुव्वकोडिपुघत्तेणभ्महियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देस्सणाणि ।” — षट्खं० अंतरा० १३९-१४५।

(२) “जोगाणुवादेण—पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु, कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-
असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि?
णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं । सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि? एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं । चदुण्हसुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं
पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । चदुण्हं खवगाणमोषं ।” — षट्खं० अंतरा० १५३, १५६-१५९ ।

धारसक० दो आयु० आहारदुगं० णत्थि अंतरं । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० वावीसवस्ससहस्साणि सादिरेयाणि । मणुसायु० ओघं० मणुसगदित्तिगं ओघं ।

५ §९७. ओरालिय०—पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० दो आयु० आहारदुगं० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिणं तित्थयरं पंचंतरा-
५ इयाणं णत्थि अंतरं । दो आयु० जह० अंतो०, उक्क० सचवस्ससहस्साणि सादिरे-
याणि । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§९८. ओरालियमि०—पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० देवगदि० ४ ओरालिय—तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० तित्थ० पंचंत० णत्थि
अंतरं । दो आयु० जहणु० अंतो० । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

१० §९९. वेउव्वियकायजोगीसु—पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगुरु० ४ चादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमिणं तित्थयरं पंचंत० णत्थि अंतरं । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं चेव वेउव्वियस्स मिस्स० । णवरि दो आयु० णत्थि ।

१५ §१००. आहार० आहारमिस्स०—पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० तेजाकम्म० देवायु० देवगदि० पंचिंदि० वेउव्विय० समचदु० वेउव्विय० अंगोवं०

देव-नरकायु और आहारद्विकका अंतर नहीं है । तिर्यचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक चार्लस हजार वर्ष है । मनुष्यायुका ओघके समान है । मनुष्यगतित्रिकका भी ओघ के समान है ।

§९७. औदारिक काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, देव-नरकायु, आहार-द्विक, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थकर और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । दो आयुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक सात हजार वर्ष है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§९८. औदारिकमिश्र काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, देवगति चार, औदारिक, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थकर और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यचायुका जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§९९. वैक्रियिक काययोग में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, चादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थकर और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त अंतर है । इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोग का समझना चाहिए । विशेष, यहाँ मनुष्य-तिर्यचायु नहीं है ।

§१००. आहारक और आहारकमिश्रकाययोगमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण-शरीर, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त

वण्ण० ४ देवाणुपु० अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं
तित्थयरं उच्चागोदं पंचंतराइयाणं णत्थि अंतरं । सादासाद०-चदुणोक०-थिरादि-
तिण्णि युगलं जह० एगस०, उक्क० अंतो० ।

§१०१. कम्मइयकायजोगीसु-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलसक० तिण्णि-
वेद-भयदुगुं० तिण्णि गदि-पंचजादि-चदुसरीर-छसंठाण-दोअंगोवंग-छसंघडण-वण्ण० ५
४ तिण्णि आणुपुत्वि-अगुरु० ४ दोविहायगदि-तसथावरादिचदुयुगल-सुभगादि-
तिण्णियुगल-णिमिणं-तित्थयरं णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं णत्थि अंतरं । सादासा०
चदुणोक० आदाउज्जोव-थिराथिर-सुभासुभ० जस० अजस० जहणु० एगसमओ ।

§१०२. इत्थिवेदेसु-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण० ४
अगुरु० उपघाद-णिमिणं तित्थयरं पंचंतराइयाणं णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि० ३ १०
मिच्छ० अणंताणुबंधि० ४ जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देखणाणि । सदासा०

विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्च गोत्र और ५ अंतरायोंका
अंतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§१०१. कार्माण काययोगियोंमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ३ वेद, भय,
जुगुप्सा^१, ३ गति(नरकगति छोड़कर), ५ जाति, ४ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, वर्ण ४,
३ आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि ४ युगल, सुभगादि ३ युगल, निर्माण,
तीर्थंकर, नीच-उच्च गोत्र और पाँच अंतरायोंका अंतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ४
नोकषाय, आताप, उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिका जघन्य
उत्कृष्ट अंतर एक समय है ।

[विशेषार्थ-कार्माणकाययोगका उत्कृष्ट काल उत्कृष्टसे तीन समय प्रमाण है । तीन
समयके बीचमें अंतरका काल एक समयसे अधिक अथवा न्यून न होगा । एक समय बंधका
होगा, एक समय अवंधका और एक समय पुनः बंधका । इस कारण जघन्य-उत्कृष्ट अंतर
एक समय प्रमाण कहा है ।]

§१०२. स्त्रीवेदमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण,
वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । स्त्यानगृद्धि-
त्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी ४ का जघन्य अन्तर अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पत्य है ।

[विशेषार्थ-मोहनीयकी २८ प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी या नपुंसक-
वेदी जीव ५५ पत्योपमवाली देवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर (१) विश्राम ले (२)
विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्तकर अंतरको प्राप्त हुआ । आयुके अंतमें आगामी भवकी
आयुको बाँधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरण किया । इस प्रकार कुछ कम ५५ पत्योपम
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अंतर होता है । इसी प्रकार मिथ्यात्वादिका अंतर जानना
चाहिए । (ध० टी० अंतरा० पृ० ९५)]

पंचणोक० पंचिदि० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस० ४ थिरादितिणियुगल-
सुभग-सुस्सर-आदे० उचागो० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अट्टक० जह०
अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसणा । इत्थि० णयुंसग० तिरिक्खग० णइंदिय०
पंचसंठा० पंचसंध० तिरिक्खाणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थवि० थावर-दूमग-
५ दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसणाणि । णिरयायु-
जह० अंतो० । उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसणा । तिरिक्खायु-मणुसायु जह० अंतो० ।
उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं । देवायु० जह० अंतो० । उक्क० अट्टावण्णं पलिदोव०
पुव्वकोडिपुध० । दोगदि० तिण्णि जादि० वेउच्चि० वेउच्चिय० अंगो० दोआणुपु०
सुहुम-अपज्जत्त० साधार० जह० एग० [उक्क०] पणवण्णं पलिदो० सादिरेयाणि । मणुसग०

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, पंचेंद्रियजाति, समचतुरन्त्र संस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्ट, स्थिरादि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । आठ कपायोंका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है ।

[विशेषार्थ—मोहनीयकी २८ प्रकृतिकी सत्तावाला कोई जीव मरण कर भाव-स्रोवेदी पुरुष हुआ । एक कोटिपूर्वकी आयु प्राप्त की । गर्भसे लेकर आठ वर्ष धोतने पर सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके साथ-साथ सकलसंयमकी भी प्राप्त किया । पश्चात् संक्लेशवश गिरकर अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरणरूप ८ कपायका बंध करके मरण किया । इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप आठ कपायोंके बंधकका अंतर कुछ कम एक कोटिपूर्व कहा है ।]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यच गति, एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पल्य प्रमाण है । नरकायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम कोटिपूर्वका विभाग है । तिर्यचायु, मनुष्यायु का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशत-पृथक्त्व है ।

[विशेषार्थ—कोई २८ मोहकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव स्त्रीवेदी था । मरणकर देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वी हुआ (४) पश्चात् मिथ्यात्वी हो गया । तिर्यच आयु अथवा मनुष्यायु का बंधकर मरण किया और पल्यशत पृथक्त्व कालप्रमाण परिभ्रमण कर तिर्यचायु या मनुष्यायुका बंध कर सम्यक्त्व-सहित हो मरण किया । इस प्रकार असंयत सम्यक्दृष्टि स्त्रीवेदी जीवकी अपेक्षा पल्यशत पृथक्त्व प्रमाण अंतर होता है । (ध० टी० अंतरा० पृ० ९६)]

देवायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ५८ पल्योपम पूर्वकोटि पृथक्त्व है । दो गति, तीन जाति वैकिक शरीर, वैकिक अंगोपांग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणका जघन्य एक समय, [उत्कृष्ट] कुछ अधिक ५५ पल्य है । मनुष्य गति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगो-

ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसभसंध० मणुसाणु० जह० एग०, उक्क०
तिणिण पलिदो० देसूणाणि । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० पलिदोवमसदपु० ।

§१०३. पुरिस०-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० गत्थि अंतरं ।
थीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु० ४ अड्डक० । इत्थिवे० ओधं । णिदापयला
ओधं । सादासा० सत्तणोक० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ ५
पसत्थ० तस० ४ थिरादिदोणियुगल-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं तित्थयरं
उच्चागो० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवुंस० पंचसंठा० पंचसंध० अप्पसत्थवि०
दूभग-दुस्सर० अणादे०णीचा० जह० एगस०, उक्क० बेछावड्डि-साग० सादि० तिणिण
पलिदोवमाणि देसूणाणि । णिरयायु० इत्थिवेदभंगो । दोआयु० जह० अंतो०,
उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । देवायु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । १०
णिरयगदि-चदुजादि-णिरयाणुपु०-आदाउज्जो०-थावरादि० ४ जह० एगस० उक्क०
तेवड्डिसागरोवमसदं । एवं तिरिक्खगदिदुगं । मणुसगदिपंचगं जह० एग०, उक्क०
तिणिण पलिदो० सादि० । देवगदि० ४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० ।
आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं ।

§१०४. णवुंस०-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण० ४ १५

पांग, वज्ज-वृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य
है । आहारकद्विकका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशत पृथक्त्व है ।

§१०३. पुरुष वेदमें-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायोंका अंतर नहीं
है । स्यान्गृद्धिन्निक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी ४, ८ कषाय, स्त्रीवेदका ओघके समान जानना
चाहिए । निद्रा, प्रचलाका भी ओघके समान है । साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, पंचेंद्रिय
जाति, तैजस, कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति,
त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्च गोत्रका जघन्य एक
समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग,
दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्र का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो छयासठ सागरमें
कुछ कम तीन पल्य प्रमाण है । नरकायुका स्त्रीवेदके समान जानना । मनुष्य, तिर्यचआयु-
का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व है । देवायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक
तेत्तीस सागर है । नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४ का जघन्य
एक समय, उत्कृष्ट ६३ सागरोपम शत है । तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना
चाहिए । मनुष्यगतिपंचकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है । देवगति ४ का
जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेत्तीस सागर है । आहारकद्विकका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट
सागर शत-पृथक्त्व है ।

§१०४. नपुंसकवेदमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण,

अगु० उप० णिमिणं पंचंत० णत्थि अंतरं । थ्रीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु० ४
 इत्थि० णवुंस० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंध० तिरिक्खगणु० उज्जीव० अप्पसत्थ०
 दूभग० दुस्सराणादे० णीचागो० जह० अंतो०, एगस० । उक्क० तेत्तीससाग०
 देखणाणि । सादासादा० पंचणोक० पंचिदि० समचदु० परवादुस्सास-पसत्थवि०
 ५ तस० ४ थिरादिदोणियुगल-सुभग-सुस्सर-आदेज० जह० एगस०, उक्क० अंतो-
 मुहुत्तं । अट्ठक० दोआयु० वेउच्चि० छक्क० मणुसगदितिगं आहारदुगं ओघमंगो ।
 तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । देवायु० जह० अंतो०, उक्क०
 पुव्वकोडितिभागं देखणं । चदुजा० आदाव-थावरादि० ४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं०
 सादिरेयाणि । ओरालिय० ओरालियअंगो० वज्जरिसभ० जह० एकस०, उक्क०
 १० पुव्वकोडिदेखणा । तित्थय० जहणु० अंतो० । अवगदवेद०-पंचणा० चदुदंसं० चदुमंज०

वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अंतगर्भोंमें अन्तर नहीं है । स्थानगृह्णित्विक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धो ४, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यचगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यचातुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विद्यायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य अंतर्मुहूर्त अथवा एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेत्तीस सागर है । १

[विशेषार्थ—मोहनीय कर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मिथ्यात्वयुक्त हो, सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त किया । आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको पुनः प्राप्त करके (४) आयुको बांध (५) विश्राम ले (६) मरा और तिर्यच हुआ । इस प्रकार छह अंतर्मुहूर्तोंसे कम तेत्तीस सागरोपम नपुंसकवेदी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अंतर रहा । (पृ. १०७) यही अंतर मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका होगा ।]

साता असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विद्यायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । ८ कपाय, २ आयु, वैकियिक पट्क, मनुष्यगतित्रिक, आहारक-द्विकका ओघवत् जानना चाहिए । तिर्यच आयुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व है । देवायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है । जाति ४, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेत्तीस सागर है । औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्र-वृषभसंहननका जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । तीर्थङ्करका जघन्य-उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

२ अपगत वेदमें— ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र,

(१) “णउंसगवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?..... एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देखणाणि ।”-पट्खं० अंतरा० २०७-९ ।

(२) “अवगदवेदेसु अणियट्ठि-उवसम-सुहुम-उवसमाणमतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।”-पट्खं० अंतरा० २१४-२१७ ।

जसगि० उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सादावे० णत्थि अंतरं ।

§१०५. क्रोध०—पंचणा० सत्तदंसणा० मिच्छ० सोलसक० चदुआयु० आहारदुग० पंचंत० णत्थि अंतरं । णिद्दा—पचला० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० । माणे—तिण्णि संजलणाणं णत्थि अंतरं । मायाए दोण्णि संजलणाणं णत्थि अंतरं । सेसाणं क्रोधभंगो । लोभे—पंचणा० सत्तदंसणा० मिच्छ० वारसक० चदुआयु० आहारदुगं ५ पंचंत० णत्थि अंतरं । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमु० । णवरि णिद्दापचला जहण्णु० अंतो० । अकसाई—साद० णत्थि अंतरं । केवलणाण—यथाक्खाद० केवलदंस० एवं चेव ।

§१०६. मदि० सुद०—पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदुगुं तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंतरं । सादासा० छण्णोक० पंचिदि० १० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस० ४ थिरादिदोण्णियुगल-सुभग-सुस्सर-आदेज०

५ अंतरायोंका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । साता वेदनीय का अंतर नहीं है ।

§१०५. क्रोधमें—५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ४ आयु, आहारकट्टिक और ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । निद्रा, प्रचला का जघन्य-उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ—निद्रा, प्रचलाका बंध अपूर्वकरणके प्रथमभागपर्यंत होता है । इन प्रकृतियों का बंधक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण करके, उपशांतकषाय पर्यंत चढ़कर तथा उतरते हुए अपूर्वकरणके प्रथमभागमें पुनः बंध प्रारंभ कर देता है । इस कारण इनका जघन्य उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।]

शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

मानमें—३ संज्वलनका अंतर नहीं है । मायामें—दो संज्वलनका अंतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें क्रोधके समान भंग जानना चाहिए ।

लोभकषायमें—५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयु, आहारकट्टिक और ५ अंतरायों का अंतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । विशेष—निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

अकषायीमें—सातावेदनीयका अंतर नहीं है ।

[विशेषार्थ—सातावेदनीयका अप्रमत्तसे लेकर सयोगीकेवली पर्यंत निरंतर बंध होता है । इस कारण उपशांतकषाय या क्षीणकषायमें साताका अंतर नहीं बताया है ।]

केवलज्ञान, यथाख्यात संयम, केवलदर्शनका अकषायकी तरह वर्णन जानना चाहिए ।

§१०६. मत्तज्ञान, श्रुताज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है ।

[विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अवंधक उपशांत कषायादि गुणस्थानमें होंगे । इन कुज्ञान-युगलमें आदिके दो गुणस्थान ही पाये जाते हैं । इससे ज्ञानावरणादिका अंतर नहीं कहा ।]

साता-असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात,

जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवुंस० ओरालियस० पंचसंठा० ओरालिय० अंगो०
छसंघ० अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० एग०, उक्क०
तिणिण पलिदो० देसु० । तिणिण आयु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोगल-
परियट्ठं । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । वेउच्चियल्लक०
५ जह० एग०, उक्क० अणंतका [ल] मसंखेज्ज० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० उज्जोव०
जह० एग०, उक्क० एकतीसं साग० सादि० । मणुसगदितिगं ओव्वं । चदुजादि०
आदाव-थावरादि० ४ जह० एगस०, उक्क० एकतीसं सागरो० सादिरेयाणि ।
एवं अभवसिद्धियमिच्छादिद्विस्स ।

§१०७. विभंगे-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदु० णिरय०
१० देवायु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंतरं । दोआयु०
देवोयं । सेसाणं० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

§१०८. आभि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० सादासा० सत्तणोक०
पंचिदि० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ थिरादि-

उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य
एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । नपुंसकवेद, औदारिक शरीर, ५ संस्थान, औरादिक
अंगोपांग, ६ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य
एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है ।

तीन आयु अर्थात् देव, नर, नरक आयुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात
पुद्गल परावर्तन है । तिर्यच आयुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व है । वैक्रियिक
पट्टका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है । तिर्यच गति,
तिर्यचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक इकतीस सागर है । मनुष्यगति-
त्रिकमें ओघकी तरह जानना चाहिए । ४ जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य अंतर एक
समय, उत्कृष्ट साधिक इकतीस सागर है । अभव्यसिद्धिकमिथ्यादृष्टिका भी इसी प्रकार
जानना चाहिए ।

§१०७. विभंगावधिमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा,
नरक, देवायु, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अंतरायोंका अंतर
नहीं है । दो आयुका देवोंके ओघवत् जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§१०८. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन,
साता-असाता वेदनीय, ७ नोकपाय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४,
अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण,
तीर्थकर, उच्चगोत्र तथा ५ अंतरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

दोणियुगल-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं तित्थयरं उच्चागोद-पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अट्ठकसायाणं जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसणा । दोआयु० देवगदि० ४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । मणुसगदिपंचगं जह० वासपुधत्तं, उक्क० पुव्वकोडि० । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० छावट्टिसागरो० सादिरेयाणि । एवं ओधि [दं०] सम्मादिट्ठित्ति ।

५

§१०९. मणपज्जवणा०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० देवगदि-पंचिदि० चदुसरीर० समचदु० दोअंगो० वण्ण० ४ देवाणुपु० अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सादासा०-चदुणोक० थिरादितिणियु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसणा ।

१०

[विशेषार्थ-ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका बंधक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशांतकषाय गुणस्थानमें पहुँचा, तब इन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका बंध रुक गया । बादमें जैसे ही वह जीव नीचे गिरा कि इनका बंध पुनः प्रारंभ हो गया । इस दृष्टिसे इन ज्ञानोंमें बंधका अंतर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण कहा गया है ।]

आठ कषायोंका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है ।

[विशेषार्थ-एक मनुष्यने अविरत दशमें अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण-रूप कषायाष्टकका बंध किया । आठ वर्षकी उमरके अनंतर सम्यक्त्व तथा महाव्रतको एक साथ धारण कर एक पूर्व कोटिसे बचो आयु प्रमाण महाव्रती रह मरणकालमें असंयमी बन पुनः ८ कषायोंका बंध करके मरण किया । इस प्रकार देशोन पूर्व कोटि अंतर होता है ।]

दो आयु, देवगति ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ३३ सागर है । मनुष्य गतिपंचकका जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है । आहारकद्विकका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर है ।

अवधिदर्शन तथा सम्यक्त्वमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१०९. मनःपर्ययज्ञानमें-५ ज्ञानावरण, ६दर्शनावरण, ४संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरु-लघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र और ५ अंतरायका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ-कोई मनःपर्ययज्ञानी उपशमश्रेणी चढ़कर उपशांतकषाय गुणस्थानमें पहुँचा, तब अंतर्मुहूर्तपर्यन्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका अवग्रह हो गया । पश्चात् वह सूक्ष्मरूपरायादि गुणस्थानोंमें उतरा, तो पुनः उन प्रकृतियोंका बंध प्रारंभ हो गया । इस प्रकार यहां अंतर जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।]

साता-असातावेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि ३ युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । देवायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है ।

§११०. एवं संजद० । एवं चैव सामाङ्० छेदो० परिहार० संजदासंजदाणं ।
णवरि धुविगाणं णत्थि अंतरं । सुद्धमसंपराइयस्स सच्चपगदीणं णत्थि अंतरं ।
असंजदे धुविगाणं णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु० ४
इत्थि० णवुंस० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थवि०
५ उज्जो० दूमग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० उक्क० तेत्तीसं० साग० देसुणा ।
णवरि थीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु० ४ जह० अंतो० । चट्ठआयु०
वेजव्वियल्लक० मणुसगदितिगं च ओघं । एइंदिय-दंडओ तित्थयरं च णवुंसकवेदभंगो ।

§१११. चक्खुदंस० तसपजत्तभंगो । अचक्खुदंसणं ओघं ।

§११२. किण्णाए-पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदुगुं तेजाकम्म० वण्ण० ४
१० अगु० उप० णिमि० तित्थयर-पंचंत० दो-आयु० णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि० ३

[विशेषार्थ—कोई एक कोटिपूर्वकी आयुवाला जीव मनःभर्ययज्ञानी हुआ । आयुका
त्रिभाग शेष रहनेपर देवायुका प्रथम अंतर्मुहूर्तमें बंध किया । इसके अनंतर मरणकाल आनेपर
पुनः आयुका बंध किया । इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग देवायुका अंतर होगा ।]

§११०. संयममें इस प्रकार है । सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा संयता-
संयतोमें भी इस प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहां ध्रुव प्रकृतियोंमें अंतर नहीं है ।

सूक्ष्मसांपरायमें—सर्व प्रकृतियोंका अंतर नहीं है । असंयतमें-ध्रुव प्रकृतियोंका अंतर
नहीं है । स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी ४, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, तिर्यचगति, ५ संस्थान
५ संहनन, तिर्यचानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, उद्योत, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका
जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है ।

[विशेषार्थ—कोई मनुष्य या तिर्यञ्च मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मरणकर सातवीं
पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्वो
हुआ (३) उस समय मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका बन्ध रुका । इस प्रकारकी अवस्था आयुके अल्प-
काल अवशेष रहने तक रही । पश्चात् वह जीव मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४) इस
प्रकार अंतर प्राप्त हुआ । पुनः तिर्यञ्च आयुका बंधकर (५) विश्राम ले (६) निकला । इस प्रकार
छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण मिथ्यात्वादिका बंध नहीं होनेसे उतना अन्तर रहा ।
(ध० टी० अ तरा० पृ० १३४)]

विशेष यह है कि स्थानगृद्धि ३, मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधी ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त
है । चार आयु. वैक्रियिक पट्क, मनुष्यगतित्रिकमें ओघवत् जानना चाहिए । एकेन्द्रिय दंडक
तथा तीर्थंकरमें नपुंसकवेदके समान भंग जानना चाहिए ।

§१११. चक्षुदर्शनमें—त्रस पर्याप्तकोंका भंग जानना चाहिए । अचक्षुदर्शनमें—ओघवत्
जानना चाहिए ।

§११२. कृष्णलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामाण,
वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अंतराय, २ आयुका अंतर नहीं है ।

मिच्छ० अणंताणु० ४ जह० अंतो० । इत्थि० णवुंसक० दोगदि० पंचसंठा० पंचसंघ०
 दोआणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्स० अणादे० णीचुच्चागो० (?) जह० एगस०,
 उक्क० तेत्तीसं साग० देख० । दोआयुगस्स णिरयभंगो । । वेउव्विय० वेउव्विय०
 अंगो० जह० एगस०, उक्क० बावीसं सा० (?) । सेसाणं जह० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । ५
 एवं णील-काऊणं । णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो । वेउव्वि० वेउव्वि० अंगो० जह०
 एग०, उक्क० सत्तारस-सत्तसागरो० ।

§११३. तेउ०-पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदु० ओरालिय० आहारतेजाकम्म०

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त, है [उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, २ गति, ५ संस्थान, ५ संहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त-
 विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र, उच्चगोत्र (?) का जघन्य एक समय,
 उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है ।

[विशेषार्थ-यहाँ उच्चगोत्रका अन्तर देशोन ३३ सागर कहा है, किन्तु यह बात चिंतनीय है
 कि जब उच्चगोत्रका बंधकाल कृष्णलेश्याकी अपेक्षा देशोन ३३ सागर कहा है तथा नीचगोत्रका
 बंधकाल साधिक ३३ सागर कहा है, तब उच्चगोत्रका अंतर या नीचगोत्रका बन्धकाल समान
 रूपसे साधिक ३३ सागर कहा जाना चाहिए था ।]

दो आयुका नरकगतिके समान जानना चाहिए ।

वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट २२ (?) सागर
 जानना चाहिए । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ-कृष्णलेश्यायुक्त मनुष्य या तिर्यचने वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका
 बंध किया और मरण कर सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न हो ३३ सागरप्रमाण आयु प्राप्त की । यहाँ
 जीवनपर्यन्त कृष्णलेश्याके होते हुए भी वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका बंध नरकगतिके
 कारण नहीं हो सका । आयु पूर्ण होनेपर मरण कर तिर्यच हुआ, जहाँ पुनः उक्त प्रकृतियोंका
 बन्ध होने लगा । इस प्रकार उपरोक्त प्रकृतिद्वयका उत्कृष्ट अंतर तेतीस सागर निकलता है ।
 अतः प्रतीत होता है कि 'बावीस' के स्थानपर 'तेतीस' पाठ ठीक होगा ।]

इसी प्रकार नील तथा कापोत लेश्यामें जानना चाहिए । विशेष, मनुष्यगतित्रिकमें
 सातावेदनोयके समान भंग जानना चाहिए । वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य
 एक समय, उत्कृष्ट सत्रह सागर तथा सात सागर अंतर है ।

[विशेषार्थ-कृष्णलेश्याके समान नील तथा कापोतलेश्यायुक्त दो जीवोंने वैक्रियिक शरीर
 तथा वैक्रियिक अंगोपांगका बन्ध करके मरण किया और क्रमशः पाँचवें तथा तीसरे नरकमें
 जन्म धारण किया । वहाँ सत्रह सागर तथा सात सागरपर्यन्त उक्त दोनों प्रकृतियोंका बन्ध
 नहीं हो सका । पश्चात् मरण कर वे मनुष्य या तिर्यच हुए, जहाँ उन प्रकृतियोंका पुनः बंध हो
 सका । इस प्रकार सत्रह तथा सात सागर प्रमाण अंतर सिद्ध हुआ ।]

§११३. तेजोलेश्यामें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक,

आहार० अंगो० वण्ण० ४ अगु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमिण-तित्थयर-पंचंत०
णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु० ४ जह० अंतो० । इत्थि० णवुंस०
तिरिक्खगदि० एइंदिय० पंचसंटाण० पंचसंघ० तिरिक्खणाणु० आदाउज्जो० अप्प-
सत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० एग०, उक्क० वेसागरो० सादिरे० ।
५ सादासाद-पंचणोक० मणुसग० पंचिदि० समचदु० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस०
मणुसाणु० पसत्थवि० तस० थिरादिदोण्णिगुगल-सुभग-सुस्सर-आदे० उचागो० जह०
एगस०, उक्क० अंतो० । तिरिक्ख-मणुसायु० देवोघं । देवायुगं णत्थि अंतरं । देवगदि० ४
जह० दसवस्ससहस्साणि अथवा पल्लिदोवमसादिरेयाणि । उक्क० वेसागरोवमाणि
सादिरेयाणि ।

१० §११४. पम्माए-पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदुगुं० पंचिंदिय० चदुसरीर-
ओरालियअंगो० आहारस० अंगो० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिणं तित्थयरं
पंचंत० णत्थि अंतरं । सेसं तेउभंगो । णवरि सगट्ठिदी भाणिदच्चा । एइंदिय-आदाव-थावरं
णत्थि [अंतरं] । देवगदि० ४ जह० वेसाग० सादि०, उक्क० अट्टारससाग० सादिरे० ।

आहारक तेजस कार्माण शरीर, आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक,
निर्माण, तीर्थकर तथा ५ अंतरार्योंका अंतर नहीं है । स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी
४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त [और उत्कृष्ट साधिक दो सागर] है ।

[विशेषार्थ-तेजोलेख्यावाले किसी मिथ्यात्वी जीवने सौधर्मद्विकमें उत्पन्न हो साधिक
दो सागर प्रमाण स्थिति प्राप्त की । वहाँ छहों पर्याप्ति पूर्णकर विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको
ग्रहण कर आयुके अंतमें मिथ्यात्वी हो मरण किया । उसकी अपेक्षा यहाँ मिथ्यात्व आदिका
उत्कृष्ट अंतर साधिक दो सागरोपम कहा है ।]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तीर्थचगति, एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यचानुपूर्वी,
आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्र का जघन्य एक
समय, उत्कृष्ट साधिक दो सागर है । साता-असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय
जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहा-
योगति, त्रस, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट
अंतर्मुहूर्त है । तिर्यचायु-मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है । देवायुका अंतर नहीं है । देवगति
४ का जघन्य दस हजार वर्ष अथवा साधिक पत्यप्रमाण है । उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है ।

§११४. पद्मलेख्यामें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति,
चार शरीर, (आहारकको छोड़कर) औदारिक अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग,
वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तीर्थकर तथा ५ अंतरार्योंके बंधकोंका अंतर नहीं है ।
शेषका तेजोलेख्याके समान भंग जानना चाहिए । विशेष यह है कि अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण
अंतर ग्रहण करना चाहिए । यहाँ एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका अंतर नहीं है ।

§११५. सुक्काए—पंचणा० छदंसणा० सादासा० चदुसंज० सत्तणोक० पंचि-
दि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिस० वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४
थिरादिदोणियुगल-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थयरं उच्चागोद-पंचंत०
जह० एगस०, उक्क० अंतो० । णवरि णिहा-पचला ओघं । थीणगिद्धि० ३ मिच्छ०
अणंताणु० ४ जह० अंतो० । इत्थि० णवुंस० पंचसंठा० पंचसंध० अप्पसत्थ० दूभग- ५
दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० एगस०, उक्क० एककत्तीसं साग० देसणा० ।
अट्ठक० देवायु० मणुसग० ओरालिय० ओरालियअंगो० मणुसाणु० णत्थि अंतरं ।
मणुसायु० देवोघं । देवगदि० ४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । आहार-
दुगं जहणु० अंतो० । भवसिद्धिया ओघं ।

[विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका बंध सौधर्मद्विक पर्यन्त होता है । वहाँ पीत-
लेश्या पायी जाती है । पद्मलेश्यामें इनका बंध नहीं है, अतः अंतर नहीं कहा है ।]

देवगति ४ का जघन्य साधिक दो सागर तथा उत्कृष्ट साधिक १८ सागर हैं ।

[विशेषार्थ—पद्मलेश्यावाले देवोंकी जघन्य स्थिति साधिक दो सागर हैं और उत्कृष्ट साधिक
१८ सागर हैं । इनके देवगतिचतुष्कका बंध नहीं होगा । इस अपेक्षा उपरोक्त अंतर कहा है ।]

§११५. शुक्ललेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, ४ संज्वलन, ७
नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभ-संहनन, वर्ण ४,
अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण,
तीर्थकर, उच्चगोत्र तथा पंच अंतरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । विशेष-निद्रा-
प्रचलाका ओघवत् जघन्य, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धिन्निक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी
४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । [उत्कृष्ट कुछ कम इकतीस सागर हैं ।]

[विशेषार्थ—शुक्ललेश्यावाला द्रव्यलिङ्गी जीव ३१ सागरोंकी स्थितिवाले अंतिम ग्रैवेयकमें
उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर, विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ।
आयुके अंतमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्तकर मरण किया । इस प्रकार देशोन ३१ सागर प्रमाण
मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अंतर हुआ । इस अपेक्षा मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी आदिका अंतर
उतना ही कहा गया है ।]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ५संस्थान, ५संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच-
गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३१ सागर हैं । आठ कषाय, देवायु, मनुष्यगति,
औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका अंतर नहीं है । मनुष्यायुका देवोंके
ओघ समान है । देवगति ४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर हैं । आहारक-
द्विकका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

भव्यसिद्धिकोंमें—ओघवत् जानना चाहिए ।

§११६. खड्गसम्मादिदि ध्रुविगाणं अट्टकसायाणं च ओधिभंगो । मणुसायु देवोघं । देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुण्वकोडितिभागं देखणा । मणुसगदिपंचगं णत्थि अंतरं । देवगदि० ४ आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । सादादीणं ओधिभंगो ।

५ §११७. वेदगे ध्रुविगाणं तित्थयरस्स च णत्थि अंतरं । अट्टक० दोआयु० मणुसगदि-
पंचगं ओधिभंगो । देवगदि० ४ जह० पल्लिदोवम० सादि०, उक्क० तेत्तीसं साग० ।
आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० छावट्टिसागरो० देखणा, अथवा तेत्तीसं सादिरे० ।
सेसाणं जह० एग० उक्क० अंतो० ।

१० §११८. उवसम०—पंचणा० चदुदंस० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिदि०
तेजाकम्म० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ थिरादिदोणियुग०

§११६. क्षयिकसम्यक्त्वमें—ध्रुव प्रकृति तथा आठ कपायोंका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है । देवायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटिका त्रिभाग है ।

[विशेषार्थ—कोई क्षायिकसम्यक्त्वो जीव एक कोटिपूर्वको आयुवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ । आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर उसने आगामी देवायुका बंध किया और आयुके पूर्ण होनेके पूर्व पुनः उसी आयुका बंध किया । इस प्रकार कुछ कम एक कोटि पूर्वका त्रिभाग देवायुका अंतर रहा ।]

मनुष्यगतिपंचकमें अंतर नहीं है । देवगति ४, आहारकट्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । सातादि प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए ।

§११७. वेदकसम्यक्त्वमें ध्रुव प्रकृतियों तथा तीर्थंकर प्रकृतिका अंतर नहीं है । आठ कपाय, (अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४ दो आयु, मनुष्यगतिपंचकका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । देवगति ४ का जघन्य साधिक पत्य है तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

[विशेषार्थ—किसी वेदकसम्यक्त्वो मनुष्यने सुरचतुष्कका बंध करनेके अनंतर मरण करके सौधर्मद्विक या सर्वार्थसिद्धिमें जन्म धारण किया । वहाँ सौधर्मद्विककी जघन्य आयु साधिक पत्यप्रमाण वेदकसम्यक्त्वो रहा और सुरचतुष्कका बंध नहीं हुआ । मरणके बाद पुनः मनुष्य हो उनका बंध प्रारंभ कर दिया । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस सागरप्रमाण वेदक सम्यक्त्वयुक्त रहकर सुरचतुष्कका बंध नहीं किया । मरण करके मनुष्य हो सुरचतुष्कका बंध पुनः प्रारंभ कर दिया । इस प्रकार पूर्वोक्त बंधका अंतर जानना चाहिए ।]

आहारकट्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ६६ सागर है । अथवा साधिक तेतीस सागर है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§११८. उपशमसम्यक्त्वमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, ४ संवत्तन, ७ नोकपाय, पंचेद्रियजाति, तैजस-कर्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वण ४, अगुरुलघु ४,

सुभ० सुस्सर० आदे० णिमि० तिथय० उच्चागो० पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णिद्वा-पयला० अट्टक० देवगदि० ४ आहारदुग० जहणु० अंतो० । मणुस-गदिपंचगं णत्थि अंतरं ।

§११९. सासणे-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तिणिआयु० पंचिदि० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिणं पंचंत० णत्थि अंतरं । सेसाणं जह० ५ एग०, उक्क० अंतो० ।

§१२०. सम्मामि०-दो वेदणीय-चदुणोक० थिरादितिणियुग० जह० एग० उक्क० अंतो० । सेसाणं णत्थि अंतरं ।

§१२१. सणि-पंचिदियपज्जत्तभंगो । असणि-धुविगाणं णत्थि अंतरं । चदुआयु० वेउन्वियल्लक्क० मणुसगदितिगं च तिरिक्खोघं । सेसाणं जह० एग० १० स०, उक्क० अंतो० ।

§१२२. आहारगे-पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिदिय०

प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र तथा पंच अंतरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ-किसी उपशमसम्यक्त्वी जीवने उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशान्त-कषाय गुणस्थान प्राप्त किया, तब ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके बंधकी व्युच्छित्ति हो गयी। पुनः नीचे गिरनेपर उन प्रकृतियोंका बंध प्रारंभ हो गया । इस दृष्टिसे यहाँ अंतर कहा है ।]

निद्रा-प्रचला, आठ कषाय, देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ-निद्रादिका बंधक कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशम श्रेणीमें चढ़ा । वह जब अपूर्व करणके अंतिमभाग तथा आगेके गुणस्थानोंमें चढ़ा, तब निद्रादिका बंध होना रुक गया । पश्चात् नीचे उतरनेपर पुनः बंध आरंभ हो गया । इसका अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण होगा ।]

मनुष्यगतिपंचकका अंतर नहीं है ।

§११९. सासादनसम्यक्त्वमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आयु, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अंतरायोंका अंतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§१२०. सम्यक्त्वमिथ्यात्वीमें-दो वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंमें अंतर नहीं है ।

§१२१. संज्ञीमें-पंचेन्द्रियपर्याप्तकका भंग जानना चाहिए । असंज्ञीमें-ध्रुव प्रकृतियोंका अंतर नहीं है । चार आयु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिकका तिर्यचोंके ओघ समान जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है ।

§१२२. आहारकमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, संज्वलन ४,

तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ थिरादि दोणियुग०
 सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं तित्थयर-पंचत० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवरि
 णिदा-पचल्लणं जहण्णु० अंतो० । तिण्णि आयु० आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क०
 अंगुलस्स असंखेज्जो भागो । एवं चेव वेउच्चियल्लक्क-मणुसगदित्तिगं च । णवरि जह०
 ५ एगस० । ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस० जह० एग०, उक्क० तिण्णि
 पल्लिदो० सादिरे० । सेसाणं ओघं । आणाहार० कम्मद्गमंगो ।

एवं अंतरं समत्तं ।

७ नोकपाय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस-कर्माण-शरीर, समचतुरस्रसंख्यान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल. सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर तथा पंच अंतर्गर्भोका जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । विशेष, निद्रा-प्रचलाका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । ३ आयु, आहारकद्विकका जघन्य अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट अंगुलके असंख्यातवें भाग है । १ इसी प्रकार वैक्रियिकपट्क, मनुष्यगतित्रिकका जानना चाहिए । विशेष, इनका जघन्य एकसमय प्रमाण है । औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वस्त्र-वृषभसंहननका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है । शेष प्रकृतियोंका ओघवत् है ।

अनाहारकोंमें—कार्माण काययोगके समान जानना चाहिए ।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अंतर समाप्त हुआ ।



(१) “आहारोणुवादेण सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जासखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ।”-पट्खं० अंतरा० ३८४-९० ।

[सणियासपरूवणा]

§१२३. सणियासो दुविधो सत्थाणसणियासो, परत्थाणसणियासो चेव । सत्थाणसणियासे पगदं । दुविधो णिहेसो ओघेण आदेसेण य ।

§१२४. तत्थ ओघेण-आभिणिबोधिय-णाणावरणीयं बंधंतो चटुण्णं णाणावरणीयाणं णियमा बंधगो । एवमेकमेकस्स बंधगो । णिहाणिहं बंधंतो अट्ठदंसणावरणीयाणं णियमा बंधगो । एवं थीणगिद्धितियस्स । णिहं बंधंतो थीणगिद्धितियं सिया बंधगो^५ सिया अवंधगो, पंचदंसणावरणीयाणं णियमा बंधगो । एवं पचला० । चक्खुदंसणा०

[सन्निकर्षप्ररूपणा]

§१२३. सन्निकर्ष दो प्रकारका है, एक स्वस्थान सन्निकर्ष और दूसरा परस्थान सन्निकर्ष है । यहां स्वस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है । उसका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

[विशेषार्थ—स्वस्थान सन्निकर्षमें एक साथ बँधनेवाली एकजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण किया गया है । परस्थान सन्निकर्षमें एक साथ बँधनेवाली सजातीय एवं विजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण किया गया है ।]

§१२४. ओघसे—आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बंध करनेवाला शेष श्रुतादि ज्ञानावरण-चतुष्टयको नियमसे बाँधता है । इसी प्रकार एक प्रकृतिका बंध करनेवाला ज्ञानावरणकी शेष प्रकृतियोंका बंधक है ।

[विशेषार्थ—ज्ञानावरण की मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञानावरणरूप किसी भी प्रकृतिका बंध होनेपर शेष चार प्रकृतियोंका भी नियमसे बंध होगा । ऐसा नहीं है कि अवधिज्ञानावरणका तो बंध होता रहे और मनःपर्ययज्ञानावरणादिका बंध न हो । पाँचों ज्ञानावरणके भेदोंका सदा एक साथ बंध होता रहता है ।]

निद्रानिद्राका बंध करने वाला ८ दर्शनावरणका नियमसे बंधक है । इसी प्रकार स्त्यान-गृद्धित्रिकमें भी समझना चाहिए । निद्राका बंधक स्त्यानगृद्धित्रिकका बंधक है भी और नहीं भी है । किन्तु वह दर्शनावरणपंचक अर्थात् चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण तथा प्रचलाका नियमसे बंधक है ।

[विशेषार्थ—स्त्यानगृद्धित्रिकका बंध सासादन गुणस्थान तक होता है और निद्राप्रकृतिका अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त बंध होता है, अतः निद्राका बंध होनेपर स्त्यानगृद्धित्रिकका बंध होना अनिवार्य नहीं है । हो भी सकता है, नहीं भी होवे ।]

बंध० पंचदंसणा० सिया बंधगो सिया अवंधगो, तिणि दंसणावरणायाणं णियमा बंधगो । एवं तिणि दंसणा० । सादं बंधंतो असादस्स अवंधगो । असादं बंधंतो सादस्स अवंधगो ।

१२५. मिच्छत्तं बंधंतो सोलस कसाय-भयदुग्गच्छाणं णियमा बंधगो । इत्थिवेदं सिया बंधगो, सिया अवंधगो । पुरिसवेदं सिया बंधगो, सिया अवंधगो । णवुंसगवेदं सिया बंधगो सिया अवंधगो । तिणि वेदाणं एकदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । हस्स-रदि सिया बंधगो सिया अवंधगो । अरदि-सोगाणं सिया बंधगो सिया अवंधगो । दोण्णं युगलाणं एकदरं बंधगो ण चेव अवंधगो ।

१२६. अणंताणुबंधिकोधं बंधंतो मिच्छत्तं सिया बंधगो सिया अवंधगो, पण्णारसकसाय-भयदुग्गच्छाणं णियमा बंधगो । इत्थिवेदं सिया बंधगो, पुरिसवेदं सिया बंधगो, णवुंसक० सिया वं० । तिण्णं वेदाणं एकदरं बंधगो ण चेव अवंधगो ।

निद्राके समान प्रचलका भी वर्णन जानना चाहिए । चक्षुदर्शनावरणका बंधक जीव निद्रादिक पांच दर्शनावरणका कथंचित् बंधक है कथंचित् अवंधक है, किन्तु अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणका नियमसे बंधक है । इसी प्रकार अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणमें जानना चाहिए ।

[विशेषार्थ—चक्षुदर्शनावरणका बंध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानपर्यंत होना है और पंच निद्राओंका अपूर्वकरणपर्यंत होता है, इस कारण चक्षुदर्शनावरणके बंधकके निद्रादिका बंध विकल्प रूपसे कहा है ।]

साताका बंध करनेवाला असाताका अवंधक है । असाताका बंधक साताका अवंधक है ।

[विशेषार्थ—साता और असाता परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं । अतः एकके बंध होते समय दूसरीका अवंध होगा ।]

१२५. मिथ्यात्वका बंध करनेवाला—सोलह कपाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बंधक है । स्त्रीवेद का स्यात् (कथंचित्) बंधक है, स्यात् अवंधक है । पुरुषवेदका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । नपुंसकवेदका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । तीन वेदोंमेंसे अन्यतमका बंधक है, अवंधक नहीं है । हास्य, रतिका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । अरति-शोकका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । दोनों युगलोंमेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है ।

१२६. अनंतानुबंधी क्रोधका बंध करनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । किन्तु शेष १५ कपाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बंधक है ।

[विशेषार्थ—अनंतानुबंधीका सासादनपर्यन्त बंध होता है, किन्तु मिथ्यात्वका प्रथम गुण-स्थान पर्यन्त । अतः अनंतानुबंधीके बन्धकके साथ मिथ्यात्वका बंध हो भी और न भी हो ।]

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है, पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है, नपुंसकवेदका स्यात् बंधक है, तीनों वेदोंमें से किसी एकका बन्धक है, अवंधक नहीं है । हास्य-रतिका स्यात् बंधक है,

हस्सरदिं सिया बंधगो । अरदिसोगं सिया बंधगो । दोण्णं युगलाणं एकदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं तिण्णि कसायाणं ।

§१२७. अपच्चक्खाणं कोधं बंधंतो मिच्छत्त० अणंताणु० ४ सिया बंधगो । सिया अवंधगो । एकारसकसाय-भयदुगुंलाणं णियमां बंधगो । इत्थिवे० सिया बंधगो । पुरिसवे० सि० बंधगो । णवुंसकवे० सिया बंधगो । तिण्णि वेदाणं एकदरं बंधगो । ५ ण चेव अवंधगो । हस्सरदी सिया बंधगो । अरदिसो० सिया बंधगो । दोण्णि युगलाणं एकदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं तिण्णि कसायाणं ।

§१२८. पच्चक्खाणावरणीयं कोधं बंधंतो मिच्छ० अट्ठकसा० सिया बंधगो, सिया अवंधगो । सत्तकसाय-भयदु० णियमा बंधगो । इत्थिवे० सिया बंधगो० । पुरिस० सि० वं० । णवुंस० सिया वं० । तिण्णि वेदाणं एकदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । १० हस्सरदी सिया बंधगो । अरदिसोगाणं सिया बंधगो । दोण्णं युगलाणं एकदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं तिण्णि कसायाणं ।

अरति-शोकका स्यात् बंधक है । दो युगलोंमेंसे किसी एक युगलका बंधक है, अवंधक नहीं है । इसी प्रकार अनंतानुबंधी मान, माया तथा लोभके बंधकमें जानना चाहिए ।

§१२७. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बंध करनेवाला मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ का स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है ।

[विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरणका बंध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी ४ का क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान तक बंध होता है; इस कारण अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधके साथ मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी ४के बंधकी अनिवार्यता नहीं है ।]

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा अप्रत्याख्यानावरण क्रोधको छोड़कर शेष ग्यारह कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बंधक है । स्त्रीवेदका स्यात् बंधक है । पुरुषवेदका स्यात् बंधक है । नपुंसकवेदका स्यात् बंधक है । तीनों वेदोंमेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । हास्य, रतिका स्यात् बंधक है । अरति, शोकका स्यात् बंधक है । दो युगलोंमेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—हास्य-शोक, रति-अरति ये परस्पर विरोधी प्रकृतियाँ हैं । अतः जब हास्य-रतिका बंध होगा, तब शोक-अरतिका बंध नहीं होगा ।]

अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए ।

§१२८. प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बंध करनेवाला-मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी तथा अप्रत्याख्यानावरणरूप कषायाष्टकका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । शेष प्रत्याख्यानावरण ३ तथा संज्वलन ४-इस प्रकार ७ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बंधक है । स्त्रीवेदका स्यात् बंधक है । पुरुषवेदका स्यात् बंधक है । नपुंसकवेदका स्यात् बंधक है । तीन वेदोंमेंसे किसी एकका बंधक है, अवंधक नहीं है । हास्य-रतिका स्यात् बंधक है । अरति-शोकका स्यात् बंधक है । दो युगलोंमेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका भी वर्णन जानना चाहिए ।

§१२९. क्रोधसंज्ञं वधन्ती मिच्छ० वारसक० भयदुग्ं० सिया वधंगो । तिणिण संजलणाणं णियमा वधंगो । इत्थि० सिया वधंगो । पुरिस० सिया वं० । णवुंस० सिया वधंगो । तिणिण वेदाणं एकदरं वधंगो । अथवा तिणिणं पि अवधंगो । हस्सरदी सिया वं० । अरदिसोग० सिया वं० । दोण्णं युगलानं एकदरं वधंगो अथवा दोण्णं पि अवधंगो ।
५ एवं तिणिण संजलणाणं । णवरि माणं वधन्ती मायालोभाणं णियमा वधंगो । तेरसक० भयदुग्ं० सिया वधंगो । मायं वधन्ती लोभं णियमा वधंगो । चोदसकसा० भयदु० सिया वं० । लोभसंजलणं वधन्ती पण्णारसक० भयदु० सिया वधंगो ।

§१३०. इत्थिवेदं वधन्ती मिच्छत्तं सिया वं० । सोलसक० भयदु० णियमा वधंगो । हस्सरदी सिया० । अरदिसोग० सिया० । दोण्णं युगलानं एकदरं वधंगो, ण चेव अवधंगो ।
१० पुरिसवेदं वधन्ती मिच्छत्तं वारसक० भयदु० सिया वधंगो । हस्सरदी सिया वधंगो ।

§१२९. संज्वलन क्रोधका वध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कपाय, भय, जुगुप्साका स्यात् वधक है, किन्तु शेष मान, माया, लोभरूप संज्वलनका नियमसे वधक है । स्त्रीवेदका स्यात् वधक है । पुरुषवेदका स्यात् वधक है । नपुंसकवेदका स्यात् वधक है । तीनों वेदोंमेंसे किसी एकका वधक है, अथवा तीनोंका भी अवधक है ।

[विशेषार्थ—वेदका वध अनिवृत्तिकरणके प्रथमभाग पर्यन्त है, किन्तु संज्वलन क्रोधका वध अनिवृत्तिकरणके अवेदभाग तक होता है । अतः संज्वलन क्रोधके वधकको वेदत्रयका अवधक भी कहा है ।]

हास्य-रतिका स्यात् वधक है । अरति-शोकका स्यात् वधक है । दो युगलोंमेंसे किसी एक युगलका वधक है अथवा दोनों युगलोंका ही अवधक है ।

[विशेषार्थ—अरति-शोकका प्रमत्त गुणस्थानपर्यन्त तथा हास्य-रतिका अपूर्वकरण पर्यन्त वध है । अतः संज्वलन क्रोधके वधकमें इनके वधका स्यात् सझाव है, स्यात् नहीं है]

संज्वलन मान, माया, लोभमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि संज्वलन मानको बाँधनेवाला संज्वलन माया और लोभका नियमसे वधक है । तेरह कपाय अर्थात् संज्वलन मान-माया-लोभरहित शेष कपाय, भय तथा जुगुप्साका स्यात् वधक है । संज्वलन मायाको बाँधनेवाला-संज्वलन लोभको नियमसे बाँधता है । शेष १४ कपाय तथा भय, जुगुप्साका स्यात् वधक है । संज्वलन लोभको बाँधनेवाला-१५ कपाय, भय, जुगुप्साका स्यात् वधक है ।

§१३०. स्त्रीवेदको बाँधनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् वधक है, १६ कपाय, भय, जुगुप्साका नियमसे वधक है । हास्य-रतिका स्यात् वधक है । अरति-शोकका स्यात् वधक है । दोनों युगलोंमेंसे एकका वधक है, अवधक नहीं है । पुरुषवेदको बाँधनेवाला—मिथ्यात्व, संज्वलन ४ को छोड़कर शेष १२ कपाय, भय, जुगुप्साका स्यात् वधक है ।

[विशेषार्थ—पुरुषवेदके वधकके संज्वलन ४ का नियमसे वध होता है । अतः यहाँ संज्वलनचतुष्टयको छोड़कर बारह त्पायोंका विकल्प रूपसे वध कहा है ।]

अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एक्कदरं बंधगो । अथवा दोण्णं पि अबंधगो । चदुसंज० णियमा बं० । णवुंसं बंधंतो मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० णियमा बंधगो । हस्सरदी सिया० । अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबंधगो । हस्सं बंधंतो मिच्छत्त० बारसक० सिया बं० । चदुसंज० रदि-भय-दुगुं० णियमा बंधगो । इत्थि० पुरिस० णवुंस० सिया बंधगो । तिण्णि वेदाणं ५ एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबंधगो । एवं रदिं अरदिं बंधंतो मिच्छ० बारसक० सिया बं० । चदुसंज० सोग-भयदु० णियमा बंधगो । इत्थि० पुरिस० णवुंस० सिया० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबंधगो । एवं सोगं भयं बंधंतो मिच्छत्त-बारसक० सिया बंधगो । चदुसंज० दुगु० णियमा बंधगो । इत्थि० पुरिस० णवुंस० सिया० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबंधगो । हस्सरदी सिया बं०, अरदिसोग० १०

हास्य-रतिका स्यात् बंधक है । अरति-शोकका स्यात् बंधक है । दोनों युगलोंमेंसे किसी एक युगलका बंधक है । अथवा दोनोंका ही अबंधक है । चार संज्वलनका नियमसे बंधक है ।

नपुंसकवेदको बाँधनेवाला-मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बंधक है । हास्य-रति का स्यात् बंधक है । अरति-शोकका स्यात् बंधक है । दोनों युगलोंमेंसे अन्यतरका बंधक है । अबंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ-नपुंसकवेद तथा स्त्रीवेदके बंधकोंके १६ कषायोंका नियमसे बंध कहा है, किन्तु पुरुषवेदके बंधकोंके संज्वलनको छोड़कर शेष १२ कषायोंका स्यात् बंध कहा है । इसका कारण यह है कि नपुंसकवेद तथा स्त्रीवेदके बंधक क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन तक होते हैं, वहाँ १६ कषायोंका बंध होता है । पुरुषवेदका बंध अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त होता है, इस कारण पुरुषवेदके बंधकोंके १२ कषायोंके कथंचित् बंधका वर्णन किया गया है, किन्तु संज्वलन ४ का नियमसे बंध कहा है ।]

हास्यका बंध करनेवाला-मिथ्यात्व तथा १२ कषायका स्यात् बंधक है ।

[विशेषार्थ-हास्यका बंध अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त होता है, किन्तु मिथ्यात्व एवं १२ कषायोंका उसके नीचे पर्यन्त बंध होता है । इस कारण हास्यके बंधकके मिथ्यात्वादिका बंध विकल्प रूपसे बताया है ।]

चार संज्वलन, रति, भय, जुगुप्साका नियमसे बंधक है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदका स्यात् बंधक है । तीनों वेदोंमेंसे एकका बंधक है, अबंधक नहीं है ।

रति, अरतिका बंध करनेवाला-इसी प्रकार मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात् बंधक है । ४ संज्वलन, शोक, भय, जुगुप्साका नियमसे बंधक है । स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बंधक है । तीनों वेदोंमेंसे एक वेदका बंधक है । अबंधक नहीं है ।

शोक तथा भयका बंध करनेवाला-मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात् बंधक है । ४ संज्वलन तथा जुगुप्साका नियमसे बंधक है । स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बंधक है । तीनों वेदोंमेंसे किसी एकका बंधक है, अबंधक नहीं है । हास्य, रतिका स्यात् बंधक है । अरति, शोकका स्यात्

सिया वं० । दोण्णं युगलाणं एक्कदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं दुग (गु०) ।

§१३१. णिरयायुगं वंधंतो तिरिक्खायुगं मणुसायुगं देवायुगं अवंधगो । एव-
मण्णमणस्स अवंधगो ।

§१३२. णिरयगदिं वंधंतो पंचि० वेउच्चिय० तेजाक० हुंडसंठाणं वेउच्चि० अंगो०
५ वण्ण० ४ णिरयाणुपु० अगु० ४ अपसत्थवि० तस० ४ अथिरादिच्छ० णिमिण० णियमा
बंधगो । एवं णिरयाणुपु० । तिरिक्खगदिं वंधंतो ओरालिय-तेजाक० वण्ण० ४
तिरिक्खाणु० अगु० उप० णिमिणाणं णियमा बंधगो । एइंदियजादि सिया० । एवं
वेइंदिय० तेइ० चदु० पंचिदि० सिया बंधगो । पंचणं जादीणं एक्कदरं वंधगो, ण चेव
अवंधगो । एवं छसंठाणाणं एक्कदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । ओरालि० अंगो०
१० परवादुस्सा० आदा-उज्जो० सिया वं० सिया अवंधगो । छसंव० सिया० । दो विहाय०
सिया वं० । दो सरं सिया बंधगो, सिया अवं० । अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि
बंधक है । दोनों युगलोंमेंसे एक युगलका बंधक है, अवंधक नहीं है ।

जुगुप्साका बंध करनेवालेके-इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१३१. नरकायुका बंध करनेवाला-तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायुका अवंधक है । इसी
प्रकार किसी अन्य आयुका बंध करनेवाला शेषका अवंधक है । जैसे तिर्यंचायुका बंधक शेष
तीन आयुओंका अवंधक होगा । कारण एक समयमें वध्यमान एक ही आयु होगी ।

§१३२. नरकगतिका बंध करनेवाला-पंचेन्द्रिय जाति, वैकिक्यिक तैजस, कार्माण शरीर, हुंडक
संस्थान, वैकिक्यिक अंगोपांग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्तविद्यायोगति, त्रस ४,
अस्थिरादिपट्क, निर्माणका नियमसे बंधक है ।

[विशेषार्थ—नरकगतिमें संहननका अभाव होनेसे उसका बंध नहीं बताया है ।]

नरकानुपूर्वीका बंध करनेवालेके-नरकगतिके समान जानना चाहिए । तिर्यंचगतिका बंध करने-
वाला- औदारिक-तैजस कार्माण शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात तथा निर्माणका
नियमसे बंधक है । एकेन्द्रिय जातिका स्यात् बंधक है । इसी प्रकार दो, तीन, चार, पंचेन्द्रिय
जातिका स्यात् बंधक है । पंचजातियोंमेंसे एकका बंधक है, अवंधक नहीं है । इसी प्रकार छह
संस्थानोंमेंसे किसी एकका बंधक है; अवंधक नहीं है । औदारिक अंगोपांग, परघात, उद्ध्वास,
आताप, उद्योतका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । ६ संहननों का स्यात् बंधक है ।

[विशेषार्थ—तिर्यंचगतिके बंधकके ६ संहननका बंध अनिवार्य नहीं है; कारण एकेन्द्रियों-
में संहनन नहीं होता है । अस्थिवंधनविशेषको संहनन कहते हैं । एकेन्द्रियोंके अस्थियाँ नहीं
पायी जाती हैं । उनके द्वारा गृहीत आहारका रुधिरादिरूप परिणमन नहीं होता है । इस
कारण उनके संहननका अभाव कहा है ।]

दो विहायोगतिका स्यात् बंधक है । दो स्वर का स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । अथवा
६ संहनन, दो विहायोगति, तथा दो स्वरोंका भी अवंधक है ।

[विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें संहननके समान विहायोगति तथा स्वरका अभाव है । इस कारण
६, २, २ का अवंधक भी कहा है ।]

अवंधगो । तस० सिया० । थावरं सिया० । दोण्णं पगदीणं एक्कदरं वंधगो, ण चेव
अवंधगो । एवं अट्ठयुगलाणं । एवं तिरिक्खाणुं । मणुसगदिं वंधंतो पंचिदि०ओरालिय०
तेजाक०ओरालि० अंगो०वण्ण०४ मणुसाणु० अगु०उप०तस-वादर-पत्ते० णिमि० णियमा
वंधगो । छसंठा० छसंधं० पज्जत्ता० अपज्जं थिरादि-पंच-युग० सिया वं०, सिया
अवंधगो । एदेसिं एक्कदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । परघादुस्सा० तित्थय० सिया ५
वं०,सियाअवं०। दो विहाय०दो सर०सिया वं०,सिया अवंधगो । अथवा दोण्णं दोण्णं पि
अवं० । एवं मणुसाणु० । देवगदिं वंधंतो पंचिदि०वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्वि०
अंगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि०
णियमा वंधगो । आहारदुग-तित्थय० सिया० [वं० सिया] अवं० । थिरादि-
तिण्णि युग० सिया वंधगो, सिया अवंधगो । तिण्णि युगलाणं एक्कदरं वंधगो, ण चेव ६०
अवं० । एवं देवाणुपु० ।

§१३३.एइंदियं वंधंतो तिरिक्खग०ओरालिय-तेजाक०हुंडसं० वण्ण०४तिरिक्खाणु०
अगु० उप० थावर-दुभग-अणादे० णिमि० णियमा वंधगो । परघादुस्सा० आदाउज्जो०

त्रसका स्यात् वंधक है । स्थावरका स्यात् वंधक है । दोनोंमेंसे किसी एकका वंधक है,
अवंधक नहीं है । वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति और स्थिर इनके
आठ युगलोंका इसी प्रकार वर्णन समझना चाहिए अर्थात् प्रत्येक युगलमें से अन्यतरका वंधक
है, अवंधक नहीं है । तिर्यचानुपूर्वीका वंध करनेवालेके तिर्यचगतिके समान भंग है । मनुष्य-
गतिका वंध करनेवाला—पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कामाण शरीर, औदारिक अंगोपांग,
वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे
बंधक है । ६ संस्थान, ६ संहनन, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पंचयुगलका स्यात् वंधक है, स्यात्
अवंधक है । इनमेंसे किसी एकका वंधक है, अवंधक नहीं है । परघात, उच्छ्वास,
तीर्थङ्करका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् वंधक है, स्यात्
अवंधक है । अथवा दो विहायोगति, २ स्वरका भी अवंधक है ।

मनुष्यानुपूर्वीमें मनुष्यगति के समान जानना चाहिए ।

देवगतिका वंध करनेवाला—पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस-कामाण शरीर,
समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति,
त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे वंधक है । आहारकद्विक, तीर्थङ्करका
[स्यात् वन्धक] स्यात् अवंधक है । स्थिरादि तीन युगलका स्यात् वन्धक, स्यात् अवंधक है ।
तीन युगलोंमें से किसी एक युगलका वंधक है, अवंधक नहीं है । देवानुपूर्वीमें देवगतिके
समान जानना चाहिए ।

§१३३. एकेन्द्रिय जातिका वन्ध करनेवाला—तिर्यचगति, औदारिक तैजस कामाण शरीर, हुडक
संस्थान, वर्ण ४, तिर्यचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका
नियमसे वंधक है । परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् वन्धक है, स्यात् अवन्धक है ।

सिया बंधगो, सिया अवंधगो । वादरगुहम० सिया बंध० । दोण्णं युगलाणं एककदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिर-सुमागुम-जस-अजस-गित्तीणं सिया एककदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं थावरं० । वीइदि० बंध० तिरिक्खग० ओरालि० तेजाकम्म० हुंडसं० ओरालि० अंगो० असंपत्त० वण्ण० ४ तिरिक्खाणुपु० अगु० उप० तस० वादरपत्तेय० दूभग-अणादे० णिमि० णियमा बंधगो । परघादुस्सा० उज्जोव० अप्पसत्थ० दुस्सर० सिया बंध०, सिया अवंधगो । पज्जत्ता-अपज्ज० सिया बंध०, सिया अवंध० । दोण्णं युगलाणं एककदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं थिरादि-तिण्णिगुगलाणं एकक० बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं तीइदि० चतुरिदि० । पंचिंदिय-जादिणामं बंधंतो णिरयगदिं सिया बंध०, सिया अवंधगो । एवं तिरिक्ख-मणुस-देवगदि० । चदुण्णं गदीणं एकक० बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं दो सरीरं० छसंठा० दो-अंगो० चदुआणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादि-पंचयुगलाणं । आहारदुगं परघादुस्सा० उज्जो० तित्थय० सिया बंध०, सिया अवंध० । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० तस-वादर-पत्तेय-णिमिण० णियमा बंधगो । छसंव० दोविहा० दोसरं सिया बंधगो । छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एककदरं बंधगो, अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो ।

वादर, सूक्ष्मका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमें से एकका बंधक है, अवन्धक नहीं है । इसी प्रकार पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमेंसे एक-तरका स्यात् बंधक है, अवन्धक नहीं है । स्थावरके विषयमें एकेन्द्रियके समान जानना चाहिए ।

दो इंद्रियका बन्ध करनेवाला—तिर्यचगति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुंडर-संस्थान, औदारिक अंगोपाङ्ग, असंप्राप्तासृषाटिका संहनन, वर्ण ४, तिर्यचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति तथा दुस्वरका स्यात् बंधक, स्यात् अवंधक है । पर्याप्त-अपर्याप्तका स्यात् बन्धक, स्यात् अवंधक है । दोनों युगलोंमें से एकका बन्धक है, अवन्धक नहीं है । स्थिरादि तीन युगलमेंसे एकतरका बन्धक है, अवन्धक नहीं है ।

त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियका बंध करनेवालेके इसी प्रकार जानना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय जाति नामकर्मका बंध करनेवाला—नरकगतिका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । इसी प्रकार तिर्यच-मनुष्य-देवगतिमें जानना चाहिए अर्थात् स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । चारों गतियोंमेंसे एकका बंधक है, अवंधक नहीं है । दो शरीर (औदारिक, वैक्रियिक), छह संस्थान, दो अंगोपाङ्ग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पंच युगलमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत तथा तीर्थकर प्रकृतिका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस-वादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बंधक है । ६ संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका स्यात् बंधक है । इन ६, २, २ में से एकतरका बंधक है, अथवा ६, २, २ का भी अवंधक है ।

§१३४. ओरालियसरीरं वंधंतो तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं णियमा वंधगो । तिरिक्खमणुसगदि सिया वं० । दोण्णं एक्कदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं भंगो पंचजादि-छसंठाणं दो आणु० तसथावरादि-णव-युगलाणं । ओरालि० अंगो० परघादु० आदा-उज्जो० तित्थय० सिया वंधगो, सिया अवंधगो । छसंध० दोविहाय० दो सरं सिया वंधगो, सिया अवंधगो । अथवा [छण्णं] दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो । ५

§१३५. वेगुव्वियस० वंधंतो पंचिदि० तेजाक० वेगुव्विय० अंगो० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिणं णियमा वंधगो, णिरयगदि-देवगदीणं सिया वंधगो० । दोण्णं एक्कदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं समचदु० हुंडसंठा० । दोण्णं आणुपु० दो विहाय० थिरादि-छयुगलाणं सिया एदेसिं एक्कदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । आहारदुगं सिया

§१३४. औदारिक शरीरका वंध करनेवाला—तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणका नियमसे वंधक है । तिर्यचगति, मनुष्यगतिका स्यात् वंधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका वंधक है, अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—देवगति, नरकगतिका सन्निकर्ष वैक्रियिक शरीरके साथ है, इससे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है ।]

पाँच जाति, ६ संस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावगदि ९ युगलमें भी तिर्यच मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए ।

औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत और तीर्थंकरका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है ।

[विशेषार्थ—औदारिक शरीरको धारण करनेवाले एकेन्द्रियके औदारिक अंगोपांग नहीं पाया जाता है । इस कारण औदारिक अंगोपांगका वंध यहाँ विकल्प रूपसे कहा गया है ।]

छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । अथवा इन [६] २, २ का भी अवंधक है ।

§१३५. वैक्रियिक शरीरका वंध करनेवाला—पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ और निर्माणका नियमसे वंधक है ।

[विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अंगोपांगका नियमसे वंध होता है । इस कारण यहाँ औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांगके समान विकल्प नहीं है ।]

नरकगति, देवगतिका स्यात् वंधक है । दोमेंसे एकका वंधक है, अवंधक नहीं है ।

समचतुरस्र संस्थान, तथा हुंडक संस्थानमें इसी प्रकार जानना चाहिए अर्थात् इनमें अन्यतरका वंधक है, अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरधारी देवोंमें समचतुरस्र संस्थान होता है और नारकियोंमें हुंडक संस्थान पाया जाता है । अन्य संस्थानोंका वैक्रियिक शरीरके साथ सन्निकर्ष नहीं है ।]

दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमेंसे अन्यतरका स्यात् वंधक है, अवंधक नहीं है ।

बंध० । तित्थयरं सिया बंध० । एवं वेगुच्चिय अंगो० ।

§१३६. आहारसरीरं बंधंतो णियमा बंधगो देवगदिपंचिदियजादि-तिण्णं सरीरं०। समचदु० दो अंगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० पमत्थवि० तग० ४ थिरादिछद्युगलं णिमिणं णियमा बंधगो । तित्थयरं सिया बंध० । एवं आहारंगो० बंध० ।

५ §१३७. तेजासरीरं बंधंगो (तो) चदुगदि० सिया बंध० । चदुण्णं गदीणं एककदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । पंचजादि-दोसरीर-छ मंठा-चदुआणु-तस-थावरादि-णवयुगलं गदि-भंगो । आहारदुगं परधादुस्सा-आदाउजोव-तित्थयरणं सिया बंधगो । दो अंगो० छमंथ० दो विहाय-दोस० सिया बंधगो, सिया अवंधगो । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एककदरं बंधगो । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो । एवं कम्मइय० ।

१० §१३८. वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० समचदु० बंधंतो तिरिक्ख-मणुत्त-देवगदि सिया बंध० । तिण्णं एककदरं बंधगो, ण चेव अवंधगो । दोसरीर-दोअंगो-तिणिआणु०

[विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ संहननका बंध नहीं होता है कारण देव-नार्गियोंके संहनन नहीं पाया जाता है ।]

आहारकद्विकका स्यात् बंधक है । तीर्थकरका स्यात् बंधक है ।

वैक्रियिक अंगोपांगका बंध करनेवालेके वैक्रियिक शरीरके बंधकके समान जानना चाहिए ।

§ १३६. आहारक शरीरका बंध करनेवाला—देवगति, पंचेन्द्रियजानि तथा तैजस कार्माण वैक्रियिक-इन शरीरत्रयका नियमसे बंधक है ।

[विशेषार्थ—औदारिक शरीर की बंधव्युच्छित्ति चतुर्थगुणस्थानमें हो जाती है, इस कारण सप्तमगुणस्थानमें बंधनेवाले आहारक शरीरके साथ औदारिक शरीरका सन्निकर्ष नहीं कहा है ।]

समचतुरस्र संस्थान, आहारक-वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरु-लघु, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि छह युगल तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । तीर्थकरका स्यात् बंधक है । आहारक अंगोपांगका बंध करनेवालेके भी आहारक शरीरके समान भंग है ।

§१३७. तैजस शरीरका बंध करनेवाला—४गतिका स्यात् बंधक है । चारों गतियोंमेंसे किसी एकका बंधक है, अवंधक नहीं है । ५ जाति, दो शरीर, छह संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नव युगलोंका गतिके समान भंग है, अर्थात् अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । आहारकद्विक, परधात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थकर प्रकृतिका स्यात् बंधक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति, तथा २ शरीरका स्यात् बंधक है अर्थात् कथंचित् बंधक, कथंचित् अवंधक है । इन २, ६, २, २ में से अन्यतरका बंध करनेवाला है । अथवा २, ६, २, २ का भी अवंधक है । कार्माण शरीरका बंध करनेवालेके तैजस शरीरके समान जानना चाहिए ।

१३८. वर्ण ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण तथा समचतुरस्रसंस्थानका बंध करनेवाला—तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगतिका स्यात् बंधक है । तीन गतियोंमेंसे एकका बंधक है अवंधक नहीं है । दो शरीर, दो अंगोपांग, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति तथा स्थिरादि छह युगलका

दो-विहा०-थिरादि छयुगलं गदिभंगो । पंचिदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४
णिमिणं णियमा बंधगो । आहारदुगं तित्थयरं उज्जोवं सिया बंधगो । छसंध० सिया
वं० सिया अवं० । छण्णं संघडणाणं एक्कदरं बंधगो । अथवा छण्णं पि अवंधगो ।
एवं पसत्थवि० सुभग-सुस्सर-आदे० ।

§१३९. णग्गोद-सरीरं० (सठाणं) बंधंतो तिरिक्ख-मणुसगदि सिया बंधगो सिया ५
अवंधगो । दोण्णं गदीणं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं गदिभंगो छसंध० दो
आणु० दो विहाय० थिरादिछयुगलं । पंचि० तिण्णि-सरीरं ओरालिय-अंगो० वण्ण०
४ अगु० ४ तस० ४ णिमिणं णियमा बंधगो । उज्जोवं सिया वं० । एवं सादि०
खुज्ज० वामणसं० । हुंडसठाणं बंधंतो तिण्णं गदिणामाणं सिया [बंधगो] । एक्क-
दरं पि बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं पंचजादि दो-सरीर तिण्णि-आणु० तसा- १०
दिणवयुगलं तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं णियमा वं० । दो-अंगो० छसंध०
दो विहाय० दो सरं सिया वं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध० । अथवा

गतिके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् एकतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । पंचेन्द्रिय
जाति, तैजस-कामाण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बंधक है ।
आहारकद्विक तीर्थकर तथा उद्योतका स्यात् बंधक है । छह संहननका स्यात् बंधक, स्यात्
अवंधक है । छहमें से किसी एकका बंधक है अथवा छहोंका अवंधक भी है ।

[विशेषार्थ—संहननका बंध तो चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और समचतुरस्रसंस्थान
का बंध अपूर्वकरण तक होता है । अतः यहाँ ६ संहननका अवंधक भी कहा है ।]

प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर तथा आदेयका भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

§१३९. न्यग्रोध परिमंडल संस्थानका बंध करनेवाला—तिर्यचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बंधक
है, स्यात् अवंधक है । दो गतियोंमेंसे अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—देवगतिमें समचतुरस्रसंस्थान होता है और नरकगतिमें हुंडकसंस्थान
पाया जाता है । इस कारण यहाँ उक्त दोनों गतियोंका वर्णन नहीं किया गया है ।]

छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें गतिके समान पूर्वोक्त
भंग है । पंचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा
निर्माणका नियमसे बंधक है । उद्योतका स्यात् बंधक है ।

स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान. वामनसंस्थानके बंध करनेवालेमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

हुंडकसंस्थानका बंध करनेवाला—नरक-मनुष्य-तिर्यच गतियोंका स्यात् [बंधक है ।]

अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—हुंडकसंस्थान देवगतिमें न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया है ।]

५ जाति, २ शरीर. ३ आनुपूर्वी (देवानुपूर्वी विना) त्रसादि नव युगल, तैजस-कामाण शरीर,
वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । दो अंगोपांग, छह संहनन, दो
विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बंधक है । इन २, ६, २, २ में से किसी एकका बंधक है ।

दोणं छणं दोणं दोणं पि अवंधगो । परघादुस्ता० आदाउज्जो० सिया वं०
सिया अवंधगो । एवं हुंडभंगो दूभग-अणादे० । ओरालिय० अंगोवंगं वंधंतो दो-नादि
सिया वं० सिया अवं० । दोणं गदीणं एककदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं
चदुजादि० छस्संठा० छसंध० दो आणु० पज्जापज्जत्त० थिरादिपंचयुगलाणं ।
५ ओरालिय-त्तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० तस-वादरपत्तय० णिमि० णियमा वं० ।
परघादुस्ता० उज्जो० तित्थयरं सिया वंधगो । दो विहा० दो सरं सिया वंधगो ।
दोणं दोणं एककदरं वंधगो । अथवा दोणं दोणं पि अवंधगो ।

§१४०. वज्जरिसभं वंधंतो दो-नादि सिया वं०, सिया अवंधगो । दोणं गदीणं
एककदरं वंधगो । ण चेव अवं० । एवं छ-संठा० दो आणु० दो-विहा० थिरादिछयुग-
१० लाणं । पंचिाद० तिण्णि-सरीर-ओरालि० अंगो० वण्ण० ४ अगु० तस० ४ णिम०
णियमा वंधगो । उज्जोवं तित्थयरं सिया वंधगो । एवं चदु-संधड० । णवरि तित्थयरवज्जं ।
असंधत्तं वंधंतो दो-नादि सिया वंधगो । दोणं गदीणं एककदरं वंधगो । ण चेव अवं० ।
अथवा २, ६, २, २ का भी अवंधक है । परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् वंधक,
स्यात् अवंधक है ।

दुभग तथा अनादेयक वंध करनेवालेमें हुंडक संस्थानके समान भंग है ।

आदारक-अगापागका वंध करनेवाला—दो गति (मनुष्य-तिर्य्यचगति) का स्यात्
बंधक है, स्यात् अवंधक है । दाम स एकका वंधक है । अवंधक नहीं है । चार जाति,
६ संस्थान, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, पयाप्तक, अपयाप्तक, स्थिरादि पंचयुगलमें इसी प्रकार
जानना चाहिए । आदारक-तजस-कामा-शरार, वण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर,
प्रत्यक तथा निर्माणका नियमसे वंधक है । परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थकरका स्यात् वंधक
है । दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् वंधक है । दो दोमें से किसी एकका वंधक है । अथवा
दो दोका भी अवंधक है ।

§१३९. वज्जवृषभसंहननका वंध करनेवाला—तिर्य्यचगति, मनुष्यगतिका स्यात् वंधक है, स्यात्
अवंधक है । दो गतियोंमेंसे अन्यतरका वंधक है । अवंधक नहीं है । इस प्रकार छह संस्थान, दो
आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर,
औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे वंधक है । उद्योत,
तीर्थकरका स्यात् वंधक है ।

आदि तथा अंतके संहननको छोड़कर शेष ४ संहननके वंध करनेवालेमें यहाँ यही
क्रम है । विशेष यह है कि यहाँ तीर्थकर प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए ।

[विशेषार्थ—यहाँ तीर्थकर प्रकृतिका सन्निकर्ष न बतानेसे ज्ञात होता है कि संहनन
चतुष्टयके साथमें तीर्थकरका वंध नहीं होता । वज्जवृषभके साथ ही तीर्थकरका वंध हो सकता है ।
तीर्थकर प्रकृतिका वंध सम्यक्त्वोंमें होता है । अतः मिथ्यात्व सासादनमें वंधनेवाले असंप्राप्तासृपा-
टिका संहनन तथा वज्जवृषभको छोड़ शेष ४ संहनन का अभाव होगा ।]

असंप्राप्तासृपाटिकासंहननका वंध करनेवाला—दो गति (मनुष्य-तिर्य्यचगति) का स्यात्

एवं चदुजादि-छ संठा० दो-आणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादिपंचयुगलाणं । तिण्णि-
सरीर-ओरालिअंगो० वण्ण० ४ अगु० उप० तस-वादर-पत्तेयं णिमिणं णियमा बंधगो ।
परघादुस्सास० उज्जो० सिया बंधगो० । दो विहा० दो सरीरं (सरं) सिया वं० ।
दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंधगो । अथवा दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो ।

§१४१. परघादं बंधंतो चदुगदि सिया वं० सिया अवं० । चदुण्णं गदीणं एक्कदरं ५
बंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं भंगो पंच-जादि-दो-सरीरं छसंठा० चदु-आणु० तस-
थावरादि-णवयुगलाणं पज्जत्तापज्जत्तवज्जं । तेजाक्क० वण्ण० ४ अगु० उपघादुस्सास-
पज्ज० णिमिणं णियमा बंधगो । आहारदुगं आदा-उज्जो० तित्थयरं सिया वं० सिया
अवं० । दो अंगो० छसंघ० दो विहा० दो सर० सिया वं० सिया अवं० । दोण्णं
छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंधगो अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो । एवं १०
भंगो उस्सास पज्ज० थिर-सुभ-णासाणं च ।

§१४२. आदाउज्जो०(?) बंधंतो तिरिक्खग० एइदि० तिण्णि सरी० हुंडसंठा० वण्ण०
४ तिरिक्खाणु० अगु० ४ थावर-वादर-पज्जत्त-पत्तेय-दूभग-अणादे० णिमि० णियमा बंधगो ।
थिरादि-तिण्णि युग० सिया वं० । तिण्णि युगलाणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अवं० ।

बंधक है । दो गतियोंमें से अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । ४ जाति, ६ संस्थान,
२ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, स्थिरादि पंचयुगलोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।
औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर
प्रत्येक तथा निर्माणका नियम से बंधक है । परघात, उच्छ्वास तथा उद्योत का स्यात् बंधक है ।
दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बंधक है । दो दो में से अन्यतरका बंधक है । अथवा दो
दो का भी अवंधक है ।

§१४१. परघातका बंध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । इन
चारोंमें से अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । ५ जाति, औदारिक वैक्रियिक शरीर,
६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अपर्याप्तक रहित त्रस-स्थावरादि ९ युगल में भी इसी प्रकार है ।
अर्थात् इनमें से एक तर का बंधक है, अन्यका बंधक नहीं है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४,
अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, पर्याप्त तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । आहारकद्विक,
आताप, उद्योत, तीर्थकरका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन,
दो विहायोगति तथा २ स्वर का स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । इन २, ६, २, २ में से
किसी एक का बंधक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अवंधक है ।

उच्छ्वास, पर्याप्तक, स्थिर, शुभनामक नामकर्ममें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

§१४२. आताप, उद्योत (?) का बंध करनेवाला—तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय, तीन शरीर, हुंडक-
संस्थान, वर्ण ४, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, स्थावर, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, दुर्भग,
अनादेय तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । स्थिरादि तीन युगलका स्यात् बंधक है । तीन
युगलोंमें से अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है ।

§१४३. उज्जोर्वं बंधंतो तिरिक्खग० तिण्णं सरीरं वण्ण० ४ तिरिक्खगु० अगु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमिणं णियमा बंधगो । पंच-जादि-उसंठा० तसथावर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभगदूभग-आदेज्जअणादेज्ज-जस०-अजस० सिया वं० । गदेसिं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवं० । ओरालि० अंगो० सिया वं० । सिया अवं० । छसंव० दो ५ विहाय० दो सरीर (सरं) सिया वं० । छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंधगो । अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो ।

§१४४. अप्पसत्थ-विहायगदिं बंधंतो तिण्णि गदि सिया वं०, तिण्णं गदीणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अवं० । एवं भंगो चदुजादि० दो सरी० छ० संठा० दो अंगो० णिरय-तिरिक्ख-मणुसाणु० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणा- १० देज्ज-जस० अजस० । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० णियमा बंधगो ।

[विशेषार्थ—आतापका बंधक एकेन्द्रिय जातिका नियमसे बंधक कहा गया है, कारण आताप प्रकृतिका उदय सूर्यके विमानमें स्थित वादर पृथ्वीकायिक जीवोंमें ही पाया जाता है ।^१ यहाँ आतप के साथ उद्योत का पाठ अधिक प्रतीत होता है, कारण उद्योत का चरणं पृथक् रूप से हुआ है ।]

§१४३. उद्योत का बंध करनेवाला—तिर्यंचगति, ३ शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति का स्यात् बंधक है । इनमें से एकतरका बंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—उद्योत प्रकृति एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त पायी जाती है, इस कारण इसके बंधकके पंच जातियां कही हैं ।]

औदारिक अंगोपांगका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । छह संहनन, २ विहा-योगति, २ स्वर का स्यात् बंधक है । इन ६, २, २ में से एकतरका बंधक है, अथवा ६, २, २ का भी अवंधक है ।

[विशेषार्थ—एकेन्द्रियकी अपेक्षा उद्योतके बंधक को संहनन, विहायोगति तथा स्वरका अवंधक भी कहा गया है ।]

§१४४. अप्रशस्त विहायोगतिका बंध करनेवाला—नरक-तिर्यंच-मनुष्यगतिका स्यात् बंधक है । तीन गतियोंमें से एकका बंधक है अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—देवोंमें अप्रशस्तविहायोगतिका अभाव है । अतः यहाँ उसका उल्लेख नहीं है ।]

४ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, नरक-तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमें पूर्ववत् है अर्थात् स्यात् बंधक है, एकतरके बंधक हैं, अवंधक नहीं हैं । तैजस-कार्माण, वर्ण ४,

(१) “मृदुण्डपदा अग्नी आदावो होदि उण्हसद्वियपदा । आहच्चे तेरिच्छे उद्धूणगहा हु उज्जोवो ॥”—गो० क० गा० ३३ ।

छसंघ०-सिया वं० । छण्णं एक्कदरं बंधगो । अथवा छण्णं पि अवंधगो । उज्जोव०
सिया वं० सिया अवं० । एवं दुस्सर० ।

§१४५. तसं बंधंतो चदुगदि सिया वं० । चदुण्णं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवं० ।
एवं भंगो चदुजादि-दो सरी० छसंठा० दो अंगो० चदु-आणुपु० पज्जत्तापज्ज०
थिराथिर-सुभासुभ-सुभगदूभग-आदेज्ज-अणादेज्ज-जस० अजस० । आहारदुगं परघादु० ५
उज्जोवं तित्थयरं सिया वं०, सिया अवंधगो । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० वादर-
पत्तेय-णिमिणं णियमा बंधगो । छसंघ० दो विहाय० दो सरं सिया बंधगो । छण्णं दोण्णं
दोण्णं पि एक्कदरं बंधगो । अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अवं० ।

§१४६. वादरणामं बंधतो चदुगदि सिया वं०, सिया अवं० । चदुण्णं गदीणं
एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं गदिभंगो पंचजादि-दो सरी० छसंठा० चदु- १०
आणुपु० तसादिणवयुगलं (लाणं) । आहारदु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० तित्थयरं
सिया वं० सिया अवं० । दोण्णं अंगो० छ संघ० दो विहाय० दो सरीर (सरं) सिया
बंधगो० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बंधगो । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं
दोण्णं पि अवंधगो । सेसं णियमा बंधगो । एवं पत्तेयसरी० ।

अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बंधक है, ६ संहननका स्यात् बंधक है, ६ में से किसी एकका बंधक है, अथवा ६ का भी अवंधक है ।

[विशेष—यहां नरकगति की अपेक्षा संहनन का अवंधकत्व कहा गया है ।]

उद्योत का स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है ।

दुस्वर में ऐसा ही वर्णन जानना चाहिए ।

§१४५ त्रसका बंध करनेवाला—चार गतिका स्यात् बंधक है, ४ में से अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । ४ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशः-कीर्तिमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, वादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बंधक है । ६ संहनन, दो विहायोगति, २ स्वर का स्यात् बंधक है । इन ६, २, २ में से एकतरका बंधक है । अथवा ६, २, २ का भी अवंधक है ।

§१४६. वादर नामकर्मका बंध करने वाला—४ गतिका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । चार गतियोंमें से एकतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । ५ जाति, दो शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि नवयुगलमें गतिके समान भंग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकरका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बंधक है । २, ६, २, २ में से किसी एकका बंधक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अवंधक है । शेष प्रकृतियोंका भी नियमसे बंधक है ।

प्रत्येक शरीरके बंध करनेवालेमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१४७. सुहृमं बंधंतो तिरिक्खगदि- गइंदियजादि-तिणिण सरीर-हुंडसं० वण्ण० ४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० थावर-दुभग-अणादेज्ज-अज्जस-णिमिणं णियमा बंधगो । पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय० साधारण-थिराथिर-गुभासुभ० सिया बंधगो । एदेसिं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवं० । परघादुस्सा० सिया वं० सिया अवं० । एवं साधारणं० । ५ पज्जत्तं बंधंतो दो गदि सिया वं० । दोण्णं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवं० । तिणिण सरीर-हुंडसंठा० वण्ण० ४ अगु० उप० अथिर-अगुभ-दुभग-अणादेज्ज० अजस० णिमिणं णियमा बंधगो । ओरालि० अंगो० असंपत्तसेव० सिया वं० । पंचजादि-दो-आणुपु० तसथावरादि-तिणिण युग० सिया बंध० । एदेसिं एक्कदरं बंधगो ण चेव अवंध० ।

§१४८. अथिरं बंधंतो चदुगदि-सिया बंधगो । चउण्णं गदीणं एक्कदरं बंधगो । १० ण चेव अवं० । एवं पंचजादि दो सरीर० छसंठा० चत्तारि आणुपु० तस-थावरादि-अहयुग० । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं णियमा बंधगो । दो अंगो०

§१४७. सूक्ष्मका बंध करनेवाला—तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुंडक संस्थान, वर्ण ४, तिर्यचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बंधक है ।

[विशेष—सूक्ष्म-नामक कर्मका सन्निकर्ष एकेन्द्रिय जीवके साथ ही पाया जाता है, अत एव यहां एकेन्द्रिय जातिका ही ग्रहण किया गया है ।]

पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभका स्यात् बंधक है । इनमेंसे एकतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । परघात, उच्छ्वासका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है ।

साधारणके बंध करनेवालेमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

पर्याप्तका बंध करनेवाला—दो गति (देव-नरकगति) का स्यात् बंधक है । दो मेंसे एकतरका बंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—पर्याप्तक प्रकृतिके बंधकके साथ देव-नरकगतिके बंधका सन्निकर्ष कहा है । यद्यपि चारों गतियोंमें ही पर्याप्तक जीव पाये जाते हैं ; किन्तु यहां वर्णन करनेकी अपेक्षा यह प्रतीत होता है कि देव तथा नारकी नियमसे पर्याप्तक ही होते हैं । तिर्यचमनुष्यगतिमें ऐसा नियम नहीं है । उनमें कोई पर्याप्तक होते हैं तथा कोई अपर्याप्तक भी होते हैं ।]

तीन शरीर, हुंडकसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । औदारिक अंगोपांग, असंप्राप्तास्पष्टिका संहननका स्यात् बंधक है । ५ जाति, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि तीन युगलका स्यात् बंधक है । इनमेंसे एकतरका बंधक है, अवंधक नहीं है ।

§१४८. अस्थिरका बंध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बंधक है । चार गतियोंमेंसे एकतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । इसी प्रकार ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ८ युगलों में जानना चाहिए । तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात,

छसंघ० दो विहाय० दो सरं सिया वंधगो । दोणं छणं दोणं दोणं पि एककदरं वंधगो । अथवा दोणं छणं दोणं दोणं पि अवंधगो । परघादुस्सा आदाउज्जो० तित्थयरं सिया वं०, सिया अवं० । एवं असुभ-अज्जसगित्ति ।

§१४९. थिरं वंधंतो तिण्णि-गदि सिया वंधगो । तिण्णि गदीणं एककदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं पंच-जादि दो सरीरं-छसंठाणं तिण्णि-आणुपु० तसथाव- ५ रादि-दोण्णि युगलं सुभादि-चदुयुगलं सिया वं० । एदेसिं एककदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । आहारदुगं आदाउज्जो० तित्थयरं सिया वं०, सिया अवं० । दो-अंगो० छसंघ० दो विहाय० दो सरं सिया वंधगो । दोणं छणं दोणं दोणं पि एककदरं वंधगो । अथवा दोणं छणं दोणं दोणं पि अवंधगो । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ पज्जत्त-णिमिणं णियमा वंधगो । एवं सुभ-जसगित्ति । णवरि जसगित्तीए १० सुहुम-साधारणं वज्जं ।

§१५०. तित्थयरं वंधंतो दो-गदि सिया वंधगो । दोणं गदीणं एकदरं वंधगो । ण चेव अवं० । एवं दो-सरीरं० दो अंगोवं० दो आणु० थिरादि-तिण्णि यु० एकदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । पंचि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि०

निर्माणका नियमसे वंधक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् वंधक है । २, ६, २, २ में से एकतरका वंधक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अवंधक है । परवात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थकर प्रकृतिका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है ।

अशुभ तथा अयशःकीर्तिके वंध करनेवालेमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१४९. स्थिरका वंध करनेवाला—३ गति (नरकको छोड़कर) का स्यात् वंधक है । ३ गतिमें से एकतरका वंधक है । अवंधक नहीं है । ५ जाति, आहारिक, वेक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ३ आनुपूर्वी, व्रत-स्थावरादि दो युगल, शुभादिक चार युगलका स्यात् वंधक है । इनमेंसे एकतरका वंधक है । अवंधक नहीं है । आहारकट्टिक, आताप, उद्योत तथा तीर्थकर प्रकृतिका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् वंधक है । इन २, ६, २, २ में से एकतरका वंधक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अवंधक है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, पर्याप्तक तथा निर्माणका नियमसे वंधक हैं ।

शुभ तथा यशःकीर्तिके वंध करनेवालेमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि यशःकीर्तिके वंधकके सूक्ष्म तथा साधारण प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । अर्थात् इनका वंध इसके नहीं होगा ।

§१५०. तीर्थकर प्रकृतिका वंध करनेवाला—मनुष्य, देवगति का स्यात् वंधक है । दो गतियोंमेंसे किसी एकका वंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—तीर्थकर प्रकृतिका वंध सम्यक्त्विके ही होता है । अतः मिथ्यात्वमें वंधने-वाली नरकगति तथा सासादनमें वंधनेवाली तिर्यग्गति का वंध इसके नहीं होगा ।]

दो शरीर, २ अंगोपांग, २ आनुपूर्वी, स्थिरादि तीन युगलमेंसे एकतरका वंधक है । अवंधक नहीं है । पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, सनचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४,

तस० ४ सुभग-मुत्तर-आदे०णिमिणं णियमा बंधगो । आहारदुगं वज्रसिभसंध० सिया बंधगो ।

§१५१. उच्चागोदं बंधंतो णीचागोदस्स अवंधगो । णीचा-गोदं बंधंतो उच्चा-गोदस्स अवंधगो ।

५ §१५२. दाणंतराहं बंधंतो चदुण्णं अंतराहमाणं णियमा बंधगो । एवण्णमण्णस्स बंधगो ।

§१५३. एवं ओघमंगो मणुस० ३ पंचिदि० तस तेसिं चैव पज्जत्ता पंचमण० पंचवचि० कायजोगि-ओरालिय० इत्थि-पुग्गि-णत्तुं० कोधादि० ४ चक्खुदं० भवसिद्धि० सण्णि-आहारगित्ति । णवरि मणुस० ३ ओरालिका० इत्थि० तित्थयरं १० बंधंतो देवगादि० ४ णियमा बंधगो ।

§१५४. आदेसेण णेरहएमु-एहंदिय-विगलंदिय-संजुत्त-आहारदुगं वेगुच्चियल्लकं णिरय-देवायुगं च अपज्जत्तगं च वज्जं सेसं णेदच्चं । एवं सच्च-णेरहएमु । णवरि चउत्थी याव सत्तमा त्ति तित्थयरं वज्जं । सत्तमाए मणुसायुगं णत्थि ।

अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुत्तर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । आहारकद्विक, वज्रवृषभसंहतनका त्यात् बंधक है ।

§१५१. उच्चगोत्रका बंध करनेवाला—नीच गोत्रका अवंधक है । नीच गोत्रका बंध करनेवाला उच्चगोत्रका अवंधक है ।

[विशेष—दोनों गोत्र परस्पर प्रतिपक्षा है । अतः एक जीवके एक साथ दोनोंका बंध नहीं होता है । इस कारण नीचके बंधकके उच्च अवंध होगा अथवा उच्चके बंधकके नीचका अवंध होगा ।]

§१५२. दानान्तरायका बंध करनेवाला—लाभ, भोग, उपभोग तथा धीर्यान्तरायका नियमसे बंधक है । एकका बंध करते समय अन्य चतुष्कका नियमसे बंध होता है । अर्थात् दानान्तरायके बंध होनेपर अन्य लाभान्तरायादिका नियमसे बंध होता है ।

§१५३. मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, त्रस तथा पंचेन्द्रियपर्याप्त त्रसपर्याप्त, ५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, क्रोधादि ४ कषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, भव्यसिद्धिक, संक्षी, आहारक पर्यन्त इसी प्रकार अर्थात् ओघवत् जानना चाहिए ।

विशेष यह है कि मनुष्यत्रिक, औदारिक काययोग तथा स्त्रीवेदमें तीर्थंकरका बंध करनेवाला देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांगका नियमसे बंधक है ।

§१५४. आदेशसे—नारकियोंमें एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, आहारकद्विक, वैक्रियिकपट्टक, नरकायु-देवायु तथा अपर्याप्तकको छोड़कर शेष प्रकृतियोंको जानना चाहिए । इसी प्रकार सम्पूर्ण नारकियोंमें जानना चाहिए । विशेष, चौथीसे सातवीं पृथ्वी पर्यन्त तीर्थंकरका बंध छोड़ देना

§१५५. तिरिक्खेसु-आहारदुगं तित्थयरं वज्जं, सेसं ओघं । एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख० ३ । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु वेगुव्वियल्लक्कं च णिरयदेवायुगं वज्ज-सेसं तं चेव । एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वएइंदि० सव्वविगल्लिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्तसव्वपंचकायाणं । णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्कं णत्थि ।

§१५६. देवेषु णिरयभंगो । णवरि एइंदिय-तिगं जाणिदव्वं । एवं भवणवासिय याव सोधम्मसीसाण त्ति । णवरि भवणादि याव जोइसिया त्ति तित्थयरं णत्थि । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयोधं । आणद याव णवगेवज्जा त्ति एवं चेव । णवरि तिरिक्खायुगं तिरिक्खग० तिरिक्खणु० उज्जोवं णत्थि । अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति मिच्छत्तपगदीओ णत्थि । सेसं भाणिदव्वं ।

§१५७. ओरालियमिस्से-णिरयगदितिगं देवायुगं आहारदुगं णत्थि । सेसं ओघभंगो । वेगुव्वियका० देवगदिभंगो । एवं वेगुव्वियमि० । णवरि आयुगं

चाहिए । सातवीं पृथ्वीमें मनुष्यायुका बंध नहीं है ।^१

§१५५. तिर्यचगति में—आहारकट्टिक तथा तीर्थकरका बंध नहीं होता है । शेषका ओघवत् वर्णन है । पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यचमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—वैक्रियिकषट्क, नरकायु, देवायुको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् सन्निकर्ष जानना चाहिये । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-त्रस-इनके अपर्याप्तक तथा संपूर्ण पंच कार्योंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यगतिचतुष्क नहीं है ।

§१५६. देवगतिमें नरकगतिका भंग है । विशेष, देवोंमें एकेन्द्रिय स्थावर आतापका बंध होता है । यह बात भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिपी, सौधर्म, ईशान स्वर्गपर्यन्त है । विशेष भवनत्रिकमें तीर्थकर नहीं हैं । सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त नरकगतिके ओघ समान भंग हैं । आनतसे त्रैवेयकपर्यन्त इसी प्रकार है । विशेष-तिर्यचायु, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी तथा उद्योतका बंध नहीं होता है ।

[विशेष-आनतादि स्वर्गवासी देवोंका तिर्यच रूपसे उत्पाद नहीं होनेके कारण तिर्यचायु आदि शतार चतुष्क का बंध नहीं कहा गया है ।]

अनुदिश से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियाँ नहीं हैं, [कारण वहाँ सभी सम्यक्त्वी ही होते हैं ।] अतः शेष प्रकृतियोंको कहना चाहिए ।

§१५७. औदारिकमिश्रकाययोगमें—नरकगतित्रिक, देवायु, आहारकट्टिक नहीं है । शेष ११४ बंध योग्य प्रकृतियोंका ओघवत् वर्णन जानना चाहिए ।^२

वैक्रियिक काययोगमें—देवगतिके समान जानना चाहिए । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ आयुके बंधका अभाव है ।

(१) “धम्मे तित्थं वंधदि वंसा मेघाण पुण्णगो चेव । लट्ठोत्तिव मणुवाज...” —गो० क० गा० १०६ ।

(२) “ओराले वा मिस्से । णहि नुरणिरयायुहारणिरयदुगं ।” —गो० क० गा० ११६ ।

णत्थि । आहार० आहारमि० असंजद-पगदीओ आहारदुगं णत्थि । कम्मदुगका० आयुचदुकाणिरयदुगं च [णत्थि] सेगं ओघभंगो ।

§१५८. अवगदवेदे याओ पगदीओ वज्झन्ति ताओ पगदीओ जाणिदूण भाणि-
दव्वाओ । मदि० सुद० विभंग० अन्धव० मिच्छादि० असण्णि० निग्गिस्सोओ ।
५ आभिणि० सुद० ओधि० ओघभंगो । णवरि मिच्छच-सासण-पगदीओ णत्थि । एवं
ओधिदं० सम्मा० खड्द० । एवं चेव मणपजव-संजद० सामाद० छेदो० परिहार० ।
णवरि असंजदपगदीओ णत्थि । अकसा० केवलणा० यथासाद० केवलदंस०
सण्णियासो णत्थि ।

§१५९. सुहुमसंप० पंचणा० चदुदंस० पंचंतराङ्गाणमण्णमण्णस्स बंधदि संजदा-

आहारक-आहारकमिश्रयोगमें—असंगत सम्बन्धी प्रकृतियाँ तथा आहारकद्विकके बंध का
अभाव है । आहारककाययोगमें ६३ और आहारकमिश्र काययोगमें ६२ बंधयोग्य प्रकृतियाँ हैं ।

[विशेषार्थ—आहारकद्विकका बंध अप्रमत्त दशामें होना है और यह योग प्रमत्तसंयत
गुणस्थानमें होता है । अतः आहारकद्विकके बंधका यहाँ अभाव कहा गया है ।]

कामीणकाययोगमें—आयु ४ तथा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्विका [अभाव है ।] शेषका
ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

§१५८. अपगत वेदमें—जिन प्रकृतियोंका बंध होता है, उनको जानकर वर्णन करना
चाहिए ।

[विशेष—४ संज्वलन, ५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय, ४ दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र तथा
सातावेदनीय इन २१ प्रकृतियों का यहाँ बंध होता है ।]

मत्त्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञीका तिर्यचोंके ओघवत्
है । आभिनिबोधिक, श्रुत तथा अवधिज्ञानमें ओघवत् भंग है । विशेष—यहाँ मिथ्यात्व सम्बन्धी
१६ और सासादन सम्बन्धी २५ प्रकृतियों का अभाव है ।

इसी प्रकार अवधिदर्शन, सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्वमें जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञान,
संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष,
यहाँ असंयमगुणस्थानवाली प्रकृतियाँ नहीं हैं ।

अकपाय, केवलज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवल दर्शनमें सन्निकर्ष नहीं है ।

[विशेष—इन मार्गाणाओंमें एक सातावेदनीयका ही बंध होता है । इस कारण यहाँ
सन्निकर्षका वर्णन नहीं किया गया है । एक प्रकृति में सन्निकर्ष नहीं हो सकता है । किसका,
किसके साथ सन्निकर्ष कहा जायगा ? अतः सन्निकर्ष नहीं बताया है ।]

§१५९. सूक्ष्मसांपरायमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, (निद्रापंचक रहित) तथा ५ अंतरायों
का एकके रहते हुए शेष अन्यका बंध होता है ।

[विशेष—यद्यपि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में सातावेदनीय, उच्चगोत्र तथा यशःकीर्ति का
भी बंध होता है, किन्तु ये वेदनीय, गोत्र, तथा नामकर्मकी अकेली ही प्रकृतियाँ हैं; इस
कारण स्वस्थानसन्निकर्षकी दृष्टिसे इनका ग्रहण नहीं किया गया है ।]

संजदा संजदभंगो । णवरि आहारदुगं णत्थि । पच्चक्खाणा० ४ अत्थि । असंजदेसु ओघभंगो । णवरि आहारदुगं णत्थि ।

§१६०. एवं तिण्णि लेस्साणं । णवरि किण्ण-णील० तित्थयरं वंधंतो देवगदि० ४ णियमा वंधगो । काऊए सिया देवगदि सिया मणुसगदि । तेऊए सोधम्मभंगो । णवरि देवायु देवगदि० ४ आहारदुगं अत्थि । एवं पम्माए । णवरि एइंदियतिगं ५ णत्थि । सुक्काए णिरयगदितिगं तिरिक्खगदिसंयुतं च णत्थि । सेसं ओघभंगो ।

§१६१. वेदगे० आभिणिभंगो । एवं उवसम० । णवरि आयु णत्थि । सासणे मिच्छत्तसंयुतं तित्थयरं आहारदुगं च णत्थि । सेसं ओघभंगो । सम्मामि० उवसम-सम्मा० भंगो । णवरि आहारदुगं तित्थयरं च णत्थि ।

§१६२. अणाहार० कम्मइगभंगो ।

१०

एवं सत्थाणसण्णियासो समत्तो ।

संयतासंयतोंमें—संयतोंका भंग जानना चाहिए । विशेष, यहां आहारकद्विक नहीं है । इनमें प्रत्याख्यानावरण ४ का बंध पाया जाता है । असंयतों में—ओघवत् भंग है ।^१ विशेष आहारकद्विक नहीं है ।

§१६०. कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्या में—इसी प्रकार जानना चाहिए ।^२ विशेष—कृष्णनील लेश्या में—तीर्थकरका बंध करनेवाला नियमसे देवगति ४ का बंधक है । कापोत लेश्यामें—स्यात् देवगति, स्यात् मनुष्यगतिका बंध होता है । तेजोलेश्यामें—सौधर्म स्वर्गके समान भंग है । विशेष, देवायु, देवगति ४ तथा आहारकद्विकका बंध है ।^३ पद्मलेश्यामें—इसी प्रकार है । विशेष, यहां एकेन्द्रिय, स्थावर, आतापका बंध नहीं है । शुक्ललेश्यामें—नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु तथा तिर्यचगतिका बंध नहीं है । शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है ।

§१६१. वेदक सम्यक्त्वमें—आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है ।^४

उपशमसम्यक्त्वमें—इसी प्रकार है । विशेष, यहां आयुका बंध नहीं होता है ।

सासादन सम्यक्त्वमें—मिथ्यात्व, तीर्थकर, आहारकद्विकका बंध नहीं है । शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है । सम्यक्त्वमिथ्यात्वमें उपशमसम्यक्त्वी का भंग जानना चाहिए । विशेष, यहां आहारकद्विक तथा तीर्थकरका बंध नहीं है ।

§१६२. अनाहारक में—^५ कार्माण काययोगी के समान भंग है ।

इस प्रकार स्वस्थानसन्निकर्ष पूर्ण हुआ ।

(१) “सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु ।” —गो० क० गा० ९२ ।

(२) “अयदोचि छलेस्साओ जुह-तियलेस्सा हु देसविरदतिये । तत्तो सुक्का लेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥” —गो० जी० गा० ५३१ । (३) “मिच्छत्तसंतिमणवयं वारं णहि तेउपम्मेसु” —गो० क० गा० १२० ।

“सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमवारसं च णव अत्थि ।” —गो० क० गा० १२ । (४) “णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण ।” —गो० क० गा० १२० । (५) “कम्म्वेव अणाहारि ।” —गो० क० गा० १२१ ।

[परत्याणसणियास-परुवणा]

§१६३. परत्याणसणियासे पगदं दुविधो [णिदो] ओघेण आदंसेण य ।

§१६४. तत्थ ओघेण आभिणिबोधिय-णाणावरणं बंधंतो चदुणाणा० चदुदंसणा०
५ पंचंत० णियमा बंधगो । पंचदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदुगं० चदुआयु०
आहारदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमिणं तित्थयरं सिया बंधगो,
सिया अवंधगो । सादं सिया वं०, सिया अवं० । असादं सिया वं०, सिया अवं० ।
दोणं पगदीणं एककदरं बंधगो । ण चेव अवं० । इत्थि० सिया वं०, पुरिस० सिया
वं०, णवुंस० सिया वं० । तिण्णं वेदाणं एककदरं बंधगो । अथवा तिण्णंपि अवंधगो ।
एवं वेदभंगो हस्सरदि-अरदि-सोग-दोयुगलाणं चदुगदि० पंचजादि-दोसरीर-छसंठा०

[परस्थान सन्निकर्ष]

§१६३. यहाँ परस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है । उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं । यहाँ सजातीय तथा विजातीय एक साथमें बँधनेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपण की गयी है ।

§१६४. ओघसे-आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बंध करनेवाला-श्रुतादि ज्ञानावरण ४, दर्शनावरण ४ तथा अंतराय ५ का नियमसे बंधक है ।

[विशेष-यशःकीर्ति उच्चगोत्रका नियमसे बंध न होनेके कारण यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया है ।]

निद्रादि पांच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकट्टिक, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । साताका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । असाताका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ-दोनोंका अवंधक अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती होगा, वहां मतिज्ञानावरण नहीं है । अतः दोनोंके अवंधकका अभाव कहा है ।]

स्त्रीवेदका स्यात् बंधक है । पुरुषवेदका स्यात् बंधक है । नपुंसक वेदका स्यात् बंधक है । तीनोंमेंसे एकतरका बंधक है अथवा तीनोंका भी अवंधक है ।

[विशेषार्थ-वेदका बंध नवमे गुणस्थान पर्यन्त होता है और मतिज्ञानावरणका सूक्ष्मसांपराय तक बंध होता है । अतः मतिज्ञानावरणके बंधकके वेदका बंध हो तथा न भी हो । इससे तीनोंका अवंधक भी यहां कहा है ।]

हास्य-रति, अरति-शोक ये दो युगल, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान,

दोअंगो० छसंध० चदुआणु० दो विहाय० तस-थावरादि-णवयुगलाणं । जस० अजस०
दोगोदं सादभंगो । यथा आभिणिबोधियणा० तथा चदुणाणा० चदुदंस० पंचंतरा० ।

§१६५. णिहाणिहं वंधंतो पंचणा० अट्ठदंसणा० सोलसक० भयदु० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा वंधगो । सादं सिया वं०, असादं सिया
वं० । दोण्णं एक्कदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं वेदणीयभंगो तिण्णि वे० हस्स- ५
रदि-अरदिसोग० चदुगदिं० पंचजादि-दोसरीर-छसंठाण-चदुआणु० तसथावरादि-णव-
युगलं दोगोदाणं । मिच्छत्त-चदुआयुगं परघादुस्सा० आदाउज्जो० सिया वं०, सिया
अवं० । दो-अंगो० छसंध० दो विहाय० दोसरं सिया वं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं
पि एक्कदरं वंधगो । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो । एवं पचलापचला-
थीणगिद्धि-अणंताणुबंधि० ४ । णिहं वंधंतो पंच[णा० चदु०]दंसणा० चदुसंज० भयदु० १०
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा वंधगो । थीणगिद्धि० ३
मिच्छत्त-वारसक० चदुआयु० आहारदुगं परघादुस्सासं आदा-उज्जो० तित्थयरं सिया
बंधगो । सादं सिया वं०, असादं सिया वंधगो । दोण्णं पगदीणं एक्कदरं वं० । ण

२ अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस-स्थावरादि ९ युगलका वेदके समान
भंग है । अर्थात् इनमेंसे एकतरके बंधक हैं अथवा सबके भी अवंधक हैं । यशःकीर्ति,
अयशःकीर्ति, दो गोत्रका सातावेदनीयके समान भंग है अर्थात् अन्यतरका बंधक है, अवंधक
नहीं है । श्रुतादि ४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान
भंग जानना चाहिए ।

§१६५. निद्रा निद्राका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ८ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय,
जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बंधक
है । साताका स्यात् बंधक है । असाताका स्यात् बंधक है । दो मेंसे अन्यतरका बंधक है ।
अवंधक नहीं है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक
शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रके वेदनीयके समान भंग
है अर्थात् एकतर के बंधक हैं । अवंधक नहीं है । मिथ्यात्व, ४ जायु, परघात, उच्छ्वास,
आताप, उद्योत का स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायो-
गति, २ स्वर का स्यात् बंधक है । इन २, ६, २, २ मेंसे अन्यतरका बंधक है, अथवा २, ६,
२, २ का भी अवंधक है ।

प्रचला-प्रचला, स्थानगृद्धि तथा अन्तानुबन्दी २ के बंधक निद्रानिद्राके समान भंग है ।
निद्राका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ८ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण
शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका नियमसे बंधक है । स्थानगृद्धिक
मिथ्यात्व, १२ कषाय (४ संज्वलनको छोड़कर) ४ जायु, परघात, उच्छ्वास आताप
उद्योत तथा तीर्थकरका स्यात् बंधक है । साता वेदनीयका स्यात् बंधक है । असाता वेदनीयका
बंधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक,

चेव अवंधगो । एवं तिणिण वे० हस्सरदिदोयुग० चदुग० पंचजा० दोसररीरं छसंठाणं
चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं च । दोअंगो० छसंव० दोविहाय०
दोसरं सिया वं० । दोणं छणं दोणं दोणं एक्कदरं वंधगो । अथवा दोणं [छणं]
दोणं दोणं पि अवंधगो । एवं पचला० ।

५ §१६६. सादं वंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदु० तिणिण-आयु०
आहारदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-उज्जो० णिमिणं तित्थय० पंचंत०
सिया वं० सिया अवं० । तिणिण वे० हस्सादि-दोयुग० तिणिणगदि-पंचजादि-दोसररीरं
छसंठा० दो अंगो० छसंव० तिणिण आयु० दो विहाय० तसादिदसयुगलं दोगोदाणं
सिया वं० सिया अवं० । एदेसिं एक्कदरं वंधगो, अथवा एदेसिं अवंधगो ।

१० §१६७. असादं वंधंतो-पंचणा० छदंसणा० चतुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४
अगु० ५० णिमि० पंचंत० णियमाः वंधगो । थीणगिद्धि० ४ (३) मिच्छत्त० वारसक०
तिणिण आयु परघादुस्सा० आदाउज्जो० तित्थय० सिया वं० सिया अवं० । तिण्णं
वेदाणं सिया वं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं वंधगो । ण चेव अवं० । हस्सरदि सिया

४ गति, ५ जाति, औदारिक-वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आयुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल
तथा २ गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए । २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका
स्यात् वंधक है । इन २, ६, २, २ में से अन्यतरका वंधक है अथवा २, [६], २, २ का भी
अबंधक है । प्रचलाका वंधकरनेवालेके निद्राके समान भंग है ।

§१६६. साताका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय,
जुगुप्सा, नरकायुको छोड़कर ३ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४,
आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकर तथा ५ अंतरायोंका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है ।

[विशेष—साताका वंधक सयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है, किन्तु ज्ञानावरणादिका
बंध सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान पर्यन्त होता है अतः साताके वंधकके ज्ञानावरणादि का वंध हो,
तथा न भी हो ।]

तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ३ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग
६ संहनन, ३ आयुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल तथा दो गोत्रका स्यात् वंधक है ।
स्यात् अवंधक है । इनमेंसे किसी एकका वंधक है अथवा इनका भी अवंधक है ।

§१६७. असाताका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक विना),
४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंत-
रायोंका नियमसे वंधक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कपाय, ३ आयु, परघात, उच्छ्वास,
आताप, उद्योत, तीर्थकरका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । तीन वेदोंका स्यात् वंधक है ।
तथा इनमेंसे किसी एकका वंधक है अवंधक नहीं है ।

[विशेष—असाता प्रमत्तसंयत पर्यन्त वंधता है, तथा वेदका अनिवृत्तिकरणपर्यन्त वंध होता
है । अतः असाताके वंधकको वेदोंका अवंधक नहीं कहा है, कारण यहाँ वेदका वंध सदा होगा ।]

बंधगो । अरदिसोग सिया वं० । दोण्णं युगलाणं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं चदुगदि-पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० चदुआणु० तसादिणवयुगलं दोगोदं च । दो अंगो० छसंध० दो विहाय० दो सरीरं (सरं) सिया वं० सिया अवं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बंधगो । अथवा एदेसिं चेव अवंधगो । एवं अरदिसोग-अथिर-असुभ-अज्जसगिच्चीणं ।

५

§१६८. मिच्छत्तं बंधतो-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंधगो । सादं सिया वं० आसादं सिया वं० । दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं तिण्णं वेदाणं हस्सरदि० अरदिसो० दोयुग० चदुगदि० पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० चदुआणु० तसथावरादि-णवयुगलं दो-गोदाणं च । चदुआयु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० सिया बंधगो । १० दोण्णं अंगो० छसंध० दो विहाय० दो सरं सिया वं०, सिया अवंधगो । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं वं०, अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अवंधगो ।

हास्य, रतिका स्यात् बंधक है । अरति, शोकका स्यात् बंधक है । दो युगलोंमेंसे अन्यतर युगलका बंधक है अवंधक नहीं है । ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि ९ युगल तथा २ गोत्रका भी इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । इन २, ६, २, २ मेंसे एकतरका बंधक है, अथवा इनका भी अवंधक है ।

१ अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्तिका इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[विशेष-असाता के समान अरति शोकादिकी बंधव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होती है । इस कारण असाताके बंध करनेवालेके समान इनका भी वर्णन कहा है ।]

§१६८. मिथ्यात्वका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण-शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अंतरायका नियम से बंधक है । सातावेदनीयका स्यात् बंधक है । असाताका स्यात् बंधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका बंधक है अवंधक नहीं है ।

३ वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, दो शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए, अर्थात् इनमें से एकतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । चार आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बंधक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । इन २, ६, २, २ में से एकतरका बंधक है, अथवा २, ६, २, २ का भी अवंधक है ।

[विशेष-एकेन्द्रियके अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा स्वरका अभाव है । इससे इन प्रकृतियोंका उसकी अपेक्षा अवंधक कहा है ।]

(१) "छट्ठे अथिरं असुहं असादमज्जं च अरदि सोगं च ।"—नो क० गा० ९८ ।

§१६९. अपचक्खाण० कोधं वंधंतो-पंचणा० छदंसणा० एक्कारसकसाय-भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० णियमा वंधगो । सेंसं मिच्छत्तमंगो । णवरि श्रीणगिद्धित्तिगं मिच्छत्तं अणंताणुवं० ४ चदुआयु० परघादुस्सा० आदा-उज्जो० तित्थय० सिया वं० सिया अवं० । एवं तिण्णं कसायाणं । पच्चक्खाणावर० कोधं ५ वंधंतो-पंचणा० छदंस० सत्तणोक० (त्क०) भयदुगुं तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा वंधगो । श्रीणगिद्धि० ३ मिच्छत्तं अट्ठकसा० पघादुस्सा० चदु आयु० आदा-उज्जो० तित्थयरं सिया वं०, सिया अवं० । सेंसं मिच्छत्तमंगो । एवं तिण्णं कसायाणं । कोधसंजं० वंधंतो-पंचणा० चदुदंस० तिण्णं संज० पंचंतग० णियमा वंधगो । पंचदंस० मिच्छत्तं वारसक० भयदु० चदुआयु० आहारदुगं तेजाक० १० वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-उज्जो० णिमि० तित्थय० सिया वं० सिया अवं० । दोवेदणीयाणं सिया वंधगो । दोण्णं एक्कदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं जस० अजस० दोगोदाणं । इत्थिवेदं सिया वं०, पुरिसवेदं सिया वं० णवुंसगवेदं सिया वं० ।

§१६९. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ११ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपवात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका नियमसे बंधक है । शेष प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बंधके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, आयु ४, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभका अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान वर्णन जानना चाहिए ।

प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपवात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका नियमसे बंधक है । स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, ८ कपाय (अनंतानुबंधी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४), परघात, उच्छ्वास, ४ आयु, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । शेष प्रकृतियों के विषयमें मिथ्यात्वके बंधकके समान वर्णन जानना चाहिए । प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका बंध करनेवालेके प्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए ।

संज्वलन क्रोधका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ३ संज्वलन, ५ अंतरायोंका नियमसे बंधक है । ५ दर्शनावरण (निद्रापंचक) मिथ्यात्व, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । दो वेदनीयका स्यात् बंधक है । दो मेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रोंका इसीप्रकार जानना चाहिए । अर्थात् इनमेंसे अन्यतरके बंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—संज्वलन क्रोधका अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त बंध पाया जाता है तथा यशः-कीर्ति, उच्चगोत्रका सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान पर्यन्त बंध होता है । इस कारण इनका अवंधक नहीं कहा है ।]

तिण्णि वेदाणं एकदरं बंधगो । अथवा तिण्णापि अवंधगो । एवं हस्सरदि-अरदिसोग-
दोयुगलाणं चदुगदि-पंचजादि-दो-सरीर-छसंठा० दोअंगो० छसंध० चदुआणु० दो-
विहाय० तसादिणवयुगलाणं । एवं माणसंज० । णवरि दो संज०णियमा बंधगो । एवं
चेव मायासंज० । णवरि लोभसंज० णियमा बंधगो । लोभसंजलणं बंधंतो-पंचणा०
चदुदंस० पंचंत० णियमा बंधगो । मिच्छत्तं पण्णारसक० सिया वं० । सेसं कोध- ५
संजलणभंगो ।

§१७०. इत्थिवेदं बंधंतो पंचणा० णवदंसणा० सोलसक० भयदुगुं० पंचिं०
तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत० णियमा बंधगो । सादासादं
सिया बंधगो । दोण्णं वेदणीयाणं एकदरं बंधगो । ण चेव अवं० । एवं हस्सरदि-
अरदिसोगाणं दोयुग० तिण्णि-गदि-दो-सरीर-छसंठाणं दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहाय० १०
थिरादिछयुगलं दोगोदाणं । मिच्छत्तं तिण्णि आयु० उज्जोव० सिया वं०, सिया
अवं० । छसंध० सिया वं० । छण्णं एकदरं बंधगो । अथवा छण्णापि अवंधगो ।

§१७१. पुरिसवेदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बंधगो ।

स्त्रीवेदका स्यात् वंधक है । पुरुषवेदका स्यात् वंधक है । नपुंसकवेदका स्यात् वंधक है । तीन
में से एकतरका वंधक है । तीन का भी अवंधक है ।

[विशेष—वेदका बंध ९ वें गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है तथा संज्वलन क्रोधका बंध
९ वें गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यन्त होता है । इस कारण यहाँ वेदोंका अवंधक भी कहा है ।]

हास्य-रति, अरति-शोक इन युगलों, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग,
६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि नवयुगलका इसी प्रकार है अर्थात् एकतरका
बंधक है तथा अवंधक भी है ।

संज्वलन मानका बंध करनेवालेके संज्वलन क्रोधके समान भंग है । विशेष, संज्वलन
माया तथा लोभका नियमसे बंधक है । संज्वलन मायाका बंध करनेवालेके इसी प्रकार भंग है ।
विशेष, संज्वलन लोभका नियमसे बंधक है । संज्वलन लोभका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण,
४ दर्शनावरण, ५ अंतरायका नियमसे बंधक है । मिथ्यात्व, १५ कपायोंका स्यात् बंधक है । शेष
प्रकृतियोंका संज्वलन क्रोधके समान भंग है ।

§१७०. स्त्रीवेदका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा,
पंचेन्द्रिय, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका
नियमसे बंधक है । साता, असाताका स्यात् बंधक है । दो मेंसे अन्यतरका बंधक है । अवंधक
नहीं है । हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगतिको छोड़कर शेष ३ गति, २ शरीर, ६ संस्थान,
२ अंगोपांग, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रोंमें एकतरका बंधक है,
अवंधक नहीं है । मिथ्यात्व, मनुष्य-तिर्यच-देवायु, उद्योतका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक
है । ६ संहननका स्यात् बंधक है । इनमेंसे अन्यतमका बंधक है अथवा ६ का भी अवंधक है ।

§१७१. पुरुषवेदका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन तथा ५ अंत-
रायोंका नियमसे बंधक है ।

§१६९. अपचक्खाण० कोधं वंधंतो—पंचणा० छदंसणा० एककारसकसाय-भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० णियमा वंधगो । सेसं मिच्छत्तभंगो । णवरि थीणगिद्वितिगं मिच्छत्तं अणंताणुवं० ४ चदुआयु० परघादुस्सा० आदा-उज्जो० तित्थय० सिया वं० सिया अवं० । एवं तिण्णं कसायाणं । पच्चक्खाणावर० कोधं ५ वंधंतो—पंचणा० छदंस० सत्तणोक० (चक०) भयदुगुं० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा वंधगो । थीणगिद्वि० ३ मिच्छत्तं अट्ठकसा० परघादुस्सा० चदु आयु० आदा-उज्जो० तित्थयरं सिया वं०, सिया अवं० । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं तिण्णं कसायाणं । कोधसंजं० वंधंतो—पंचणा० चदुदंस० तिण्णं संज० पंचंतरो० णियमा वंधगो । पंचदंस० मिच्छत्तं वारसक० भयदु० चदुआयु० आहारदुगं तेजाक० १० वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-उज्जो० णिमि० तित्थय० सिया वं० सिया अवं० । दोवेदणीयाणं सिया वंधगो । दोण्णं एककदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं जस० अजस० दोगोदाणं । इत्थिवेदं सिया वं०, पुरिसवेदं सिया वं० णवुंसगवेदं सिया वं० ।

§१६९. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ११ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका नियमसे वंधक है । शेष प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके वंधके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, आयु ४, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभका अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान वर्णन जानना चाहिए ।

प्रत्याख्यानावरण क्रोधका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका नियमसे वंधक है । स्त्यानगृद्धिचिक, मिथ्यात्व, ८ कपाय (अनंतानुबंधी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४), परघात, उच्छ्वास, ४ आयु, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । शेष प्रकृतियों के विषयमें मिथ्यात्वके वंधकके समान वर्णन जानना चाहिए । प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका वंध करनेवालेके प्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए ।

संज्वलन क्रोधका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ३ संज्वलन, ५ अंतरायोंका नियमसे वंधक है । ५ दर्शनावरण (निद्रापंचक) मिथ्यात्व, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । दो वेदनीयका स्यात् वंधक है । दो मेंसे अन्यतरका वंधक है, अवंधक नहीं है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रोंका इसीप्रकार जानना चाहिए । अर्थात् इनमेंसे अन्यतरके वंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—संज्वलन क्रोधका अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त वंध पाया जाता है तथा यशः-कीर्ति, उच्चगोत्रका सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान पर्यन्त वंध होता है । इस कारण इनका अवंधक नहीं कहा है ।]

तिण्णि वेदाणं एकदरं वंधगो । अथवा तिण्णापि अवंधगो । एवं हस्सरदि-अरदिसोग-
दोयुगलाणं चदुगदि-पंचजादि-दो-सरीर-छसंठा० दोअंगो० छसंध० चदुआणु० दो-
विहाय० तसादिणवयुगलाणं । एवं माणसंज० । णवरि दो संज०णियमा वंधगो । एवं
चेव मायासंज० । णवरि लोभसंज० णियमा वंधगो । लोभसंजलणं वंधंतो-पंचणा०
चदुदंस० पंचंत० णियमा वंधगो । मिच्छत्तं पण्णारसक० सिया वं० । सेसं कोध- ५
संजलणभंगो ।

§१७०. इत्थिवेदं वंधंतो पंचणा० णवदंसणा० सोलसक० भयदुगुं० पंचिं०
तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत० णियमा वंधगो । सादासादं
सिया वंधगो । दोण्णं वेदणीयाणं एकदरं वंधगो । ण चेव अवं० । एवं हस्सरदि-
अरदिसोगाणं दोयुग० तिण्णि-गदि-दो-सरीर-छसंठाणं दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहाय० १०
थिरादिछयुगलं दोमोदाणं । मिच्छत्तं तिण्णि आयु० उज्जोव० सिया वं०, सिया
अवं० । छसंध० सिया वं० । छण्णं एकदरं वंधगो । अथवा छण्णापि अवंधगो ।

§१७१. पुरिसवेदं वंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा वंधगो ।

स्त्रीवेदका स्यात् वंधक है । पुरुषवेदका स्यात् वंधक है । नपुंसकवेदका स्यात् वंधक है । तीन
में से एकतरका वंधक है । तीन का भी अवंधक है ।

[विशेष-वेदका वंध ९ वें गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है तथा संज्वलन क्रोधका वंध
९ वें गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यन्त होता है । इस कारण यहाँ वेदोंका अवंधक भी कहा है ।]

हास्य-रति, अरति-शोक इन युगलों, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग,
६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि नवयुगलका इसी प्रकार है अर्थात् एकतरका
बंधक है तथा अवंधक भी है ।

संज्वलन मानका वंध करनेवालेके संज्वलन क्रोधके समान भंग है । विशेष, संज्वलन
माया तथा लोभका नियमसे वंधक है । संज्वलन मायाका वंध करनेवालेके इसी प्रकार भंग है ।
विशेष, संज्वलन लोभका नियमसे वंधक है । संज्वलन लोभका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण,
४ दर्शनावरण, ५ अंतरायका नियमसे वंधक है । मिथ्यात्व, १५ कपायोंका स्यात् वंधक है । शेष
प्रकृतियोंका संज्वलन क्रोधके समान भंग है ।

§१७०. स्त्रीवेदका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा,
पंचेन्द्रिय, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका
नियमसे वंधक है । साता, असाताका स्यात् वंधक है । दो मेंसे अन्यतरका वंधक है । अवंधक
नहीं है । हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगतिको छोड़कर शेष ३ गति, २ शरीर, ६ संस्थान,
२ अंगोपांग, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रोंमें एकतरका वंधक है,
अवंधक नहीं है । मिथ्यात्व, मनुष्य-तिर्यंच-देवायु, उद्योतका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक
है । ६ संहननका स्यात् वंधक है । इनमेंसे अन्यतमका वंधक है अथवा ६ का भी अवंधक है ।

§१७१. पुरुषवेदका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन तथा ५ अंत-
रायोंका नियमसे वंधक है ।

पंचदंस० मिच्छत्तं वारसक० भयदु० तिण्णि आयु० पंचिदिं-आहारदु० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० ४ उज्जोव-त्तस० ४ णिमि० तित्थय० सिया बंधगो । सिया अवंधगो ।
सादं सिया वं० । असादं सिया अवंधगो (बंधगो) । दोण्णं वेदणीयाणं एककदरं
बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं जस० अजस० दोगोदाणं । हस्सरदि (रदि) सिया
५ वं० । अरदिसो० सिया बंध० । दोण्णं युगलाणं एककदरं बंधगो । अथवा दोण्णं पि
अवंधगो । एवं तिण्णिगदि-दोसरीर-छसंठाणं दोअंगो० छसंध० तिण्णि आणु० दोविहा०
थिरादिपंचयु० ।

§१७२. णवुंसं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंधगो । सादं सिया वं० । असादं
१० सिया वं० । दोण्णं एककदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं हस्सरदि० अरदि-
सोगाणं दोयुग० तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-छसंठाणं तिण्णि आणु० तसयवरादि-
णवयुगलाणं दोगोदाणं । तिण्णिआणु० (आयु०) परघादुस्सा० आदाउज्जो० सिया

[विशेष—पुरुषवेदका बंध नवमे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है और ज्ञाना-
वरणादिका इसके आगे तक बंध होता है अतः पुरुषवेदके बंधकको ज्ञानावरणादि का नियमसे
बंधक कहा है ।]

५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकायु चिना ३ आयु, पंचेन्द्रिय,
आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उद्योत, त्रस ४, निर्माण तथा
तीर्थंकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । साताका स्यात् बंधक है । असाताका स्यात्
बंधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा
दो गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है । हास्य, रतिका स्यात् बंधक है । अरति, शोकका स्यात् बंधक
है । दो युगलोंमेंसे अन्यतरका बंधक है, अथवा दोनों युगलोंका भी अवंधक है । नरकगतिको
छोड़ शेष ३ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति,
स्थिरादि पंच युगलका इसी प्रकार है अर्थात् इनमेंसे एकतरका बंधक है अथवा सबका भी
अवंधक है ।

§१७२. नपुंसकवेदका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय,
भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अंतरायोंका
नियमसे बंधक है ।

[विशेष—नपुंसकवेदका बंध मिथ्यात्व गुणस्थान में होता है इस कारण यहां
मिथ्यात्वका भी नियमसे बंध कहा है ।]

साताका स्यात् बंधक है । असाताका स्यात् बंधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका बंधक है ।
अवंधक नहीं है । हास्यरति, अरतिशोक ये दो युगल, देवगतिको छोड़कर ३ गति, ५ जाति,
२ शरीर, ६ संस्थान, ३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रोंका इसी प्रकार भंग है ।
देवायुको छोड़कर शेष ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बंधक है । स्यात्

० सिया अवं० । दोअंगो० छसंध० दोविहाय० दोसर० सिया वं० सिया अवं० ।
दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं वंधगो । अथवा एदेसिं अवंधगो ।

§१७३. हस्सं वंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसज० रदिभयदु० पंचंत० णियमा
बंधगो । पंचदंस० मिच्छत्त-वारसक० तिण्णिआयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु०
४ आदाउज्जो० तित्थय० सिया वं०, सिया अवंधगो । सादं सिया वं०, असादं ५
सिया वं० । दोण्णं एक्कदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं तिण्णि वेद० जस० अजस०
दोगोदाणं । तिण्णिगदि सिया वं०, सिया अवं० । तिण्णं एक्कदरं वं० अथवा अवंधगो ।
एवं गदिभंगो पंचजादि-दोसररीर-छसंठा० दोअंगो० छसंध० तिण्णि आणु० दो
विहा० तसादिणवयुग० । एवं रदीए० ।

§१७४. भयं वंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसज० दुगुं० पंचंत० णियमा वंधगो । १०
पंचदं० मिच्छत्त-वारसक० चदुआयु० आहारदुगं तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-
उज्जो० णिमि० तित्थय० सिया वं० सिया अवं० । सादं सिया वं० । असादं सिया
वं० । दोण्णं एक्कदरं वंधगो, ण चेव अवंधगो । एवं तिण्णिवेद-जस-अजस-दोगोदं ।

अबंधक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक
है । २, ६, २, २ मेंसे अन्यतरका बंधक है अथवा २, ६, २, २ का अवंधक है ।

§१७३. हास्यका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, रति, भय,
जुगुप्सा, ५ अंतरायका नियमसे बंधक है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कपाय, नरकायुको
छोड़कर तीन आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत तथा
तीर्थकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । साता वेदनीयका स्यात् बंधक है, असाता
वेदनीयका स्यात् बंधक है, दो मेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । ३ वेद, यशःकीर्ति,
अयशःकीर्ति और दो गोत्रोंमें वेदनीयके समान भंग है । ३ गति (नरक विना) का स्यात्
बंधक है, स्यात् अवंधक है । तीनमेंसे अन्यतमका बंधक है अथवा तीनोंका भी अवंधक है ।

[विशेष—अपूर्वकरण के अंतिम भाग तक हास्यका बंध होता है किन्तु गतिका बंध
अपूर्वकरण के छठवें भाग पर्यन्त होता है । इस कारण हास्यके बंधकको गतित्रयका अवंधक भी
कहा है ।]

५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, प्रसादि
९ युगलका गतिके समान भंग है अर्थात् एकतर के बंधक हैं अथवा सबके भी अवंधक हैं ।

रतिका बंध करनेवालेके हास्यके समान भंग है ।

§१७४. भयका बंध करनेवालेके—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, जुगुप्सा, ५
अंतरायका नियम से बंधक है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कपाय, ४ आयु, आहारकद्विक,
तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थकरका स्यात् बंधक
है, स्यात् अवंधक है । साताका स्यात् बंधक है, असाताका स्यात् बंधक है । दोनों में से
अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा गोत्रोंका

चदुगदि सिया बंधगो । चदुण्णं गदीणं एकदरं बंधगो । अथवा चदुण्णं पि अवंधगो । एवं गदिभंगो पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० दोअंगो-छसंध० चदुआणु० दोविहा० तसादि-णवयुगलं । एवं दुगुच्छाए ।

५ §१७५. णिरयायुं बंधंतो पंचणा० णवदंस० असादावे० मिच्छ० सोलसक० णवुंसक० अरदिसोगभयदु० णिरयगदि- पंचि० वेगुच्चिय० तेजाक० हुंडसंठा० वेगु-
व्वि० अंगो० वण्ण० ४ णिरयाणु० अगु० ४ अप्पसत्थ० तस० ४ अधिरादिछक्कं
णिमिणं णीचागोदं पंचंत० णियमा बंधगो ।

१० §१७६. तिरिक्खायुं बंधंतो-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदु० तिरिक्ख-
गदि-तिणिसरीर-वण्ण० ४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० णिमिण-णीचागो० पंचंत०
णियमा बंधगो । सादं सिया वं०, असादं सिया वं० । दोण्णं एकदरं बंधगो । णचेव
अबंधगो । एस भंगो तिणिवेद-हस्सादिदोयुगल-पंचजा० छसंठा० तस-थावरादिणव-
युगलानं । मिच्छत्तं ओरालि० अंगो० परघादुस्सा० आदा-उज्जो० सिया वं० । छसंध०
दोविहाय० दोसरं सिया बंधगो । एदेसिं एकदरं बंधगो अथवा अवंधगो ।

वेदनीयके समान जानना चाहिए । चार गतिका स्यात् बंधक है । चार में से एकतरका बंधक है । अथवा चारोंका भी अवंधक है ।

[विशेष-गतिका बंध अपूर्वकरणके छठवें भाग पर्यन्त होता है तथा भयका अपूर्वकरणके अंतिम भाग तक बंध होता है । इस कारण भयके बंधकको गति चतुष्टयका भी अवंधक कहा है ।]

५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि ९ युगलका गतिके समान भंग जानना चाहिए । जुगुप्साका बंध करनेवालेके भय के समान भंग जानना चाहिए ।

§१७५. नरकायुका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कपाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुंडकसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिपट्क, निर्माण, नीचगोत्र, तथा ५ अंतरायों का नियमसे बंधक है ।

§१७६. तिर्यचायुका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यचगति, ३ शरीर (औदारिक-तैजस-कार्माण) वर्ण ४, तिर्यचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अंतरायका नियमसे बंधक है । सातावेदनीयका स्यात् बंधक है । असाताका स्यात् बंधक है । दो में से अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल में वेदनीय के समान जानना चाहिए । अर्थात् एकतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । मिथ्यात्व, औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बंधक है । ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बंधक है । इनमेंसे एकतरका बंधक है, अथवा किसीका भी बंधक नहीं है ।

§१७७. मणुसायुगं बंधंतो पंचणा० छदंसण० वारसक० भय-दुगुंछा-मणुसग० पंचिदि० तिणिसरीर० ओरालि० अंगो० वण्ण० ४ मणुसाणु० अगु० उप० तस-वादर-पत्तेय-णिमिणं पंचंत० णियमा बंधगो । थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु० ४ परघादुस्सा० तित्थय० सिया बंधगो, सिया अवंधगो । सादं सिया वं० । असादं सिया वं० । दोण्णं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं तिणिवेद० हस्सादि-दो ५ युग० छसंठा० छसंध० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादि-पंचयुग० दोगोदाणं । दोविहाय० दोसरं सिया बंधगो । दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंधगो । अथवा दोण्णं दोण्णंपि अवंधगो ।

§१७८. देवायुगं बंधंतो पंचणा० छदंसणा० सादावे० चदुसज० हस्सरदि-भयदुगु० देवगदि० पंचिदि० तिणिसरीर-समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ थिरादिछक्कं णिमि० उच्चागो० पंचंत० णियमा १० बंधगो । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-वारसक० आहारदु० तित्थय० सिया बंधगो । इत्थि० सिया वं० । पुरिस० सिया वं० । दोण्णं वेदाणं एक्कदरं बंधगो । णचेव अवंधगो ।

§१७९. णिरयगदिं बंधंतो णिरयायुभंगो । णवरि णिरयायुं सिया बंधदि ।

§१७७. मनुष्यायु का बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बंधक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, परघात, उच्छ्वास, तीर्थकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । सातावेदनीयका स्यात् बंधक है । असाताका स्यात् बंधक है । दोनों में से अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । ३ वेद, हास्यादि दो युगल, ६ संस्थान, ६ संहनन, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिरादि पांच युगल तथा २ गोत्रोंका इसीप्रकार वर्णन है । अर्थात् एकतरके बंधक हैं । अवंधक नहीं है । दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बंधक है । दो, दो में से अन्यतर का बंधक है । अथवा २, २ का भी अवंधक है ।

§१७८. देवायुका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, ४ संज्वलन, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर (वैक्रियिक-तैजस-कार्माण), समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादिषट्क, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अंतरायका नियमसे बंधक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, वारह कपाय, आहारकट्टिक, तीर्थकरका स्यात् बंधक है । स्त्रीवेदका स्यात् बंधक है । पुरुषवेदका स्यात् बंधक है । दो वेदोंमेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है ।

§१७९. नरकागतिका बंध करनेवालेके नरकायु के समान भंग जानना चाहिए । विशेष नरकायुका स्यात् बंध करता है ।

[विशेष—नरकायु के बंधकके नियमसे नरकागतिका बंध होता है, किन्तु नरकागतिके बंधकके नरकायुके बंधका ऐसा कोई नियम नहीं है । नरकायुका बंध हो अथवा बंध न भी हो । गति बंध तो सदा होता रहता है, किन्तु आयुका बंध तो सदा नहीं होता है ।]

एवं णिरयाणुपुब्बि । तिरिक्खगदि तिरिक्खायुभंगो । णवरि तिरिक्खायुं सिया बंधदि । एवं तिरिक्खाणु० । मणुसगदि मणुसायुभंगो । णवरि मणुसायुं सिया बंधदि । एवं मणुसाणुपु० । देवगदि बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० उच्चागो० पंचंत० णियमा बंधगो । सादं सिया वं० । असादं सिया वं० । दोण्णं वेदणीयं एक्कदरं ५ बंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं हस्सरदि-अरदिसोगाणं दोण्णं युगलाणं । देवायु सिया वं०, सिया अवंधगो । हेट्ठा उवरि देवायुभंगो । णामं सत्थाणभंगो । एवं देवाणु० ।

§१८०. एइंदियं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० णवुंस० भयदुगुं० णीचागो० पंचंत० णियमा बंधगो । सादासादं चदुणोकसाय० तिरिक्खगदिभंगो । तिरिक्खायुं० सिया वं० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं आदाव-थावराणं । विगलंदिय- १० सुहुम-अपज्ज० साधारणाणं हेट्ठा उवरि एइंदियभंगो । णामं (माणं) अपप्पणो

नरकानुपूर्वी का बंध करनेवाले के नरकगतिके समान भंग जानना चाहिए ।

तिर्यग्गतिका बंध करनेवालेके तिर्य्चायु के समान भंग जानना चाहिए । विशेष, तिर्य्चायुका स्यात् बंधक है । तिर्य्चानुपूर्वी में भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[विशेष—तिर्य्चायुके बंधकके नियमसे तिर्यग्गतिका बंध होता है, किन्तु तिर्यग्गतिके बंधकके तिर्य्चायुके बंधनेका कोई निश्चित नियम नहीं है । ऐसा ही मनुष्यगतिके भी है ।]

मनुष्यगतिका बंध करनेवालेके मनुष्यायुके समान भंग है । विशेष, मनुष्यायुका स्यात् बंधक है । मनुष्यानुपूर्वी में भी इसी प्रकार है ।

देवगतिका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बंधक है । साताका स्यात् बंधक है । असाताका स्यात् बंधक है । दो वेदनीयमेंसे अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । हास्य-रति, अरति-शोक इन दो युगलोंमें से अन्यतर युगलका बंधक है । अवंधक नहीं है । देवायुका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । अधस्तन उपरितन बंधनेवाली प्रकृतियोंमें देवायुका भंग जानना चाहिए । नाम कर्मकी प्रकृतियोंमें स्वस्थान-सन्निकर्षके समान भंग है ।

[विशेषार्थ—देवायुके बंधकके तो देवगतिके बंध-सन्निकर्षका नियम है; किन्तु देवगतिके बंधकके साथ देवायुके बंधका ऐसा नियम नहीं है । दूसरी बात यह है कि देवायुका बंध अप्रमत्त संयत पर्यन्त है, जबकि देवगतिका अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त बंध होता है । इस कारण देवगतिके बंधकके देवायुका अवंध भी कहा है ।]

देवानुपूर्वीमें देवगतिके समान भंग जानना चाहिए ।

§१८० एकेन्द्रियका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र, ५ अंतरायका नियमसे बंधक है । साता, असाता, ४ नोकपायमें तिर्यग्गतिके समान भंग है । तिर्य्चायुका स्यात् बंधक है । नाम कर्मकी प्रकृतिके बंधके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग जानना चाहिए । आताप तथा स्थावरके बंधकके इसी प्रकार भंग है । विकलेन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणमें—अधस्तन, उपरितन बंधनेवाली

सत्थाणभंगो कादब्बो । पंचिंदियं वंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० पंचंत०
णियमा वंधगो । पंचदंस० मिच्छत्त-वारसक० चदुआयु० सिया वंधगो । सिया अवं० ।
दोवेद० सत्तणोक० दोगोदाणं सिया वं०, सिया अवंधगो । एदेसिं एक्कदरं वंधगो,
ण चेव अवंधगो । णामाणं सत्थाणभंगो ।

§१८१. ओरालियं वंधंतो पंचणा० छदंस० वारसक० भयदु० पंचंत० णियमा ५
बंधगो । दोवेदणीय-तिण्णि वे० हस्सरदि-दोयुग० दोगोदाणं सिया वंधगो सिया अवं० ।
एदेसिं एक्कदरं वं० । ण चेव अवंधगो । थीणगिद्धितिगं मिच्छ० अणंताणु० ४ दो
आयु० सिया वं० । णामाणं सत्थाणभंगो । वेगुव्वियं वंधंतो हेट्ठा उवरि देवगदि-
भंगो । णवरि तिण्णि वेदं दोगोदं सिया वं०, सिया अवं० । एदेसिमेक्कदरं वंधगो ।

प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है । विशेष, नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमें स्वस्थान
सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए ।

पंचेन्द्रियका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा,
५ अंतरायका नियमसे वंधक है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयुका स्यात् वंधक
है । स्यात् अवंधक है ।

[विशेष—पंचेन्द्रिय जातिका वंध आठवें गुणस्थानतक होता है तथा निद्रादि दर्शनावरण
५ आदिका उसके नीचेतक होता है । इस कारण यहां स्यात् अवंधक कहा है ।]

दो वेदनीय, सात नोकषाय, तथा २ गोत्रका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । इनमें से
एकतरका वंधक है । अवंधक नहीं है । नाम कर्मकी प्रकृतियोंके वंधके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्ष
के समान जानना चाहिए ।

§१८१ औदारिक शरीरका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक
रहित) १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, ५ अंतरायका नियमसे वंधक है ।

[विशेष—औदारिक शरीरका वंध असंयत गुणस्थान पर्यन्त है । इससे ६ दर्शनावरण,
१२ कषायादिका नियमसे वंध कहा गया है ।]

दो वेदनीय, ३ वेद, हास्य रति, अरति शोकरूपी दो युगल, २ गोत्रका स्यात् वंधक है, स्यात्
अवंधक है । इनमें एकतरका वंधक है, अवंधक नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानु-
बंधी ४, दो आयु (मनुष्य-तिर्यचायु) का स्यात् वंधक है । नाम कर्मकी प्रकृतियोंके वंधके विषयमें
स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए ।

वैक्रियिक शरीरका वंध करनेवालेके उपरितन तथा अधस्तन वंधनेवाली प्रकृतियोंमें देवगतिके
समान भंग है । विशेष, ३ वेद, २ गोत्रका स्यात् वंधक है, स्यात् अवंधक है । इनमें से एकतर
का वंधक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—देवगतिमें पुरुषवेद, स्त्रीवेद, एवं उच्चगोत्रका ही सञ्ज्ञाव है, किन्तु यहां वैक्रियिक-
शरीरके वंधकोंके वेदत्रय, तथा गोत्रद्वयका वर्णन किया है, कारण वैक्रियिकशरीर के साथ देवगति
या नरकगतिका वंध होता है । इसी दृष्टिसे नपुंसकवेद, और नीचगोत्रका भी वंध कहा है ।]

ण चेव अवंधगो । णिरय-देवायु सिया वंधगो । णामं (णामाणं) सत्थाणभंगो । एवं वेगुव्विय-अंगो० ।

§१८२. आहारसरीरं वंधंतो पंचणा० छदंस० सादावे० चदुसंज० पुरिसवे० हस्सरदिअरदि [सोग] भयदु० उचागो० पंचंत० णियमा वंधगो० । देवायु सिया ५ वंधगो । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं आहारसरीर-अंगो० । पंचिंदिय० जादिभंगो । तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ थिरादि पंचण्णं [प] गदीणं । हेट्ठा उवरि० । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाणभंगो । णवरि समचदु० पसत्थवि० थिरादि-पंचण्णं पगदीणं णिरयायुगं णत्थि ।

§१८३. णग्गोधं वंधंतो पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदु० पंचंतरा० णियमा १० वंधगो । दोवेदणीय० सत्तणोक्क० दोगोदं सिया वं० । एदेसिमेक्कदरं वंधगो, ण चेव अवं० । मिच्छत्त-तिरिक्खमणुसायुगं सिया वं० । णामं (माणं) सत्थाणभंगो । एसभंगो सादियसंठा० कुज्जसं० वामणसं० चदुसंधण्णं । हुंडसंठाणं वंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदुगु० पंचंत० णियमा वंधगो । दोवेद०

नरकायु-देवायुका स्यात् वंधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थानसन्निकर्षवत् भंग है । वैक्रियिक अंगोपांगमें वैक्रियिक शरीरवत् भंग जानना चाहिए ।

§१८२. आहारक शरीरका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, सात्ता वेदनीय, ४ संज-लन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति [शोक] भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अंतरायका नियमसे वंधक है । देवायुका स्यात् वंधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षमें वर्णित भंग है ।

आहारकशरीर-अंगोपांगके वंध करनेवालेके आहारक शरीरवत् भंग है ।

तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, स्थिरादि ५ प्रकृतियों के वंधकों का उपरितन अधस्तन प्रकृतियों के विषय में पंचेन्द्रिय जाति के समान भंग है । नामकर्मकी प्रकृतियों का स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए । विशेष, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि ५ प्रकृतियों के वंधकोंके नरकायुका वंध नहीं है ।

§१८३. न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, ५ अंतरायकोंका नियमसे वंधक है । २ वेदनीय, ७ नोकपाय, दो गोत्रका स्यात् वंधक है । इनमेंसे अन्यतरका वंधक है । अवंधक नहीं है । मिथ्यात्व, तिर्यचायु, मनुष्यायुका स्यात् वंधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है ।

स्वातिसंस्थान, कुज्जक संस्थान, यज्रवृषभनाराच तथा असंप्राप्तास्पष्टाटिका संहननको छोड़कर शेष ४ संहनन के वंधकके इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

[विशेष—संस्थान ४ और संहनन ४ सासादन गुणस्थान पर्यन्त वंधते हैं । अतः इनका समान रूप से वर्णन किया है ।]

हुंडक संस्थानका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा तथा ५ अंतरायका नियमसे वंधक है । दो वेदनीय, ७ नोकपाय, दो गोत्रका स्यात्

सत्तणोक्क० दोगोद० सिया वं० । सिया अवं० । एदेसिमेक्कदरं वंधगो ण चेव अवंधगो । तिण्णि आयुं सिया वंधगो । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं दूभग० अणादे० । ओरालि० अंगो० वज्जरिह० ओरालियसरीरभंगो । णामाणं सत्थाणभंगो ।

§१८४. उज्जोवं वंधतो हेट्ठा उवरि तिरिक्खगदिभंगो । णामाणं सत्थाणभंगो । अप्पसत्थविहायगदि वंधतो हेट्ठा उवरि णग्गोधभंगो । णवरि णिरयायु० सिया वं० । ५ णामाणं सत्थाणभंगो । एवं दुस्सरं । जसगित्तिं वंधतो पंचणा० चदुदंसं पंचंतं० णियमा वंधगो । पंचदंसणा० मिच्छत्तं० सोलसक० भय-दुगुच्छा-तिण्णिआयु० सिया वं० । सिया अवं० । सादं सिया वं०, सिया अवं० । असादं सिया वं० [सिया अवं०] दोण्णं एक्कदरं वंधगो । ण चेव अवंधगो । एवं दोगोद० । तिण्णि वेदाणं सिया

बंधक है, स्यात् अवंधक है । इनमेंसे एकतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । नरक-मनुष्य तिर्यचायुका स्यात् बंधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग है ।

दुर्भंग, अनादेयके बंध करनेवालोंके हुंडक संस्थानवत् भंग जानना चाहिए । औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनारोच संहननके बंध करनेवालेके औदारिक शरीरके समान भंग है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए ।

§१८४. उद्योतका बंध करनेवालेके—उपरितन अधस्तन प्रकृतियोंका तिर्यचगतिके समान भंग है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए । अप्रशस्त विहायोगतिके बंध करनेवालेके उपरितन अधस्तन बंधनेवाली प्रकृतियोंका न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, नरकायुका स्यात् बंधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंमें स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए ।

[विशेषार्थ—अप्रशस्तविहायोगति तथा न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानका बंध सासादन गुणस्थान पर्यन्त होता है । इस कारण न्यग्रोधसंस्थानके समान अप्रशस्तविहायोगतिके वर्णन बताया है । इतना विशेष है कि नारकियोंमें न्यग्रोधसंस्थान नहीं है, किन्तु वहाँ दुर्गमनका सद्भाव पाया जाता है । इस कारण दुर्गमनके बंधकके नरकायुका बंध कहा है ।]

दुस्वर प्रकृतिका बंध करनेवालेके इसी प्रकार भंग है । यशःकीर्तिका बंध करनेवाला ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतरायका नियम से बंधक है ।

[विशेषार्थ—यद्यपि कपयोंका उदय सूक्ष्मसांपरायणस्थान पर्यन्त होता है, किन्तु उनका बंध अनिवृत्तिकरण पर्यन्त होता है । अतः सूक्ष्मसांपरायण पर्यन्त बंधनेवाले यशःकीर्तिके बंधकके कपायोंके बंधका नियम नहीं है । इससे वहाँ ज्ञानावरणादिके साथ कपायोंका वर्णन नहीं हुआ है ।]

दर्शनावरण ५ (निद्रापंचक), मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आहुका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । साताका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । अन्तनाका स्यात् बंधक है [स्यात् अवंधक है] दोमेंसे अन्यतरका बंधक है । अवंधक नहीं है । दो गोत्रका वेदनीयके समान भंग है । तीन वेदका स्यात् बंधक है । इनमें से अन्यतमका बंधक है ।

बंधगो । तिण्णि वेदाणं एक्कदरं बंधगो । अथवा अवंधगो । एवं चटुणोक० । णामाणं सत्थाणभंगो । तित्थयरं बंधंतो पंचणा० चटुदंस० चटुसंज० पुरिस० भयदु० उचागो० पंचंत० णियमा बंधगो । णिदा-पचला-अट्ठकसा० दो आयु सिया वं० सिया अवं० । सादं सिया वं०, असादं सिया बंधगो । दोणं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । ६ एवं चटुणोक० । णामाणं सत्थाणभंगो ।

§१८५. उचागोदं बंधंतो पचणा० चटुदंस० पंचंत० णियमा बंधगो । पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदुगुं दोआयु० पंचिदि० तिण्णिमरीर-आहार० अंगो० वण्ण० ४ [अगु० ४] तस० ४ णिमिणं तित्थयरं सिया वं० सिया अवंधगो । दो वेदणी० जस० अजस० सिया बंधगो । एदेसिं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अवंधगो । तिण्णि वेदं १० सिया वं० सिया अवं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बंधगो । अथवा अवंधगो । एस भंगो चटुणोक० दोगदि० दोसगीरं छसंठा० दो अंगो० छसंध० दो आणु० दो विहा० थिरादिपंचयुगलाणं । णीचागोदं बंधंतो थिणगिद्धिभंगो । देवायु-देवगदिदुगं उचागोदं वज्जं ।

अथवा तीनोंका भी अवंधक है । हास्य, रति, अरति, शोकका भी इसी प्रकार जानना चाहिए । नाम कर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है ।

तीर्थकरका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अंतरायोंका नियमसे बंधक है । निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण रूप कपायाष्टक, देव-मनुष्यायुका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । सातावेदनीय-का स्यात् बंधक है । असाताका स्यात् बंधक है । दोमें से अन्यतरका बंधक है अवंधक नहीं है । हास्यादि ४ नोकपायोंका वेदनीयके समान भंग है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है ।

§१८५. उच्च गोत्रका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतरायका नियमसे बंधक है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, दो आयु (मनुष्य-देवायु) पंचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर) आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, [अगुरुलघु ४] त्रस ४ निर्माण, तीर्थकरका स्यात् बंधक, स्यात् अवंधक है । दो वेदनीय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति का स्यात् बंधक है । इनमेंसे अन्यतरका बंधक है, अवंधक नहीं है । तीन वेदका स्यात् बंधक है । स्यात् अवंधक है । तीन वेदोंमेंसे अन्यतमका बंधक है अथवा तीनोंका अवंधक है । हास्यादि ४ नोकपाय, २ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी २ विहायोगति, स्थिरादि पांच युगलोंका इसी प्रकार भंग है ।

नीचगोत्रका बंध करनेवालेके स्थानगृद्धिवत् भंग है । विशेष, यहां देवायु, देवगतित्रिक तथा उच्चगोत्रको छोड़ देना चाहिए ।

§१८६. एवं ओघभंगो मणुस० ३ पंचिदिय० तस० २ पंचमण० पंचवचि० कायजोगि-ओरालियझा० लोभ० चक्खु० अचक्खु० सुक्क० भवसि० सण्णि-आहा रगत्ति । ओरालियमिस्स० सादं वंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० दो आयु० देवगादि-चदुसरीर-दो अंगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० ४ आदा-उज्जो० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया वं०, सिया अवं० । सेसाणं वेदादीणं सन्नाणं सिया ५ वं० । एदाणमेक्कदरं वंधगो । अथवा अवंधगो । एवं कम्मइय-अणाहारगेषु । णवरि आयुवज्जं । इत्थिवेदभंगो आभिणिबोधिणाणा० वंधंतो चदुणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा वंधगो । सेसाणं ओघभंगो । एवं पुरिस० णवुंस० क्रोध-माण-मायाकसायाणं । णवरि माणे तिण्णि संजलणं । मायाए दो संजलणं । सेसाणं ओघो । अवगदवेदे ओघं ।

१०

§१८६. आदेशसे—मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनी, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, ५ मनोयोग, ५ वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, लोभकपाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, शुक्लेश्या, भव्यसिद्धिक, संज्ञी, आहारकपर्यन्त ओघवत् जानना चाहिए । औदारिकमिश्रकाय-योगमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, साताका वंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्य-तिर्यचायु^१, देवगति, औदारिक-वैक्रियिक, तैजस-कर्मण शरीर, २ अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकर तथा ५ अंतरायका स्यात् वंधक है । स्यात् अवंधक है ।

[विशेष—साताका सयोगीजिन पर्यन्त वंध है । ज्ञानावरणादिका सूक्ष्मसांपराय पर्यन्त वंध है । इस कारण साताके वंधकके ज्ञानावरणादिके वंधका विकल्प रूपसे वर्णन किया गया है ।]

वेदादि शेष सर्व प्रकृतियोंका स्यात् वंधक है । इनमेंसे एकतरका वंधक है । अथवा सबका अवंधक है ।

^२कर्मण काययोग तथा अनाहारकोंमें औदारिकमिश्रकाययोगके समान जानना चाहिए । विशेष, यहां आयुओंको छोड़ देना चाहिए । स्त्री वेदमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका वंध करनेवाला—४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन तथा ५ अंतराय का नियमसे वंधक है । शेष प्रकृतियोंका ओघके समान भंग जानना चाहिए ।

पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोध, मान, माया कपायोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए । विशेष, मानमें, तीन संज्वलन और मायामें दो संज्वलन हैं । शेषका ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

अपगत वेदमें—ओघके समान भंग जानना चाहिए ।

(१) “ओराले वा मिस्से ण हि नुरणिरयायुहारणिरवदुनं ॥” —नो० क० ना १६६ ।

(२) “कम्मे उरालमिस्सं वा णाटदुगं पि णव छिदी वसदे ॥” —नो० क० ना १६९ ।

§१८७. आभिणि० सुद० ओधिणा० मणपज्ज० संजद० समाइ० छेदो० परिहार०
 सुहुमसंप० संजदासंजद० ओधिदं० सम्मादि० खद्दग० वेदग० उवसम० ओघभंगो ।
 णवरि मिच्छत्त-असंजदपगदीओ वज्जं । ओरालिय० ओरालियमिस्स० इत्थिवेदं किण्ण-
 णीलासु तित्थयरं देवगदिसंयुतं कादव्वं । पम्ममुक्क-लेस्साए इत्थिवेदं बंधंतो ओरालिय-
 ५ सरीरं धुवं बंधदि । सेसं णिरयादि याव असण्णिन्ति ओवेण अप्पप्पणो सामित्तेण च
 साधूण भाणिदव्वं ।

एवं परत्थाणसण्णियासो सम्पत्तो ।

§१८७. आभिनिबोधिक, श्रुत, अयधि, मनःपर्ययज्ञान, संयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहा-
 रविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, संयतासंयत, अवधिदर्शन, सम्यक्त्वी, क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व,
 उपशम सम्यक्त्व में ओघवत् भंग जानना चाहिए । विशेष, यहां मिथ्यात्व तथा असंयत सम्यग्धी
 प्रकृतियोंको छोड़ देना चाहिए । औदारिक, औदारिकमिश्र, स्त्रीवेद, कृष्ण और नील लेश्याओंमें—
 तीर्थंकर तथा देवगतिको संयुक्त करना चाहिए ।

[विशेष—कृष्ण नील लेश्यामें तीर्थंकर तथा देवगतिका बंध पाया जाता है । इनमें केवल
 संयतावस्थामें बंधनेवाले आहारकट्टिक का बंध नहीं होता है ।]

पद्म, शुक्ल लेश्यामें—स्त्रीवेदका बंध करनेवाला औदारिक शरीरका नियमसे बंध करता
 है । नरक गतिसे लेकर असंज्ञी पर्यन्त ओघसे अपने २ त्वामित्वको जानकर शेष प्रकृतियोंका कथन
 करना चाहिए ।

इस प्रकार परस्थानसन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

[भंगविचयाणुगम-परूवणा]

§१८८. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो दुविधो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।

§१८९. तत्थ ओघेण-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० आहारदुगं वण्ण० ४ अगुरु० ४ आदाउज्जो० णिमिणं तित्थयरं पंचत्त० अत्थि वंधगा अवंधगा च । सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । असादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । दोण्णं पगदीणं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । एवं वेदणीयभंगो सत्तणोक० चदुग० पंच- ५ जादि-दोसरीर-छसंठाणं दोअंगो० छसंध० चदुआणु० दोविहाय० तसादिदसयुगलं दोगोदाणं । दो अंगो० छसंध० दोविहा० दोसर० अत्थि वंधगा य अवंधगा य । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अत्थि वंधगा य अवंधगा य । णिरय-मणुस-देवायूणं सिया सव्वे अवंधगा, सिया अवंधगा य वंधगे (गो) य, सिया अवंधगा य वंधगा य । तिरिक्खायु अत्थि वंधगा य अवंधगा य । चदुण्णं आयुगाणं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । १० एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियकायजोगि-भवसिद्धि० आहारगत्ति० । णवरि भव-सिद्धिय-सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । असादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । दोण्णं

[भंगविचयाणुगम]

§१८८. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयाणुगमका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है ।

§१८९. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कर्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकर और ५ अन्तरायके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं ।

साताके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । असाता के अनेक बंधक और अवंधक हैं । दोनों प्रकृतियोंके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । ७ नोकपाय (भय जुगुप्साको छोड़कर), ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विद्यायोगति, त्रसादि १० युगल, २ गोत्र में वेदनीयके समान भंग है । २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विद्यायोगति, २ स्वरके नाना जीवोंकी अपेक्षा अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । अथवा २, ६, २, २ के अनेक बंधक हैं अनेक अवंधक हैं । नरक, मनुष्य, देवायुके किसी अपेक्षा सब अवंधक हैं, स्यात् अनेक अवंधक, एक बंधक है । स्यात् अनेक अवंधक तथा अनेक बंधक हैं । त्रिपंचायुके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । चारों आयुके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक, आहारकमार्गणा पर्यंत इन्हीं प्रकार ओघके नाना भंग समझना चाहिए । विशेष, भव्यसिद्धिक में—साताके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं ।

वेदणीयाणं सिया सन्वे बंधगा य । सिया बंधगा य । अवंधगा य । सिया बंधगा अवंधगा य । सेसाणं सादं अत्थि बंधगा य अवंधगा य । असादं अत्थि बंधगा य अवंधगा य । दोणं वेदणीयाणं सन्वे बंधगा । अवंधगा णत्थि ।

§१९०. आदेसेण णेरइएसु—पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदुगुं० पंचिदि०
५ ओरालिय० तेजाक० ओरालि० अंगो० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत०
सन्वे बंधगा य । अवंधगा णत्थि । थीणागिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणुवं० ४ उज्जोवं
तित्थयरं अत्थि बंधगा य अवंधगा य । सादस्स अत्थि बंधगा य अवंधगा य । असादस्स
अत्थि बंधगा य अवंधगा य । दोणं वेदणीयाणं सन्वे बंधगा । अवंधगा णत्थि । एवं
वेदणीयमंगो सत्तणोक्क० दोगदि-छसंठा० छसंध० दोआणु० दोविहा० थिरादिछ-
१० युग० दोगोदाणं । दो-आयुगाणं सिया सन्वे अवंधगा । सिया अवंधगा य बंधगो य ।
सिया अवंधगा य बंधगा य । एवं सन्व-णिरयाणं सणक्कुमारादि उवरिमदेवाणं ।

§१९१. तिरिक्खेसु णिरयमंगो । णवरि चदुआयु-दोअंगो० छसंध० दोविहा०
दोसर० ओवं । पंचिदिय-तिरिक्ख० ३ [एवं] । णवरि चदुण्हं आउगाणं सिया

असाता के अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । दोनो वेदनीयोंके कदाचित् सर्व बंधक हैं । कदाचित् अनेक बंधक हैं । स्यात् अनेक अवंधक हैं । स्यात् अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । शेष में साताके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । असाताके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । दोनों वेदनीयोंके सब बंधक हैं । अवंधक नहीं हैं ।

§१९०. आदेशकी अपेक्षा—नरक गतिमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण और ५ अंतरायके सब बंधक हैं । अवंधक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ४ अनंतानुबंधी, उद्योत और तीर्थकरके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । साताके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । असाताके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । दोनों वेदनीयोंके सब बंधक हैं । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—नरकगतिमें, ४ गुणस्थान होनेसे दोनों वेदनीयके अवंधक नहीं पाये जाते हैं ।]

७ नोकपाय, २ गति, ६ संस्थान, ६ संहनन २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल २ गोत्रों में वेदनीयका भंग जानना चाहिए । २ आयु (मनुष्य-तिर्यचायु) के स्यात् (कदाचित्) सब अवंधक हैं । कदाचित् अनेक अवंधक और एक जीवकी अपेक्षा बंधक है । स्यात् अनेक अवंधक और अनेक बंधक हैं । इसीतरह सम्पूर्ण नरकोंमें जानना चाहिए । सनत्कुमारादि ऊपरके देवोंमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

§१९१ तिर्यचोंमें—नरकके भंग समान समझना चाहिए । विशेष ४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघके समान समझना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यच और येनिमत् तिर्यचमें भी [इसी प्रकार समझना चाहिए ।] विशेषता यह है कि ४ आयुके स्यात् सब अवंधक हैं । स्यात् अनेक अवंधक हैं एक जीव

सव्वे अवंधगा । सिया अवंधगा य, वंधगो य । सिया अवंधगा य ।

§१९२. पंचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओरालियतेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सव्वे वंधगा, अवंधगा णत्थि । ओरालिय-अंगो० परघादुस्सा० आदाउज्जो० अत्थि वंधगा य, अवंधगा य । छसंध० दोविहा० दोसर० ओघभंगो । सेसं णिरयभंगो । ५

§१९३. एवं सव्व-अपज्जत्ताणं, सव्व-एइंदिय-विगलिदिय-पंचकायाणं च । णवरि एइंदिय-पंचकायाणं आयूण दूण (?) भाणिद्वं ।

§१९४. मणुस० ३ ओघं । णवरि सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । असादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । दोण्णं वेदणीयाणं सिया सव्वे वंधगा । सिया वंधगा य, अवंधगो य । सिया वंधगो य अवंधगा य । चदुण्णं आयुगाणं सिया सव्वे अवंधगा । १० सिया अवंधगा य, वंधगो य । सिया अवंधगा य वंधगा य । एवं पंचिदि० तस० २-तिण्णिमण० तिण्णिवचि० संजद-सुक्कलेस्सियाणं । णवरि योगलेस्सासु दोण्णं वेदणी-

बंधक है । स्यात् अनेक अवंधक है ।

§१९२. पंचेन्द्रिय-तिर्यच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुस्लघु, उपघात, निर्माण और ५ अंतरायके सब बंधक हैं । अवंधक नहीं है । औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतके अनेक बंधक हैं और अनेक अवंधक हैं । ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघ के समान भंग समझना चाहिए । शेषका नरकवत् भंग समझना चाहिए ।

§१९३. इस तरह सम्पूर्ण लब्ध्यपर्याप्तक, सम्पूर्ण एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचकायोंके भंग समझना चाहिए । विशेष, एकेन्द्रिय और पंचकायोंमें आयुमेंसे दो आयु कम होती हैं, अर्थात् इनमें मनुष्य और तिर्यच आयुका ही बंध होता है ।

§१९४. मनुष्यत्रिक अर्थात् सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनीमें-ओघके समान है । विशेष साताके अनेक बंधक हैं, अनेक अवंधक हैं । असाताके अनेक बंधक हैं, अनेक अवंधक हैं । दोनों वेदनीयोंके स्यात् सर्व बंधक हैं । स्यात् अनेक बंधक हैं और एक अवंधक हैं । स्यान् एक जीव बंधक और अनेक जीव अवंधक हैं । चारों आयुके स्यात् सर्व अवंधक हैं । स्यान् अनेक अवंधक हैं तथा एक जीव बंधक है । स्यात् अनेक अवंधक और अनेक बंधक हैं ।

[विशेष^१—शंका-भंगविचयमें नानाजीवोंकी प्रधानतासे कथन करनेपर एक जीवकी अपेक्षा भंग कैसे बन सकते हैं ?

समाधान—एक जीवके बिना नानाजीव नहीं बन सकते हैं । इससे भंगविचयमें नाना जीवोंकी प्रधानता रहनेपर भी एक जीवकी अपेक्षा भी भंग बन जाते हैं ।]

इसी तरह पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, ३ मनोयोग, ३ दयनयोग, संयत

(१) "णाणाजीवप्पणाए कधनेकमनुषसी ? ए एण्जीवेन विना नानाजीवादुत्तरेदो ।" —उत्तर ८ पृ० ३९१ ।

याणं सव्वे वंधगा । अवंधगा णत्थि ।

- §१९५. मणुस-अपञ्जत्ते-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० आरोलिय-त्तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया वंधगो य, सिया वंधगा य । अवंधगा णत्थि । सादं सिया अवंधगो । सिया वंधगो । सिया अवंधगा ।
- ५ सिया वंधगा । सिया अवंधगो य, वंधगो य । सिया अवंधगो य वंधगा य । सिया अवंधगा य, वंधगो य । सिया अवंधगा य वंधगा य । असादं सिया वंधगो । सिया अवंधगो । सिया वंधगा । सिया अवंधगा । सिया वंधगो य अवंधगो य । सिया वंधगो य अवंधगा य । सिया वंधगा य, अवंधगो य । सिया वंधगो य अवंधगा य । दोण्णं वेदणीयाणं सिया वंधगो । सिया वंधगा य । अवंधगा णत्थि । सादभंगो
- १० इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-दोआयु० मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० आरोलिय-अंगो० छसंध० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० तस० ४ थिरादिछक-दुस्सर उचागोदाणि (णं) । असादभंगो णवुंसकवे० अरदिसोग-तिरिक्खगदि० एवंदिय० हुंड-संठाण-तिरिक्खाणु० थावरादि० ४ अथिरादिपंच-णीचागोदाणं । तिण्णिवेद-हस्सादि-दोयुग० दोगादि० पचजादि-छसंठा० दोआणुपुव्वि-तसथावरादिणवयुगलाणं दोगोदाणं सिया वंधगो । सिया वंधगा । अवंधगा णत्थि । दोआयु-छस्संध० दोविहा० दोसर०

और शुद्ध लेश्यावालों के भी जानना चाहिए । विरोपता यह है कि योग और लेश्यामें—दोनों वेदनीयके सर्व वंधक है, अवंधक नहीं है ।

§१९५. मनुष्यलब्धपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माणशरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तराय का स्यात् एक वंधक है स्यात् अनेक वंधक हैं । अवंधक नहीं हैं । साताका स्यात् एक अवंधक है । स्यात् एक जीव वंधक है । स्यात् अनेक अवंधक हैं । स्यात् अनेक वंधक हैं । स्यात् एक अवंधक, एक वंधक है । स्यात् एक अवंधक, अनेक वंधक हैं । स्यात् अनेक अवंधक, एक वंधक है । स्यात् अनेक अवंधक अनेक वंधक है । असाताके-स्यात् एक वंधक है । स्यात् एक अवंधक है । स्यात् अनेक वंधक हैं । स्यात् अनेक अवंधक है । स्यात् एक वंधक, तथा एक अवंधक है । स्यात् एक वंधक, अनेक अवंधक है । स्यात् अनेक वंधक, एक अवंधक है । स्यात् एक वंधक अनेक अवंधक हैं । दोनों वेदनीयों का स्यात् एक वंधक है । स्यात् अनेक वंधक हैं । अवंधक नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, दो आयु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विहायोगति, ४ त्रस, स्थिरादि-पट्क, दुस्वर, उच्चगोत्र का साता के समान भंग जानना चाहिए । नपुंसकवेद अरति, शोक, तिर्यंच-गति, एकेन्द्रिय, हुंडक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, ४ स्थावरादि, अस्थिरादि पंचक, नीच गोत्र का असाता के समान भंग है । ३ वेद, हास्यादि दो युगल, २ गति, ५ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नवयुगल और २ गोत्रके स्यात् एक वंधक है । स्यात् अनेक वंधक हैं । अवंधक नहीं है । २ आयु, ६ संहनन, २ विहायोगति और २ स्वरके प्रत्येक और साधारणसे साताके

सादभंगो कादब्बो पत्तेगेण साधारणेण वि । एवं मणुस-अप्पज्जत्तभंगो वेउव्वियमिस्स०
आहारकाय० आहारमिस्स० सासण० सम्मामि० । णवरि अप्पणो धुविगाओ णादब्बाओ
भवन्ति । वेउव्वियमिस्स मिच्छत्त असादभंगो । तित्थयरं सादभंगो । आहार०
आहारमिस्स तित्थयरं सादभंगो । सासणे तिरिक्खगदि-संयुता असादभंगो । सेसाणं
सादभंगो । सम्मामि० मणुसगदि-संयुता असादभंगो । सेसाणं सादभंगो ।

§१९६. देवेषु-भवणावासिय याव ईसाणत्ति णिरयभंगो । णवरि ओरालि०
अंगो० आदा-उज्जोवं अत्थि बंधगा य अवंधगा य । छसंधड० दो विहाय० दोसर०
ओघ-भंगो । दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०
४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया सव्वे बंधगा । सिया बंधगा य अवंधगो ।
सिया बंधगा य, अवंधगा य । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त० वारसक० आहारदु० परघादुस्सा- १०
सआदाउज्जोव-तित्थयरं अत्थि बंधगा अवंधगा य । सादं अत्थि बंधगा य अवंधगा य ।
असादं अत्थि बंधगा य अवंधगा य । दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा । अवंधगा
णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुंस० अत्थि बंधगा य अवंधगा य । तिण्णं वेदाणं सिया
सव्वे बंधगा । सिया बंधगा य अवंधगो य । सिया बंधगा य अवंधगा य । एवं
समान भंग करना चाहिये ।

वैक्रियिकमिश्र, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, सासादनसम्यक्त्व, तथा सम्यक्त्व-
मिध्यात्वगुणस्थानमें लब्धपर्याप्तक मनुष्य की तरह भंग है । विशेष यहां अपनी अपनी मार्गणा
में संभवनीय ध्रुव प्रकृतियोंको जानना चाहिये । वैक्रियिक मिश्रमें—मिध्यात्वका असाताके
समान भंग होता है । तीर्थंकरका साताके समान भंग होता है । आहारक, आहारकमिश्र
में—तीर्थंकरका साताके समान भंग है । सासादनमें—तिर्यचगति मिलाकर असाताके समान
भंग है । शेषमें साताके समान भंग है । सम्यक्त्वमिध्यात्वमें—मनुष्यगति मिलाकर असाता
के समान भंग जानना चाहिए । शेषमें साताके समान भंग है ।

§१९६. देवोंमें—भवनवासियोंसे ईशान स्वर्ग पर्यन्त नरकगतिके समान भंग है । विशेष यह
है कि औदारिक अंगोपांग, आतप, उद्योतके अनेक बंधक अनेक अवंधक हैं । छह संहनन, २
विहायोगति, २ स्वरके ओघके समान भंग हैं ।

दो मन-दो वचनयोग में—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस,
कर्माण, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तराय के स्यान् सव बंधक हैं । स्यान्
अनेक बंधक, एक अवंधक है । स्यात् अनेक बंधक हैं, अनेक अवंधक हैं । स्यान्गृद्धिद्विक
मिध्यात्व, १२ कषाय, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, तथा तीर्थंकर
प्रकृतिके अनेक बंधक और अनेक अवंधक हैं । साताके अनेक बंधक, अनेक अवंधक हैं ।
असाताके अनेक बंधक अनेक अवंधक हैं । दोनों वेदनीय के सर्व बंधक हैं, अवंधक नहीं हैं ।
स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेदके अनेक बंधक, अनेक अवंधक हैं । तीनों वेदोंके स्यान् सर्व
बंधक हैं । स्यात् अनेक बंधक हैं और एक अवंधक है । स्यान् अनेक बंधक हैं और अनेक

तिणि-वेदाणं भंगो णिरयगदि-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-देवगदि-पंचजादि-दोसररीर-छसंठा०
चदु-आणुपु० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदाणं । सेसाणं अत्थि वंधगा य अवंधगा य ।
एवं आभिणि० सुद० ओधि० मणपज्जव० चक्खुदं० अचक्खुदं० ओधिदं० सणि त्ति ।

§१९७. ओरालियमिस्स-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदु०

५ तिणिसरीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया सव्वे वंधगा । सिया
बंधगा य अवंधगो य । सिया वंधगा य अवंधगा य । सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा
य । असादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे वंधगा । अवंधगा
णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुंस० अत्थि वंधगा य अवंधगा य । तिणि-वेदाणं सिया
सव्वे वंधगा । सिया वंधगा य अवंधगो य । सिया वंधगा य अवंधगा य । एवं वेदाणं

१० भंगो [हस्सादि] दोयुगल-तिणिगदि-पंचजादि ६ संठा० । दोआयु ओघं । देवगदि० ४
तित्थय० सिया सव्वे अवंधगा । सिया अवंधगा य वंधगो य । सिया अवंधगा य
बंधगा य । छसंघ० दोविहा० दोसर० ओघभंगो । एवं कम्मइगे । णवरि आयुगं
णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुंस० कोधादि० ४ सामाइ० छेदो० धुवपगदीओ मोत्तूण
सेसाणं दोण्णं मणभंगो ।

अवंधक हैं । नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान,
४ आनुपूर्व, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, २ गोत्रों के तीनों वेदोंके समान भंग हैं । शेष प्रकृतियोंके
अनेक वंधक, अनेक अवंधक हैं ।

आभिनयोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, और
अवधिदर्शन, तथा संज्ञी मार्गणा तक इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१९७. औदारिक मिश्रकाययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय,
जुगुप्सा, ३ शरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके स्यात् सब वंधक
हैं । स्यात् अनेक वंधक और एक अवंधक हैं । स्यात् अनेक वंधक और अनेक अवंधक हैं ।
साताके अनेक वंधक और अनेक अवंधक हैं । असाताके अनेक वंधक और अनेक अवंधक हैं ।
दोनों वेदनीयके सब वंधक हैं । अवंधक नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके अनेक वंधक
और अनेक अवंधक हैं । तीनों वेदोंके स्यात् सब वंधक हैं । स्यात् अनेक वंधक और एक
अवंधक है । स्यात् अनेक वंधक हैं और अनेक अवंधक हैं । हास्य-रति, अरति-शोक ये दो
युगल, ३ गति, ५ जाति, ६ संस्थानमें वेदके समान भंग हैं । दो आयु (मनुष्य तिर्यचायु) का
ओघके समान भंग है । देवगतिचतुष्क और तीर्थकरके स्यात् सर्व अवंधक हैं । स्यात् अनेक
अवंधक तथा एक वंधक है । स्यात् अनेक अवंधक है और अनेक वंधक हैं । ६ संहनन,
२ विहायोगति, २ स्वरमें ओघवत् भंग जानना चाहिए । इसी प्रकार कर्माणकाययोग में जानना
चाहिए । इतना विशेष है कि यहां आयुका वंध नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद,
क्रोधादि ४, सामायिक, छेदोपस्थापनासंयममें ध्रुव-प्रकृतियोंको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका
दो मनोयोगके समान भंग जानना चाहिए ।

§१९८. अवगदवेदे—पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगिति उच्चागो० पंचंत० सिया सव्वे अवंधगा । सिया अवंधगा य वंधगो य । सिया अवंधगा य वंधगो य । (?) सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । अकसा०—सादं अत्थि वंधगा अवंधगा य । एवं केवलणा० केवलदंस० ।

§१९९. मदि-सुद० विभंग० असंज० किण्ण-णील-कावोत-अवभव० मिच्छादि० ५ असण्णित्ति तिरिक्खभंगो । णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वाओ । परिहार-संजदासंज-देसु अप्पण्णो पगदीओ णिरयभंगो ।

§२००. सुहुमसं० पंचणा० चदुदंस० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० सिया वंधगो । सिया वंधगा य । अवंधगा णत्थि । यथाक्खादे—सादं सिया सव्वे वंधगा । सिया वंधगा अवंधगो य । सिया वंधगा य अवंधगा य । तेऊ० सोधम्मभंगो । १० पम्म० सणक्कुमारभंगो । णवरि किंचि विसेसो णादव्वो । सम्मादि० खइग० अप्पण्णो पगदीओ ओघेण साधदेव्वाओ ।

§२०१. वेदगस० परिहारभंगो । णवरि असंजद-संजदासंजद-पगदीओ णादव्वो ।

§२०२. उवसमस्स—पंचणा० छदंसणा० वारसक० पुरिस० भयदु० पंचिदि०

§१९८. अपगतवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके स्यात् सर्व अवंधक हैं । स्यात् अनेक अवंधक और एकजीव वंधक है । स्यात् अनेक अवंधक हैं, और एकजीव वंधक हैं (?) साताके नाना जीव वंधक हैं और अनेक अवंधक हैं । अकपायियोंमें—साताके अनेक वंधक और अनेक अवंधक हैं । केवलज्ञान और केवलदर्शनमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१९९. मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, असंयत, कृष्ण, नील, कापोतलेश्या, अभव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि तथा असंज्ञी जीवोंमें तिर्यचोंके समान भंग जानना चाहिए । और इनकी जो कुछ विशेषता है वह भी जाननी चाहिए । परिहारविशुद्धिसंयम और संयतासंयतोंमें—अपनी अपनी प्रकृतियोंका नरकवत् भंग जानना चाहिए ।

§२००. सूक्ष्मसांपरायमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अंतरायोंका स्यात् एकजीव वंधक है । स्यात् अनेकजीव वंधक हैं । अवंधक नहीं हैं । यथाख्यातमें—सातावेदनीयके स्यात् सर्व वंधक हैं । स्यात् अनेक वंधक तथा एक अवंधक हैं । स्यात् अनेक वंधक हैं और स्यात् अनेक अवंधक हैं । तेजोलेश्यामें—सौधर्म स्वर्गके समान भंग जानना चाहिए । पद्मलेश्यामें—सनत्कुमारवत् भंग जानना चाहिए । इनका किंचित् विशेष भी जान लेना चाहिये ।

[विशेष—इस लेश्यामें एकेन्द्रिय, आताप, तथा स्थावरका वंध नहीं होता ।]

सम्यक्दृष्टि, चायिकसम्यक्दृष्टिमें—अपनी अपनी प्रकृतियोंको ओषके समान जानना चाहिये ।

§२०१. वेदकसम्यक्त्वमें—परिहारविशुद्धिके समान भंग जानना चाहिये । विशेष यह है कि यहाँ असंयत और सयतासंयतकी प्रकृतियोंको भी जानना चाहिये ।

§२०२. उपशम सम्यक्त्व में—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुरुरवेद, भय. उरुगुण,

तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-
आदेज्ज-णिमिणं तित्थयरं उच्चागोद-पंचंतराहयाणं अट्ठभंगो । सादासादादीणं परिय-
त्तीणं सञ्चाणं पत्तेगेण साधारणेण वि अट्ठभंगो । णवरि वेदणीयाणं साधारणेण
सिया वंधगो य । सिया वंधगा य । अवंधगा णत्थि ।

५ §२०३. अणाहारगेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओगालि०
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमि० तित्थय० पंचंत० अत्थि वंधगा
य अवंधगा य । सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा । असादं अत्थि वंधगा य अवंधगा
य । दोण्णं वेदणीयाणं अत्थि वंधगा य अवंधगा य । एवं सेसाणं पगदीणं एदेण
वीजेण साधेदूण भाणिदव्वं ।

१०

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं

पंचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, ब्रजवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४ सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र, और ५ अन्तरायों के आठ भंग जानना चाहिए । साता असातादिक संपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियों के अलग अलग और सम्मिलित रूप में आठ भंग होते हैं । विशेष यह है कि वेदनीययुगलके सामान्यसे स्यात् एक बंधक है । स्यात् अनेक बंधक हैं । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेषार्थ-वेदनीयके अवंधक अयोग केवली गुणस्थानमें पाये जाते हैं और उपशम सम्यक्त्व ११ वें गुणस्थान पर्यंत पाया जाता है इस कारण उपशमसम्यक्त्वमें साता असाता युगलके अवंधकों का अभाव कहा है ।]

§२०३. अनाहारकों में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकर ५ अन्तरायों के अनेक बंधक हैं और अनेक अवंधक हैं ।

[विशेष-सयोग केवली और अयोग केवली गुणस्थानोंमें भी अनाहारक जीव होते हैं उन गुणस्थानों की अपेक्षा ज्ञानावरणादिके अवंधक कहे गए हैं ।]

सातावेदनीयके भी अनेक बंधक तथा अनेक अवंधक हैं । असातावेदनीयके भी अनेक बंधक हैं तथा अनेक अवंधक हैं । दोनों वेदनीयके भी अनेक बंधक तथा अनेक अवंधक हैं । इस वीजसे अर्थात् इस दृष्टिसे शेष प्रकृतियोंके भी भंग जानना चाहिये ।

इस प्रकार नानाजीवों की अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ ।

(१) “णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहेसो ओघेण, आदेसेण य । तत्थ ओघेण पेजं दोसो च णियमा अत्थि । सुगममेदं । एवं जाव अणाहारए चि वत्तव्वं । णवरि मणुसअपजत्तएसु णाणेगजीवं पेज-
दोसे अस्सिज्जं अट्ठभंगा । तं जहा-सिया पेज्जं । सिया णोपेजं । सिया पेज्जाणि । सिया णोपेज्जाणि । सिया पेजं च णोपेजं च । सिया पेज्जं च णोपेज्जाणि च । सिया पेज्जाणि च णोपेजं च । सिया पेज्जाणि च णोपेज्जाणि च ।”-जयध० पृ० ३९०-३९१ ।

यहाँ आठ भंग इस प्रकार होंगे—(१) एक बंधक (२) एक अवंधक (३) अनेक बंधक (४) अनेक अवंधक (५) एक बंधक, एक अवंधक (६) अनेक बंधक, अनेक अवंधक (७) एक बंधक, अनेक अवंधक (८) अनेक बंधक, एक अवंधक ।

[भागाभागाणुगम परूवणा]

§२०४. भागाभागाणुगमो दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ।

§२०५. तत्थ ओघेण पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं वंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभागो । सादबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजीवाणं संखेज्जा भागा । असाद-बंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडियो भागो ? संखेज्जदिभागो । गोदाणं (दोणं) वेदणीयाणं वंधगा सव्वजीवाणं केवडिया भागा ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभागो । एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चटुजादि-पंचसंठा० तस० ४ थिरादिपंचगं उच्चागोदं च । असादभंगो णवुंस० अरदिसोग-एइंदिय-हुंडसंठा० थावरादिचटु ४ (?) अथिरादिपंचगं गीचागोदाणं च । सत्त-णोक० सव्वजादि छसंठा० तसथावरादि-णवयुगलं दोगोदाणं एदेसिं साधारणेण वंधगा सव्वजीवाणं केवडिया भागा ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजी०

[भागाभागानुगम प्ररूपणा]

§२०४. भागाभागानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते हैं ।

§२०५. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायके बंधक सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । साता वेदनीयके बंधक सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं । असाताके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दोनों वेदनीयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ?

[विशेषार्थ—दो गोत्रोंका आगे वर्णन आया है अतः 'गोदाणं' के स्थानमें 'दोणं' पाठ संगत जँचता है ।]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ संस्थान, व्रत ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग हैं । नपुंसकवेद, अरति, शोक, एकैन्द्रिय जाति, हुंटर संस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भंग हैं । सात नोक्कस्य, ५ जाति, ६ संस्थान, व्रत-स्थावरादि ९ युगल, तथा दो गोत्र इनके सामान्यसे बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ।

- केवडिओ भागो ? अणंतभागो । णिरयमणुसदेवायुगाणं वंधगा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणं० भागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । तिरिक्खायुबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? संखेज्जा भागा । चदु-आयु-बंधगा सव्वजीवाणं केवडियो केवडियो (?) भागो ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा । णिरयगदिदेवगदिवंधगा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंता भागा । तिरिक्खगदिवंधगा सव्वजीवाणं केवडिया भागा ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? संखेज्जदिभागो । मणुसगदिवंधगा सव्वजी० केवडिओ भागो ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? संखेज्जा भागा । चदुण्णं गदीणं वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । एवं चदुण्णं आणुपुव्वीणं । ओरालिय० वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । वेउव्विय-आहारसरीराणं वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंता भागा । तिण्णि-सरीराणं वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । ओरालिय-अंगो० वंधगा सव्वजी० केवडि० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा । वेउव्विय-आहारसरीरअंगो० वंधगा सव्वजी०

नरकायु, मनुष्यायु तथा देवायुके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । तिर्यंचायुके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । चार आयुके बंधक सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । नरकगति-देवगतिके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । तिर्यचगतिके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । मनुष्यगतिके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । चारों गतिके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । इसी प्रकार चारों आनुपूर्वीका जानना चाहिए । औदारिक शरीरके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । वैक्रियिक आहारक शरीरके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । तीन शरीरके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । औदारिक अंगोपांगके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं ।

केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंता० भागा । तिण्णि अंगो०
बंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा ।
छसंध० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसराणं बंधगा सव्वजीवाणं केवडि० ?
संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा । छसंध० दोविहा०
दोसर० साधारणेण वि सादभंगो । तिथयरं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । ५
अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंता भागा ।

§२०६. आदेसेण णेरइगेसु पंचणा० छदंसणा० चारसक० भयदु० पंचिदि०—
तिण्णिसरीर-ओरालि० अंगो० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत० बंधगा
सव्वजीवाणं केवडिया भागा ? अणंतभागो । (?) अवंधगा णत्थि । सादबंधगा
सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागो । सव्वणेरइगाणं केवडियो भागो ? संखेज्जदि- १०
भागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंता भागा (?) सव्वणेरइगाणं केवडि० ? संखेज्जा

[विशेषार्थ—शंका—जब औदारिक शरीरके बंधक संपूर्ण जीवोंके अनंत बहुभाग हैं, तब औदारिक अंगोपांगके बंधक संपूर्ण जीवोंके संख्यातवें भाग क्यों हैं ? समाधान—औदारिक शरीरके बंधक अधिक हैं, तथा औदारिक अंगोपांगके बंधक कम हैं । अंगोपांगका बंध केवल त्रसोंके साथ पाया जाता है तथा औदारिकशरीरका बंध त्रस-स्थावर दोनोंके साथ पाया जाता है ।]

वैक्रियिक—आहारक शरीरांगोपांग के बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । तीनों अंगोपांग के बंधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । छह संहनन परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति तथा २ स्वर के बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । सामान्यसे छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? तथा अवंधक कितने भाग हैं ? इनका सातावेदनीय के समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् बंधक संख्यातवें भाग हैं और अवंधक संख्यात बहुभाग हैं । तीर्थकर प्रकृति के बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं ।

§२०६. आदेश से—नरकगति में—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, पंचोन्द्रिय जाति, औदारिक—तैजस—कार्माणशरीर, औदारिक अंगोपांग, दर्श ४, अगुरुलघु ४, प्रम ४, निर्माण, ५ अंतरायके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं (?) अवंधक नहीं है ।

[विशेषार्थ—यहां अनंतवें भाग पाठ समीचीन प्रतीत होता है । जब ज्ञाना, अज्ञाना दोनों वेदनीय के बंधक नारकी सर्व जीवोंके अनंतवें भाग हैं, तब ज्ञानावरणादि के बंधक भी अनंतवें भाग होना चाहिए । सर्व जीवराशि के अनंत बहुभाग नारकी जीवों की गणना नहीं है ।]

साताके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण नारकियोंने कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं (?)

भागा । असाद [वंधगा] सव्वजी० केवडि० ? अणंतमागो । सव्वणेरइगाणं केवडि० ?
 संखेजा भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतमागो । सव्वणेरइगाणं केवडि० ?
 संखेजदिभागो । दोणं वेदणीयाणं वंधगा केवडि० ? अणंतमागो । अवंधगा णत्थि ।
 एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा० पंचसंव० मणुसाणु० उज्जोव०
 ५ पसत्थ० थिरादिछक्कं उचागोदं च । असादभंगो णवुंस० अरदिसोग-तिरिक्खगदि-
 हुंडसंठा० असंपत्तसेव० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थवि० अथिरादिछक्कं णीचागोदं च ।
 सत्तणोक० दोगदि० छसंठा० छसंव० दोआणु० दोविहा० थिरादिछयुगलं दोगोदाणं
 वंधगा सव्वजीवाणं केवडि० ? अणंतमागा (?) । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धि०
 ३ मिच्छत्त० अणंताणुबंधि० ४ वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतमागो । सव्वणेरइगाणं
 १० केवडि० ? असंखेजा भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतमागो । सव्वणेरइगाणं

संपूर्ण नारकियों के कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं ।

[विशेष—असाता के बंधक सर्व जीवों के अनंतवें भाग कहे गए हैं, तब साता के अवंधक भी सर्व जीवों के अनंतवें भाग होना चाहिए अतः अनंतवें भाग पाठ साता के अवंधकों में उचित प्रतीत होता है ।]

असाता के [बंधक] सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियों के कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियों के कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं ।

[विशेष—असाता के बंधक भी सर्व जीवों के अनंतवें भाग हैं तथा अवंधक भी अनंतवें भाग हैं । इसका कारण नारकी जीवों की संख्या है, वह इतनी है कि बंधक भी बृहत् जीवराशि के अनंतवें भाग होते हैं तथा अवंधक भी इतने ही होते हैं ।]

दोनों वेदनीयों के बंधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि पट्क तथा उच्चगोत्रमें साताके समान भंग जानना चाहिए । नपुंसक-वेद, अरति, शोक, तिर्यचगति, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यचानुपूर्वी, अप्र-शस्त विहायोगति, अस्थिरादि पट्क, तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग जानना चाहिए । सात नोकपाय, दो गति, ६ संस्थान, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रों के बंधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं (?) अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—यहां अनंतवें भाग पाठ संगत जँचता है ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ के बंधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियों के कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियों के कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं ।

केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । तिरिक्खायुवंधगा सव्वजीवाणं केवडिओ-भागो ? अणंत-
भागो । सव्वणेरइगाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंत-
भागो । सव्वणेरइगाणं केवडिओ० ? संखेज्जा भागा । मणुसायु-तित्थय० वंधगा सव्वजी०
केवडि० ? अणंतभागो । सव्वणेरइगाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी०
केवडि० ? अणंतभागा (?) सव्वणेरइगाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा । दोणं आयुगाणं ५
बंधगा [सव्वजीवाणं] केवडि० ? अणंतभागो । सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो ।
अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागा (?) सव्वणेरइगाणं केवडि० ? संखेज्जा भागा ।
एवं पढमाए पुढवीए । विदियादि याव छट्ठित्ति णिरयोधो । णवरि आयु मणुसायु-
भंगो । एवं सत्तमाए । णवरि तिरिक्खगादि-तिरिक्खाणु० णीचागोदं धीणगिद्धित्तिग-
भंगो । मणुसगादि-मणुसाणु-उच्चागोदं मणुसायुभंगो । दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदाणं १०
बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि ।

§२०. ७. तिरिक्खेसु—पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसाय भयदु० तेजाक० वण्ण०

तिर्यंचायु के बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियोंके कितने
भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ।
सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । मनुष्यायु, तीर्थंकर प्रकृतिके बंधक सर्व
जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें
भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । (?) सर्व नारकियोंके
कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं ।

[विशेष—यहाँ अनंत बहुभागके स्थानमें अनंतवें भाग पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है ।]

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बंधक [सर्व जीवोंके] कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग
हैं । सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग
हैं ? अनंत बहुभाग हैं (?) सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं ।

[विशेष—यहाँ अवंधक सर्व जीवोंकी अपेक्षा अनंतवें भाग पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है ।]

इस प्रकार पहली पृथ्वीमें जानना चाहिए । दूसरी पृथ्वीसे छठवीं पृथ्वी पर्यन्त नारकियोंके
सामान्यवत् जानना चाहिए । विशेष, आयुके विषयमें मनुष्यायुके समान भंग है । अर्थात् बंधक
सर्व जीवोंके अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियोंके असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके
अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियोंके असंख्यात बहुभाग हैं । सातवीं पृथ्वीमें इसी प्रकार है ।
विशेष, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, नीच गोत्रके विषयमें स्त्यानगृह्णित्रिकयन् भंग है । अर्थात् बंधक
सर्व जीवोंके अनंतवें भाग हैं । सर्व नारकियोंके असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके
अनंतवें भाग हैं तथा सर्व नारकियोंके असंख्यातवें भाग हैं । मनुष्यगति, मनुष्यनुपूर्वी,
उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भंग है । मनुष्य-तिर्यंचगति, २. आयुपूर्वी तथा दो गोत्रके बंधक
सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं है ।

§२०७ तिर्यंचगतिमें—५ स्तानावरण, ६ दर्शनावरण, (स्त्यानगृह्णित्रिक विना), प्रत्यक्षनारक्य

४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सच्चजीवाणं केवडि० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । थ्रीणगिद्वितिगं सिच्छत्त० अट्टक० बंधगा सच्चजी० केवडि० ? अणंतभागा । सच्चतिरिक्खाणं केवडि० ? अणंतभागा । अवंधगा सच्चजी० केवडि० ? अणंतभागो । सच्चतिरिक्खाणं केव० ? अणंतभागो । सादबंधगा सच्चजीवाणं केवडि० ? संखेज्जदि-
 ५ भागो । सच्चतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्चजी० केवडि० ? संखे-
 ज्जा भागा । सच्चतिरिक्खाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । असादबंधगा सच्चजी०
 केवडि० ? संखेज्जा भागा । सच्चतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सच्चजी०
 केव० ? संखेज्जदिभागा (गो) सच्चतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभागा (गो) दोण्णं
 वेदणीयाणं बंधगा सच्चजी० केव० ? अणंता भागा । अवंधगा णत्थि । सादबंधो इत्थि०
 १० पुरिसं० हस्सरदि-चदुजादि-पंचसंठा० छसंध० परघादुस्सा० अदाउज्जो० तस० ४ थिरा-
 दिपंच-उच्चागोदं च । असादबंधो णयुंस० अरदिसोग-एइंदिय० हुंडसंठा० थावरादि०
 ४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च । सत्तणोक्क० पंचजादि छसंठा० तसथावरादि-णवयुगल-
 दोगोदाणं बंधगा सच्चजी० केवडि० ? अणंता भागा । अवंधगा णत्थि । चट्ठआयु-चदु-
 गदि-दोसरीर-दोअंगो० छसंध० चदुआणु० दोविहा० दोसर० ओधं । णवरि गदि-सरीर-

४ तथा संचलन चार रूप कपायाष्टक, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण तथा ५ अंतरायके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । स्थानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, ८ कपाय (अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण) के बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ? सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । साता वेदनीयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । असाता वेदनीयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । असाता वेदनीयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दोनों वेदनीयोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

खीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ संस्थान, ६ संहनन, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भंग है । नपुंसक-वेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुंडकसंस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाता वेदनीयके समान भंग है । ७ नोकपाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

चार आयु, ४ गति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, दो अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, दो स्वरका ओघवत् भंग है । विशेष गति शरीर तथा आनुपूर्वीके सब बंधक हैं ।

आणुपु० सव्वे वंधगा० । अवंधगा णत्थि ।

§२०८ पंचिंदिय-तिरिक्खेसु-पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसाय-भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उय० णिमि० पंचंत० वंधगा सव्वजीवाणं केवडि० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अट्ठकसायबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदियतिरिक्खणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो (?) अवंधगा सव्व० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदियतिरिक्खणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । सादावेद० वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदियतिरिक्खणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो (?) असादं वंधगा केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदियतिरिक्खणं केवडि० ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? १० अणंतभागो । सव्वपंचिंदियतिरिक्खणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो । दोवेदणीयं वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चट्ठजादि-पंचसंठा० परवादुस्ता०-आदाउज्जो० तस० ४, थिरादिपंच-उच्चागोदं

अबंधक नहीं हैं ।

§२०८. पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय, भयद्विक, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अंतरायके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कपायके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है (?)

[विशेष-यहाँ 'असंख्यात बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है । कारण मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यचोंकी संख्या सबसे अधिक है ।]

अबंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सातावेदनीयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?)

[विशेष-यहाँ संख्यात बहुभाग पाठ अवंधक पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें होना चाहिए । कारण असाताके बंधकोंकी गणना पंचेन्द्रिय तिर्यचोंकी अपेक्षा संख्यात बहुभाग कही है ।]

असाताके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

सीवेद, पुरुषवेद, हात्प-रति, ४ जाति, ५ संख्यात, पर्याप्त, सञ्जम, कर्मात्त,

- च । असादभंगो णवुंस० अरदिसोगं एहंदि० हुंडसंठा० थावरादि ४ अथिरादिपंच-
णीचागोदं च । सत्तणोक्क० पंचजादि-छसंठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं वंधगा
सव्वजीवा० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । तिण्णि आयुवंधगा सव्वजीव०
केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा
५ सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्ज
भागा । तिरिक्खायुवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिदयतिरिक्खाणं
केवडि० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचि-
दिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्ज भागो (गा) । चटुण्णं आयुगाणं वंधगा सव्वजी०
केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिदियतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो ।
१० अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ?
संखेज्ज भागा । णिरयगदिदेवगदिवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचि-
दियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ?
अणंतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्ज भागा । तिरिक्खागदि०
असादभंगो । मणुसगदि० सादभंगो । चटुण्णं गदीणं वंधगा सव्वजी० केवडि० ?
१५ अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । ओरालियस० वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।

उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भंग है । नपुंसकवेद,
अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुंडकसंस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके
समान भंग है । ७ नोकपाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रके वंधक
सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

मनुष्य-देव-नरकायुके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय
तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ?
अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं । असंख्यात बहुभाग हैं । तिर्यचायुके
बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग
हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व
पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । चार आयुके वंधक सर्व जीवोंके
कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग
हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने
भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । नरकगति, देवगतिके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ?
अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक
सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ?
असंख्यात बहुभाग हैं । तिर्यचगतिका असाताके समान भंग है । मनुष्य गतिका साताके समान
भंग है । चार गतियोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं
हैं । औदारिक शरीरके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय

सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । वेगुव्वियसरीरस्स देवगदिभंगो । दोण्णं सरीराणं वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागा (गो) । अवंधगा णत्थि । ओरालियसरीरअंगोवंगस्स सादभंगो । वेगुव्वियसरीरअंगोवंगस्स देवगदिभंगो । दोण्णं अंगोवंगाणं सादभंगो । छसंध० दोविहाय० दोसराणं पत्तेणेण ५ साधारणेण वि सादभंगो ।

॥२०९. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु । णवरि णिरय-मणुसायुबंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं केव० ? असंखेज्जदिभागो । तिरिक्खदेवायूणं सादभंगो । १० चदुण्णंवि आयुगाणं सादभंगो । णिरयगदि असादभंगो । तिण्णं गदीणं सादभंगो । चदुण्णं गदीणं वंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । एवं आणुपुव्वीणं । चदुजादि सादभंगो । पंचिंदियजादीणं असादभंगो । पंचण्णं जादीणं

तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । वैक्रियिक शरीरका देवगति के समान भंग है । औदारिक-वैक्रियिक शरीरोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं (?) । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष-यहाँ वंधक सर्व जीवोंके अनंतवें भाग होना उचित जँचता है । पंचेन्द्रिय तिर्यच राशि ही जब संपूर्ण जीव राशिके अनंत बहुभाग प्रमाण नहीं हैं, तब शरीरद्वयके वंधक अनंत बहुभाग कैसे होंगे ? अतः अनंतवें भाग पाठ उचित प्रतीत होता है ।]

औदारिक-शरीर-अंगोपांगके विषयमें साताके समान भंग हैं । वैक्रियिक अंगोपांगका देवगतिके समान भंग है । औदारिक-वैक्रियिक अंगोपांगोंका साताके समान भंग है । छद्द संहनन, २ विहायोगति तथा स्वरयुगलका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भंग हैं ।

॥२०९. पंचेन्द्रिय-तिर्यच-पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय-तिर्यच योनिमतियोंमें-इसी प्रकार है । विमोह, यहाँ नरकायु-मनुष्यायुके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तक-योनिमतियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यच-योनिमतियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं ।

तिर्यच-देवायुका साताके समान भंग जानना चाहिए । चारों आयुका साताके समान भंग जानना चाहिए । नरकगतिका असाताके समान भंग है । मंद तीन गतियोंका साताके समान भंग है । चारों गतियोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । आनुपूर्वोंका इसी प्रकार भंग जानना चाहिए । ४ जातियोंका साताके समान भंग है । पंचेन्द्रिय जातिका असाताके समान भंग है । पाँच जातियोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग

बंधगा सच्चजी० केवडि० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । वेगुव्विय० वेगुव्विय-
अंगोवंगणं सादभंगो । दोण्णं पि असादभंगो । छसंव० आदाउज्जो० सादभंगो । परघा-
दुस्सा० अप्पसत्थ० तस० ४ अथिरादिछक्कणीचागोदं च असादभंगो । तप्पडि-
पक्खाणं सादभंगो । दोविहाय० दोसर० असादभंगो । तसादिणवयुगलं दोगोदं च
५ वेदणीयभंगो ।

§२१०. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेमु-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक०
भयदु० तिण्णिस्सीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सच्चजी० केव० ?
अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । सेसाणं णिरयोवं । णवरि चटुजादि-ओरालि० ओरालि०
अंगो० छसंव० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० तस० ४ थिरादि-छक्क-दुस्सर-
१० उचागोदाणं सादभंगो । एइंदियजादि-हुंडसंठा० थावरादि० ४ अथिरादिपंचगं णीचा-
गोदं च असादभंगो । पंचजादि-बंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा
णत्थि । एवं तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं । छसंव० दोविहा० दोसर० [पत्तेणेण]
साधारणेण वि सादभंगो । एवं मणुस-अपज्जत्त-सच्चदिगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त
सच्चपुढवि-आउ० तेउ० वाउ० वादरवणप्फदिपत्तेय० । णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदि-
१५ चटुक्कं णत्थि ।

हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । वैक्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अंगोपांगका साताके
समान भंग है । दोनोंका सामान्यसे असाताके समान भंग है । ६ संहनन, आतप, उद्योतका
सातावत् भंग है । परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६ तथा नीच-
गोत्रका असाताके समान भंग है । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका जैसे प्रशस्तविहायोगति,
स्थावरादि ४, स्थिरादि ६, उच्चगोत्रका साताके समान भंग है । दो विहायोगति, दो स्वरका
असाताके समान भंग है । त्रसादि ९ युगल, २ गोत्रका वेदनीयके समान भंग है ।

§२१०. पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय,
भय-जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अंतरायके
बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका
नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, ४ जाति, औदारिक शरीर, औदारिक-अंगोपांग,
६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा
उच्चगोत्रका साताके समान भंग है । एकेन्द्रिय जाति, हुंडक संस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५
तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग है । ५ जातिके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ?
अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । त्रस, स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार भंग
जानना चाहिए । छह संहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका [प्रत्येक तथा] सामान्य रूपसे साताके
समान भंग है ।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, संपूर्ण पृथ्वी, अप, तेज, वायु,
वादर वनस्पति, और प्रत्येकमें—इसी प्रकार अर्थात् पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकके समान जानना
चाहिए । विशेष, तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु तथा उद्योत नहीं हैं ।

§२११. मणुसेसु-पंचिदिय-तिरिक्खभंगो । णवरि धुविगाणं अवंधगा अत्थि । दोवेदणीयाणं वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चमणुसाणं केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चमणुसाणं केव० ? संखे(असंखे)ज्जिदिभागो । सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-दोसरीर-पंचसंठा० आरालि०दोअंगो० छसंव० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदा- ५ उज्जोव० दोविहाय० तस० ४ थिरादिछक्क-दुस्सर उच्चागोदं च । साद- (असाद)भंगो णवुंस० अरदिसोग० तिरिक्खगदि-एइंदिय० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावरादि० ४ अथिरादिपंच णीचागोदं च । तिण्णिवेद-हस्सरदिदोयुगल-पंचजादि-छसंठा० तसथावरादिणवयुगल-दोगोदाणं च वेदणीयभंगो । तिण्णियायु-आहारदुगं वेउच्चियछक्कं तिस्थयरं सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । मणुसाणं केव० ? असंखेज्जिदि- १० भागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चमणुसाणं केव० ? असंखेज्जा भागा । ओरालिय० पत्तेणेण धुविगाणं भंगो । चदुगदि-दोसरीर-चदुआणु० वेदणीयभंगो । दोअंगो० छसंव० दोविहाय० दोसर० साधारणाणं सादभंगो ।

§२१२. मणुसंपज्जत्त-मणुसिणीसु-एसेव भंगो । णवरि ये असंखेज्जा भागा ते

§२११. मनुष्योंमें—पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका भंग है । विशेष, यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अवंधक भी पाये जाते हैं । दो वेदनीयोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग (?) हैं ।

[विशेष—यहाँ अवंधक मनुष्योंमें असंख्यातवें भाग पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है ।]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यचायु, मनुष्यगति, २ शरीर, ५ संस्थान, औदारिक-वैक्रियिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, घन ४, स्थिरादि-षट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है । ननुसकवेद, अरति-शोक, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुंडकसंस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अग्निगति ५ तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग है । तीन वेद, हास्यरति, अरतिशोक, पंच जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है । ३ आयु, आहारदुग, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थकर प्रकृतिके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं ? अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं ।

औदारिक शरीरका प्रत्येकस्ते ध्रुवप्रकृतिस्तद्वत् भंग है । पार गति, २ शरीर, ५ संस्थान, वेदनीयके समान भंग है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ संस्थान, आहारदुग, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थकर प्रकृतिके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं ।

§२१२. मनुष्य-पर्याप्तक मनुष्यनियोंमें—मनुष्यके समान भंग है । विशेष, यहाँ दो असंख्यात बहुभाग कहे गये हैं, उनके स्थानमें 'संख्यात बहुभाग' पर लेना चाहिये । मणुस, मणुसिणीसु, एसेव भंगो ।

संखेज्जा कादव्वा । सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिणिगदि-चदुजादि-दोसरीर-
पंचसंठा० दोअंगो० तिणिआणु० आदाउज्जो० पसत्थ० थावरादि० ४ थिरादिछक्क
उच्चागोदं च । असादभंगो णवुंस० अरदिसोग० णिरयगदि० पंचिदि० वेउच्चि०
हुंडसं० वेउच्चि० अंगो० णिरयाणु० परघादुस्सा० अप्पसत्थ० तस० ४ अथिरादि-
५ छक्क० णीचागोदं च । सत्तणोक० चदुगदि-पंचजादि तिणिगरीर चदुआणु० दोविहा०
तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदाणं वेदणीयभंगो । चदुआयु० छस्संव० पत्तेगेण
साधारणेण वि सादभंगो ।

§२१३. देवेसु णिरयोधं । णवरि विसेसो । सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-
तिरिक्खायु-मणुसगदि-पंचिदियजादि-पंचसंठा० ओरालियअंगो० छसंव० मणुसाणु०
१० आदाउज्जो० दोविहा० तस-थिरादिछक्क-दुस्सर-उच्चागोदं च । असादभंगो णवुंस०
अरदिसोग-तिरिक्खगदि-एइंदिय-हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदं
च । वेदणीय भंगो सत्तणोक० दोगदि-दोजादि-छसंठा० दोआणु० तसथावर-थिरादिपंच-
युगलाणं दोगोदाणं च । छसंव० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभंगो । एवं
भवण-वाण-वैतर-जोदिसियाणं । णवरि तित्थयरं णत्थि । जोदिसिय-तिरिक्खायु-
१५ मणुसायुभंगो । सोधम्मीसाण जोदिसियभंगो, णवरि तित्थयरं अत्थि । सणक्कुमार याव

हास्य, रति, मनुष्य-तिर्यंच-देवगति, ४ जाति, दो शरीर, ५ संस्थान, दो अंगोपांग, नरकानुपूर्विके
विना शेष तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ तथा
उच्चगोत्रका साताके समान भंग है । नपुंसकवेद, अरति-शोक, नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति,
वैक्रियिक शरीर, हुंडकसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रसारत-
विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिपट्क तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग है । ७ नोकपाय,
४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि १० युगल और दो गोत्रोंका
वेदनीयके समान भंग है । चार आयु, ६ संहननका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है ।

§२१३. देवगतिमें-नरकगतिके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य,
रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानु-
पूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके
समान भंग है । नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुंडकसंस्थान, तिर्यंचानु-
पूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान जानना चाहिए । ७ नोकपाय,
२ गति, २ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावर, स्थिरादि ५ युगल तथा २ गोत्रका
वेदनीयके समान भंग है । ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका साधारणसे साताके समान भंग
है । भवनवासी, व्यंतर तथा ज्योतिपी देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ
तीर्थंकर प्रकृति नहीं है । ज्योतिपी देवोंमें तिर्यंचायुका मनुष्यायुके समान भंग है । सौधर्म
और ईशानमें-ज्योतिपियोंके समान भंग है । विशेष, यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है ।
सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त-दूसरे नरकके समान भंग है । आनत-प्राणतसे नव

सहस्सारं त्ति विदियपुढविभंगो । आणद याव णवगेवज्जात्ति धुविगाणं वंधगा सव्वजी०
 केव० ? अणंतभागा (गो) । अवंधगा णत्थि । धीणगिद्धि ३ मिच्छ० अणंताणु० ४
 तित्थयरं वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वदेवाणं केव० ? संखेज्जदिभागो ।
 अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वदेवाणं केव० ? संखेज्जा भागो (गा) ।
 सादभंगो इत्थि० णवुंस० हस्सरदि-पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थवि० धिर-सुभग-
 (सुभ) दूभगदुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति णीचागोदं च ! असादभंगो पुरिस० अरदि-
 सोग० चदु [समचदु०] वज्जरिसभ० पसत्थ० अधिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे-
 ज्ज० अज्जस० उच्चागोदाणं च । दोण्णं वेदणीयाणं वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंत-
 भागो । अवंधगा णत्थि । एवं सेसं (साणं) परियत्तमाणयाणं । आयु जोदिसियभंगो ।
 अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति असाद-भंगो । णवरि सव्वट्ठे आयु माणुसिभंगो ।

§२१४. एइंदिएसु-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालिय०
 तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंता
 भागो (भागा) । अवंधगा णत्थि । सेसं तिरिक्खोघं । वादरएइंदियपज्जत्ता-

प्रवेयक पर्यन्त—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं (?) ।
 अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—यहाँ अनंतवें भाग पाठ प्रतीत होता है ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ तथा तीर्थकरके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग
 हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व देवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके
 कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व देवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?) ।

[विशेष—यहाँ 'संख्यात बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है ।]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्तविद्यायोगति, स्थिर, सुभग,
 (शुभ)दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, नीच गोत्रका साताके समान भंग हैं । पुरुषवेद, अरति,
 शोक, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, प्रशस्तविद्यायोगति, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर,
 आदेय, अयशःकीर्ति तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भंग हैं । दोनों वेदनीयके बंधक सर्व जीवों
 के कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार परिवर्तमान दो प्रकृतियोंमें
 जानना चाहिए । आयुओंमें ज्योतिषी देवोंका भंग है । अनुदिशने केपर नवार्थमिति पर्यन्त
 असाताके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, सर्वार्थसिद्धिमें आदुका भंग बहुपदार्थके समान है ।

§२१४. एकेन्द्रियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कणाय, भय-दुःख, अज्ञा-
 रिक्तजस-कामाण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण, ५ अंतराक्षके बंधक सर्व जीवोंके
 कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं (?) अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—यहाँ 'अनंतवें भाग' के स्थानमें 'अनंत बहुभाग' पाठ जेंचता है ।]

शेष प्रकृतियोंका तिर्यचोंके ओषधन् दर्शन जानना चाहिए ।

॥ यहाँ 'सुभ' पाठ उचित प्रतीत होता है । सुभकी पुनः गणना अती बड़ी गणना है ।

पज्जत्तेसु-धुविगाणं [वंधगा] सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । सादवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्ववादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्ववादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागा (संखेज्जा भागा) । एवं असादं ५ पडिलोमेण भाणिदव्वं । दोणं वेदणीयाणं वंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । सादभंगो इत्थि० पुरिसं० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालिय० अंगो० छसंध० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० तस० ४ थिरादिछक्कं दुस्सर-उच्चागोदं च । असादभंगो णवुंस० अरदिसोग-तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-हुडसंठा०-तिरिक्खाणु० थावरादि० ४-अथिरादिपंच-णीचा- १० गोदं च । मणुसायु-वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्ववादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदि-भागो । सव्ववादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागा । दोआयु० छसंध० दोविहाय० दोसर० साधारणेण सादभंगो । सेसाणं परियत्तीणं (?) युगलाणं वेदणीयभंगो । सुहुमे०-धुविगाणं वंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा । १५ अवंधगा णत्थि । सादवंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वसुहुमे-

वादर, एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्तोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके [वंधक] सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । साता वेदनीयके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । असाताके विषयमें इसी प्रकार प्रतिलोमक्रमसे जानना चाहिए । दोनों वेदनीयोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भंग जानना चाहिए । नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, हुंडकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भंग है । मनुष्यायुके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । दो आयु, छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके साप्तान्यसे साताके समान भंग है ? शेष परिवर्तमान युगलरूप प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए ।

---सूक्ष्म-एकेन्द्रियोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं । साता वेदनीयके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें

इंदियाणं केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा । सव्वसुहुमाणं केव० ? संखेज्जा भागा । असादं पडिलोमेण भाणिदव्वं । दोवेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा णत्थि । एवं सव्वाओ परियत्तीओ (?) वेदणीयभंगो । छण्णं दोण्णं दोण्णं पि पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो । तिरिक्खायु-सादभंगो । मणुसायुबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वसुहुमे- ५ इंदियाणं केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वसुहुमेइंदियाणं केव० ? अणंतभागो (गा) । दोआयु० तिरिक्खायुभंगो ।

§२१५. सुहुमेइंदिय-पज्जत्तेसु-धुविगाणं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । सादासादं पत्तेगेण सुहुमोघं । साधारणेण दोवेदणीयाणं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदि (सखेज्जा) भागा । अवंधगा णत्थि । एदेण कमेण णेदव्वं । सुहुमअपज्जत्ताणं- १० धुविगाणं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वसुहुमेइंदियअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वसुहुमेइंदियअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो

भाग हैं । सर्व सूक्ष्मएकेन्द्रियजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । असाता वेदनीयका प्रतिलोम क्रमसे भंग हैं, अर्थात् असाताके बंधक सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं । सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक नर्घ जीवोंके संख्यातवें भाग हैं । सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके संख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार नष्टपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । छह संज्ञन, २ विद्यायोगति, २ स्वरका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भंग हैं । तिर्यचायुका साताके समान भंग हैं । मनुष्यायुके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यनर्घ भाग हैं । सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । (?)

[विशेष - यहाँ अवंधक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी संख्या 'अनंत बहुभाग' प्रतीत होती है ।]

मनुष्य-तिर्यचायुके बंधकोंका तिर्यचायुके समान भंग है ।

§२१५. सूक्ष्म-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें—श्रुच प्रकृतियोंके बंधक नर्घ जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । साता असाता वेदनीयके दृक् दृक् रूपसे सूक्ष्म जीवोंके ओषवत् भंग हैं । सामान्य से दो वेदनीयके बंधक नर्घ जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंमें यही क्रम जानना चाहिए ।

सूक्ष्म-अपर्याप्तकोंमें—श्रुच प्रकृतियोंके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । सातावेदनीयके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वसूक्ष्म-एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नर्घजीवोंके कितने

(संखेज्जा भागा) । असादं वंधगा सच्च० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चमुद्धमअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सच्च० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चमुद्धमअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो । दोण्णं वेदणीयाणं वंधगा सच्च० केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । एवं सच्चाओ णादच्चाओ । णवरि तिरिक्खायु-सादभंगो ।
५ मणुसायुबंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो । सच्चमुद्धमअपज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सच्च० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चमुद्धमअपज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागो । दोआयु-तिरिक्खायुभंगो । एवं वणप्पदि-णियोदाणं ।

§२१६. पंचिंदियाणं मणुसोघं । पंचिंदियपज्जत्तेणु-पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्तभंगो । णवरि धुविगाणं मणुसोघं । साधारणेण दोवेदणीयबंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो ।
१० सच्चपंचिंदियपज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो । सच्चपंचिंदियपज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जदिभागो । एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-देवायु-तिण्णिगदि-चटुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंध० तिण्णिआणु० पसत्थवि० थावरादि ४ थिरादिछक्कं उच्चागोदं च । असाद-

भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं ? सर्वसूक्ष्म-एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?)

[विशेष-यहाँ अवंधक सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंमें संख्यात बहुभाग पाठ उचित प्रतीत होता है ।]

असाताके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व सूक्ष्मअपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वसूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दोनों वेदनीयोंके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार सब प्रकृतियोंके विषयमें भी जानना चाहिए । विशेष, तिर्यचायुका साताके समान भंग है । मनुष्यायुके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वसूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । मनुष्य-तिर्यचायुका तिर्यचायुके समान भंग है । वनस्पति निगोदोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§२१६. पंचेन्द्रियोंका-मनुष्योंके ओघवत् भंग है । पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें-पंचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्तकोंके समान भंग है । विशेष, ध्रुव प्रकृतियोंमें मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए । सामान्यसे दो वेदनीयके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यचायु देवायु, तिर्यच-मनुष्य-देवगति, ४ जाति, आद्वारिक शरीर, ५ संस्थान, आद्वारिक अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ और उच्चगोत्रमें

भंगो णवुंस० अरदिसोग० णिरयगदि-पंचजादि-वेउव्विय० हुंडसंठा०-वेउव्वि० अंगो०
 णिरयाणु० परघादुस्सा० अप्पसत्थवि० तस० ४ अथिरादिछक्कं णीचागोदं च ।
 णिरयमणुसायुआहारदुगं तित्थयरं वंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागा (गो) ।
 सव्वपंचिंदियपज्जत्ताणं केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो ।
 सव्वपंचिंदियपज्जत्ताणं केव० ? असंखेज्जा भागा । साधारणेण सव्व-परियत्तीणं ५
 वेदणीयभंगो । णवरि चदुआयु-छसंध० सादभंगो । अंगो० विहाय० सरणामाणं
 सादभंगो । आदाउज्जो० सादभंगो ।

§२१७. तस० पंचिंदियभंगो । तसपज्जत्तेसु-धुविगाणं थीणगिद्धि-दण्डओ ।
 दोवेदणी० सत्तणोक्क० चदुआयु० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो । सादभंगो तिण्णिगदि-
 चदुजादि-वेगुव्वियसरीर-पंचसंठा० दोअंगो० छसंध० तिण्णि-आणु० परघादुस्सा० ६०
 आदाउज्जो० दोविहाय० तस० ४ थिरादिछक्क० दुस्सर-उच्चागोदाणं च ।
 असादभंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि ओरालि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावगादि० ४-
 अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च । साधारणेण वेदणीयभंगो । णवरि अंगो० संघड०
 विहाय० सरणामाणं सादभंगो । आहारदुगं तित्थयरं वंधगा सव्वजी० केव० ?

साताके समान भंग है । नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, पंचजाति, वैक्रियिक शरीर, हुंडक संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविद्यायोगति, व्रस ४, अस्थिरादि ६, नीचगोत्रमें असाताके समान भंग है । नरक-मनुष्यायु, आहारकान्तिक तथा तीर्थकरके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं । अनंत बहुभाग हैं (?) ।

[विशेष—यहाँ तीर्थकर आदिके बंधक जीवोंके अनंतवें भाग पाठ प्रतीत होता है ।]

संपूर्ण पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों के कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं । अनन्तवें भाग हैं । सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । सामान्यसे संपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग है । विशेष—४ आयु, ६ संहनन का साताके समान भंग है । अंगोपांग विहायोगति तथा सरणामाण प्रकृतियोंका साताके समान भंग है । आतप, उद्योतका साताके समान भंग है ।

§२१७. व्रसोंमें-पंचेन्द्रियके समान भंग हैं । व्रस-पर्याप्तकोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंका समान भंग हुंडकके समान भंग हैं । दो वेदनीय, ७ नोकपाय, ४ आयुका पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंके समान भंग हैं । तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संतानन, ३ अनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, व्रस ४. तिरिक्खिद्वय, दुस्सर तथा उच्चागोदाण सातावेदनीयके समान भंग हैं । तिर्यचगति, पंचेन्द्रियजाति, अंतरिम शरीर, हुंडसंस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका समान भंग समान भंग चाहिए । सामान्यसे वेदनीयके समान भंग है । विशेष, अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा सरणामाण प्रकृतियोंका साताके समान भंग है । आहारकान्तिक, तीर्थकरके बंधक सर्वजीवोंके अनंत

अणंतभागो । सच्चतसपञ्जत्ताणं केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्च० केव० ?
अणंतभागो । सच्चतसपञ्जत्ता० केव० ? असंखेज्जदि (ज्जा) भागा ।

- §२१८. पंचमण० तिण्णिवचि०—पंचणा० णवदंशणा० मिच्छ० सोलसक०
भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ णिमि० पंचं० वंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो ।
५ पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो ।
पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो । दोवेदणीय-सत्तणोक० मणुसोव० ।
णवरि वेदणीयअवंधगा णत्थि । तिण्णिआयुवंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो ।
सच्चपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्च० केव० ? अणंत-
भागो । सच्चपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । तिरिक्खिआयु सादभंगो ।
१० चदुआयु० साधारणेण सादभंगो । णिरयगदिवंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो ।
सच्चपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्च० केव० ? अणंत-
भागो । सच्चपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । तिरिक्खिगदि असाद-
भंगो । मणुसदेवगदि सादभंगो । चदुण्णं गदीणं वंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो ।
सच्चपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्च० केव० ?

भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण त्रस-पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं ।
अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण त्रस-पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ?
असंख्यात बहुभाग हैं ।

§२१८. पाँच मनोयोग, ३ वचनयोग में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय,
भय-जुगुप्सा, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुत्व ४, निर्माण तथा ५ अंतरायके वंधक सर्वजीवोंके
कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । पाँच मनोयोगियों और तीन वचनयोगियों के कितने भाग हैं ?
असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । पाँच मनोयोगी
और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीय, ७ नोकपाय (भय-
जुगुप्साको छोड़ कर) का मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, यहाँ वेदनीयके अवंध-
क नहीं हैं । नरक-मनुष्य-देवायुके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ।
संपूर्ण पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक
सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ? सर्व पंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने
भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । तिर्यचायु का साताके समान भंग जानना चाहिए । चारआयुका
सामान्यसे साताके समान भंग है । नरकगतिके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ।
सर्व पंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व
जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने
भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । तिर्यचगतिका असाताके समान भंग है । मनुष्यगति, देवगतिका
साताके समान भंग है । चारों गतिके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व-
पंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व

अणंतभागो । सच्चपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखज्जदिभागो । णिरयगदिभंगो तिण्णिजादि-आहारदुगं णिरयाणुपु० सुहुमअप० साधारण० तित्थयरं च । तिरिक्खगदि-भंगो एइंदि० ओरालि० हुडसंठा० तिरिक्खणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च । देवगदिभंगो पंचिंदिय० वेगुव्विय० पंचसंठाणं ओरालियअंगो० वेगुव्वि० अंगो० छसंध० दोआणु० आदाउज्जो० दोविहाय-तस-थिरादिछक्क-दुस्सर-उचागोदं च । ५ वादरपज्जत्तपत्तेयसरीरं वंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो । सच्च-पंचमण-तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागो । सच्चपंचमण-तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो । साधारणेण पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० चदुआणु० तस-थावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं च गदीणं भंगो । दोअंगो० छसंध-दोविहाय० दोसर० साधारणेण सादभंगो । वचिजोगि-असच्चमोअवचिजोगीणं १० तसपज्जत्तभंगो । णवरि साधारणेण वि वेदणीयभंगो । अवंधगा णत्थि ।

§२१९. कायजोगि ओवं । किंचि विसेसो । वेदणीयाणं वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । ओरालियकायजोगि-धुविगाणं वंधगा सच्चजी० के० ? संखेज्जा भागा । सच्चजी० ओरालि० ? अणंतभागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ?

जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचमनोयोगी और ३ वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तीन जाति, आहारकद्विक, नरकानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, तीर्थकरका नरकगतिके समान भंग हैं । एकेन्द्रिय, औदारिक शरीर, हुंडकसंस्थान, तिर्यचाणुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका तिर्यचगतिके समान भंग हैं । पंचेन्द्रिय जानि, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वैक्रियिक अंगोपांग, ६ संज्ञन, २ आणुपूर्वी, आनय, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस, स्थिरादिपट्क, दुस्सर तथा उच्चगोत्रका देवगतिके समान भंग हैं । वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीरके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंच मनोयोगी और ३ वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पंचमनोयोगी, तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सामान्य से ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ४ आणुपूर्वी, त्रस-स्थिरादि ९ युगल, और दो गोत्रोंका गतिके समान भंग हैं । दो अंगोपांग, ६ संज्ञन, २ विहायोगति, २ स्वरका सामान्यसे साताके समान भंग हैं ।

वचनयोगियों में—असत्यमृपावचनयोगियों में—त्रस पर्याप्तोंके समान भंग हैं । विद्वेय, साधारणसे भी वेदनीयके समान भंग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

§२१९. काययोगियोंमें—ओषवत् जानना चाहिए । कुछ विद्वेय हैं । वेदनीयोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

औदारिक काययोगियोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं ।

- अणंतभागो । सच्चजी० ओरालि० केव० ? अणंतभागो । वेदणीयं एहंदिभंगो । इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो । णवुंस० असादभंगो । तिण्णि वेदाणं वंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जदि(ज्जा)भागा । सच्चजी० ओरालि सरीरं केव० ? अणंतभागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्च० ओरालि० केव० ? अणंतभागो ।
- ५ एवं सच्चाणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं भाणिदूण साधारणेण वेदभंगो कादच्चो । ओरालियमिस्सं—धुविगाणं वंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चओरालियमिस्स० केव० ? अणंतभागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चओरालिमिस्स केव० ? अणंतभागा (अणंतभागो) । वेदणीयं पत्तेगेण साधारणेण वि सुहुम-अपज्जत्तभंगो । इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो । णवुंस० असादभंगो ।
- १० साधारणेण धुविगाणं भंगो कादच्चो । देवगदि० ४ तित्थयरं वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्च ओरालियमिस्साणं केव० ? अणंतभागो । अवंधा (धगा) सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चओरालियमिस्साणं केव० ? अणंतभागो (गा) । एवं

अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । वेदनीयका एकेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए । प्रत्येकसे स्त्रीवेद, पुरुषवेदका साताके समान भंग है । नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है । तीनों वेदोंके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । इस प्रकार संपूर्ण प्रकृतियोंका प्रत्येकसे तिर्वचोंके ओववत् कहकर वेदके समान सामान्यसे भंग करना चाहिए ।

औदारिकमिश्र काययोगियोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग (?) हैं ।

[विशेष—यहां 'अनंतवें भाग' पाठ प्रतीत होता है ।]

प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयका सूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके समान भंग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदका प्रत्येकसे साताके समान भंग है । नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है । सामान्यसे वेदोंका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है । देवगति ४ तथा तीर्थकरके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । संपूर्ण औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं (?) ।

[विशेष—यहां 'अनंतबहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है । कारण देवगति ४, तीर्थकरके अवंधक जीव वंधकोंकी अपेक्षा अधिक होंगे । इनके वंधक जीव जब कि औदारिकमिश्र काययोगियोंके अनंतवें भाग हैं, तब अवंधकोंकी गणना इनसे अधिक अवश्य होनी चाहिए ।]

पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो । दोआयु-छसंघ०-दोविहा० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो । णवरि मणुसायु सुहुम-अपज्जत्तभंगो । वेउव्वि०-वेउव्वियमि० देवोघं । आहार० आहारमि० सव्वट्ठभंगो । णवरि असंजदपगदीओ णत्थि ।

§२२०. कम्मइ०-धुविगाणं वंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्व-कम्मइ० केव० ? अणंतभागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकम्मइ० ५ केव० ? अणंतभागो । सादवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो (?) । सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो (संखेज्जा भागा) । असादं पडिलोमेण भाणिदव्वं । दोण्णं वेदणीयाणं वंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागो (असंखेज्जदिभागो) । अवंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० १० सादभंगो पत्तेगेण । णवुंस० असादभंगो । साधारणेण धुविगाणं भंगो । देवगदि० ४ तित्थय० वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागो ।

इस प्रकार प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदोंके समान भंग जानना चाहिए । दो आयु, ६ संहन्त, दो विहायोगतिका प्रत्येक तथा साधारणसे भी सातावेदनीयके समान भंग है । विशेष, मनुष्यायु का सूक्ष्म अपर्याप्तकोंके समान भंग है ।

वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें-देवोंके ओघवत् है । आहारक, आहारकमिश्रकाययोगमें-सर्वार्थसिद्धिके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, यहां असंयत अवस्थावाली प्रकृतियों नहीं हैं ।

§२२०. कार्माणकाययोगियोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । संपूर्ण कार्माण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व कार्माण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । साता वेदनीयके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्वकार्माण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्वकार्माण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?) ।

[विशेष-यहां अवंधक कार्माण काययोगियोंकी संख्या 'संख्यात बहुभाग' मंगत प्रतीत होती है ।]

असाता वेदनीयका सातासे विपरीत क्रम जानना चाहिए । दोनों वेदनीयोंके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष-यहां कार्माण काययोगमें दोनों वेदनीयके वंधक संपूर्ण जीवोंके 'असंख्यातवें भाग' उपयुक्त प्रतीत होते हैं ।]

स्त्रीवेद, पुरुषवेदमें प्रत्येकसे साताके समान भंग हैं । मनुष्यवेदमें असाताका भंग है । सामान्यसे वेदोंका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग जानना चाहिए । देवगदि ४, तीर्थंकर वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व कार्माण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्वकार्माण

अवंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागा । साधारणेण धुविगाणं भंगो कादच्चो । ओरालियअंगो० छसंध० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो । सेसाणं परियत्तियाणं वेदभंगो ।

§२२१. इत्थिवेदेसु—पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० वंधगा सव्वजी०
 ५ केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । पंचदंस० मिच्छत्त-वारसक० भयदु० तेजाक०
 वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्व-इत्थि-
 वेद० केव० ? असंखेज्जदि(जा)भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्व-
 इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदिभागो । दोवेदणी० तिण्णिवेद-जस-अजस० दोगोदाणं
 पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिंदिय-तिरिक्खणीभंगो । आयुगाणं जोणिणीभंगो ।
 १० हस्सरदि-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुविय० पंचसंठा० दोअंगो० छसंध० तिण्णि-आणु०
 आदाउज्जो० दोविहा० तस-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-थिरादि-पंच-दुस्सर-उच्चागोदं च
 पत्तेगेण सादभंगो । अरदि-सोग-तिरिक्खगादि-एहंदिय-ओरालिय-हुंडसंठा०-तिरिक्खाणु०
 परघादुस्सा० थावर-वादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-अथिरादि० ४ णीचागोदं च असादभंगो ।
 एवं पत्तेगेण साधारणेण पंचिंदियभंगो । आहारदुगं तिथयरं च पंचिंदियभंगो । तिण्णि-
 १५ अंगो० छसंध० दोविहा० सुस्सर-दुस्सर-साधारणेण सादभंगो । एवं पुरिसवेदस्स वि ।

काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है । औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बंधकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे साता वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदके समान भंग है ।

§२२१. स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कामाण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ? सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रके प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रिय तिर्यचिनीके समान भंग है । आयुओंमें योनिमतीके समान भंग है । हास्य, रति, तीन गति, चार जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, दो अंगोपांग, ६ संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि पांच, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका प्रत्येकसे साताके समान भंग है । अरति, शोक, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुंडक संस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, शरीर, अस्थिरादि ४ तथा नीच गोत्रके बंधकके असाता वेदनीयके समान भंग है । प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रियके समान भंग है । आहारकद्विक तथा तीर्थकरका पंचेन्द्रियके समान भंग है । तीन अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति, सुस्वर, दुस्वरका सामान्यसे साताके समान भंग है ।

पुरुषवेद में—स्त्रीवेदके समान भंग है ।

§२२२. णवुंसगवेदस्स-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० वंधगा सच्च० केव० ? अणंतभागा । अवंधगा णत्थि । पंचदंस० मिच्छत्त० चारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागा । सच्चणवुंसग-वेदाणं केव० ? अणंतभागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चणवुंसग० केव० ? अणंतभागो । दो-वेयणी० तिण्णिवेद० जस० अज्जस० दोगोदं च पत्तेगेण ५ साधारणेण च तिरिक्खोघं । हस्सरदि-अरदिसोगाणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं । साधारणेण थीणगिद्धिभंगो । आयुचत्तारि वि तिरिक्खोघं । एवं णाम-पगडीणं परियत्तमाणीणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं । साधारणेण थीणगिद्धिभंगो । णवरि अंगोवं० संघड० विहाय० सरणामाणं सादभंगो ।

§२२३. अवगदवेदेसु-पंचणा० चदुदंसणा० सादावे० चदुसंज० जसगि० १० उच्चागो० पंचंत० वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चअवगदवे० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्च-अवगदवे० केव० ? अणंतभागा ।

§२२४. कोधे-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० वंधगा सच्चजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । अवंधगा णत्थि । पंचदंस० मिच्छ० चारसक० भयदुगुं० तेजाक० १५

§२२२. नपुंसकवेदमें— ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४ अगुरुलघु, उपघान, निर्माणके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । संपूर्ण नपुंसकवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व नपुंसकवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । दो वेदनीय, तीन वेद, यज्ञःकीर्ति, अयशःकीर्ति, २ गोत्रका प्रत्येक तथा सामान्यसे तिर्यचोंके ओषधत् नमान समान भंग है । हास्य-रति, अरति-शोकमें प्रत्येकसे तिर्यचोंके ओषधत् भंग है । सामान्यसे ग्यानगृहिके समान भंग है । चार आयुका तिर्यचोंके ओष-समान भंग है । परित्यक्तान नामधर्मणी प्रवृत्तियोंका प्रत्येकसे तिर्यचोंके ओषधत् भंग है । सामान्यसे स्थानगृहिके समान भंग है । विशेष, अंगोवंग, संहनन, विहायोगति तथा स्वरका सातवेदनीयके समान भंग है ।

§२२३. अपगतवेदमें— ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातवेदनीय, ४ संज्वलन, यज्ञःकीर्ति, उद्योगत्र, ५ अंतरायके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व अपगतवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व अपगतवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं ।

§२२४. कोधकषायमें— ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४ अगुरुलघु, उपघान, निर्माणके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं ।

- वण्ण० ४ अणु० उप० णिमि० वंधगा सच्चजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । सच्चकोधेसु केव० ? अणंतभागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चकोधेसु केव० ? अणंतभागो । सादबंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चकोधेसु केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ?
- ५ संखेज्जदिभागो । सच्चकोधेसु केव० ? संखेज्जा भागा । असादबंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चकोधेसु केव० ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चकोधेसु केव० ? संखेज्जदिभागो । दोण्णं वेदणीयाणं वंधगा सच्चजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । अवंधगा णत्थि । एवं जस० अज्जस० दोगोदं च । इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो । णवुंस० असादभंगो ।
- १० साधारणेण तिण्णिवेदाणं वंधगा सच्चजी० केव० ? चदुभागा देसूणा । सच्चकोधेसु केव० ? अणंतभागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चकोधेसु केव० ? अणंतभागो । एवं हस्सरदि-दोयुगलं । पंचजादि-छसंठा०-तसथावरादि-अट्टयुगल-तिण्णिआयु-बंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चकोधेसु केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । सच्चकोधेसु केव० ? अणंतभागो ।
- १५ एवं दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-दोआणु० । तित्थय०-तिरिक्खाउ० सादभंगो । चदुण्णं

कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ? सर्व क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सप्तावेदनीयके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । असातावेदनीयके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दोनों वेदनीयोंके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रोंका इसी प्रकार भंग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके प्रत्येकक्री अपेक्षा साताके समान भंग जानना चाहिए । नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है । सामान्यसे तीन वेदोंके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । हास्य-रति, अरति-शोकमें वेदोंके समान भंग हैं । ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि आठ युगल तथा तीन आयुके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं । संपूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । दो गति, २ शरीर, दो अंगोपांग, दो आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए । तीर्थंकर तथा

आयुगाणं तिरिक्खायुभंगो । तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० असादभंगो । मणुस-
गदि-ओरालि० अंगो० छसंघड० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा०
दोसर० पत्तेगेण वि साधारणेण वि सादभंगो । चदुगदि-चदुआणु० साधारणेण
वेदभंगो । ओरालिय० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसुणो । सव्वकोधेसु
केव० ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकोधेसु केव० ? ५
अणंतभागो । तिणिसरीराणं साधारणेण वेदभंगो । एवं माणमायावि ।

§२२५. लोभेसु-पंचणा० चदुदंसणा० पंचंतरा० बंधगा सव्वजी० केव० ?
चदुभागो सादिरेयो । अवंधगा णत्थि । पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो । सव्व-
लोभाणं केव० ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वलोभाणं १०
केव० ? अणंतभागो । सादासादं पत्तेगेण कोधभंगो । साधारणेण दोण्णं वेदणीयाणं
बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो । अवंधा (धगा) णत्थि । अथवा साद-
बंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वलोभे केवडिओ भागो ? संखेज्जदि-
भागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो । सव्वलोभे केव० ? संखे-

तिर्यंचायुका साताके समान भंग है । चारों आयुओंका तिर्यंचायुके समान भंग है । तिर्यंचगति,
तिर्यंचानुपूर्वीका असाताके समान भंग है । मनुष्यगति, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानु-
पूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे भाग
के समान भंग है । चार गति, चार आनुपूर्वीका सामान्यसे वेदके समान भंग है । औदारिक
शरीरके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं । संपूर्ण क्रोधियोंके कितने
भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण
क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । तीनों शरीरका साधारणसे वेदके समान भंग है ।

मान तथा मायाकपायमें—क्रोधके समान भंग है ।

§२२५. लोभकपायमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतःकरणके बंधक सर्वजीवोंके कितने
भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । पांच दर्शनावरण, मिथ्याज्ञा, १६ कण्ठ,
भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बंधक सर्वजीवोंके कितने
भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । संपूर्ण लोभियोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं ।
अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ?
अनंतवें भाग हैं । साता-असाताका प्रत्येकसे क्रोधके समान भंग है । सामान्यसे दोहों देखीये
बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । मायाकपायमें
बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ?
संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । सर्वलोभियों
के कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?) ।

ज्जदिभागो (जाभागा) । असादबंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चलोमे केव० ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सच्चलोमे केव० ? संखेज्जदिभागो । एवं जस० अज्जस० दोगोदं च । तिण्णिवे० [हस्मादि] दायुगल० चदुआयु०-चदुगदि-पंचजादि-सच्चसरीर-संसंठा०-तिण्णियंगो० संसंव० चदुआणु० परघा-
५ दुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० तसथावरादिणवयुगलानं क्रोधभंगो । णवरि यं हि चदुभागे देसणे तं हि चदुभागो सादिरेयो कादव्यो । एवं णाणत्तं कोधादू० (?) ।

§२२६. अकसाई-केवल (ल) णा० केवलदंसणा० सादावे० अवगदवेदभंगो ।

§२२७. मदि० सुद०-धुविगाणं मिच्छत्तं वज्ज एहंदियभंगो । मिच्छत्तं सेसाणं च तिरिक्षोव ।

१० §२२८. विभंगे-धुविगाणं बंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । मिच्छत्त-परघादुस्सास-वादरपज्जत्त-पत्तेयाणं बंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चविभंगा केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चविभंगे केव० ? असंखेज्जदिभागो । दोवेदणीय-तिण्णिवेदणीय (वेद) सच्चयुगलानं

[विशेष-यहाँ अवंधक सर्वलोभियोंकी संख्या 'संख्यात बहुभाग' उपयुक्त प्रतीत होती है ।]

असाताके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार भंग हैं । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, चार आयु, चार गति, ५ जाति, सर्व शरीर, ६ संस्थान, तीन अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थायरादि ९ युगलका क्रोधके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, जहाँ पर देशोन चार भाग हो, वहाँ इसमें साधिक चार भाग कर लेना चाहिए । यही क्रोधसे यहाँ विशेषता है ।

§२२६. अकपायी, केवलज्ञानी, केवलदर्शनीमें-साता वेदनीयका अपगतवेदके समान भंग है ।

§२२७. मत्त्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें-मिथ्यात्वको छोड़कर शेष ध्रुव प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है । मिथ्यात्व तथा शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् भंग है ।

§२२८. विभंगज्ञानमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । मिथ्यात्व, परघात, उच्छ्वास, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वविभंग ज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व विभंगज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीय, तीन वेदनीय (वेद) संपूर्ण युगल प्रकृतियोंके प्रत्येक तथा सामान्यसे देवगतिके ओघवत् जानना चाहिए ।

[विशेष-यहाँ तीन वेदनीयके स्थानमें 'तीन वेद' पाठ संगत प्रतीत होता है ।]

पत्तेगेण साधारणेण वि देवोधं । तिण्णिआयु-दोगदि-तिण्णिजादि-वेगुव्वियअंगोवंग-
दोआणुपुव्वि० सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० मणजोगीणं णिरयगदिभंगो । तिरिक्खगदि-
एइंदिय-हुंउसंठाण-तिरिक्खाणुपुव्वि-थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च असादभंगो ।
पंचिंदियजादि-ओरालिय० अंगो० छसंध० मणुसगदि० मणुसगदि-पाओग्गाणुपु०
आदाउज्जो० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो । ओरालियसगीरस्स ५
वादरभंगो केण कारणेण देवगदि-बंधगाणं असंखेज्जदिभागो ? असंखेज्जवासायुगेसु
विभंगणाणिवा(रा)सिस्स असंखेज्जदिभागो विभंगे वट्टदि । तदो असंखेज्जवासायुगादो
देवा असंखेज्जगुणा त्ति ।

§२२९. आभि० सुद० ओधिणा०-पंचणा० छदंस० वारसक० पुरिस० भयदु०
पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तन० १०
४-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ?
अणंतभागो । सव्वबंधगा आभि०-सुद०-ओधि० केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा
सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वआभिणि-सुद०-ओधिणा० केव० ? असंखेज्जदि-
भागो । दोवेदणीयं हस्सरदि-दोयुगलं थिरादि तिण्णियुगलं मणजोगिभंगो । दोआयु-
गदिचदुक्कं आहारदुगं तित्थयरं विभंगणाणं च देवगदिभंगो । मणुसगदि-पंचगं १५

३ आयु, २ गति, तीन जाति, वैक्रियिक अंगोपांग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण-
का मनोयोगियोंके नरकगतिके समान भंग हैं । तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुंढकमंग्यान,
तिर्यचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि पंचक तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग हैं । पंचेन्द्रिय
जाति, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, दशोत्त, दो
विहायोगति तथा दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे भी साताके समान भंग हैं ।

शंका-औदारिक शरीरका वादर भंग किस कारणसे देवगतिके बंधकोंके असंख्यताके
भाग हैं ?

समाधान-विभंगज्ञानियोंकी राशिका असंख्यातवां भाग असंख्यात वर्षकी आनुपूर्विकी विभंग
ज्ञानमें रहता है, इस कारण असंख्यात वर्षकी आनुपूर्विकी देव असंख्यात गुणे हैं ।

§२२९. आभिनिबोधिक-धुत-अवधिज्ञानमें—५ ज्ञानापरस्स, ६ दर्शनापरस्स, १३ पण्य, पुग्ग-
वेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कान्हा शरीर, समचदुग्गसंभयान, पसत्थभंगंभय,
वर्ण ४, अगुरुलपु ४, प्रशस्तविहायोगति, व्रस ४, सुभग, सुग्ग, अदंय, तिरिक्ख, उव्वरीय, वण
५ अंतरायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण आभिनिबोधिक-धुत-
अवधिज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? अनंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ?
अनंतवें भाग हैं । संपूर्ण आभिनिबोधिक-धुत-अवधिज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? अनंख्यात
भाग हैं । दो वेदनीय, एत्थ-रति, अरति-शय, तिरिक्खदि तीन पण्योंका मनोयोगियोंके समान
भंग हैं । दो आयु, ४ गति, आहारयद्रिय, तीर्थधरके विभंगज्ञानियोंके देवगतिके समान भंग हैं ।

ध्रुविगाणं भंगो । पत्तेगेण साधारणेण वि गदिध्रुविगाणं भंगो । एवं दोमरीर-दोअंगो०
दोआणु० । एवं ओधिदं० ।

§२३०. मणपज्जव०-मणुसिभंगो । णवरि वेदणीयस्स अवंधगा णत्थि । एवं
संजदेपि । वेदणीयस्स अवंधगा अत्थि ।

५ §२३१. सामाइ० छेदो०-पंचणा० चदुदंस० लोभसंजलण-उच्चागोद-पंचंतरादगाणं
केवडिओ भागो ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । सेसं मणपज्जवभंगो ।

§२३२. परिहार०-आहारकाजोगिभंगो ।

§२३३. सुहुमसंप०-पंचणा० चदुदंस० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० वंधगा
सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि ।

१० §२३४. यथाक्खाद०-सादबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वयथाक्खाद०
केव० ? संखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वयथाक्खाद०
केव० ? संखेज्जा भागा (संखेज्जदिभागो) । संजदासंजदस्स अणुत्तरभंगो । णवरि
देवायुतित्थयरं च ओधिभंगो । असंजदा तिरिक्खोघं । तित्थयरं मूलोघं । चक्खुदंस०

मनुष्यगति ५ के ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है । प्रत्येक तथा साधारणसे गतिका ध्रुव प्रकृतियोंके
समान भंग है । दो शरीर, दो अंगोपांग, दो आनुपूर्वीका भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।
अवधिदर्शन में-उपरोक्त ज्ञानत्रयके समान है ।

§२३०. मनःपर्ययज्ञानमें-मनुष्यनियोंके समान भंग है । विशेष, यहां वेदनीयके अवंधक नहीं
हैं । संयतोंमें इसी प्रकार है । विशेष, यहाँ भी वेदनीयके अवंधक नहीं हैं ।

§२३१. सामायिक-छेदोपस्थापना संयममें-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ-संज्वलन,
उच्चगोत्र तथा ५ अंतरायके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक
नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका मनःपर्ययज्ञानके समान भंग हैं ।

§२३२. परिहारविशुद्धिसंयममें-आहारकाययोगीके समान भंग हैं ।

§२३३. सूक्ष्म-सांपराय-संयममें-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति,
उच्चगोत्र, ५ अंतरायके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं ।

§२३४. यथाख्यात संयममें-साता वेदनीयके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें
भाग हैं । सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके
कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात
बहुभाग हैं ।

[विशेष-यहाँ सर्व यथाख्यात संयमियोंमें अवंधकोंकी गणना संख्यातवें भाग ठीक प्रतीत
होती है ।]

संयमासंयममें-अनुत्तरवासी देवोंके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, देवायु और तीर्थ-
करप्रकृतिका अवधिज्ञानके समान भंग है । असंयतोंमें-तिर्यचोंके ओघवत् जानना चाहिए ।
तीर्थकरका मूलके ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० काजोगिभंगो ।

§२३५. किण्णाए-पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराङ्गाणं वंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त० अणंताणु० ४ वंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागा सादिरेया । सव्वकिण्णाए केव० ? अणंता भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? ५ अणंतभागो । सव्वकिण्णाए केव० ? अणंतभागो । एवं लोभभंगो पत्तेगेण साधारणेण वि । णवरि दुपगदीणं वंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो । अवंधा (धगा) णत्थि । एवं परियत्तमाणीणं सव्वाणं आयुगाणं अंगोवंग-संधडण-विहायगदिसरवज्जाणं पि । एदासि पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो । एवं णीलकाऊणं । णवरि तिभागो देवुणो ।

§२३६. तेऊए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० १० ४ वादरपज्जत्ते (?) णिमि० पंचंत० वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । दोआयु आहारदुगं० तित्थयरं च ओधिभंगो । वारसकसायाणं थीणगिद्धि-भंगो । देवगदिचदुक्कं सादभंगो । सेसाणं देवोधं ।

§२३७. पम्माए-पंचणाणावरणीय-छदंसणा० चदुसंजलण० भयदु० पंचिदि० तेजा-

चक्षुदर्शनमें—त्रस-पर्याप्तकका भंग है । अचक्षुदर्शनमें—काययोगियोंके समान भंग है ।

§२३५. कृष्णलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अंतरायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक तीन भाग प्रमाण हैं । अवंधक नहीं हैं । स्थानगृद्धिप्रिक, निध्यात्य, अनंतानुबंधी ४ के बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक त्रिभाग हैं । सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? अणंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवै भाग हैं । सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? अनंतवै भाग हैं । प्रत्येक तथा सामान्यसे लोभकषायके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, साता-असातारूप दो प्रकृतियोंके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सादिक त्रिभाग हैं । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार परिवर्तमान गर्भ आयु, अंगोवंग, संधडण तथा विहायोगतिका जानना चाहिए । यहाँ स्वरूपों छोड़ देना चाहिए । इनका प्रमाण तब भगवत्कर्म सातावेदनीयके समान भंग है । नील तथा कापोतलेश्यामें—ऐसा ही जानना चाहिए । विशेष, सात देशोंन त्रिभाग जानना चाहिए ।

§२३६. तेजोलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ४ संव्यक्त, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, प्रत्येक, निर्माण, ५ अंतरायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवै भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । दो आयु, आहारदुगं, च, तित्थयर तथा ओधिभंगके समान भंग हैं । वारस कषायोंका स्थानगृद्धिके समान भंग जानना चाहिए । देवगदिचदुक्कं साता वेदनीयके समान भंग है । दो प्रकृतियोंके देवोंके अंगोवंग है ।

§२३७. पद्मलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संव्यक्त, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, प्रत्येक, निर्माण, ५ अंतरायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवै भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । दो आयु, आहारदुगं, च, तित्थयर तथा ओधिभंगके समान भंग हैं । वारस कषायोंका स्थानगृद्धिके समान भंग जानना चाहिए । देवगदिचदुक्कं साता वेदनीयके समान भंग है । दो प्रकृतियोंके देवोंके अंगोवंग है ।

- क० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत० वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंत-
भागो । अवंधगा णत्थि । थीणग्गिद्वितियं मिच्छत्तं वारसक० सच्चजी० केव० ?
अणंतभागो । सच्चपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ?
अणंतभागो । सच्चपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो । दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलाणं
५ थिरादित्तिणियुगलाणं तेउभंगो । इत्थि० णवुंस० वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंत-
भागो । सच्चपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंत-
भागो । सच्चपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा । पुरिस० वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंत-
भागो । सच्चपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो ।
सच्चपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो । तिण्णिवेदाणं सच्च० केव० ? अणंतभागो ।
१० अवंधगा णत्थि । एवं णवुंसगभंगो तिण्णि-आयु-दोगदि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०
अंगो० छसंध०-दोआणु० उज्जोव० अप्पसत्थि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० ।
पुरिस० वेदभंगो देवगदि० वेगुव्वियस० समचदु० वेउव्वि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थि०
सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च । आहारदुगं तित्थयरं देवायुभंगो । साधारणेण वि
तिण्णिवेदाणं भंगो तिण्णिगदि-दोसरीर-छसंठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहाय०
१५ थिरादिछयुगलं दोगोदं च । तिण्णिआयु-छसंध० साधारणेण वि इत्थिभंगो ।

तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अंतरायके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धिन्निक, मिथ्यात्व, १२ कपायके वंधक सर्व-जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वपद्म लेश्या-वालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलोंका तेजोलेश्याके समान भंग है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । पुरुषवेदके वंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पद्म लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वपद्म लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तीन वेदोंके वंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । तीन आयु, २ गति, औदारक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अग्र-शस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका नपुंसक वेदके समान भंग है । देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवाणुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका पुरुष वेदके समान भंग है । आहारकद्विक, तीर्थकरका देवायुके समान भंग है । तीन गति, दो शरीर, ६ संस्थान, दो अंगोपांग, तीन आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल, दो गोत्रका सामान्यसे वेदत्रयके समान भंग जानना चाहिए । तीन आयु, छह संहननका सामान्यसे स्त्रीवेदके समान भंग है ।

§२३८. सुक्काए-पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदु० पंचिदि० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत० वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो । धीणागिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणंताणुबंधि० ४
तित्थयरं वंधगा केव० ? अणंताभागो (अणंतभागो) । सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जदि- ५
भागा (गो) । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जा
भागा । दोवेदणी० हस्तादिदोयुगलं-धिरादितिणियुगलं च मणजोगिमंगो । इत्थि०
णवुंस० पंचसंठा० पंचसंध० अप्सत्थि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च धीण-
गिद्धिमंगो । पुरिस० पसत्थवि० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं अनादभंगो । दोआयु-
दोगदि-आहारदु० ओधिभंगो । मणुसगदि० ४ वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । १०
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो । एवं पत्तेगेण साधारणेण वि तिण्णिवेद-
दोगदि-तिण्णिसरीर-छसंठाण दोअंगो० छसंध० दोआणुपु० दोविहाय० सुभगादि-
तिण्णियुगल-दोगोदं आभिणि० भंगो । अट्ठपदं तेउ-लेस्सिग-तिरिक्ख-मणुसा०
णवुंसगवेदं ण वंधंति । पम्माए० सुक्कले० इत्थि-णवुंसकवेदं ण वंधंति । भवसिद्धिया १५

§२३८. शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, लुगुणा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अंतरायोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । त्यानगृद्धिद्रिक्, मिध्यात्, अनंतानुबंधी ४ तथा नौद्वयके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । दो वेदनीय, प्रत्यक्ष, अति-संघ, मिश्रदि भंग युगलका मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए । सौवेद, ननुसकवेद, ५ संघात, ५ संघात अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भंग, दुस्सर, अनादेय, नीच नोद्वय, ननुसकवेदके समान भंग हैं । पुराण वेद, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्सर, आदेय तथा उच्चागोदका समान भंग हैं । दो आयु, दो गति, आहारकद्रिक्का अवधिमानके समान भंग हैं । ननुसक वेद ५ वेदोंके सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । दो वेद, २ संधि, ३ संघ, ३ संघात, २ अंगोपांग, ६ संघात, २ आयुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभगादि भंग युगल, दो नोद्वय-अनादेय तथा इत्येकमे अभिनिरोधिक मानके समान भंग हैं । अर्थ यह यह है कि वेदोंके लेश्या-विषय तथा ननुसक ननुसकवेदका वेद नही बनते हैं यह तथा शुक्ल लेश्याके संबंध में

- क० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंत-
भागो । अवंधगा णत्थि । थ्रीणगिद्वितियं मिच्छत्तं वारसक० सव्वजी० केव० ?
अणंतभागो । सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ?
अणंतभागो । सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो । दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलानं
५ थिरादित्तिणियुगलानं तेउभंगो । इत्थि० णवुंस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंत-
भागो । सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंत-
भागो । सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा । पुरिस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंत-
भागो । सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।
सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो । तिण्णिवेदाणं सव्व० केव० ? अणंतभागो ।
१० अवंधगा णत्थि । एवं णवुंसगभंगो तिण्णिआयु-दोगदि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०
अंगो० छसंध०-दोआणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूमग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० ।
पुरिस० वेदभंगो देवगादि० वेगुच्चियस० समचदु० वेउच्चि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थ०
सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च । आहारदुगं तित्थयरं देवायुभंगो । साधारणेण वि
तिण्णिवेदाणं भंगो तिण्णिगदि-दोसरीर-छसंठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहाय०
१५ थिरादिछयुगलं दोगोदं च । तिण्णिआयु-छसंध० साधारणेण वि इत्थिभंगो ।

तैजस-कामीण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अंतरायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धित्विक, मिथ्यात्व, १२ कपायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वपद्म लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलोंका तेजोलेश्याके समान भंग है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । पुरुषवेदके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व पद्म लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वपद्म लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तीन वेदोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । तीन आयु, २ गति, औदारक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अग्र-शस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका नपुंसक वेदके समान भंग है । देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका पुरुष वेदके समान भंग है । आहारकद्विक, तीर्थकरका देवायुके समान भंग है । तीन गति, दो शरीर, ६ संस्थान, दो अंगोपांग, तीन आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल, दो गोत्रका सामान्यसे वेदत्रयके समान भंग जानना चाहिए । तीन आयु, छह संहननका सामान्यसे स्त्रीवेदके समान भंग है ।

§२३८. सुक्काए-पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदु० पंचिदि० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पंचंत० वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणंताणुबंधि० ४
तित्थयरं वंधगा केव० ? अणंतभागो (अणंतभागो) । सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जदि- ५
भागा (गो) । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जा
भागा । दोवेदणी० हस्तादिदोयुगलं-थिरादितिणियुगलं च मणजोगिभंगो । इत्थि०
णवुंस० पंचसंठा० पंचसंध० अप्पसत्थ० दूमग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च थीण-
गिद्धिभंगो । पुरिस० पसत्थवि० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं असादभंगो । दोआयु-
दोगदि-आहारदु० ओधिभंगो । मणुसगदि० ४ वंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । १०
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो ।
सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो । एवं पत्तेगेण साधारणेण वि तिणिवेद-
दोगदि-तिणिसरीर-छसंठाण दोअंगो० छसंध० दोआणुपु० दोविहाय० सुभगादि-
तिणियुगल-दोगोदं आभिणि० भंगो । अट्ठपदं तेउ-लेस्सिग-तिरिक्ख-मणुसा०
णवुंसगवेदं ण वंधंति । पम्माए० सुक्कले० इत्थि-णवुंसकवेदं ण वंधंति । भवसिद्धिया १५

§२३८. शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अंतरायोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । स्त्यानगृद्धिक्क, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ तथा तीर्थंकरके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलका मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका स्त्यानगृद्धिके समान भंग है । पुरुष वेद, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुत्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भंग है । दो आयु, दो गति, आहारकट्टिकका अवधिज्ञानके समान भंग है । मनुष्य गति ४ के बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तीन वेद, २ गति, ३ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभगादि तीन युगल, दो गोत्रका सामान्य तथा पृथक्से आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है । अर्थ पद यह है कि तेजोलेश्यावाले तिर्यच तथा मनुष्य नपुंसकवेदका बंध नहीं करते हैं । पद्म तथा शुक्ल लेश्यामें स्त्रीवेद तथा

ओघभंगो ।

§२३९. अन्धवसि०-तिणिआयु० वेउच्चियल्लक्क० वंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्च-अन्धवसिद्धिया केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चअन्धवसिद्धिया केव० ? अणंतभागो (गा) । तिरिक्खायु ५ सादभंगो । आयुचत्तारि तिरिक्खायुभंगो । धुवबंधगा सच्चजी० केव० ? अणंत-भागो । अवंधगा णत्थि । सेसाणं पगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिदियतिरिक्खभंगो ।

§२४०. सम्मादिट्ठि-खड्गसम्मादिट्ठीसु-पंचणा० छदंसणा० वारसक० पुरिस० भयदु० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसह० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्यवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराहगाणं वंधगा सच्चजी० १० केव० ? अणंतभागो । सच्चसम्मादिट्ठि-खड्गसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चसम्मादिट्ठि-खड्गसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो (गा) । एवं सच्चपगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि एस भंगो कादच्चो ।

नपुंसकवेदका बंध नहीं करते हैं । अभ्यसिद्धिकोंमें ओघवत् भंग है ।

§२३९. अभव्यसिद्धिकोंमें—३ आयु, वैक्रियिकपटक्के बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व अभव्यसिद्धिकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व अभव्यसिद्धिकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं (?) ।

[विशेष—यहाँ अवंधक अभव्योंके 'अनंत बहुभाग' होना उचित प्रतीत होता है ।]

तिर्यचायुका साता वेदनीयके समान भंग है । ४ आयुका तिर्यचायुके समान भंग जानना चाहिए । ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान भंग हैं ।

§२४०. सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुरुषवेद, भय-जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र, ५ अंतरायके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्वसम्यग्दृष्टि-क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक सर्व सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं (?) ।

[विशेष—अवंधक सर्व सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके 'अनंत बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है ।]

सामान्य तथा प्रत्येकसे सर्व प्रकृतियोंका इसी प्रकार भंग है ।

§२४१. वेदगसम्मादिद्वि-ध्रुविगाणं बंधगा सव्वजी० के० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । सेसाणं पत्तेगेण-ओधिभंगो । साधारणेण ध्रुविगाणं भंगो कादव्वो ।

§२४२. उवसम०-ओधिभंगो । णवरि विसेसो जाणिदव्वा ।

§२४३. सासणसम्मा०-ध्रुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । तिण्णि आयु० देवगदि० ४ पत्तेगेण सुक्काए भंगो । सेसाणं पत्तेगेण ५ ओधिभंगो । साधारणेण देवोघं ।

§२४४. सम्मामिच्छा०-ध्रुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा णत्थि । दोवेदणीयं हस्सादिदोयुगलं थिरादितिणियुगलं देवभंगो । मणुसगदि-पंचगं देवगदि० ४ सुक्काए भंगो । पत्तेगेण साधारणेण वेदणीयभंगो । मिच्छादिद्वि-मदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-अवंधगा णत्थि । सण्णिमणजोगिभंगो । असण्णि-१० ध्रुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंता भागा । अवंधगा णत्थि । सेसाणं पगदीणं तिरिक्खोघं ।

§२४५. आहारगे-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४

§२४१. वेदकसम्यक्त्वीमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानके समान भंग है । सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंका भंग जानना चाहिए ।

§२४२. उपशमसम्यक्त्वीमें-अवधिज्ञानके समान भंग है । इसमें जो विशेषता है, वह जान लेनी चाहिए ।

[विशेष-जैसे मनुष्यायु तथा देवायुका बंध उपशमसम्यक्त्वमें नहीं होता है । तिर्यचायु तथा नरकायुका बंध तो सम्यक्त्वी मात्रके नहीं होगा, कारण नरकायुकी बंध-व्युच्छित्ति मिथ्यात्वमें और तिर्यचायुकी सासादनमें हो जाती है ।]

§२४३. सासादनसम्यक्त्वीमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । नरकायुको छोड़कर शेष ३ आयु, देवगति ४ का पृथक् रूपसे शुक्लेश्याके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानवत् भंग है । सामान्यसे देवोंके ओघवत् है ।

§२४४. सम्यक्त्वमिध्यात्वीमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक नहीं हैं । दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलका देवगतिके समान भंग है । मनुष्यगतिपंचक, देवगति ४ का शुक्लेश्याके समान भंग है । प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान भंग है । मिथ्यादृष्टिमें-मत्यज्ञानके समान भंग है । विशेष, यहाँ मिथ्यात्वके अवंधक नहीं हैं ।

संज्ञीमें-मनोयोगीके समान भंग है । असंज्ञीमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका तिर्यचोक्ति ओघवत् भंग है ।

§२४५. आहारकमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-दुःख-...

अगु० उप० णिमि० पंचंत० वंधगा सच्चजी० केव० ? असंखेजा भागा । सच्चआहार-
 गेसु केव० ? अणंत भागा । अवंधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चआहारगेसु
 केव० ? अणंतभागो । साद-बंधगा सच्चजी० केव० ? संखेजदिभागो । सच्च-आहारगेसु
 केव० ? संखेजदिभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ? संखेज्जा भागा । सच्चआहारगेसु
 ५ केव० ? संखेज्जा भागा । एवं असादं पडिलोमं भाणिदच्चं । दोवेदणीयबंधगा सच्चजी०
 केव० ? असंखेजा भागा । अवंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० सादभंगो । णवुंस०
 असादभंगो । तिण्णि वेदाणं वंधगा सच्चजी० केव० ? असंखेजा भागा । उवरि
 णाणावरणीयभंगो । तिण्णि-आयु-वेउव्वियल्लक्कं आहारदुगं तित्थयरं वंधगा सच्चजी०
 केव० ? अणंतभागो । सच्च-आहार० केव० ? अणंतभागो । अवंधगा सच्चजी० केव० ?
 १० असंखेजा भागा । सच्च० आहार० केव० ? अणंतभागो (गा) । एवं हस्सादीणं पत्तेगेण
 साधारणेण वेदभंगो कादच्चो सच्च आयु० अंगोवंगं संघडणं आहार-गदि-सरं मोत्तूण ।
 (?) एदाणं पि सादभंगो पत्तेगेण साधारणेण वि ।

§२४६. अणाहारगेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक०

तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायके बंधक सर्व जीवोंके कितने
 भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक
 सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं ? सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें
 भाग हैं । साताके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व आहारकोंके
 कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग
 हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । असाताके विषयमें प्रतिलोम
 क्रम है । अर्थात् असाताके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । सर्व
 आहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ?
 संख्यातवें भाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीयके बंधक
 सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अवंधक नहीं हैं । स्त्री, पुरुषवेदमें साता
 वेदनीयके समान भंग है । नपुंसकवेदमें असाता वेदनीयके समान भंग है । तीन वेदोंके बंधक
 सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें ज्ञानावरणके समान
 भंग है । तीन आयु, वैक्रियिकपट्क, आहारकट्टिक, तीर्थंकरके बंधक सर्वजीवोंके कितने
 भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । अवंधक
 सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अन-
 तवें भाग हैं (?)

[विशेष—यहाँ अवन्धकोंका सर्व आहारकोंके 'अनन्त बहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है ।]

हास्यादि प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे वेदके समान भंग है । सर्व आयु अंगोर्पाग,
 संहनन, आहारकट्टिक, विहायोगति तथा स्वरके विषयमें वेदका पूर्वोक्त वर्णन नहीं लगाना
 चाहिए । इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है ।

§२४६. अनाहारकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा,

वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्व-अणाहारका० केव० ? अणंतभागा । अवंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वअणाहार० केव० ? अणंतभागो । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदि-
भागो । सव्वअणाहारगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वजी० केव० ?
असंखेज्जदिभागो । सव्वअणाहारगेषु केव० ? संखेज्जा भागा । असाद-पडिलोमं भाणि-
दव्वं । दोण्णं बंधगाणं णाणावरणीयभंगो । देवगादि० ४ तित्थयराणं आहारभंगो ।
सेसाणि कम्माणि पत्तेणेण साधारणेण य कम्मइगभंगो ।

एवं भागाभागं समत्तं ।



तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? अनंत बहुभाग हैं । अवंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? अनंतवें भाग हैं । साताके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । असाताका प्रतिलोम क्रम जानना चाहिए । अर्थात् असाताके बंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अवंधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । असाता-साताके बंधकोंका ज्ञानावरणके समान भंग हैं । देवगति ४, तीर्थकरका आहारके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे कार्माण काययोगीके समान भंग है ।

इस प्रकार भागाभाग-प्ररूपणा समाप्त हुई ।

[परिमाणानुगम-परूवणा]

§२४७. परिमाणानुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।

§२४८. तत्थ ओघेण—पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त-सोलसकसाय-भय-दु-
गच्छा-तेजाकम्मदग्ग-वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-उज्जोव-णिमिण-पंचंतराद्दगाणं वंधगा
५ अवंधगा केवडिया ? अणंता । सादवंधगा वंधगा केव० ? अणंता । असादवंधा (धगा)
अवंधगा केव० ? अणंता । दोण्णं वेदणीयाणं वंधा (धगा) अवंधगा अणंता । एवं
सत्तणोक० पंचजादि-छसंठाणं छसंध० दोविहाय० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदं
च । तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्क-तित्थयरं वंधगा केव० ? असंखेज्जा । अवंधगा
केत्तिया ? अणंता । तिस्सिस्सायु-दोगादि-ओरालिय० ओरालि० अंगो० दोआणुपु-
१० व्वीणं वंधगा अवंधगा केत्तिया ? अणंता । चदुआयु-चदुगादि-दोसरीर-दोअंगो० चदु-
आणुपुव्वीणं वंधगा अवंधगा केत्तिया ? अणंता । आहारदुगस्स वंधगा केत्तिया ?
संखेज्जा । अवंधगा केत्तिया ? अणंता ।

[परिमाणानुगम]

§२४७. परिमाणानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते हैं ।

§२४८. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-
कामीण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके बंधक और अवंधक
कितने हैं ? अनंत हैं^१ । साता वेदनीयके बंधक और अवंधक कितने हैं ? अनंत हैं । असाताके
बंधक-अवंधक कितने हैं ? अनंत हैं । दोनों वेदनीयोंके बंधक-अवंधक अनंत हैं । ७ नोकपाय
(भय-जुगुप्साको छोड़कर) ५ जाति, ६ संस्थान, ६ संहनन, दो विहायोगति, त्रस स्थावरादि-
दस युगल और दो गोत्रके बंधकों-अवंधकोंका भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

नरक-देव-मनुष्यायु, वैक्रियिकपट्क तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बंधक कितने हैं ? असंख्यात
हैं । अवंधक कितने हैं ? अनंत हैं । तिर्यंचायु, दो गति (तिर्यंच-मनुष्यगति), औदारिक शरीर,
औदारिक अंगोपांग, २ आनुपूर्वी (तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी) के बंधक-अवंधक कितने हैं ? अनंत
हैं । चार आयु, ४ गति, दो शरीर (औदारिक, वैक्रियिक), दो अंगोपांग (औदारिक-वैक्रियिक
अंगोपांग), ४ आनुपूर्वीके बंधक-अवंधक कितने हैं ? अनंत हैं । आहारकद्विकके बंधक
कितने हैं ? संख्यात हैं । अवंधक कितने हैं ? अनंत हैं ।

[विशेष—^२आहारकद्विकके बंधक अप्रमत्त संयत होते हैं । उनकी संख्या संख्यात है ।]

१ “ओघेण मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता ॥”—पटखं ८० सू० २ ।

२ “अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥” पटखं ८० सू० ८ ।

§२४९. आदेशेण—णिरयेसु—ध्रुविगाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि ४-तिरिक्खायु-उज्जोव-तित्थयराणं बंधगा अवंधगा असंखेज्जा । सादासादबंधगा असंखेज्जा । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अवंधगा णत्थि । मणुसायुबंधगा केत्तिया ? संखेज्जा । अवंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । सेसाणं परियत्तमाणियाणं वेदणीयभंगो कादव्वो । ५. एवं सव्वणेरइगाणं ।

§२५०. तिरिक्खेसु—ध्रुविगाणं बंधगा केत्तिया ? अणंता । अवंधगा णत्थि । थीण-गिद्धितिग-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराणं बंधगा केत्तिया ? अणंता । अवंधगा असंखेज्जा । सादासादबंधगा-अवंधगा केत्तिया ? अणंता । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया ? अणंता । अवंधगा णत्थि । तिण्णि-आयु० वेउव्वियल्लक्कं बंधगा केत्तिया ? १० असंखेज्जा । अवंधगा अणंता । एवं वेदणीय-भंगो सव्वणं परियत्तमाणियाणं । णवरि चदुआयु-दो अंगो० छसंध० परघादुस्सा० दोविहा० दोसर० बंधगा अवंधगा केत्तिया ?

§२४९. आदेशसे—नरकगतिमें, ध्रुव^१ प्रकृतियोंके बंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवंधक नहीं है । स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरके बंधक अवंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं^२ । साता-असाताके बंधक असंख्यात हैं । दोनों वेदनीयके बंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवंधक नहीं हैं । मनुष्यायुके बंधक कितने हैं ? संख्यात हैं । अवंधक कितने हैं । असंख्यात हैं । शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । संपूर्ण नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§२५०. तिर्यंचगतिमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक कितने हैं ? अनंत हैं । अवंधक नहीं हैं । स्थान-गृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४ तथा औदारिक शरीरके बंधक कितने हैं ? अनंत हैं । अवंधक असंख्यात हैं । साता-असाताके बंधक-अवंधक कितने हैं ? अनंत हैं । दोनों वेदनीयके बंधक कितने हैं ? अनंत हैं । अवंधक नहीं हैं । तीन आयु (तिर्यंचायुको छोड़ कर), वैक्रियिकषट्क (देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग) के बंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवंधक अनंत हैं ।

[विशेष—आयुत्रिकमें यदि तिर्यंचायु सम्मिलित की जाती, तो बंधक असंख्यात न होकर अनंत हो जाते, अतः आयुत्रिकको तिर्यंचायु विरहित समझना चाहिए ।]

इस प्रकार सर्व परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भंग समझना चाहिए । विशेष यह है कि चार आयु, दो अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, दो स्वरके बंधक अवंधक कितने हैं ? अनंत हैं ।

(१) "धादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिभिणवण्णचओ । सत्तेतालुधुवां चदुघा सेहानपं च दुघा ॥"—गो० क० गा० १२४ ।

(२) "णिरयगईए णेरइएतु मिच्छाइही दव्वमणोण केवडिया ? असंखेज्जा ।"—मट्ठ० ६० सू० १५ ।

अणंता । एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख० ३ । णवरि असंखेज्जं कादव्वं ।

§२५१. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेमु-धुविगाणं वंधगा असंखेज्जा । अवंधगा णत्थि । सेसाणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो । एवं सच्चविगल्लिंदिय-सच्चपुटवि० आउ० तेउ० वाउ० वादरवणप्फदिपत्तेय-एहंदिय-वणप्फदि-णियोदाणं एवं चेव । णवरि अणंतं ५ कादव्वं । णवरि मणुसायुवंधगा अवंधगा असंखेज्जा ।

§२५२. मणुसेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० वंधगा असंखेज्जा । अवंधगा संखेज्जा । सादासाद-बंधगा अवंधगा असंखेज्जा । दोणं पगदीणं वंधगा असंखेज्जा । अवंधगा संखेज्जा । एवं परियत्तमाणियाणं सच्चाणं । णवरि दोआयु वेउच्चियल्लक्क० । आहारदुग-तित्थयरारणं १० वंधगा संखेज्जा । अवंधगा असंखेज्जा । साधारणेण वेदणीयभंगो । छसंव० दोविहा० दोसराणं वंधगा अवंधगा पत्तेगेण साधारणेण वि असंखेज्जा । परघादुस्सास-आदा-उज्जीवाणं वंधगा अवंधगा असंखेज्जा । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सच्चे भंगा संखेज्जा ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच तथा योनिमत् तिर्यंचोंमें इसी प्रकार समझना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ अनंतके स्थानमें 'असंख्यात' को ग्रहण करना चाहिए ।

§२५१. पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्धपर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधक असंख्यात हैं । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंमें पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंके समान भंग समझना चाहिए । संपूर्ण विकलेन्द्रिय, संपूर्ण पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक, एकेन्द्रिय, वनस्पति निगोदमें भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि असंख्यातके स्थानमें यहाँ 'अनंत' कहना चाहिए । विशेष, मनुष्यायुके वंधक, अवंधक असंख्यात हैं ।

[विशेष—यह कथन सामान्यकी अपेक्षा है । तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यायुके बंधाभावका विशेष नियम यहाँ भी लागू रहेगा ।]

§२५२. मनुष्योंमें—१ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुत्तघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके वंधक असंख्यात, अवंधक संख्यात हैं । साता असाताके वंधक अवंधक असंख्यात हैं । दोनों प्रकृतियोंके वंधक असंख्यात हैं । अवंधक संख्यात हैं । संपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार है । तथा वैक्रियिकपट्क, दो आयुके विषयमें विशेष है । आहारकट्टिक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके वंधक संख्यात हैं । अवंधक असंख्यात हैं । सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भंग है । ६ संहनन, दो विहा-योगति, २ स्वरोके वंधक अवंधक प्रत्येक तथा सामान्यसे असंख्यात हैं । परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके वंधक, अवंधक असंख्यात हैं ।

मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनिर्योमें—संपूर्ण भंग संख्यात है ।

(१) “मणुसगईए मणुस्सेसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ।” —पट्खं० द० सू० ४० । “मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? कोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो । मणुसिणीसु सासणसम्माइट्ठिपट्ठिडि याव अजोगिकेवल्लिचि दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ।” —पट्खं० द० सू० ४८-४९ ।

§२५३. देवेसु णिरयोधं । णवरि भवणवासि याव सोधम्मीसाणा त्ति । एइंदि० पंचिदि० [ओरालि०] ओरालि० अंगो० छसंध० आदा-उज्जोव-दोविहाय० तस-थावर-दोसराणं बंधगा अवंधगा असंखेज्जा । सेसाणं णिरयभंगो । सव्वट्ठे सव्वभंगा संखेज्जा ।

§२५४. पंचिदि०-तस० २-पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसाय० भयदु० तेजाक० ५ वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराङ्गाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अवंधगा केत्तिया ? संखेज्जा । श्रीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं बंधगा अवंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं परघादुस्सास-आदाउज्जोव-तित्थयराणं । सादासाद-बंधगा अवंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अवंधगा संखेज्जा । एवं सेसाणं पगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो । णवरि चदुआयु १०

[विशेष—यहाँ लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका वर्णन नहीं हुआ है, अतः प्रतीत होता है कि उस विषयमें पंचेन्द्रियलब्धपर्याप्तक तिर्यचोंके समान भंग होंगे ।]

§२५३. देवगतिमें—नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । भवनवासियोंसे लेकर सौधर्म ईशान स्वर्गतक विशेष जानना चाहिए । एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, [औदारिक शरीर], औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर तथा दो स्वरके बंधक अवंधक असंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंमें नारकियोंके समान भंग है । सर्वार्थसिद्धिमें सम्पूर्ण भंग संख्यात^२ है ।

§२५४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय अर्थात् प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तेजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके बंधक कितने हैं ? असंख्यात^३ हैं । अवंधक कितने हैं ? संख्यात हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषायके बंधक अवंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थकरमें भी है । साता-असाताके बंधक अवंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । दोनों वेदनीयके बंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवंधक संख्यात हैं ।

[विशेष—अयोगकेवली गुणस्थानमें वेदनीयगुणलके अवंधककी अपेक्षा 'संख्यात' प्रमाण कहा है ।]

शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान पूर्ववत् भंग जानना चाहिए ।

(१) “भवणवासियदेवेसु मिच्छादिही दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ।” —पट्खं० ६० सू० ५७ ।

(२) “सव्वट्ठसिद्धिबिमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ।” —पट्खं० ६० सू० ७३ ।

(३) “पंचिदिय-पंचिदियपञ्चएणु मिच्छादिही दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ।” —पट्खं० ६० सू० ८० । “तसकाइय-तसकाइयपञ्चएणु मिच्छादिही दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ।” —पट्खं० ६० सू० ९८ ।

दो अंगो० छसंध० दोविहाय० दोसराणं पत्तेगेण साधारणेण वि बंधगा अवंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । आहारदुगं मणुसोघं ।

§२५५. एवं पंचमण० पंचवचि० चक्खुदंस० सण्णित्ति । णवरि दोवेदणीएस्स अवंधगा णत्थि ।

- ५ §२५६. काजोगीसु-पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अणंता, अवंधगा संखेज्जा । थीणगिद्धित्ति-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराणं बंधगा अणंता, अवंधगा असंखेज्जा । सादासाद-बंधगा अवंधगा अणंता । दोणं वेदणीयाणं बंधगा अणंता । अवंधगा णत्थि । तिण्णिआयु-वेगुव्वियछक्क-आहारदुग-तित्थयरं च ओघं । सेसाणं पत्तेगेण बंधगा १० अवंधगा अणंता । साधारणेण बंधगा अणंता । अवंधगा संखेज्जा । चदुआयु-दोअंगोवंग-छस्संध० परघादुस्सास-आदाउज्जोव-दो विहा० दोसराणं बंधगा अवंधगा अणंता ।

§२५७. एवं ओरालियकायजोगि-अचक्खुदंसणी-आहारगत्ति ।

§२५८. ओरालियमिस्सका०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु०

विशेष, ४ आयु, दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके प्रत्येक तथा साधारणसे बंधक अवंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विके मनुष्योंके ओघवत् हैं अर्थात् बंधक संख्यात, अवंधक असंख्यात हैं ।

§२५५. पाँच मन, ५ वचनयोग, चक्षुदर्शन और संज्ञीपर्यन्त इसी प्रकार है । विशेष, यहाँ दो वेदनीयोंमें अवंधक नहीं होते हैं ।

[विशेष-वेदनीय युगलके अवंधक अयोगकेवली होते हैं, वहाँ इन मार्गणाओंका अभाव है ।]

§२५६. काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय, (प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन) भय, जुगुप्सा, तैजस-कामीण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके बंधक अनंत हैं । अवंधक संख्यात हैं । स्थानगृह्णिक, मिथ्यात्व, ८ कपाय (अनंतानुबंधी तथा अप्रत्याख्यानावरण) तथा औदारिक शरीरके बंधक अनंत हैं । अवंधक असंख्यात हैं । साता असाताके बंधक और अवंधक अनंत हैं । दोनों वेदनीयोंके बंधक अनंत हैं । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष-साता और असाता प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं । अतः एकके बंधमें दूसरीका अवंध होगा इससे पृथक् २ के अवंधक भी अनंत बताये गये हैं । उभयके यहाँ अवंधक नहीं होते हैं ।]

तीन आयु, वैक्रियिकपट्क, आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके बंधक अवंधक ओघवत् जानने चाहिए । अर्थात् बंधक असंख्यात हैं, आहारकद्विकके बंधक संख्यात हैं, किन्तु अवंधक अनंत हैं । शेष प्रकृतियोंके प्रत्येकसे बंधक अवंधक अनंत हैं । सामान्यसे बंधक अनंत हैं, अवंधक संख्यात हैं । चार आयु, दो अंगोपांग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बंधक अवंधक अनंत हैं ।

§२५७. औदारिक काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारक पर्यन्त इसी प्रकार है ।

§२५८. औदारिकमिश्र काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय,

ओरालिय० तेजाक० वण्ण० ४ तित्थयराणं (?) [पंचंतराइगाणं] बंधगा अणंता । अवंधगा संखेज्जा । णवरि मिच्छत्त-अवंधगा असंखेज्जा । देवगदि० ४ तित्थय० बंधगा संखेज्जा । अवंधगा अणंता । सेसं ओरालिय-काजोगिभंगो ।

§२५९. एवं कम्मइगे । णवरि थीणगिद्धि ३ मिच्छत्त-अणंताणु० ४ अवंधगा असंखेज्जा ।

§२६०. वेउव्वियकाजोगि-वेउव्वियमिस्स० देवोधं । णवरि वेउव्वियमिस्स० तित्थय० बंधगा संखेज्जा, अवंधगा असंखेज्जा । आहार० आहारमिस्स० मणुसभंगो ।

§२६१. एवं मणपज्जव० संजद-सामाइय० छेदोपरिहार० सुहुमसंप० यथाक्खाद० ।

§२६२. इत्थिवेदेसु-पंचणा० चदुदंसं चदुसंज० पंचंतरा० बंधगा असंखेज्जा । अवंधगा णत्थि । सेसं पंचिंदियभंगो । णवरि दोवेदणीय-जस० अजस० दोगोदाणं १०

भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, वर्ण ४ तथा तीर्थंकर (?) के बंधक अनंत, अवंधक संख्यात हैं^१ ।

[विशेष—यहाँ मूलमें आगत 'तित्थयराणं' पाठके स्थानमें '५ अंतराय'का पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है । कारण इसके बाद ही देवगति ४ के साथ तीर्थंकर प्रकृतिका पृथक् रूपसे वर्णन किया गया है । वहाँ तीर्थंकरके बंधक संख्यात कहे हैं ।]

इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अवंधक असंख्यात हैं । देवगति ४ (देवगति, देवानुपूर्वी वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग) तथा तीर्थंकरप्रकृतिके बंधक संख्यात हैं । अवंधक अनंत हैं । शेष प्रकृतियोंका औदारिक काययोगीके समान भंग है ।

§२५९. कार्माण काययोगियोंमें इसी प्रकार हैं । इतना विशेष है कि स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ के अवंधक असंख्यात हैं ।

§२६०. वैक्रियिक काययोगी तथा वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें—देवोंके ओघवत् भंग जानना चाहिए । विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें तीर्थंकरके बंधक संख्यात, अवंधक असंख्यात हैं ।

^२आहारक, आहारकमिश्र काययोगमें—मनुष्यके समान भंग जानना चाहिए ।

§२६१. मनःपर्ययज्ञान, संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यातसंयतमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§२६२. स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन और ५ अंतरायके बंधक असंख्यात हैं, अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका पंचेन्द्रियके समान वर्णन है । विशेष, दो वेदनीय यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रोंके बंधक असंख्यात हैं, अवंधक नहीं हैं । तीर्थंकर कर्मके बंधक

(१) “ओरालियमिस्सकायजोगीसु असंजदसम्माइट्ठी-सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ।” —पट्खं० ६० सू०—११२-१४ ।

(२) “आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? चदुव्वं । आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ।” —पट्खं० ६० सू० ११९-२० ।

बंधगा असंखेज्जा । अवंधगा णत्थि । तित्थयरकम्मस्स बंधगा संखेज्जा, अवंधगा असंखेज्जा । एवं पुरिसवेदे । णवरि तित्थयरस्स बंधगा अवंधगा असंखेज्जा ।

§२६३. णवुंस०—पंचणा० चदुदंस० पंचंतराइगाणं० अणंता । अवंधगा णत्थि । सेसं काजोगिभंगो । णवरि जस-अज्जस० दोगोदाणं अवंधगा णत्थि ।

५ §२६४. एवं क्रोधादि० ४ । णवरि अप्पप्पणो धुविगाणं णादव्वाओ ।

§२६५. मदि० सुद०—धुविगाणं बंधगा अणंता । अवंधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स बंधगा अणंता । अवंधगा असंखेज्जा । सेसं तिरिक्खोघं । एवं अब्भ० सिद्धि० मिच्छादि० असण्णि त्ति । णवरि मिच्छत्तस्स अवंधगा णत्थि ।

§२६६. अवगदवेदेसु—पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० साद० जस० उच्चागोद० १० पंचंतराइगाणं बंधगा संखेज्जा, अवंधगा अणंता ।

§२६७. अकसाह—सादबंधगा संखेज्जा, अवंधगा अणंता ।

§२६८. केवलणा० केवलदंस० विभंग० पंचिंदिय-तिरिक्ख-भंगो । णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वो ।

§२६९. आभिणि० सुद० ओधि०—पंचणा० छदंस० अट्ठकसाय-पुरिस० भयदु०

संख्यात हैं, अवंधक असंख्यात हैं । पुरुषवेदमें इसी प्रकार है । विशेष, तीर्थंकरके बंधक अवंधक असंख्यात हैं ।

§२६३. नपुंसकवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतरायके बंधक अनंत हैं, अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंमें काययोगीके समान भंग है । विशेष यह है कि यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंके अवंधक नहीं हैं ।

§२६४. क्रोधादि ४ में इसी प्रकार है । विशेष, अपनी ध्रुव प्रकृतियोंकी विशेषताको यहाँ जान लेना चाहिए ।

§२६५. मत्तज्ञान, श्रुताज्ञानमें—ध्रुवप्रकृतियोंके बंधक अनंत हैं, अवंधक नहीं हैं । मिथ्यात्वके बंधक अनंत हैं । अवंधक असंख्यात हैं ।

[विशेष—अवंधक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा यह गणना की गयी है ।]

शेष प्रकृतियोंका तिर्यचोंके ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असंखी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ मिथ्यात्वके अवंधक नहीं हैं ।

§२६६. अपगतवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्ज्वलन, साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अंतरायोंके बंधक संख्यात हैं । अवंधक अनंत हैं ।

§२६७. अकपाय जीवोंमें—साताके बंधक संख्यात हैं, अवंधक अनंत हैं ।

§२६८. केवलज्ञान, केवलदर्शन, विभंगावधिमें—पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका भंग है । इसमें जो किंचित् विशेषता है, उसे जान लेना चाहिए ।

§२६९. आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय,

पर्विदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुभग० सुस्तर-
आदेज्ज० णिमि० उच्चा० पंचंत० वंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अवंधगा संखेज्जा ।
सादासादबंधगा अवंधगा असंखेज्जा । दोण्णं वेदणीयाणं वंधगा असंखेज्जा, अवंधगा
णत्थि । चदुणोकसायाणं वंधगा अवंधगा असंखेज्जा । दोण्णं युगलाणं वंधगा असंखे-
ज्जा । अवंधगा संखेज्जा । एवं दोगदि-दोसरीर-दोअंगोवंग-दोआणुपुव्वि० धिरादि- ५
तिण्णियुगलाणं । मणुसायु-आहारदुगं वंधगा संखेज्जा, अवंधगा असंखेज्जा । अपच्च-
क्खाणावरण० ४ देवायु० वज्जरिसभ० तित्थयराणं वंधगा अवंधगा असंखेज्जा ।

§२७०. एवं ओधिदं० उवसम० । णवरि उवसम० तित्थयराणं वंधगा संखेज्जा,
अवंधगा असंखेज्जा ।

§२७१. संजदासंजद-तित्थयराणं वंधगा संखेज्जा, अवंधगा असंखेज्जा । सेसं १०
बंधा० आयु दो ५० असंखेज्जा (?) ।

§२७२. असंजदेसु-धुविगाणं वंधगा अणंता, अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धितियं

पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४,
अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुत्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा
५ अंतरायोंके बंधक कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवंधक संख्यात हैं । साता तथा असंख्यात
बंधक अवंधक असंख्यात हैं । दोनों वेदनीयोंके बंधक असंख्यात हैं । अवंधक नहीं हैं । चार
नोकपायों (हास्य-रति, अरति-शोक) के बंधक अवंधक असंख्यात हैं । इन दोनों युगलोंके
बंधक असंख्यात हैं । अवंधक संख्यात हैं । इस प्रकार दो गति, २ शरीर, २ अंगोपांग,
२ आनुपूर्वी तथा स्थिरादि तीन युगलोंमें जानना चाहिए । मनुष्यायु तथा आहारकद्विके
बंधक संख्यात, अवंधक असंख्यात हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४, देवायु, वज्रवृषभसंहनन तथा
तीर्थकर प्रकृतिके बंधक अवंधक असंख्यात हैं ।

§२७०. अवधिदर्शन और उपशम सम्यक्त्वमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, उपशम
सम्यक्त्वमें तीर्थकरके बंधक संख्यात अवंधक असंख्यात हैं ।

[विशेषार्थ—कुछ आचार्योंका मत है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वका काल अल्प होनेसे उसमें
तीर्थकर प्रकृतिका बंध नहीं होता है, किन्तु द्वितीयोपशममें तीर्थकर प्रकृतिके बंधके विषयमें
मतभेद नहीं है ।^१]

§२७१. संयतासंयतोमें—तीर्थकर प्रकृतिके बंधक संख्यात हैं, अवंधक असंख्यात हैं ।

[विशेष—‘सेसं बंधा० आयु दो ५० असंखेज्जा’—इस पंक्तिका स्पष्ट भाव समझमें नहीं
आया, अतः नहीं लिखा ।]

§२७२. असंयतोमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक अनंत हैं । अवंधक नहीं हैं । न्यायगृह्यप्रिया.

(१) “पदमुवसमिपे सम्मे सेसतिपे अविरदादिचचारि । तित्थयराणं वंधगा अणंता अणंतादुत्तरे ।”
—नो० क० गा० ९३ ।

मिच्छत्तं अणंताणुवं० ४ ओरालियसरीरं वंधगा अणंता । अवंधगा संखेजा । तित्थयरं वंधगा असंखेजा, अवंधगा अणंता । सेसं तिरिक्खोवं ।

§२७३. एवं किण्ण-णील-काऊणं । णवरि किण्ण० णील० तित्थयराणं वंधगा संखेजा, अवंधगा अणंता ।

५ §२७४. तेऊए-मणुसायु-आहारदुगं वंधगा संखेजा, अवंधगा असंखेजा । पच्च-क्खाणावरणीय० ४ अवंधगा संखेजा । सेसाणं असंखेजा । एवं पम्माए । णवरि किंचि विसेसो जाणिदच्चो ।

§२७५. सुक्काए-मणजोगिभंगो । णवरि दोआयु-आहारदुगं वंधगा संखेजा, अवंधगा असंखेजा ।

१० §२७६. भवसिद्धिया०-काजोगिभंगो । णवरि वेदणीयस्स अवंधगा संखेजा । समादिट्ठिधुविगाणं वंधगा असंखेजा, अवंधगा अणंता । सेसाणं धुविगाणं भंगो । पत्तेणेण साधारणेण वि मणुसायुआहारदुगं वंधगा संखेजा । एवं खड्गसम्मादिट्ठीणं ।

मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, औदारिक शरीरके बंधक अनंत हैं, अवंधक संख्यात हैं । तीर्थंकरके बंधक असंख्यात हैं, अवंधक अनंत हैं । शेष प्रकृतियोंमें तीर्थंचोंके ओघवत् जानना चाहिए ।

§२७३. कृष्ण, नील, कापोत लेश्यामें इसी प्रकार है । विशेष कृष्ण, नील लेश्यामें तीर्थंकरके बंधक संख्यात तथा अवंधक अनंत हैं ।

§२७४. तेजोलेश्यामें—मनुष्यायु, आहारकद्विकके बंधक संख्यात, अवंधक असंख्यात हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक संख्यात हैं ।

शेष प्रकृतियोंके बंधक अवंधक असंख्यात हैं ।

पद्मलेश्यामें—इसी प्रकार है । इसमें जो कुछ विशेषता है उसे जान लेना चाहिए ।

[विशेष-इस लेश्यामें तेजोलेश्याकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतपका बंध नहीं होता है ।]

§२७५. शुक्लेश्यामें—मनोयोगीके समान भंग है । विशेष, दो आयु, आहारकद्विकके बंधक संख्यात अवंधक असंख्यात हैं ।

§२७६. भव्यसिद्धिकोंमें—काययोगीके समान भंग है । विशेष, यहाँ वेदनीयके अवंधक संख्यात हैं ।

[विशेष-भव्यजीवोंमें अयोगकेवली गुणस्थान भी पाया जाता है, इस अपेक्षा वेदनीयके अवंधक यहाँ कहे गये हैं ।]

सम्यग्दृष्टियोंमें—ध्रुवप्रकृतियोंके बंधक असंख्यात हैं । अवंधक अनंत हैं । शेष प्रकृतियोंका ध्रुव प्रकृतिवत् भंग है । प्रत्येक तथा सामान्यसे मनुष्यायु तथा आहारकद्विकके बंधक संख्यात हैं ।

णवरि देवायुबंधगा संखेजा, अवंधगा अणंता ।

§२७७. वेदग०-ध्रुविगाणं बंधगा असंखेजा । अवंधगा णत्थि । सेसं पत्तेगेण ओधिभंगो । साधारणेण अवंधगा णत्थि । आयुवज्जरिसहाणं ओधिभंगो ।

§२७८. सासणे-मणुसायुबंधगा संखेजा । सेसभंगा असंखेजा ।

§२७९. सम्मामिच्छे-सव्वभंगा असंखेजा ।

५

§२८०. अणाहारगेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० ४ आदाउज्जो० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अवंधगा अणंता । सादासादबंधगा अवंधगा अणंता । एवं सेसाणं पि । णवरि देवगदिपंचगं बंधगा संखेजा, अवंधगा अणंता ।

एवं परिमाणं समत्तं

१०



क्षायिक सम्यक्त्वयोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, देवायुके बंधक संख्यात, अवंधक अनंत हैं ।

§२७७. वेदकसम्यक्त्वमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक असंख्यात हैं, अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक रूपसे अवधिज्ञानके समान भंग है । सामान्यसे अवंधक नहीं हैं । आयु तथा वज्रवृषभसंहननका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए ।

§२७८. सासादनमें—मनुष्यायुके बंधक संख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके भंग असंख्यात हैं ।

§२७९. सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें—सर्व भंग असंख्यात जानना चाहिए ।

§२८०. अनाहारकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तेजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके बंधक अवंधक अनंत हैं । साता-असाताके बंधक-अवंधक अनंत हैं । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि देवगति ५ के बंधक संख्यात हैं, अवंधक अनंत हैं ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।



[खेत्ताणुगम-परूवणा]

§२८१. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य ।

§२८२. तत्थ ओघेण पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं वंधा (वंधगा) केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । अवंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेषु वा ५ सव्वलोगे वा । सादासाद-बंधगा अवंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । दोण्णं वेदणीयाणं वंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । अवंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं संसाणं पत्तेणेण वेदणीय-भंगो । साधारणेण धुविगाणं भंगो । णवरि तिणिण-आयु-वेउच्चियच्छक-आहारदुगं तित्थयरं वंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स

[खेत्ताणुगम]

§२८१. [वस्तुकी वर्तमान निवास-भूमि क्षेत्र^१ है । उसका समीचीन बोध खेत्ताणुगम है ।] खेत्ताणुगमका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

§२८२. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बंधक जीव कितने क्षेत्रमें हैं ? सर्व लोकमें । अवंधक कितने क्षेत्रमें हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें अथवा असंख्यात भागोंमें वा सर्वलोकमें रहते हैं ।

[विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अवंधक उपशांतकपायादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है । सयोगी जिनके प्रतर-समुद्रातकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभाग हैं । लोकपूरण समुद्रातकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र कहा है ।]

साता-असाताके वंधक अवंधक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । दोनों वेदनीयके वंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें । अवंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

[विशेष—दोनोंके अवंधक अयोगी जिन हैं । उनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है ।]

इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका पृथक् पृथक् रूपसे वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । सामान्य रूपसे शेष प्रकृतियोंका ध्रुव प्रकृतिवत् भंग जानना चाहिए । विशेष, ३ आयु, वैक्रियिक-पट्क, आहारकट्टिक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके वंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । अवंधक सर्वलोकमें रहते हैं ।

(१) “निर्जातसंख्यस्य निवासविप्रतिपत्तेः क्षेत्राभिधानम् ।” —त० रा० पृ० ३० । “एदेषु खेत्तेषु केण खेत्तेण पगदं ? णोआगमदो दव्वखेत्तेण पगदं । णो आगमदो दव्वखेत्तं णाम किं ? भागासं, गगणं, देवपयं, गोज्झगाचरिदं अवगाहणलक्खणं आधेयं वियापगमाधारो भूमिच्छि एवढो...जधा दन्नाणि द्विदाणि, तथाव-बोधो अणुगमो । खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो ।” —ध० टी० खे० सू० ८।१।

असंखेज्जदिभागे । अवंधगा सच्चलोगे । चदु-आयु-दो-अंगोवंग-छसंवडण-दोविहायगदि-
दोसराणं वंधगा अवंधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । एवं परघादुस्साणं ।

§२८३. एवं काजोगि-कम्मइग० भवसिद्धिया-अणाहारगाणं । णवरि कम्मइगस्स यं
हि केवलभंगो तं हि लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेषु सच्चलोगे वा । एवं ओरालिय-
सरीर-ओरालियमिस्स-अचक्षुदंसण-आहारग ति । णवरि केवलभंगो णत्थि । ५

§२८४. आदेसेण णेरइएसु-सच्चे भंगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं सच्चणेरइएसु,
सच्चपंचिदिय-तिरिक्ख-मणुस-अपज्जत्त-सच्चदेव-सच्चविगलंदि-तस-अपज्जत्त-वादरपुढवि०
आउ० तेउ० वादरवणप्फदि-पत्तेय० पज्जत्ता-पंचमण० पंचवचि० [वेउव्विय] वेउव्वि-
यमिस्स० आहार० आहारमिस्स० इत्थि० पुरिस० विभंग० आभिणि० सुद० ओधि०
मणपज्जव० सामाइय० छेदोव० परिहार० सुहुमसंप० संजदासंज० चक्षुदं० ओधिदंसण- १०
तेउलेस्सा-पम्मलेस्सा-वेदगसम्मा० उवसमसम्मा० सासण० सम्मामिच्छाइडि सण्णि ति ।

§२८५. तिरिक्खेसु-धुविगाणं वंधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । अवंधगा

४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति और २ स्वरोंके बंधक अवंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं ।

इसी प्रकार परघात तथा उच्छ्वास प्रकृतिमें भी लगा लेना चाहिए ।

§२८३. इसी प्रकार काययोगी, कार्माण काययोगी, भव्यसिद्धिकों तथा अनाहारकोंमें जानना चाहिए । विशेष यह है कि कार्माण काययोगीमें जो केवलीका भंग है, उसमें लोकका असंख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोकप्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए । इसी प्रकार औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारक पर्यन्त जानना चाहिए । विशेष यह है कि इसमें केवलीका भंग नहीं है ।

§२८४. आदेशसे-नारकियोंमें सर्व भंग लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सर्व नारकी जीवोंमें जानना चाहिए । सर्व पंचेन्द्रिय-तिर्यच-मनुष्य इनके अपर्याप्त, संपूर्ण देव, सर्व विकलेन्द्रिय, त्रस, इनके अपर्याप्त, वादर-पृथ्वी-जल-अग्नि, वादर वनस्पति प्रत्येक, इनके पर्याप्त, ५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, [वैक्रियिक,] वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र योगी, ग्री-पुन्य-वेद, विभंगज्ञान सुमति, सुश्रुत, अवधि-मनःपर्यवज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, संयतासंयत, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, तेज-पद्मलेखा, वेदक-सम्यक्त्वी, उदगम-सम्यक्त्वी, सासादन सम्यक्त्वी, मिश्रसम्यक्त्वी तथा संज्ञीपर्यंत इसी प्रकार है । अर्थात् यहा क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है ।

§२८५. तिर्यचोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें । अवंधक नहीं ।

(१) “कम्मइपकायजोगिहु सजोगिकेवली केवडिखेत्ते लोगस्स असंखेज्जेसु भागेषु सच्चलोगे वा ।” —पट्खं० खे० सू० ४०, ४२ ।

(२) “आदेसेण गदियाणुवादेण गिरपगदीए णेरइएसु मिच्छाइडिअवडुडि एव असंखेज्जदिभागे इत्थि केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं सच्चणु सुतवीसु णेरइए ।” —पट्खं० टी० खे० सू० ५, ६ ।

णत्थि । सादासादबंधगा अवंधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । दोण्णं चेदणीयाणं
बंधगा सच्चलोगे । अवंधगा णत्थि । एवं सच्चणं पगदीणं । णवरि तिण्णि आयु
वेउव्वियच्छकस्स बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । अवंधगा सच्च-
लोगे । चदुआयु० दोअंगो० छसंव० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसराणं
५ बंधगा अवंधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । थीणगिद्वितियं मिच्छर्नं अट्ठकसा०
ओरालि० बंधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

§२८६. एवं मादं० सुदं० असंजं० तिण्णिलेस्सा-अभवसिद्धिं० मिच्छादि०
असण्णि त्ति ।

§२८७. मणुसं० ३-पंचणा० णवदंसं० मिच्छं० सोलसकं० भयदुं० तेजाकं० आहार-
१० दुगं० वण्णं० ४ अगुं० ४ आदाउज्जो० णिमिणित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधगा केवडि-
खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । अवंधगा केवलभंगो कादव्वो । सादबंधगा केवलि-
भंगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । असादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।
अबंधगा केवलिभंगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा केवलिभंगो । अवंधगा लोगस्स

हैं । साता और असाताके बंधक अवंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें । दोनों वेदनीयोंके
बंधक सर्वलोकमें रहते हैं । अवंधक नहीं है । इसी प्रकार सर्व प्रकृतियोंमें जानना चाहिए ।
विशेष यह है कि ३ आयु, वैक्रियिकपट्टके बंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें
भागमें रहते हैं । अवंधक सर्वलोकमें रहते हैं । ४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, परघात,
उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरके बंधक अवंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
सर्वलोकमें । स्थानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, ८ कपाय तथा औदारिक शरीरके बंधक कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । अवंधक लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

[विशेष-इनके अवंधक देशसंयमी होंगे उनका क्षेत्र यहाँ कहा है ।^१]

§२८६. मत्त्यज्ञान, श्रुताज्ञान, असंयम, कृष्णादि तीन लेश्या, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि तथा
असंज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§२८७. मनुष्यत्रिक (मनुष्यसामान्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनियों) में—५ ज्ञानावरण, ९
दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भयद्विक, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरु-
लघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा पाँच अंतराश्रयोंके बंधक कितने क्षेत्रमें रहते
हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । अवंधकोंमें केवलीके समान भंग जानना चाहिए
अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक है ।

[विशेष-केवलीभंगमें लोकका असंख्यातवाँ भाग क्षेत्र दंड तथा कपाट समुद्रातकी अपेक्षा
है । असंख्यात बहुभाग क्षेत्र प्रतरसमुद्रातकी तथा सर्वलोक लोकपूरणसमुद्रातकी अपेक्षा है ।^२]

साता वेदनीयके बंधकोंमें केवलीके समान भंग है । अवंधक लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

असाताके बंधक लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । अवंधकोंमें केवलीके समान भंग है ।

दोनों प्रकृतियोंके बंधकोंमें केवलीके समान भंग है । अवंधकोंमें लोकका असंख्यातवाँ भाग भंग

असंखेज्जदिभागे (गे) । इत्थि० पुरिस० णवुंसग-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । अवंधगा केवलभंगो । एवं सच्चपगदीणं वेदभंगो कादव्यो ।

§२८८. एवं पंचिंदिय-तस० तेसिं चैव पज्जत्ता । एवं चैव अघगदवेद-अकसाइ० केवलणा० संजदा-यथाक्खाद० केवलदंसण० सुक्कलेस्सा-सम्भादिट्ठि-खइगसम्माइट्ठि त्ति ।

§२८९. एइंदिय-सच्चसुहुम० पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदिणिगोद-तेसिं ५ च सच्चसुहुम० मणुसा० बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । अवंधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । सेसाणं सच्चे भंगा सच्चलोगे ।

§२९०. वादर-एइंदिय-पज्जत्ता-अपज्जत्ता-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सच्चलोगे । अवंधा (धगा) णत्थि । सादासाद-बंधगा अवंधगा केव० खेत्ते ? सच्चलोगे । दोणं १० पगदीणं बंधगा सच्चलोगे । अवंधगा णत्थि । इत्थि-पुरिस० बंधगा केवडिखेत्ते ? लोग-स्स संखेज्जदिभागे । अवंधगा सच्चलोगे । णवुंस० बंधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । अवंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागे । तिण्णि-वेदाणं बंधगा सच्चलोगे । अवंधगा णत्थि । एवं इत्थिभंगो चदुजादि-पचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंध० आदाउज्जो० दोविहा० तस-वादर-दोसर-सुभग-आदेज्ज-जसगित्ति । णवुंसगभंगो एइंदि० हुंडसंठा० थावर- १५

है । स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदके बंधक लोकके असंख्यातवें भागमें पाये जाते हैं । अवंधकोंमें केवली के समान भंग जानना चाहिए । इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंमें वेदके समान भंग है ।

§२८८. पंचेन्द्रिय-त्रस तथा उन दोनोंके पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । अपगतवेद, अकपाय, केवलज्ञान, संयम, यथाख्यात, केवलदर्शन, शुक्कलेश्या, सम्यक्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि पर्यंत इसी प्रकार जानना चाहिये ।

§२८९. एकेन्द्रिय, सर्वसूक्ष्म, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, १(?) वनस्पति-निगोद तथा उनके सर्वसूक्ष्म जीवोंमें मनुष्यायुके बंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । अवंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । शेष प्रकृतियोंके संपूर्ण भंगोंमें सर्वलोक प्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए ।

§२९०. वादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तक तथा वादर-एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें—४ ज्ञानावरण, ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ३ शरीर, वर्ण २, अगुरुलघु, उपधान, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके बंधकोंका सर्वलोक क्षेत्र है । अवंधक नहीं हैं । साता-असताके बंधक-अवंधक कितने क्षेत्रमें पाये जाते हैं ? सर्वलोकमें । दोनोंके बंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । अवंधक नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके । बंधक कितने क्षेत्रमें है ? लोकके संख्यातवें भागमें । अवंधक सर्वलोकमें है । नपुंसकवेदके बंधक कितने क्षेत्रमें है ? सर्वलोकमें । अवंधक लोकके संख्यातवें भागमें पाये जाते हैं । तीनों वेदोंके बंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । अवंधक नहीं हैं । ४ जाति, ५ संस्थान, धौदारिक अंगोपांग, ६ महान्त, आत्मा, ज्योतिः ।

(१) "तेजकाय वायुकायमें मनुष्यायुका बंध नहीं होता ।" - गो० क० भा० ११४ ।

दूभग-अणादेज-अज्जसगित्ति । हस्सादि ४ वंधगा अवंधगा सच्चलोगे । हस्सादिदोयुगलं वंधगा सच्चलोगे, अवंधगा णत्थि । एवं परवाटुस्सास-पज्जत्ता-अपज्जत्ता-पत्तेय-साधारण-थिराथिरसुभासुभा त्ति । तिरिक्खायु-बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स संखेज्जदिभागे । अवंधगा सच्चलोगे । मणुसायु-बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।
 ५ अवंधगा सच्चलोगे । दोआयु तिरिक्खायु-भंगो । तिरिक्खगदितियं वंधगा सच्चलोगे । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । मणुसगदितियं मणुसायुभंगो । दोगदि-दोआणु-पुव्वि-दोगोदं वंधगा के० खेत्ते ? सच्चलोगे । अवंधगा णत्थि । मुहुमबंधगा सच्चलोगे । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो ।

§२९१. एवं वादरवाउ० [पज्जत्त] वादरवाउ० अपज्जत्ताणं । एवं चेव वादरपुडवि०
 १० आउ० तेउ० वादरवणफ्फदि-पत्तेयाणं तेसिं चेव अपज्जत्ता, वादरवणफ्फदिणिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता । णवरि यं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो कादव्वो । वादरवाउकाइय-पज्जत्ते सच्चे भंगा लोगस्स संखेज्जदिभागे ।

एवं खेत्तं समत्तं ।

दो विहायोगति, त्रस, वादर, दो स्वर, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति पर्यन्त स्त्रीवेदके समान भंग जानना चाहिए । एकेन्द्रिय जाति, हुंडक संस्थान, स्थावर, दुर्भंग, अनादेय, अयशःकीर्तिमें नपुंसकवेदका भंग जानना चाहिए । हास्यादि चारके वंधक-अबंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । हास्यादि दो युगलके वंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार परघात, उच्छ्वास, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ पर्यन्त जानना चाहिए । तिर्यच आयुके वंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भागमें । अवंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । मनुष्य आयुके वंधक कितने क्षेत्रमें पाये जाते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें । अवंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । दो आयुमें तिर्यच आयुका भंग जानना चाहिए । तिर्यचगतित्रिकके वंधक सर्वलोकमें और अवंधक लोकके असंख्यातवें भागमें पाये जाते हैं । मनुष्यगतित्रिकमें मनुष्य आयुके समान भंग जानना चाहिए । २ गति, २ आनुपूर्वी, २ गोत्रके वंधक कितने क्षेत्रमें हैं ? सर्वलोकमें हैं । अवंधक नहीं हैं । सूक्ष्मके वंधक सर्वलोकमें और अवंधक लोकके असंख्यातवें भागमें पाये जाते हैं । इस प्रकार प्रत्येक और साधारणसे वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए ।

§२९१. वादर वायुकायिक (पर्याप्तकों) और वादर वायुकायिक अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । वादर पृथ्वीकायिक, वादर अप्कायिक, वादर तेजकायिक, वादर वनस्पति-कायिक प्रत्येक तथा इनके अपर्याप्तकोंमें एवं वादर वनस्पतिकायिक-निगोदके पर्याप्त-अपर्याप्त भेदोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि जहां लोकका संख्यातवां भाग कहा है, वहां लोकका असंख्यातवां भाग करना चाहिये । वादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें सम्पूर्ण भंग लोकके संख्यातवें भाग जानना चाहिए ।

इस प्रकार क्षेत्र-प्ररूपणा समाप्त हुई ।



[फोसणाणुगमपरूवणा]

§२९२. फोसणाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।

§२९३. तत्थ ओघेण—पंचणा० छदंसणा० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं वंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा वा, सव्वलोगो वा । सादवंधगा अवंधगा केवडि खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । असादवंधगा अवंधगा केवडि खेत्तं ५

[स्पर्शनानुगम]

§२९२. ओघ तथा आदेशसे स्पर्शानुगमका दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

[विशेष—क्षेत्रानुगममें वर्तमानकालीन निवासमात्र ग्रहण किया जाता है, किन्तु स्पर्शानुगममें अतीत, अनागत तथा वर्तमान निवास ग्रहण किया जाता है ।^१]

§२९३. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कपाय, भय-जुगुप्सा, तजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अंतरायके बंधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्व लोक स्पर्शन किया है । अवंधकोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग वा सर्व लोक स्पर्शन किया है ।

[विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अवंधक उपशांतकपाय, क्षीणकपाय तथा अयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन कहा है । सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है । प्रतरसमुद्घातगत सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्शन है ।]

साताके बंधकों-अवंधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक । असाताके बंधकों

(१) त्रिकालविपर्यायपक्षेपणं स्पर्शनम् मतम् । क्षेत्रादन्यत्वभागवर्तमानागंश्लेषलक्षणात् ॥ ४१ ॥
— त० श्लो० पृ० १६० । “एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयदं । अस्सधिं स्पृश्यत इति खट्ठनम् । फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण । णिदेसो कट्ठं वदन्नामिदि एयट्ठो । सो दुविहो जहा पयई । ओघेण पिडेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो । आदेसेण भेदेण विसेकेणेत्ति समानट्ठो ।” —घ० टी० फो० पृ० १४४, १४५ ।

(२) “पमत्तसंसदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली हि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । सजोगिकेवली हि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ।” —पट्ठ० फो० सू० १७०, १७२ । “पदरगदो केवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जु भागो । लोगपूरणगदो केवली केवडिखेत्ते ? सव्वलोगो ।” —घ० टी० फो० पृ० ५०, ५१ ।

फोसिदं ? सच्चलोगो । दोष्णं पगदीणं बंधगा सच्चलोगो, अवंधगा लोगस्स असंखे-
ज्जदिभागो । थीणमिद्वितिय-अणंताणु० ४ बंधगा सच्चलोगो । अवंधगा अट्ठचोदस-
भागा वा केवलभंगो । मिच्छत्त-बंधगा सच्चलोगो, अवंधगा अट्ठचारस्स-चोदसभागा
वा केवलभंगो वा । अपचक्खाणा० ४ बंधगा सच्चलोगो, अवंधगा छचोदसभागा वा
५ केवलभंगं च । इत्थि० पुरिस० णवुंसग० बंधगा अवंधगा सच्चलोगो । तिष्णं वेदाणं
बंधगा सच्चलोगो, अवंधगा केवलभंगो । वेदाणं भंगो हस्सादिदोयुगलं पंचजादि
अबंधकोने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्व लोक । दोनों प्रकृतियोंके बंधकोंने सर्व लोक स्पर्श
किया है । अवंधकोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है ।

[विशेष-दोनोंके अवंधक अयोगकेवलियोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ के बंधकोंके सर्व लोक, अवंधकोंके अष्ट चतुर्दश भाग अर्थात्
५ अथवा केवली-भंग है । अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा
सर्वलोक है ।

[विशेषार्थ-स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनंतानुबंधी ४ के अवंधक सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयत-सम्य-
गृष्टि जीवोंकी अपेक्षा ५ भाग कहा है । विहारवत्-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्घातकी
अपेक्षा मिश्र गुणस्थानवर्ती जीवोंने देशोन ५ भाग स्पर्श किया है । विहारवत् स्वस्थान, वेदना,
कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा असंयतसम्यग्मिथ्यादृष्टियोंने ऊपर ६ राजू तथा नीचे
दो, इस प्रकार देशोन ५ भाग स्पर्श किया है । मिश्रगुणस्थानमें मरणका अभाव होनेसे मार-
णांतिक समुद्घातका वर्णन नहीं किया गया है । (ध० टी० पृ० १६६, १६७)]

मिथ्यात्वके बंधकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है । अवंधकोंमें ५, ३ अथवा केवलीभंग
अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्व लोक है ।

[विशेषार्थ-मिथ्यात्वके अवंधक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत् स्वस्थान, वेदना,
कषाय, वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा देशोन ५ भाग स्पर्श किया है । मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षा ३ भाग स्पर्श किया है । यह इस प्रकार है कि सुमेरु पर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर
ईपत्त्रागभार पृथ्वीतक सात राजू होते हैं और नीचे छठवीं पृथ्वी तक ५ राजू होते हैं । इस प्रकार
३ भाग है । सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण होनेसे छठवीं पृथ्वी तकका ही
उल्लेख किया गया है । (ध० टी० पृ० १६२)]

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकोंने सर्वलोक, अवंधकोंने ५ भाग वा केवलीभंग प्रमाण
क्षेत्र स्पर्शन किया है ।

[विशेषार्थ-अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक देशसंयमी जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा
मारणांतिक समुद्घातकी दृष्टिसे देशोन ५ भाग स्पर्श किया । यहाँ सुमेरुसे नीचेके एक हजार
योजनसे और आरण-अच्युत विमानोंके उपरिम भागसे कम करना चाहिए (पृ० १७०)]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके बंधकों अवंधकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है । तीनों
वेदोंके बंधकोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । इनके अवंधकोंमें केवलीके समान भंग है ।

[विशेषार्थ-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके अवंधकोंका प्रत्येक वेदकी अपेक्षा अवंधकोंके
सर्वलोक स्पर्शन कहा है, कारण यहाँ एक वेदका अवंध होते हुए अन्य वेदका बंध हो जाता है ।

छसंठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च । वेदणीयायु-आहारदुग-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अवंधगा सव्वलोगो । तिरिक्खायुबंधगा अवंधगा सव्वलोगो । मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठचोद्दसभागा वा सव्वलोगो वा । अवंधगा सव्वलोगो । चट्ठआयुबंधगा अवंधगा केव० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । णिरयदेवगादिवंधगा के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छचोद्दसभागा ५ वा । अवंधगा सव्वलोगो । तिरिक्खमणुसगादिवंधगा अवंधगा सव्वलोगो । चट्ठगादिवंधगा सव्वलोगो । अवंधगे केवल्लिभंगो । एवं चट्ठआणुपुव्वि० । ओरालि० बंधगा सव्वलोगो । अवंधगा वारहचोद्दसभागा वा, केवल्लिभंगं च । वेउव्वियस० बंधगा वारह० । अवंधगा सव्वलोगो । दोण्णं बंधगा सव्वलोगो । अवंधगा केवल्लिभंगो । ओरालिय० अंगो० बंधगा अवंधगा सव्वलोगो । वेउव्विय० अंगो० बंधगा १०

वेदत्रयके अवंधक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे अयोगकेवली पर्यन्त हैं । उनकी अपेक्षा केवली भंग अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक स्पर्श कहा है ।]

हास्य, रति, अरति, शोक, एकेन्द्रियादि पंच जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि नवयुगल तथा २ गोत्रमें वेदके समान भंग है । वेदनीय, आयु, आहारकद्विकके बंधकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है । अवंधकोंके सर्वलोक है । तिर्यचायुके बंधकों-अवंधकोंके सर्वलोक है । मनुष्यायुके बंधकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग, १/६ वा १/२ सर्वलोक है । अवंधकोंके सर्वलोक है ।

[विशेष—यहां ऊपरके ६ राजू तथा नीचेके २ राजू इस प्रकार ८ राजू स्पर्शन हैं]

चार आयुके बंधकों अवंधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक । नरकगति, देवगतिके बंधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग वा १/६ भाग है ! अवंधकोंके सर्वलोक है ।

[विशेष—यहां सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा नरकगतिका स्पर्शन १/६ है तथा सोलहवें स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा देवगतिका स्पर्शन १/६ कहा है ।

तिर्यचगति-मनुष्यगतिके बंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । चारों गतियोंके बंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली भंग है । चार आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए । औदारिक शरीरके बंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंके १/६ भाग, वा केवली भंग है । वैद्विचिक शरीरके बंधकोंका १/३ भाग, अवंधकोंका सर्वलोक है । दोनों शरीरोंके बंधकोंका सर्वलोक है, अवंधकोंका केवली भंग है ।

[विशेष—औदारिक शरीरका बंध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त, वैद्विचिक शरीरका अपूर्वपर्यन्त छठवें भाग पर्यन्त बंध होता है । दोनोंके अवंधकोंके अयोगकेवली पर्यन्त लोकका असंख्यातवाँ भाग है, सयोगी जिनकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा सर्वलोक भी भंग है ।]

औदारिक अंगोपांगके बंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । वैद्विचिक अंगोपांगके बंधकोंका

(१) “असंखदसगमाद्वृत्तीणि विचारवदित्थान-वेदण-वत्ताप-वेउव्विय-मणुसिदससु-दससं-अट्ठचोद्दसभागा देवणा फोसिदा उवरि छ रज्जु, ऐट्ठा दो रज्जु ति ।” —५० टी० पृ० ५८-१६३ ।

वारहभागा वा । अवंधगा सच्चलोगो । दोअंगो० वंधगा अवंधगा सच्चलोगो ।
छसंघ० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसवंधगा अवंधगा सच्चलोगो ।
तिथय० वंधगा अट्टचोदसभागो वा । अवंधगा सच्चलोगो ।

§२९४. आदेशेण-णेरइएमु धुविगाणं वंधगा छचोदसभागो, अवंधगा णत्थि ।
५ धीणागिद्धितिय-अणंताणु० ४ वंधगा छचोदसभागो, अवंधगा खेत्तभंगो । सादासाद-
बंधगा-अवंधगा छचोदसभागो । दोणं पगदीणं वंधगा छचोदसभागो, अवंधगा

६ है, अवंधकोंके सर्वलोक है । दोनों अंगोपांगोंके वंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है ।

[विशेष-वैक्रियिक शरीरके वंधकों तथा औदारिक शरीरके अवंधकोंका स्पर्शन ६ है कहा है, किन्तु उसी प्रकार वैक्रियिक अंगोपांगके वंधकों तथा औदारिक अंगोपांगके अवंधकोंका ६ नहीं कहा है । इसका कारण यह है कि जिस प्रकार औदारिक शरीरका अवंधक वैक्रियिक शरीरका वंधक होता है अथवा वैक्रियिक शरीरका अवंधक औदारिकका वंधक होता है वैसा नियम औदारिक अंगोपांग और वैक्रियिक अंगोपांगका नहीं है । एकेन्द्रियमें अंगोपांगका अभाव होनेसे शरीरके समान यहाँ व्याप्ति नहीं है ।]

छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके वंधकों अवंधकों का सर्वलोक स्पर्शन है । तीर्थंकर प्रकृतिके वंधकोंका ६ है । अवंधकोंका सर्वलोक है ।

[विशेष-तीर्थंकर प्रकृतिके वंधक अविरतसम्यक्त्वकी अपेक्षा ६ कहा है । विहारवत् स्वस्थान, वेदना-कपाय-वैक्रियिक-मारणांतिक समुद्घात गत असंयतसम्यक्त्व जीवोंमें मेरुके मूलसे ऊपर छह राजू तथा नीचे दो राजू प्रमाण स्पर्शन किया है (ध. टी. पृ. १६७)]

§२९४. आदेशे-नारकियोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंके ६ है, अवंधक नहीं है ।

[विशेष-मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदवाले मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीत कालमें ६ स्पर्श किया है । (पृ० १७५) सातवीं पृथ्वीके नारकीकी मारणांतिक समुद्घात अथवा उपपादकी अपेक्षा कर्मभूमिया संह्री मनुष्य या तिर्यच पर्याप्तपर्याय प्राप्तिकी दृष्टिसे छ राजू स्पर्शन है । ध्रुव प्रकृतियोंका सभी नारकी वंध करते हैं अतः ६ ध्रुव प्रकृतिके वंधकोंका स्पर्श कहा है ।^१]

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनंतानुबंधी ४ के वंधकोंके ६ भाग हैं, अवंधकोंके क्षेत्रके समान भंग हैं । अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है^२ । साता, असाताके वंधकों अवंधकोंके ६ है । दोनों प्रकृतियोंके वंधकोंके ६ है । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष-नरकगतिमें साता अथवा असाताके पृथक् २ रूपसे अवंधककी अपेक्षा ६ भाग कहा है । इसका अर्थ यह है कि साताके अवंधक अर्थात् असाताके वंधक अथवा असाताके अवंधक अर्थात् साताके वंधक जीवोंका सप्तम पृथ्वीकी अपेक्षा ६ भाग है ।]

(१) ' गिरयगदीए णेरइएमु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फासिदं ? लोगस्स अत्तंखेज्जदिभागां छ चोदसभागा वा देस्सा ।' -पट्खं० फो० सू० ११, १२ ।

(२) ' सम्मामिच्छादिट्ठि अत्तंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फासिदं ? लोगस्स अत्तंखेज्जदि भागो ।' -पट्खं० फो० सू० १३, १४, १५ ।

णत्थि । एवं सत्तणोक० छसंठा० छसंघ० दोविहा० थिरादिछयुगलं । मिच्छत्तबंधगा छच्चोद्दसभागो, अवंधगा पंचचोद्दसभागो । दोआयु० खेत्तभंगो । अवंधगा छच्चोद्दसभागो । एवं तित्थयरं । तिरिक्खगदिवंधगा छच्चोद्दस०, अवंधगा खेत्तभंगो । मणुसगदिवंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा छच्चोद्दस० । दोण्णं पगदिवंधगा छच्चोद्दस० । अवंधगा णत्थि । एवं दोआणुपुत्वि दोगोदं च । उज्जोव० वंधगा अवंधगा ५ छच्चोद्दस० । एवं सव्वणेरइयाणं । णवरि अप्पण्णो फोसणं कादव्वं । सत्तमीए मिच्छत्तं अवंधगा खेत्तभंगो ।

§२९५. तिरिक्खाणं धुविगाणं वंधगा सव्वलोगे । अवंधगा णत्थि । अट्ठकसा०

सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें इसी प्रकार है । मिथ्यात्वके बंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है ।^१

[विशेष—मिथ्यात्वके अवंधक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा छठवीं पृथ्वीकी दृष्टि से सारणांतिक समुद्घातमें $\frac{१}{४}$ भाग है । सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण करता है, अतः उसकी यहाँ अपेक्षा नहीं की गयी है ।]

दो आयु (मनुष्य-तिर्यचायु) के बंधकोंके क्षेत्रवत् भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है । तीर्थंकर प्रकृतिके बंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग, अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है ।

तिर्यचगतिके बंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है । अवंधकोंके क्षेत्रवत् भंग है । मनुष्यगतिके बंधकोंके क्षेत्रसमान भंग है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है । दोनोंके बंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है । अवंधक नहीं है । दो आनुपूर्वी (मनुष्य-तिर्यचानुपूर्वी) तथा २ गोत्रोंमें भी इसी प्रकार भंग है । उद्योतके बंधकों अवंधकोंका $\frac{१}{४}$ भाग है ।

इस प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए । विशेष, अपना अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए ।

[विशेष—पांचवीं पृथ्वीमें $\frac{१}{४}$, चौथीमें $\frac{१}{४}$, तीसरीमें $\frac{१}{४}$, दूसरीमें $\frac{१}{४}$ तथा पहली पृथ्वीमें लोकका असंख्यातवां भाग मिथ्यात्व सासादन गुणस्थान में स्पर्शन कहा है । मिथ्य तथा अविरत सम्यक्दृष्टियोंके लोकका असंख्यातवां भाग बताया है । इस स्पर्शनको ध्यानमें रखकर भिन्न भिन्न प्रकृतियोंके बंधकों-अवंधकोंके विषयमें यथायोग्य योजना करनी चाहिए ।]

सातवीं पृथ्वीमें—मिथ्यात्वके अवंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है । अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है ।^२

§२९५. तिर्यचोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक सर्वलोकमें है । अवंधक नहीं हैं । अंतर्गुबंधी ४

(१) “विदिमादि जाव छट्ठीए पुट्ठीए पेरइयहु मिच्छादिद्विक्खाणकम्ममिद्विदि केवडियं सेतं फोसिदं ! लोमस्स असंखेज्जदिमगो । एग वे तिप्पि नच्चरि पंच चोद्दसगाणं का देवता । ”—पट्ठं० फो० सू० १७, १८ ।

(२) “सत्तमाए पुट्ठीए पेरइयहु ” “संखेज्जदिममिद्विक्खाणकम्ममिद्विदिममिद्विदि केवडियं सेतं फोसिदं ! लोमस्स असंखेज्जदिमगो । ”—पट्ठं० फो० सू० २२ ।

- बंधगा सव्वलोगो, अवंधगा छच्चोदस० । सादासाद-बंधगा अवंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । एवं तिण्णिवे० दोयुग० पंचजादि-छसंठाणं तसथावरादिणवयुगल-दोगोदं । मिच्छत्त-बंधगा सव्वलोगो । अवंधगा सत्तचो-दसभागो वा । तिण्णि आयुखेत्तभंगो । मणुसायुबंधगा लोमस्स असंखेज्जदिभागो सव्व-
 ५ लोगो वा । अवंधगा सव्वलोगो । चदुण्णं आयुबंधगा अवंधगा सव्वलोगो । णिरयगदि-देवगदिवंधगा छचोदसभागो । अवंधगा सव्वलोगो । तिरिक्ख-मणुसगदिवंधगा अवंधगा सव्वलोगो । चदुण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । ओरालिय० बंधगा० सव्वलोगो । अवंधगा वारहचादस० । वेउव्वि० बंधगा वारह-चोदसभागो वा । अवंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । ओरालि०
 १० अंगो० बंधगा अवंधगा सव्वलोगो । वेउव्विय-अंगो० बंधगा वारहचोदसभागो । अवंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा अवंधगा सव्वलोगो । छसंघ० दोव्विहा०

तथा अप्रत्याख्यानवरण ४ के बंधकोंका सर्वलोक स्पर्शन है । अवंधकोंका ३४ भाग है ।

[विशेष—कपायाष्टकके अवंधक देशसंयत तिर्यचोंके मारणांतिक समुद्रातकी अपेक्षा अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी दृष्टिसे ३४ भाग कहा है ।^१]

साता, असाताके बंधकोंके सर्वलोक है । दोनोंके बंधकोंके सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । तीन वेद, हास्य-रति, अरति-शोक, ५ जाति, ६ संस्थान, व्रत-स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार है । मिथ्यात्वके बंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका ३४ भाग है ।^२

[विशेष—मारणांतिक समुद्रातकी अपेक्षा मिथ्यात्वके अवंधक सासादन सन्यक्त्वी जीवोंके ३४ भाग स्पर्शन है ।]

नरक-तिर्यच-देवायुका क्षेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भाग भंग है । मनुष्यायुके बंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग, वा सर्वलोक भंग है । अवंधकोंका सर्वलोक है । चारों आयुके बंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । नरकगति, देवगतिके बंधकोंका ३४ है । अवंधकोंका सर्वलोक है । तिर्यचगति मनुष्यगतिके बंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । चारों प्रकृतिके बंधकों का सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । औदारिक शरीरके बंधकोंका सर्वलोक है, अवंधकोंका ३४ भाग है । वंक्रियक शरीरके बंधकोंका ३३ है, अवंधकोंका सर्वलोक है ।

[विशेष—वैक्रियिक शरीरके बंधक तिर्यचोंका अच्युत स्वर्ग तथा सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा ३४ भाग कहा है ।]

औदारिक-वंक्रियक शरीरके बंधकोंका सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । औदारिक अंगोपांगके बंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अंगोपांगके बंधकोंका ३३ भाग है । अवंधकोंका सर्वलोक है । दोनों प्रकृतियोंके बंधकों-अवंधकोंका सर्वलोक है ।

(१) “असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो, छचाद-सभागा वा देसणा ।” —पट्खं० फो० सू० २७, २८ ।

(२) “तिरिक्खेयु” —मासणसम्मादिट्ठिदि केवडियं खेतं फोसिदं ? लोमस्स असंखेज्जदिभागो, सत्त-चोदसभागा वा देसणा ।” —पट्खं० फो० सू० २३, २५ ।

दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तभंगो । आणुपुन्वि-गदिभंगो । पेखादुस्ता० आदा-
उज्जो० बंधगा अवंधगा सव्वलोगो ।

§२९६. पंचिंदिय तिरिक्ख० ३-धुविगाणं बंधगा तेरह-चोदसभागा वा सव्वलोगो
वा । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धि-तियं अट्ठकसा० बंधगा तेरहचोदस०, सव्वलोगो
वा । अवंधगा छच्चोदसभागो वा । मिच्छ० बंधगा तेरहचोदस० सव्वलोगो वा । ५
अवंधगा सत्तचोदसभागो वा देसूणा । सादवधगा सत्तचोदसभागो वा सव्वलोगो वा ।

[विशेष-जिस प्रकार वैक्रियिक शरीरके बंधकोंका $\frac{१}{३}$ है उसी प्रकार वैक्रियिक अंगोपांग
का भी वर्णन है, किन्तु औदारिक शरीरके समान औदारिक अंगोपांगका वर्णन नहीं है । कारण,
एकेन्द्रियोंमें औदारिक अंगोपांगके अभावमें भी औदारिक शरीर पाया जाता है, किन्तु वैक्रियिक
शरीरके साथ वैक्रियिक अंगोपांगका सदा सम्बन्ध पाया जाता है । इस कारण इनका स्पर्शन
तुल्य है तथा औदारिक शरीर एवं औदारिक अंगोपांगका स्पर्शन समान नहीं कहा गया है ।]

इह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे क्षेत्रवत् भंग है अर्थात्
बंधकों तथा अवंधकोंका सर्वलोक स्पर्शन है । आनुपूर्वीमें गतिके समान सर्वलोक प्रमाण भंग है ।

[विशेष-नरक देवानुपूर्वोंके बंधकोंके $\frac{१}{४}$ है । अवंधकोंके सर्वलोक हैं ।]

परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बंधकों-अवंधकोंका सर्वलोक है ।

§२९६. पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच-पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय-तिर्यच-योनिमतीमें—ध्रुवप्रकृ-
तियोंके बंधकोंका $\frac{१}{३}$ भाग वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष-सातवीं पृथ्वीके नारकीने उपपाद द्वारा पंचेन्द्रियतिर्यचोंकी भूमि मध्यलोकका
स्पर्श किया, पश्चात् तिर्यचरूपसे काल व्यतीत कर लोकाग्रमें जाकर वादर, पृथ्वी, जल,
वनस्पतिकायिकोंमें जन्म धारण किया, इस प्रकार $\frac{१}{३}$ राजू हुए । सप्तम नरकके नारकी जीयने
जब तिर्यच पंचेन्द्रिय पर्यायके निमित्त प्रस्थान किया, तब तिर्यचायुका उदय आ जानेसे वह
जीव तिर्यचसंज्ञाका पात्र हो गया ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनंतानुबंधी आदि ८ कपायके बंधकोंके $\frac{१}{३}$ भाग, वा सर्वलोक है ।
अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग है ।]^१

[विशेष-यहाँ अवंधक देशव्रती तिर्यचोंका अच्युत स्यर्ग पर्यन्त उत्पादकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ कहा है ।]

मिथ्यात्वके बंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है, अवंधकोंका देशोन $\frac{१}{४}$ है ।

[विशेष-मिथ्यात्वके अवंधक सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यच $\frac{१}{३}$ भाग स्पर्श करते हैं ।
धवलाकार सासादन सम्यक्स्वीका एकेन्द्रियमें उत्पाद न मानकर मारणान्तिक समुद्रात स्वीकार
करते हैं । अतः लोकाग्रके एकेन्द्रियोंमें मारणांतिक समुद्रातकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ भाग कहा है ।]

साताके बंधकोंका $\frac{१}{४}$ भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है ।

(१) ' तिरिक्खेतु...असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवट्ठिदं वेत्तां वेत्तिदं वेत्तां भागो-
भागो, उच्चोदसभागा वा देसूणा ।' -पट्ठ० फो० सू० २७-२८ । (२) 'सासादनं विदुं वि-विदुं
खेत्तं फोसिदं ? लोगतु अस्सेवेदिभागा, सत्तचोदसभागा वा देसूणा ।' -पट्ठ० फो० सू० २८-२९ ।

अवंधगा तेरह-चोद्दसभा० सव्वलोगो । असादवंधगा तेरहभागा वा, सव्वलोगो ।
 अवंधगा सत्तभागा वा सव्वलोगो वा । दोण्णं वंधगा तेरस० सव्वलोगो वा ।
 अवंधगा णत्थि । एवं चदुणोक्क० थिराथिर-सुभासुभ० । इत्थिवे० वंधगा द्विवड्ढो-
 द्दसभागा । अवंधगा तेरह० सव्वलोगो वा । पुरिस० वंधगा छच्चोद्दस० । अवंधगा
 ५ तेरह० सव्वलोगो वा । णवुंस० वंधगा तेरह० सव्वलोगो वा । अवंधगा छच्चोद्दस० ।
 तिण्णिवेद० वंधगा तेरस० सव्वलोगो वा । अवंधगा णत्थि । चदुण्णं आयु० वंधगा
 खेत्तभंगो । अवंधगा तेरह० सव्वलोगो वा । णिरयगदि-देवगदिबंधगा छच्चोद्दस-
 भागा । अवंधगा तेरह० सव्वलोगो वा । तिरिक्खगदिबंधगा सत्तचोद्दसभागा,
 सव्वलोगो वा अवंधगा वारहचोद्दस० । मणुसगदि-बंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा
 १० तेरहचोद्दस० सव्वलोगो । चदुण्णं गदीणं वंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो । अवंधगा
 णत्थि । एवं आणुपुव्वि० । एइंदि० वंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो । अवंधगा

असाताके वंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है, अवंधकोंका $\frac{२}{३}$ वा सर्वलोक है । दोनोंके वंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए । स्त्रीवेदके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ भाग है । अवंधकोंके $\frac{२}{३}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—सौधर्मद्विक पर्यन्त देवियोंका उत्पाद होता है अतः जिस तिर्यचने मारणांतिक समुद्रात द्वारा सौधर्म ईशानके प्रदेशका स्पर्शन किया, उसकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ भाग कहा है ।]

पुरुषवेदके वंधकोंका $\frac{१}{३}$, अवंधकोंका $\frac{२}{३}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—तिर्यचोंका अच्युत स्वर्गपर्यन्त उत्पाद होता है इस दृष्टिसे पुरुषवेदके वंधकके $\frac{१}{३}$ कहा है ।]

नपुंसकवेदके वंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{२}{३}$ भाग है । तीनों वेदोंके वंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । चार आयुके वंधकोंका क्षेत्रके समान सर्वलोक भंग है । अवंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । नरकगति, देवगतिके वंधकोंका $\frac{१}{३}$ भाग है, अवंधकोंका $\frac{२}{३}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—नरकगतिके वंधक तिर्यचका सप्तमपृथ्वीके स्पर्शानकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ है, इसी प्रकार देवगतिके वंधकके अच्युत स्वर्गकी अपेक्षा भी $\frac{१}{३}$ भाग है ।

तिर्यचगतिके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ भाग वा सर्वलोक है, अवंधकोंके $\frac{२}{३}$ है ।

[विशेष—तिर्यचगतिके अवंधकके अच्युत स्वर्ग तथा सप्तम नरक पर्यन्त स्पर्शकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ भाग है । तिर्यचगतिके वंधक पंचेन्द्रिय तिर्यचके मध्यलोकसे लोकान्तके एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके स्पर्शानकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ है ।

मनुष्यगतिके वंधकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है । अवंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । चारों गतियोंके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । आनुपूर्वीमें गतिके समान भंग हैं । एकेन्द्रियके वंधकोंके $\frac{१}{३}$, सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{२}{३}$ भाग है ।

[विशेष—लोकाग्र भागमें विद्यमान एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ स्पर्शन है ।

वारह० । तिणिजादीणं वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा तेरह० सव्वलोगो । पंचिदि०
 वंधगा वारह० । अवंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो । पंचजा० तेरह० सव्वलोगो ।
 अवंधगा णत्थि । ओरालिय० वंधगा सत्तचोद्दस०, सव्वलोगो । अवंधगा वारह० ।
 वेउव्विय० वंधगा वारह०, अवंधगा सत्तचोद्दस०, सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं
 वंधगा तेरह०, सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । समचदु० वंधगा छच्चोद्द० । अवंधगा ५
 तेरह० सव्वलोगो । चदुण्णं संठाणाणं वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा तेरह० सव्वलोगो ।
 हुंडसंठाणस्स तेरह० सव्वलोगो । अवंधगा छच्चोद्दसभागो वा । छसंठाणाणं
 वंधगा तेरह० सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । ओरालिय-अंगो० वंधगा खेत्तभंगो ।
 अवंधगा तेरह० सव्वलोगो । वेउव्विय-अंगो० वंधगा वारह० । अवंधगा
 सत्तचोद्दस०, सव्वलोगो । दोण्णं अंगो० वंधगा वारह० । अवंधगा सत्तचो०, १०

एकेन्द्रियके अवंधकोंका स्पर्शन सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू तथा अच्युत स्वर्ग पर्यन्त ६ राजू प्रमाण होनेसे $\frac{१}{३}$ कहा है ।]

दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिके वंधकोंका क्षेत्रके समान सर्वलोक भंग है । अवंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—विकलेन्द्रियके अवंधकोंका लोकाग्रमें स्थित एकेन्द्रियका स्पर्शन तथा अधोलोकमें सप्तम पृथ्वी पर्यन्त स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ कहा है ।]

पंचेन्द्रिय जातिके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ है । अवंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । पंच जातियोंके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । औदारिक शरीरके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ है, वा सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{१}{३}$ है ।

[विशेष—लोकाग्रके एकेन्द्रियोंके स्पर्शनकी अपेक्षा वंधकोंके $\frac{१}{३}$ है । अवंधकोंके वैक्रियिक शरीरकी अपेक्षा ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार $\frac{१}{३}$ है ।]

वैक्रियिक शरीरके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ है । अवंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । दोनों शरीरोंके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ भाग है । अवंधक नहीं हैं । समचतुरस्र संस्थानके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ तथा अवंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—इस संस्थानके वंधकोंके अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ है । अवंधकोंके अधोलोकके ६ तथा ऊर्ध्वके ७ राजू मिलाकर $\frac{१}{३}$ भाग कहा है ।

चार संस्थान अर्थात् समचतुरस्र तथा हुंडको छोड़कर शेषके वंधकोंका क्षेत्रम्बु सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । हुंडक संस्थानके वंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{१}{३}$ भाग है । छह संस्थानोंके वंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । औदारिक अंगोपांगके वंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक है । वैक्रियिक अंगोपांगके वंधकोंका $\frac{१}{३}$ है, अवंधकोंका $\frac{१}{३}$ वा सर्वलोक भंग है ।

[विशेष—इसके वंधकोंके ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार $\frac{१}{३}$ भंग है । यह वैक्रियिक अंगोपांगके अवंधकोंके लोकाग्रके एकेन्द्रिय जीवोंकी अपेक्षा $\frac{१}{३}$ कहा है ।

- सच्चलोगो । छसंध० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तमंगो । अवंधगा तेरह० सच्चलोगो ।
 परघादुस्सा० वंधगा तेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा लोगस्स असंखेज्झदिभागो,
 सच्चलोगो वा । आदावस्स वंधगा खेत्तमंगो । अवंधगा तेरह० सच्चलोगो । उज्जीवस्स
 वंधगा सत्तचोदस० । अवंधगा तेरह० सच्चलोगो वा । पसत्थवि० वंधगा छच्चोदस० ।
 ५ अवंधगा तेरह० सच्चलो० । अप्पसत्थवि० वंधगा छच्चोदस० । अव० सत्तचोद०
 सच्चलो० । दोण्णापि चारह० । अवंधगा सत्तचोदस० सच्चलो० । एवं दूसर० । तस्सबंधगा
 चारह० । अवंधगा सत्तचो० सच्चलो० । थावरबंधगा सत्तचोदस० सच्चलोगो ।
 अवंधगा चारहचोदस० । दोण्णापि वंधगा तेरहचोदस० सच्चलोगो । अवंधगा णत्थि ।
 वादरं वंधगा तेरह० । अवंधगा लोगस्स असंखेज्झदिभागो, सच्चलोगो वा । मुहुमबंधगा
 १० लोगस्स असंखे०, सच्चलोगो वा । अवंधगा तेरह० चोदस० । दोण्णं पगदीणं वंधगा
 तेरह० सच्चलो० । अवंधगा णत्थि । पज्जत्त-पत्तेग० वंधगा तेरह० सच्चलो० । अवंधगा
 लोगस्स असंखे० सच्चलो० । अपज्जत्त-साधारण-बंधगा लोग० असंखे०,

दोनों अंगोपांगोंके वंधकोंका $\frac{1}{2}$ तथा अवंधकोंका $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—दोनों अंगोपांगोंके अवंधकोंका एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पत्तिकी अपेक्षा $\frac{1}{2}$ कहा है ।]

छह संहननोंका पृथक् पृथक् अथवा समुदाय रूपसे क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है । परघात, उच्छ्वासके वंधकोंके $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग भंग है । अथवा सर्वलोक है । आतपके वंधकोंके क्षेत्रके समान सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{1}{2}$ अथवा सर्वलोक भंग है । उद्योतके वंधकोंका $\frac{1}{2}$, अवंधकोंका $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक भंग है । प्रशस्त विहायोगतिके वंधकोंके $\frac{1}{2}$, अवंधकोंके $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{1}{2}$ कहा है, कारण देवोंके प्रशस्त विहायोगति पायी जाती है । प्रशस्तविहायोगतिके अवंधक अर्थात् अप्रशस्तविहायोगतिके वंधक अथवा दोनोंके अवंधककी अपेक्षा अधोलोकके ६ राजू तथा ऊर्ध्वके ७ इस प्रकार $\frac{1}{2}$ है ।]

अप्रशस्तविहायोगतिके वंधकोंका $\frac{1}{2}$, अवंधकोंका $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है ।

[विशेष—सप्तम पृथ्वीके स्पर्शनकी अपेक्षा अप्रशस्तविहायोगतिके वंधकोंके $\frac{1}{2}$ है । विहायोगतिके अवंधकी अपेक्षा लोकाग्रके तिर्यचोंके स्पर्शनकी दृष्टिसे $\frac{1}{2}$ भाग है, कारण एकेन्द्रियके साथ विहायोगतिके वंधका सन्निकर्षणा नहीं पाया जाता है ।]

दोनों विहायोगतिके वंधकोंके $\frac{1}{2}$, अवंधकोंके $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है । दो स्वरोमें भी इसी प्रकार है । त्रसके वंधकोंके $\frac{1}{2}$, अवंधकोंके $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है । स्थावरके वंधकोंके $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{1}{2}$ है । दोनोंके वंधकोंके $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । वादरके वंधकोंके $\frac{1}{2}$ है, अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । सूक्ष्मके वंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{1}{2}$ भाग है । दोनों प्रकृतियोंके वंधकोंके $\frac{1}{2}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । पर्याप्त तथा प्रत्येकके वंधकोंका $\frac{1}{2}$ भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अपर्याप्त, साधारणके वंधकों

सव्वलो० । अवंधगा तेरह० सव्वलो० । दोण्णं पगदीणं वंधगा तेरह० सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । सुभग-आदेज्ज-समचदु० भंगो । दूभग-अणादेज्ज-हुंडसंठाणभंगो । दोण्णं पगदीणं वंधगा तेरह सव्वलो० । अवंधगा णत्थि । जसगित्तिस्स वंधगा सत्त-चोद्दस० । अवंधगा तेरह० सव्वलोगो । अज्जस० वंध० तेरह० सव्वलो० । अवंधगा सत्तचोद्दस० । दोण्णं पगदीणं वंधगा तेरह० सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । दो ५ गोदाणं संठाण-भंगो ।

§२९७. पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तिण्णिंसीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिण-पंचंतराइगाणं वंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा णत्थि । दोवेदणी० हस्सादि० दोयुगल-थिरादि० ४ वंधगा अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । दोण्हं पग- १० दीणं वंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । णवुंस० वंधगा पडिलोमं भाणिदव्वं । तिण्णि वेदाणं वंधगा लोगस्स असंखे०, सव्वलोगो वा । अवंधगा णत्थि । इत्थिवेदभंगो दोआयु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि०

के लोकका असंख्यातवां भाग, सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{1}{3}$ वा सर्वलोक है । पर्याप्त अपर्याप्त तथा प्रत्येक साधारणके वंधकोंका $\frac{1}{3}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । सुभग तथा आदेयका समचतुरस्र संस्थानके समान भंग है । दुर्भग, अनादेयका हुंडकसंस्थानके समान भंग है । सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेयके वंधकोंका $\frac{1}{3}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । यशःकीर्तिके वंधकोंके $\frac{1}{4}$ है, अवंधकोंके $\frac{1}{3}$ वा सर्वलोक है । अयशःकीर्तिके वंधकोंके $\frac{1}{4}$, सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{1}{4}$ है । यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके वंधकोंके $\frac{1}{3}$ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—तिर्यच्चोंमें तीर्थकरका वंध न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया है ।]

दो गोत्रोंके विषयमें संस्थानके समान भंग है ।

§२९७. पंचेन्द्रिय-तिर्यच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कामीण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायके वंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है^१ । अवंधक नहीं हैं । दो वेदनीय, हास्यादि दो युगल, स्थिरादि ४ युगलके वंधकों-अवंधकोंका लोकके असंख्यातवें भाग वा सर्वलोक है । दोनों प्रकृतियोंके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग, वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । स्त्री-पुरुष वेदके वंधकोंका क्षेत्र-भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है । अवंधकोंका लोकके असंख्यातवें भाग वा सर्वलोक भंग है । नपुंसकवेदका प्रतिलोम भ्रम है अर्थात् नपुंसकवेदके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक भंग है । अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग है । तीनों वेदोंके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं ।

(१) 'पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तापंचणां वेददियं सेतं पोटिदं ? दोण्हं पगदीणं' वा ।" —पट्ठपं० फो० सू० ३२, ३३ ।

अंगो० छसंघ० मणुसाण० आदाउजो० दोविहा० सुभग-मुस्तर-आदेज्ज० उच्चागांद् च । णपुंसगवेद-भंगो तिरिक्खगदि-गइंदियजादि-हुंडसंठाण-तिरिक्खाणपुत्वि-थावर-पज्जत्तापज्ज० पत्तेय-साधारण-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोद् च । दोआयु० छसंघ० दोविहा० दोसर० वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । गदि-जादि-संठाण-आणपुत्वि-तसथावरादिसत्तयुगलदोगोदाणं वंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि । परघादुस्साणं वंधगा अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । उज्जोवस्स वंधगा सत्तचोदसभागो वा । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सच्चलोगो वा । एवं वादरजसगिति तत्पडि-पक्खं मुहुमं अज्जसगिति ।

१० §२९८. एवं मणुसापज्जत्त० सच्चविगलंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त-वादरपुटवि० आउ० तेउ० वाउ० वादरवणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ता । णवरि वादरवाउपज्जत्ते जं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो कादव्वो ।

§२९९. मणुस० ३-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदु० तेजाक० धण्ण० ४ अगु०

दो आयु (मनुष्य-तिर्यचायु) मनुष्यगति, दोइंदियादि चार जाति, हुंडक विना ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, सुभग, सुत्तर, आदेय, उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है । तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुंडक संस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है । दो आयु, ६ संहनन, २ विहायोगति, दो स्वरके वंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् सर्वलोक है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वकोक भंग है । गति, जाति, संस्थान, आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि सप्त युगल, २ गोत्रके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । परवात, उच्छ्वासके वंधकों-अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक भंग है । उद्योतके वंधकोंका दृष्ट, अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । वादर, यशःकीर्ति तथा इनके प्रतिपक्षी सूक्ष्म और अयशःकीर्ति में इसी प्रकार भंग है ।

§२९८. लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस-अपर्याप्तक, वादर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वादर वनस्पति, प्रत्येक, पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार भंग है । विशेष, वादर-वायु-कायिक पर्याप्तकोंमें जहां लोकका असंख्यातवां भाग है, वहां लोकका संख्यातवां भाग जानना चाहिये ।

§२९९. 'मनुष्यत्रिक अर्थात् मनुष्य, पर्याप्त-मनुष्य, मनुष्यनीमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अंतरायके

(१) "मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सत्तचोददसभागा वा देसणा । सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा, सच्चलोगो वा ।" -पट्खं० फो० सू० ३४-४१ ।

उप० णिमि० पंचंतराङ्गाणं वंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । मिच्छत्तस्स वंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सत्तचोद्दसभागो वा केवलभंगो । सादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो केवलभंगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । असादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा लोगस्स असंखे० भागो ५ केवलभंगो । दोणं पगदीणं वंधगा केवलभंगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । इत्थि० पुरिस० वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा केवलभंगो । णवुंस० असादभंगो । तिण्णं वेदाणं वंधगा लोगस्स असंखे० भागो सव्वलोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । इत्थिभंगो चदुआयु-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेउव्वि०-आहार०-पंचसंठा० तिण्णिअंगो० छसंध० तिण्णि-आणु० आदाव० दोविहा० तस-सुभग० दोसर (?) [सुत्तर०] १० आदे० उच्चागोदं च । णवुंसकवेदभंगो हस्सरदि-अरदिसोग-तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-ओरालि० हुडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-पज्जत्त-अपज्जत्त० पत्तेय० साधारण० धिरा-धिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च । एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेद-

बंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । मिथ्यात्व के बंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा १/४ अथवा केवली-भंग है ।

[विशेष—मिथ्यात्वके बंधकोंके मारणांतिक समुद्रात तथा उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन कहा है । (ध० टी० फो० पृ० २१७)]

साताके बंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा केवली-भंग है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । असाताके बंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा केवली-भंग है । दोनों प्रकृतियोंके बंधकोंका केवली-भंग है । अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग है ।

[विशेष—दोनोंके अवंधक अयोगकेवलीकी अपेक्षा असंख्यातवां भाग कहा है ।]

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् लोकका अनंगत्ववां भाग है । अवंधकोंका केवली-भंग है । नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है । तीनों वेदोंके बंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक भंग है । अवंधकोंका केवली-भंग है । पार आयु, तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक, आहारक शरीर, ५ संस्थान, तीन अंगोत्पत्ति, छह संद्वलन, तीन आनुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर (?) [सुत्तर] । आदेय तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है । हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्य्यचगति, एवंन्द्रिय जर्ज, औदारिक शरीर, हुंडक संस्थान, तिर्य्यचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अवस्था, प्रसंग, मध्यम, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है । प्रत्येक तथा सामान्यसे भी वेदके समान भंग है ।

भंगो । परधादुस्साणं हस्तभंगो । उज्जोवस्त वंधगा सत्तचोदसभागो । अवंधगा केवलभंगो । एवं चादरजसगिति । सुद्धम-बंधगो लोगस्त असंखेज्जदिभागो, सव्व-लोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । अजसगितिस्त वंधगा लोगस्त असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा सत्तचोदसभागो केवलभंगो । दोण्णं पगदीणं वंधगा लोगस्त
 ५ असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । तित्थयरस्त वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा लोगस्त असंखेज्जदिभागो केवलभंगो ।

§३००. देवेसु-धुविगाणं वंधगा अट्ठ-णव-चोदसभागो वा । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्वितिय-अणंताणु० ४ वंधगा अट्ठणव-चोदसभागो वा । अवंधगा अट्ठ-चोदस-भागो वा । एवं णवुंस० तिरिक्खगदि० एहंदि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर०

परघात, उच्छ्वासका ह्रासके समान भंग है । अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा केवली-भंग है । उद्योतके वंधकोंका $\frac{१}{४}$ है । अवंधकोंका केवली-भंग है । चादर तथा यशःकीर्ति में इसी प्रकार है । सूद्धमके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । अयशःकीर्तिके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{१}{४}$ वा केवली-भंग है । चादर, सूद्धम तथा यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । तीर्थकरके वंधकोंका क्षेत्रवत् भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है । अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा केवली-भंग है ।

§३००. देवोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{४}$ भाग है । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातसे परिणत मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीतमें देशोन $\frac{१}{४}$ भाग स्पर्श किया है । मारणांतिक समुद्घातगत मिथ्यात्वी तथा सासादन सम्यक्त्वी देवोंने नीचे दो राजू तथा ऊपर सात राजू इस प्रकार $\frac{१}{४}$ भाग स्पर्श किया है (१५० टी० फो० पृ० २२५) ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ के वंधकोंका $\frac{१}{४}$ वा $\frac{१}{४}$ भाग है । अवंधकोंका $\frac{१}{४}$ भाग है ।^२

[विशेष—यहां स्त्यानगृद्धि आदिके अवंधक सम्यग्मिथ्यात्वी, अविरतसम्यक्त्वी जीवोंके विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर छह राजू तथा नीचे दो राजू इस प्रकार $\frac{१}{४}$ भाग स्पर्शन है । यह विशेष है कि अविरत सम्यक्त्वी देवोंमें मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा भी $\frac{१}{४}$ भाग है । उपपादकी अपेक्षा $\frac{१}{४}$ भाग है ।]

नपुंसकवेद, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुंडकसंस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भंग,

(१) “देवगदीए देवेसु मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्त असंखेज्जदि-भागो, अट्ठणवचोदसभागा वा देसूणा ।” —पट्खं० फो० सू० ४२, ४३ ।

(२) “सम्मामिच्छादिद्वि-असंजदसम्मामिद्विहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्त असंखेज्जदिभागो, अट्ठचोदसभागा वा देसूणा ।” —पट्खं० फो० सू० ४४, ४५ ।

दूभग-अणादेज्ज-णीचागोदं च । मिच्छत्तस्स वंधगा अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा । एवं उच्चागो० । सादासादवंधगा अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा । दोण्णं पगदीणं वंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा । अवंधगा णत्थि । एवं हस्सादिदोयुगलं थिरादि-तिण्णियुगलं च । इत्थि० पुरिस० वंधगा अट्ठचोद्दसभागा । अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा । तिण्णं वेदाणं अट्ठणवचोद्दस० । अवंधगा णत्थि । इत्थिभंगो दोआयु- ५ मणुसगदि-पंचिदि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंध० मणुसाणु० आदाव० दोविहाय० तस-सुभग-आदेज्ज० दोसर० तित्थयर० उच्चागोदं च । एवं पत्तेणेण साधारणेण वि वेदभंगो । णवरि आयुभंगो छसंध० दोविहाय० दोसर० पत्तेणेण साधारणेण वि । एवं सच्चवेदाणं अप्पप्पणो फोसणं कादच्चं ।

अनादेय तथा नीचगोत्रका इसी प्रकार हैं । मिथ्यात्वके वंधकों अवंधकोंका ६४ वा ६४ है । इसी प्रकार उच्चगोत्रमें भी है । साता-असाताके वंधकों अवंधकोंका ६४ वा ६४ भाग है । दोनों प्रकृतियोंके वंधकोंका ६४ वा ६४ भाग है । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—देवोंमें आदिके चार गुणस्थान ही होते हैं अतः अयोगकेवलीमें अवंध होनेवाले इन साता-असाता युग्मका अवंधक यहां नहीं कहा है । असाताका प्रमत्तसंयत तक तथा साताका सयोगी जिन पर्यन्त वंध होता है इसी कारण देवोंमें इनके अवंधक नहीं हैं ।]

हास्यादि दो युगल तथा स्थिरादि तीन युगलमें इसी प्रकार है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वंधकोंके ६४ है । अवंधकोंके ६४ वा ६४ है । तीनों वेदोंके वंधकोंका ६४ वा ६४ है । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—जब देवोंमें वेदोंके अवंधक नहीं हैं, तब स्त्रीवेद, पुरुषवेदके अवंधकोंका तात्पर्य नपुंसकवेदके वंधकोंसे है । नपुंसकवेदका वंध मिथ्यात्वी जीवोंके ही होगा अतः उनके ६४ वा ६४ कहा है ।

तिर्यच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, ५ संस्थान, आंदारिक अंगोपांग, ६ संज्ञ-नन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेच, दो स्वर, तीर्थपर और उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है । अर्थात् वंधकोंके ६४ तथा अवंधकोंके ६४ वा ६४ हैं । इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे भी वेदोंके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, छह संस्थान, दो विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा साधारणसे दो आयु (तिर्यच-मनुष्यायु) के समान भंग जानना चाहिए ।

इस प्रकार सर्वदेवोंमें अपना-अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए ।

[विशेष—भवनत्रिकामें मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा न्यायका अर्थव्यवस्था भाग, ३६, ६४ वा ६४ भाग है । ये विहारयन् स्वस्थान, वेदना, क्लेश, विविधवर्तन तथा उपरोक्त लोकका स्पर्शन करते हैं । मेरुतसे दो राजू नीचे तथा नीचेस्थानों के विगमनकारण

(१) “भवनवासिप-वाणवैतर-जोयिषिपदेवेषु मितादिदि-सात्तवग्ग-विदिं देवेषु वेदाणिदि । लोगस्स अत्तसेज्जदिभागो, अट्ठहा वा अट्ठणवचोद्दसभागा वा वेदना ।” —पट्ठसं० पौ० सू० १०-२३ ।

पर्यन्त ऊपर $\frac{3}{4}$ स्वयमेव विहार करते हैं । ऊपरके देवोंके प्रयोगसे $\frac{1}{4}$ तथा मारणांतिक समुद्रातकी अपेक्षा ऊपर सात तथा नीचे दो, इस प्रकार $\frac{1}{4}$ स्पर्शन करते हैं ।^१ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि देवोंमें अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा $\frac{3}{4}$ वा $\frac{1}{4}$ भाग स्पर्शन है ।^२ सौधर्मल्लिकके देवोंका विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिकपदकी दृष्टिसे आदिके दो गुणस्थानोंमें $\frac{1}{4}$ है । मारणान्तिकपदसे परिणत उक्त गुणस्थानोंमें $\frac{3}{4}$ भाग है । उपपादकी अपेक्षा $\frac{3}{4}$ है । मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमें $\frac{1}{4}$ है । अविरत सम्यक्स्त्रीके मारणांतिककी अपेक्षा देशोन $\frac{1}{4}$ तथा उपपादकी अपेक्षा $\frac{3}{4}$ है ।

^३ सनत्कुमारादि पांच कल्पोंमें स्वस्थान स्वस्थानपदपरिणत देवोंने अतीतकालमें लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । वर्तमानकालकी अपेक्षा भी लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा $\frac{1}{4}$ है । उपपाद परिणत सनत्कुमार, माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने देशोन $\frac{1}{4}$, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-वासी देवोंने देशोन $\frac{3}{4}$ । लांतव-कापिष्ठवासी देवोंने $\frac{1}{4}$, शुक्र-महाशुक्रवासी देवोंने $\frac{3}{4}$, शतार-सहस्रारवासी देवोंने $\frac{1}{4}$ भाग स्पर्श किया है । विशेष, मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंके मारणांतिक तथा उपपाद पद नहीं होते हैं ।^४ आनत, प्राणत, आरण, अच्युतवासी देवोंका विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणांतिक समुद्रातकी अपेक्षा देशोन $\frac{1}{4}$ भाग स्पर्शन है । मिश्रगुणस्थानमें मारणांतिक तथा उपपादपद नहीं होते हैं । आनत-प्राणत-कल्पके उपपाद परिणत असंयत सम्यग्दृष्टि देवोंने देशोन $\frac{5}{8}$ भाग स्पर्श किये हैं । आरण-अच्युतवाले देवोंने $\frac{1}{4}$ भाग स्पर्श किया है । कारण वैरी देवोंके सम्बन्धसे सर्व द्वीपसागरोंमें विद्यमान असंयत-सम्यग्दृष्टि तथा संयतासंयत तिर्यचोंका आरण-अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है । नव त्रैवेयकवासी देवोंका मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन है । अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त असंयत सम्यक्स्त्री देवोंके स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक, मारणांतिक उपपादरूप परिणमनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन है ।

(१) “सम्मामिच्छादिदृष्टि-असंजदसम्मादिदृष्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठुट्ठा वा अट्ठोदसभागा वा देसणा ।”-पट्खं० फो० सू० ४८-४९ ।

(२) “सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिदृष्टिपहुडि जाव असंजदसम्मादिदृष्टि देवोपं ।”-सू० ५० ।

(३) “सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिदृष्टिपहुडि जाव असंजदसम्मा-दिदृष्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठोदसभागा वा देसणा ।”-सू० ५१, ५२ ।

(४) “आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिदृष्टिपहुडि जाव असंजदसम्मादिदृष्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । छ चोदसभागा वा देसणा फोसिदा । णवगेवेज्ज-विमाणवासियदेवेसु मिच्छादिदृष्टिपहुडि जाव असंजदसम्मादिदृष्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अणुदिस जाव सब्बट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिदृष्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।”-सू० ५३-५६ ।

(२) "बादरपुटविपारय-बादरआटकाइय-बादरसेटकाइय-बादरगणपटिकाइय-ने सभं गणपतय-पु-
केवणियं सेतं पोखिदं? लोगस्य अससेवकदिभ गो सवलोपो वा ।" —पृ. ६७-६८ ।

अंगो० छसंध० आदा० दोविहाय० तस-सुभग-दोसर-आदेज्ज० । णुंसक-भंगो णइदिय
हुंडसंठा०-थावर-दूभग-अणादेज्ज० । मणुसायु-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।
अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । दो-आयु-बंधगा लोगस्स संखेज्जदि-
भागो । अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । एवं छसंध० दोविहा०
५ दोसर० । तिरिक्खगदिवंधगा सव्वलोगो । अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । मणुस-
गदिवंधगा [लोगस्स] असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा
सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । एवं दो-आणु० दो-गोदाणं । उज्जोवस्स बंधगा लोगस्स
संखेज्जदिभागो, सत्तचोदसभागो वा । अबंधगा सव्वलोगो । एवं वादर-जस० ।
पज्जत्ता-अपज्जत्त-पत्तेगं साधारणं वेदणीय-भंगो । सुहुम-अज्जस० बंधगा सव्वलोगो ।
अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सत्तचोदसभागो वा । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्व-
१० लोगो । अबंधगा णत्थि । एवं वादर-वाउ० अपज्जत्तात्ति । वादर-पुढवि-आउ० तेउ०-
तेसिं च अपज्जत्ता वादर-वणप्फदि-णिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता वादर-वणप्फदि०

अबंधकोंके लोकका संख्यातवां भाग है ।^१ तिर्यंचायु, चार जाति, पांच संस्थान, औदारिक
अंगोपांग, छह संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर तथा आदेयमें स्त्री-
वेदका भंग जानना चाहिए । एकेन्द्रिय, हुंडकसंस्थान, स्थावर, दुर्भग तथा अनादेयमें नपुंसक-
वेदका भंग जानना चाहिए । मनुष्यायुके बंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग है । अबंधकोंका
लोकका संख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । मनुष्य-तिर्यंचायुके बंधकोंका लोकका संख्यातवां
भाग है । अबंधकोंका^२ लोकका संख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । छह संहनन, दो विहायोगति
तथा दो स्वरमें इसी प्रकार है । तिर्यंचगतिके बंधकोंके सर्वलोक है । अबंधकोंके लोकका
असंख्यातवां भाग है । मनुष्यगतिके बंधकोंके [लोकका] असंख्यातवां भाग है, अबंधकोंके सर्वलोक
है । दोनों प्रकृतियोंके बंधकोंके सर्वलोक है । अबंधक नहीं है । मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी
तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार है । उद्योतके बंधकोंका लोकका संख्यातवां भाग वा ६ भाग
है । अबंधकोंके सर्वलोक है । वादर तथा यशःकीर्तिमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पर्याप्त,
अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमें वेदनीयके समान भंग है । सूक्ष्म तथा अयशःकीर्तिके बंधकोंका
सर्वलोक है । अबंधकोंका लोकका संख्यातवां भाग वा ६ है । वादर-सूक्ष्म तथा यशःकीर्ति-
अयशःकीर्तिके बंधकोंका सर्वलोक है । अबंधक नहीं हैं । वादर वायुकायिक, वादरवायुकायिक
अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार है । वादर पृथ्वीकायिक, वादर अप्कायिक, वादर तेजकायिक, वादर-
पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक, वादर-अप्कायिक अपर्याप्तक, वादर-तेजकायिक-अपर्याप्तक, वादर
वनस्पतिकायिक, वादर निगोद, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, वादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक,
वादर निगोद पर्याप्तक, वादर-निगोद-अपर्याप्तक, वादर वनस्पति प्रत्येक, वादर वनस्पति प्रत्येक

(१) “वादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स संखेज्जदिभागो । सव्वलोगो वा ।”-पट्खं०
फो० सू० ६९, ७२ । (२) “मारणंतियउववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो । एवं वादर तेउकाइयपज्ज-
चाणं पि वत्तव्वं । णवरि वेउव्वियस्य तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो वत्तव्वो ।”-ध० टी० फो० पृ० २५२ ।

पत्तेय तस्सेव अपजत्तवादरएइंदियभंगो । णवरि यं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो कायव्वो ।

§३०४. पंचिदिय-तस-तंसि पजत्ता-पंचणा० छदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिंमि० पंचंत वंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ-तेरह-चोदसभागो वा सव्वलोगो वा । अवंधगा केवलिभंगो । धीणगिद्धि० ३ अणंताणु० ४ वंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठ-चोदसभागो केवलिभंगो । [साद० वंधगा अट्ठ-तेरह-चोदस० केवलि-भंगो ।] अवंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । असाद-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठतेरह-चोदस० केवलिभंगो । दोण्णं वंधगा अट्ठतेरह० चोदसभागो केवलि-भंगो । दोण्णं अवंधगा

अपर्याप्तमें वादर एकेन्द्रियके समान भंग है । विशेष, जहाँ लोकका संख्यातवां भाग है, वहाँ लोकका असंख्यातवां भाग करना चाहिए ।

§३०४. 'पंचेन्द्रिय, त्रस, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस-पर्याप्तकोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, आठ कषाय, भय-जुगप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायके बंधक लोकके असंख्यातवें भाग, ४, ४ के वा सर्वलोकका स्पर्शन करते हैं । अवंधकोंका केवली-भंग है । स्थानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ के बंधकोंका ४, ४ के वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ४ भाग वा केवलीके समान भंग जानना चाहिए ।

[विशेष-विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्रातकी अपेक्षा ज्ञानावरणादिके बंधकोंका स्पर्शन ४ है, कारण मेस्तलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू प्रमाण स्पर्शन है । मारणांतिक तथा उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक है । सप्तम पृथ्वीके नारकीने मारणांतिक पर मध्यलोकको स्पर्श किया, पश्चात् मध्यलोकमें जन्म धारण कर अनंतर लोकाग्रमें जाकर पादर पृथ्वीकायिक आदिके रूपमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार ६ तथा ७ = ४ राजू स्पर्शन हुआ । अवंधकोंमें केवली-भंग लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण, अथवा प्रवर समुद्रातकी अपेक्षा असंख्यात बहुभाग एवं लोकपूरणकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण है । स्थानगृद्धित्रिक तथा अनंतानुबंधी ४ के अवंधक सम्यक् मिथ्यात्वी तथा अविरतसम्यक्त्वी जीर्णोर्ण अपेक्षा ४ है, कारण ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू प्रमाण स्पर्शन विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणांतिक समुद्रातकी अपेक्षा यथा है । निधगुणमयतनमें मारणांतिक समुद्रात नहीं होता है (ध० टी० फो० पृ० १६७)]

[साता वेदनीयके बंधकोंका ४, ४ के वा केवली-भंग है ।] अवंधकोंका ४, ४ के वा सर्वलोक है । असाताके बंधकोंका ४, ४ के वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ४, ४ के वा केवली-भंग है । दोनोंके बंधकोंका ४, ४ के वा केवली-भंग है । दोनोंके अवंधकोंका लोकके असंख्यातवें भाग है ।

(१) "पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तु निष्सादिट्ठोहि वेदित्तिं स्यां पंचित्तरं ! लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचोदसभागो देवणा, सव्वलोगो वा । सादपक्कन्नादिट्ठिण्णुहि षड् अणंताणुदेवित्तिं बोधं ।" -पट्ठ० फो० सू० ६०, ६२ ।

"तसकारय-तसकारयपज्जत्तु निष्सादिट्ठिण्णुहि षड् अणंताणुदेवित्तिं बोधं ।" -पट्ठ० ७२ ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो । मिच्छत्तस्स वंधगा अट्ठत्तेरहं, सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठत्तेरहं केवलभंगो । अपच्चक्खणाणां ४ वंधगा अट्ठत्तेरहं, सच्चलोगो वा । अवंधगा छचोद्दसभागो केवलभंगो । इत्थिं पुरिसं वंधगा अट्ठत्तेरहं । अवंधगा अट्ठत्तेरहं केवलभंगो । णवुंसं वंधगा अट्ठत्तेरहं सच्चलोगो वा । अवंधगा ५ अट्ठत्तेरहं केवलभंगो । तिण्णि वेदाणं वंधगा अट्ठत्तेरहं सच्चलोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । इत्थिभंगो पंचसंठां छत्संघं सुभग-दोसर-आदे । णवुंस-कभंगो हुंडसंठां दूभगं अणादे । साधारणेण वेदभंगो । णवरि संघडणसरणा-माणं वंधगा अट्ठत्तेरह-चोद्दसभागो वा । अवंधगा अट्ठत्तेरह-चोद्दसं सच्चलोगो वा । हस्सरदि-अरदि-सोग-बंधगा अट्ठत्तेरहं सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठत्तेरहं भागो, केवलभंगो । चदुण्णं वंधगा अट्ठत्तेरहं सच्चलोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । एवं थिराथिमुभामुभं दो-आयु तिण्णिजादि । आहारदुगं खेत्तभंगो । अवंधगा अट्ठत्तेरहं केवलभंगो । दो-आयुं मणुसगदि-आदाव-तित्थयं

[विशेष—दोनोंके अवंधक अयोगकेवलीका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है । (१७०)]

मिथ्यात्वके वंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका १/४, १/३ वा केवली-भंग है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के वंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका १/४ वा केवली-भंग है ।

[विशेष—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक देशसंयमीके अच्युत स्वर्ग पर्यन्त मारणांतिककी अपेक्षा १/४ कहा है । (ध० टी० फो० पृ० १७०)]

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वंधकोंका १/४, १/३ है । अवंधकोंका १/४, १/३ वा केवली-भंग है ।

[विशेष—मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार १/४ है । ७ वीं पृथ्वीका नारकी मारणांतिक कर मध्यलोकका स्पर्श करता है, मरण कर वहाँ उत्पन्न हुआ, पश्चात् अच्युत स्वर्गका स्पर्शन किया, इस प्रकार १/३ राजू स्त्री-पुरुषवेदके वंधकोंके हुए ।]

नपुंसकवेदके वंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका १/४, १/३ वा केवलीभंग है । तीनों वेदोंके वंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । ५ संस्थान, ६ संहनन, सुभग, दो स्वर, आदेयका स्त्रीवेदके समान भंग है । हुंडक संस्थान, दुर्भग, अनादेयका नपुंसक वेदके समान भंग है । इनका सामान्यसे वेदके समान भंग है । विशेष, संहनन, स्वर नामक प्रकृतियोंके वंधकोंका १/४, १/३ भाग है, अवंधकोंके १/४, १/४ वा सर्वलोक भंग है ।

[विशेष—तीसरी पृथ्वीमें विक्रिया द्वारा पहुँचा हुआ देव मारणांतिक द्वारा लोकाग्रका स्पर्श करता है इस प्रकार १/४ भाग होता है ।]

हास्य-रति, अरति-शोकके वंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक स्पर्श है । अवंधकोंका १/४, १/३ वा केवली-भंग है । सामान्यसे हास्यादि ४ के वंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, दो आयु तथा ३ जातिमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

आहारकट्टिकमें क्षेत्रके समान भंग है । अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है । अवंधकोंका १/४, १/३ वा केवली-भंग है । दो आयु, मनुष्यगति, आतप तथा तीर्थंकरके वंधकोंका

बंधगा अट्ठचोद्दसभागो । अवंधगा अट्ठ-तेरह० केवलभंगो । चटु-आयुबंधगा
अट्ठ-चोद्दसभागो । अवंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । दोगदि-बंधगा छच्चो-
द्दस० । अवंधगा अट्ठतेरह० केवलभंगो । तिक्खिगदि बंधगा अट्ठतेरह० सच्च-
लोगो वा । अवंधगा अट्ठ-वारह० केवलभंगो । चटुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठ-तेरह०
सच्चलोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । एवं आणुपुच्चीणं । एइंदिय० बंधगा अट्ठ-
णव-चोद्दस० सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठवारह० केवलभंगो । पंचिदि०
बंधगा अट्ठ-वारह० । अवंधगा अट्ठ-णवचोद्दस० केवलभंगो । पंचण्णं जादीणं
बंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा केवलभंगो । ओरालि० बंधगा अट्ठ-
तेरह०, सच्चलोगो वा । अवंधगा वारस० केवलभंगो । वेउच्चिय० बंधगा वारह० ।
अवंधगा अट्ठतेरह० केवलभंगो । दोण्णं बंधगा धुविगाणं भंगो । ओरालि० अंगो०
अट्ठवारह-चोद्दस० । अवंधगा अट्ठतेरह० केवलभंगो । वेउच्चि० अंगो० बंधगा
वारह० । अवंधगा अट्ठतेरह० केवलभंगो । दोण्णं बंधगाणं अट्ठवारहभागो । अवंधगा
अट्ठणव-चोद्दसभागो केवलभंगो । परघादुस्सा० बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सच्चलोगो
वा । अवंधगा केवलभंगो । उज्जोवस्स बंधगा अट्ठतेरह० । अवंधगा अट्ठतेरहभागो
केवलभंगो । पसत्थ-अप्पसत्थविहायगदिवंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा० अट्ठ-

४४ है । अवंधकोंका ४४, ४४ वा केवलीभंग है । चार आयुके बंधकोंका ४४ है, अवंधकोंका
४४, ४४ वा सर्वलोक है । नरकगति-देवगतिके बंधकोंका ४४ है; अवंधकोंके ४४, ४४ वा केवली-
भंग है । तिर्यग्गतिके बंधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ४४, ४४ वा केवली-भंग
है । चारों गतिके बंधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है, अवंधकोंमें केवली-भंग है । आनुपूर्वियोंमें
इसी प्रकार जानना चाहिए ।

एकेन्द्रियके बंधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ४४, ४४ वा केवली-भंग
है । पंचेन्द्रियके बंधकोंका ४४, ४४ है । अवंधकोंका ४४, ४४ वा केवली-भंग है । पंचसंसारियोंके
बंधकोंके ४४, ४४ वा सर्वलोक है, अवंधकोंके केवली-भंग है । आचारिक शरीरके बंधकोंके
४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ४४ वा केवली-भंग है ।

[विशेष—आचारिक शरीरके अवंधकों अर्थात् वैकल्पिक शरीरके बंधकोंके भंग होने पर
अच्युत पर्यन्त ६ राजू तथा सप्तन पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू, इसी प्रकार ४४ हैं ।]

वैकल्पिक शरीरके बंधकोंके ४४, अवंधकोंके ४४, ४४ वा केवली-भंग है । दोनों
बंधकोंके ४४, ४४, लोकका असंख्यातकों भाग वा सर्वलोक पर्यन्त ध्रुव प्रमाणोंके बंधकोंके
समान है । अवंधकोंके केवली-भंग है । आचारिक शरीरके बंधकोंके ४४, ४४ है । अवंधकोंके
का ४४, ४४ वा केवली-भंग है । वैकल्पिक शरीरके बंधकोंके ४४ है । अवंधकोंके ४४, ४४
वा केवली-भंग है । दोनोंके बंधकोंका ४४, ४४ है । अवंधकोंके ४४, ४४ वा केवली-भंग है ।
परमात, उच्छिष्टात्मके बंधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके केवली-भंग है ।
चाहिए । लघोत्तरे बंधकोंका ४४, ४४ है; अवंधकोंके ४४, ४४ वा केवली-भंग है ।

तेरह० केवलिभंगो । दोण्णं वंधगा अट्ठवारहभागो० । अवंधगा अट्ठणवचोद्दस० केवलिभंगो । तसवंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा अट्ठणवचोद्दस० केवलिभंगो । थावर-बंधगा अट्ठणवचोद्दस० सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठ-वारह० केवलि-भंगो । दोण्णं वंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । अवंधगा केवलिभंगो । वादर-बंधगा अट्ठ-तेरह० । अवंधगा केवलिभंगो । पज्जत्तपत्तेय० वंधगा अट्ठ-तेरह० सव्व-लोगो वा । अवंधगा केवलिभंगो । सुहुम-अपज्जत्त-साधारणबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि-भागो सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो । वादर-सुहुम-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । अवंधगा केवलिभंगो । जसगित्ति उज्जोव' (?) वंधगा, अज्जस० वंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो । १० दोण्णं वंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । अवंधगा केवलिभंगो । उच्चागोदं मणुसा-युभंगो । णीचागोदं वंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठचोद्दस० केवलिभंगो ।

योगति, अप्रशस्तविहायोगतिके वंधकोंका ५६, ५७ है । अवंधकोंका ५६, ५७ वा केवली-भंग है । दोनोंके वंधकोंका ५६, ५७ है । अवंधकोंका ५६, ५७ वा केवली-भंग है ।

[विशेष-एकेन्द्रिय जातिके साथ विहायोगतिका सन्निकर्ष नहीं पाया जाता है अतः विहा-योगतिद्विक के अवंधकोंके मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजूकी अपेक्षा ५६ तथा मेरुतल से ऊपर सात राजू तथा नीचे दो राजू, इस प्रकार ५७ भाग जानना चाहिए ।]

त्रसके वंधकोंका ५६, ५७ है । अवंधकोंके ५६, ५७ वा केवली-भंग है । स्थावरके वंधकोंका ५६, ५७ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ५६, ५७ वा केवली-भंग है । दोनोंके वंधकोंका ५६, ५७ अथवा सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । वादरके वंधकोंका ५६ वा ५७ है । अवंधकोंके केवली-भंग है । पर्याप्त, प्रत्येकके वंधकोंका ५६, ५७ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणके वंधकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है ।^१ अवंधकोंके ५६, ५७ वा केवली-भंग है । वादर, सूक्ष्मके वंधकोंके ५६, ५७ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके केवली-भंग है । यशःकीर्ति, उद्योत (?) के वंधकों, अयशःकीर्तिके वंधकोंके ५६, ५७ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ५६, ५७ वा केवली-भंग है । दोनोंके वंधकोंके ५६, ५७ वा सर्वलोक भंग है । अवंधकोंके केवली-भंग है ।

[विशेष-यहाँ यशःकीर्तिके साथ उद्योतका पाठ अधिक प्रतीत होता है । कारण परघात, उच्छ्वासके वंधकोंके अनंतर उद्योतका वर्णन किया जा चुका है ।]

उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, ५६ वा सर्वलोक है, अवंधकोंका सर्वलोक है । नीच गोत्रके वंधकोंका ५६, ५७ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ५६ वा केवली-भंग है ।

(१) "पंचिदिय-पंचिदियपजत्तएसु मिच्छादिहीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा देसणा, सव्वलोगो वा ।" -पट्खं० फो० सू० ६०, ६१ ।

॥३०५॥ एवं पंचमण० पंचवचि० । णवरि केवलिभंगो णत्थि । वेदणीयस्स अवंधगा णत्थि । काजोगि-ओघो । णवरि वेदणी० अवंधगा णत्थि ।

॥३०६॥ ओरालियकाजोगीसु-पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । सेसाणं तिरिक्खोघो कादव्वो । णवरि अवंधा (धगा) धुविगाणं भंगो । ५

॥३०७॥ आयु-संघडण-विहायगदिसरं मोत्तूण । ओरालियमिस्सवेगुव्वियमिस्स-आहार० आहारमिस्स खेत्तभंगो । णवरि ओरालियमिस्स-मणुसायुवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा सव्वलोगो ।

॥३०८॥ वेगुव्विय-काजोगीसु-पंचणा० छदंस० वारसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ वादर-पज्जत्त० पत्तेय-णिमिण-पंचंतराइगाणं वंधगा १०

॥३०५॥ पंच मन, पंच वचनयोगियोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ केवली-भंग नहीं है । वेदनीयके अवंधक नहीं है । काययोगीमें—ओघके समान है । यहाँ वेदनीयके अवंधक नहीं हैं ।

॥३०६॥ औदारिक काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरण ४ तथा संज्वलन ४ रूप कपायाष्टक, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपचात, निर्माण तथा ५ अंतरायके वंधकोंके सर्वलोक है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातयाँ भाग है । शेष प्रकृतियोंका तिर्यचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, अवंधकोंमें ध्रुव प्रकृतियोंका भंग जानना चाहिए ।

॥३०७॥ औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारकमिधमें—आयु, संहनन, विहायो-गति, दो स्वरको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातयाँ भाग जानना चाहिए । विशेष, औदारिक मिश्र काययोगमें—मनुष्यायुके वंधकोंका लोकका असंख्यातयाँ भाग या सर्वलोक स्पर्शन है । अवंधकोंके सर्वलोक है ।

॥३०८॥ वैक्रियिक काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरणदि १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक,

(१) “ओरालियकाजोगीसु मिच्छादिद्वौ ओघ (सव्वलोगो) । पमत्तसंज्जदेहि केवलिं केत्तं पोसिदं ! लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।” —पट्ठ० फो० सू० ८५-८६ ।

(२) “वेडव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वौ सासणसम्मादिद्वौ-असंज्जदसम्मादिद्वौ केवलिं केत्तं पोसिदं ! लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।” —सू० ९४ ।

“आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंज्जदेहि केवलिं केत्तं पोसिदं ! लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।” —सू० ९५ । “ओरालिमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वौ ओघ ।” —सू० ८८ ।

“सासणसम्मादिद्वौ-असंज्जदसम्मादिद्वौ-सजोगिकेवलीहि केवलिं केत्तं पोसिदं ! लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।” —सू० ८९ ।

(६) “वेडव्वियकायजोगीसु मिच्छादिद्वौहि केवलिं केत्तं पोसिदं ! लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठतेरएचोदरुत्तमाणा वा देवता ।” सू०-९० ।

अट्ठ-तेरहभागो । अवंधगा णत्थि । श्रीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त० अणंताणु० ४ वंधगा अट्ठतेरह० । अवंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो । णवरि मिच्छत्तस्स वंधगा अट्ठवारह-
भागो । सादासादस्स वंधगा अवंधगा अट्ठ-तेरहभागो । दोणं वंधगा अट्ठतेरह० ।
अवंधगा णत्थि । एवं हस्सादि-दोयुगलं, थिरादि-तिण्णियुगलं । इत्थि० पुरिसवेदाणं
५ वंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा अट्ठतेरहभागो । णवुंसग-वेदस्स वंधगा अट्ठ-
तेरहभागो । अवंधगा अट्ठ-वारहभागो । तिण्णि वेदाणं अट्ठतेरहभागो । अवंधगा
णत्थि । इत्थिभंगो पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंव० सुभग० आदेज्ज० ।
णवुंसगवेदभंगो हुंडसंठा० दूभग० अणादे० । साधारणेण वेदभंगो । दोआयु०
मणुसग० मणुसाणु० आदावं तित्थयरं उच्चागोदं वंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो ।
१० अवंधगा अट्ठतेरहभागो । तिरिक्खगादि-तिरिक्खाणु० णीचागोदं वंधगा अट्ठ-

निर्माण तथा ५ अंतरायके वंधकोंका $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष-मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगियोने विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय तथा वैक्रियिकसमुद्घात पद परिणत जीवोंने ऊपर ६ राजू तथा मेरुतलसे नीचे २ राजू इस प्रकार $\frac{१}{४}$ भाग स्पर्श किया है । मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर ७ तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार $\frac{१}{३}$ भाग स्पर्श किया है । (ध० टी० फो० टी० २६६)]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ के वंधकोंका $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है, अवंधकोंका $\frac{१}{४}$ है । विशेष, मिथ्यात्वके वंधकोंका $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है ।

[विशेष-स्त्यानगृद्धित्रिकादिके अवंधक सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा अविरत सम्यक्स्त्री विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक, मारणांतिक परिणत जीवोंके $\frac{१}{४}$ स्पर्शन किया है । मिश्र गुणस्थानमें मारणांतिक नहीं है । (ध० टी० फो० पृ० २६७)]

साता, असाताके वंधकों अवंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । दोनोंके वंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । अवंधक नहीं है । हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलमें इसी प्रकार जानना चाहिए । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । नपुंसकवेदके वंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । तीनों वेदोंके वंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ है । अवंधक नहीं है । ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, सुभग, आदेयमें स्त्रीवेदका भंग है । हुंडक संस्थान, दुर्भग, अनादेयमें नपुंसकवेदके समान भंग है । सामान्यसे वेदके समान भंग है । मनुष्य-तिर्यचायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थकर तथा उच्चगोत्रके वंधकोंका $\frac{१}{४}$ है, अवंधकोंका $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ भाग है ।

[विशेष-वैक्रियिक काययोगी अविरतसम्यक्स्त्री विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणांतिक समुद्घात द्वारा ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू, इस प्रकार $\frac{१}{४}$ स्पर्शन करता है । तीर्थकर आदि प्रकृतियोंके अवंधक मिथ्यात्वी जीवने मेरुतलसे नीचे ६ राजू तथा ऊपर ७ राजू इस प्रकार $\frac{१}{३}$ भाग स्पर्श किया है ।]

तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी तथा नीचगोत्रके वंधकोंके $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$ भाग है । अवंधकोंके

तेरहभागो । अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । दोण्णं वंधगा अट्ठतेरह० भागो । अवंधगा णत्थि । एवं दोण्णं आउ० (णु०) (?) दोगोद० । एइदि० वंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अवंधगा अट्ठवारहभागो । पंचिंदियबंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । दोण्णं वंधगा अट्ठतेरहभागो । अवंधगा णत्थि । एवं तस-थावर० । उज्जोव-बंधगा-अवंधगा अट्ठतेरह-चोद्दसभागो वा । पसत्थवि० ५ वंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा अट्ठ-तेरहभागो । अप्पसत्थवि० वंधगा अट्ठ-वारहभागो । अवंधगा अट्ठतेरहभागो । दोण्णं वंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । एवं ओरालिय० अंगो० छसंध० (?) दोसर० ।

§३०९. कम्मइगस्स-पंचणा० छदंस० वारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा लोगस्स असं० १०

१६ भाग है । दोनों गतियोंके बंधकोंके १६, १३ है । अवंधक नहीं है । दोनों आनुपूर्वी तथा दोनों गोत्रोंका इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए । एकेन्द्रियके बंधकोंके १६, १३ है । अवंधकोंके १६, १३ है । पंचेन्द्रिय जातिके बंधकोंके १६, १३ है । अवंधकोंके १६, १३ है । दोनोंके बंधकोंके १६, १३ भाग है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—वैक्रियिक काययोगियोंके विकलत्रयका बंध नहीं होनेसे दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिका वर्णन नहीं किया गया है ।]

त्रस, स्थावरोंका इसी प्रकार जानना चाहिए । उद्योतके बंधकों, अवंधकोंका १६, १३ है । प्रशस्तविहायोगतिके बंधकोंका १६, १३ है । अवंधकोंके १६, १३ है । अप्रशस्तविहायोगतिके बंधकोंके १६, १३ है । अवंधकोंके १६, १३ है । दोनों बंधकोंके १६, १३ भाग है । अवंधकोंके १६ भाग है । औदारिक अंगोपांग(?), ६ संहनन(?), दोस्वरमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[विशेष—औदारिक अंगोपांग तथा ६ संहननका ५ संस्थान, सुभगादिके साथ वर्णन पृष्ठमें हो चुका है । यहां पुनः उसका वर्णन किस दृष्टिसे किया गया, यह चिंतनीय है ।]

§३०९. कार्माण काययोगीमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय-सुगुप्पा, भय-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायके बंधकोंका सर्वलोक दर्शन है । अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात दहभाग या सर्वलोक है ।

[विशेष—कार्माण काययोगमें ज्ञानावरणादिके अवंधक सर्वलोकदर्शन के लोका असंख्यात भाग स्पर्श धवला टीकामें नहीं कहा है, किन्तु यहाँ ज्ञानावरणादिके अवंधकोंके लोका असंख्यात भाग कहा है । यह विषय चिंतनीय है । प्रतर समुद्रातगत केवलीके कार्माण काययोगमें लोका असंख्यात दहभाग स्पर्श कहा है । कारण लोक पर्यन्त स्थित वातवलयोंमें केवली भयानकमें अन्त-प्रवेश प्रतर समुद्रातमें प्रवेश करते हैं । लोकपूरण समुद्रातमें सर्वलोक नष्ट है । अन्त-प्रवेश ओरसे ज्यादा वातवलयोंमें भी केवलीके आत्म-प्रवेश प्रविष्ट हो जाते हैं । (यः दीः पौः ३०३०३१)]

(१) “कम्मइपकाययोगीणु मिप्पदिट्ठो लोके (सर्वलोक) । नभोनिज्जवर्त्तितं वेत्तितं भवो कोटिदं ? लोगस्स असंखेयं भागा सव्वलोगो वा ।” —पट्ठरं० पौः सूः १६, १०१ ।

असंखेजा वा भागा वा सच्चलोगो वा । श्रीणगिद्वि० ३ अणंताणु० ४ वंधगा सच्च-
लोगो । अवंधगा छच्चोदसभागो, केवलभंगो । सादासाद-बंधगा अवंधगा सच्च-
लोगो । दोणं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स वंधगा सच्चलोगो ।
अवंधगा एकारहभागो, केवलभंगो । इत्थि० पुरिस० णवुंस० वंधगा अवंधगा सच्च-
५ लोगो । तिणं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा केवलभंगो । एवं तिणं वेदाणं भंगो
चदुणोक० पंचजादि-छसंठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च । तिक्खिखगदि-मणुस-
गदिवंधगा अवंधगा सच्चलोगो । देवगदिवंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा सच्चलोगो ।
तिणं गदीणं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा केवलभंगो । एवं तिणि आणु० । ओरालि०
बंधगा सच्चलोगो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदि० वा भागा वा सच्चलोगो वा । वेउ-
१० वियवंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा सच्चलोगो । दोणं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ के वंधकोंके सर्वलोक है । अवंधकोंके $\frac{1}{4}$ वा केवली-भंग है ।

[विशेष—इस योगमें स्त्यानगृद्धि आदिके अवंधक असंयतसम्यक्त्वी त्रिच मेरुतलसे ऊपर छह राजू जा करके उत्पन्न होते हैं । मेरुतलसे नीचे ५ राजू प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं पाया जाता है, कारण नारकी असंयतसम्यक्त्वी जीवोंका त्रिचोंमें उपपाद नहीं होता है । (पृ० २७१)]

साता-असाता वेदनीयके वंधकों-अवंधकोंका सर्वलोक है । दोनोंके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । मिथ्यात्वके वंधकोंका सर्वलोक है, अवंधकोंका $\frac{1}{4}$ अथवा केवली-भंग है ।

[विशेष—उपपाद पदमें वर्तमान मिथ्यात्वके अवंधक सासादन सम्यक्त्वी जीव मेरुके मूल भागसे नीचे पांच राजू और ऊपर अच्युत कल्प तक छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं इससे $\frac{1}{4}$ भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है । (घ० टी० फो० पृ० २७०)]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके वंधकोंका सर्वलोक स्पर्शन है । तीनों वेदोंके वंधकों-का सर्वलोक है । अवंधकोंका केवली-भंग है । हास्यादि ४ नोकपाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-
स्थावरादि नवयुगल तथा २ गोत्रका वेदत्रयके समान भंग है । त्रिचगति मनुष्यगतिके वंधकों
अवंधकोंका सर्वलोक स्पर्श है । देवगतिके वंधकोंका क्षेत्रके समान अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ
भाग भंग है । अवंधकोंका सर्वलोक है । तीन गतिके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका
केवली-भंग है । तीन आनुपूर्वियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[विशेष—कार्माण काययोगमें नरकगति तथा नरकगत्यानुपूर्वीका वंध न होनेसे यहाँ तीन
हों गतियोंका उल्लेख किया है ।^१]

औदारिक शरीरके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका लोकके असंख्यात बहुभाग
वा सर्वलोक है । वैक्रियिक शरीरके वंधकोंका क्षेत्र समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ
भाग है । अवंधकोंका सर्वलोक है । दोनों शरीरोंके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंके

(१) “कम्मे उरालमिस्सं वा ।”-गो० क० गा० ११९ । “ओराले वा मिस्सेहि सुरणित्याडहा-
रणित्यदुगं ।”-गो० क० गा० ११६ ।

केवलभंगो । ओरालि० अंगोवंगस्स वंधगा अवंधगा सच्चलोगो । वेउव्विय० अंगो० खेत्तभंगो । दो-अंगोवंगणं वंधगा अवंधगा सच्चलोगो । एवं छत्तं० परयादुस्सात्त-आदाउज्जो० दोविहा० दोसर० । तिथिय० वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा सच्चलोगो ।

§३१०. इत्थिवेदे-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराङ्गाणं वंधगा अट्ठत्तेरह० सच्चलोगो । अवंधगा णत्थि । धीर्णागद्धि० ३ अणंताणु० ४ वंधगा अट्ठत्तेरह० ५ सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठचोदसभागो । णिद्धापयला-भयदु० तेजाक्क० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं वंधगा अट्ठत्तेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो ।

केवली-भंग है । औदारिक अंगोपांगके वंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अंगोपांगका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग, अवंधकोंका सर्वलोक है । दोनों अंगोपांगोंके वंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । छद्द संहनन, परयात्, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरमें ऐसा ही है । तीर्थकरके वंधकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भंग है । अवंधकोंके सर्वलोक है ।

§३१०. स्त्रीवेदमें-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायके वंधकोंका ५६, ६१ भाग वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं ।^१

[विशेष-विहारवत्स्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिक समुद्रात परिणत देवीमें आठ राजू बाहुल्यवाले राजू प्रतर प्रमाण क्षेत्रमें भ्रमण करनेकी शक्ति होनेसे ५६ स्पर्शन करा है । मारणान्तिक तथा उपपाद परिणत उक्त जीव सर्वलोकको स्पर्श करते हैं, कारण मारणान्तिक और उपपाद परिणत मिथ्यात्वी स्त्री, पुरुषवेदी जीवोंके अगम्य प्रदेशका अभाव है । ऊपर नाथ राजू तथा नीचे छद्द राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनकी अपेक्षा अतीत-अनागत कालकी दृष्टिमें ६१ भाग है । (२७२)]

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ के वंधकोंके ५६, ६१ वा सर्वलोक है ।^२ अवंधकों के ५६ है ।

[विशेष-स्त्यानगृद्धि ३ तथा अनंतानुबंधी ४ के अवंधक सग्यनिभयानी या परिणत-सम्यक्स्वी जीवोंने अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा ऊपर छद्द और नीचे दो रूप प्रकार ५६ स्पर्शन किया है । मिथ्य गुणस्थानमें उपपाद पद तथा मारणान्तिक समुद्रात नहीं होते हैं । स्त्रीवेदी जीवोंमें अगम्य मार-क्त्वीका उपपाद नहीं होता है । (२७४)]

निद्रा-प्रचला, भय-जुगुप्सा, तैजस-वार्ताला, वर्ण ४. अनुगृह्य, उपपाद, मिथ्यात्वी वंधकों के ५६, ६१ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान है अर्थात् वंधकोंके असंख्यातवां भाग ।

(१) "पेसाणुसदेण इत्थिवेदुदुल्लेखेऽसु निपाणउज्जो दोविहा दोसर ३ तिथिय अंगोखेज्जिभागो । अट्ठत्तेरहसभागा देवणा सच्चलोगो वा ।" -सुत्त ५०. १०६ ।

(२) "सग्गामिण्यण्णत्थि-अत्तंउदसभागादेव्होति वेदविदे वेणो पण्ण ४ अणंताणु सच्चलोगो । अट्ठचोदसभागो वा देवणा सच्चलोगो ।" -सुत्त १०६ ।

सादबंधगा अट्ठणवचोद्दस० सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा ।
 असादबंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठणवचोद्दस० सच्चलोगो वा ।
 दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठ-
 तेरह-चोद्दस० सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अपचवखाणा०
 ५ ४ बंधगा अट्ठ-तेरह०, सच्चलोगो वा । अवंधगा छच्चोद्दसभागो । इत्थि० पुरिस०
 बंधगा अट्ठचोद्दसभागो । अवंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो । णवुंस० बंधगा अट्ठ-
 तेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । तिण्णं वेदाणं बंधगा अट्ठतेरह०
 सच्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि । हस्सरदि सादभंगो । अरदिसोगं असादभंगो ।
 दोण्णं युगल्लाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो । एवं

भाग हैं^१ । साता वेदनीयके बंधकोंका १/४, १/४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । असाताके बंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका १/४, १/४ वा सर्वलोक है । दोनोंके बंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । मिथ्यात्वके बंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका १/४, १/४ है ।^२

[विशेष—मिथ्यात्वके अवंधक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा १/४ भाग स्पर्श किया है, कारण ८ राजू बाहुल्यवाले राजू प्रतरके भीतर देव स्त्री सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है । मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने नीचे दो और ऊपर ७ राजू अर्थात् १/४ भाग स्पर्श किये हैं । (२७२)]

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकोंके १/४, १/३ वा सर्वलोक स्पर्श है, अवंधकोंके १/४ है ।

[विशेष—अप्रत्याख्यानावरणके अवंधक देशव्रती स्त्रीवेदीने मारणान्तिक द्वारा १/४ भाग स्पर्श किये, कारण अच्युत कल्पके ऊपर संयतासंयत तिर्यचोंका उत्पाद नहीं होता है । (२७५)]^३

स्त्रीवेद-पुरुषवेदके बंधकोंका १/४, अवंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । नपुंसकवेदके बंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका १/४ है । तीनों वेदोंके बंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । हास्य-रतिमें साता वेदनीयके समान हैं अर्थात् १/४, १/४ वा सर्वलोक है, अवंधकोंका १/४, १/३ वा सर्वलोक है । अरति-शोकमें असाता वेदनीयके समान भंग है । अर्थात् बंधकोंके १/४, १/३ वा सर्वलोक है, अवंधकोंके १/४, १/४ वा सर्वलोक है । हास्य-रति, अरति-शोक इन दो युगलोंके बंधकोंके १/४, १/३ वा सर्वलोक हैं । अवंधकोंके क्षेत्रके समान भंग है ।

(१) “सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठणवचोद्द-
 सभागा देसणा ।”—षट्खं० फो० सू० १०४, १०५ ।

(२) “संजदासंनदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । छचोद्दसभागा
 देसणा ।”—सू० १०८

(३) “पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे-
 ज्जदिभागो ।”—सू० ११०

थिराथिर-सुभासुभ-णिरयदेवायु-तिष्ठिजादि० । आहारदुगं तित्थयरं वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा अट्ठ-तेरहभागो सव्वलोगो वा । दोआयु-मणुसगादि-मणुसाणुपुव्वि-आदा-उज्जोवं दोगोदं वंधगा अट्ठ-चोदसभागो । अवंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा । दोगदि-दोआणुपुव्वि-बंधगा छचोदसभागो । अवंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुव्विबंधगा अट्ठणवचोदसभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा ५ अट्ठवारहभागो । चदुण्णं गदीणं वंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो । एवं आणुपुव्वीणं । एइंदियबंधगा अट्ठणवचोदसभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठवारहभागो । पंचिंदियं वंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा अट्ठणवचोदस-भागो, सव्वलोगो वा । पंचणं जादीणं वंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो । ओरालियसरीरं वंधगा अट्ठणव-चोदसभागो, सव्वलोगो वा । ६० [अवंधगा] अट्ठवारहभागो । वेउव्वियं वंधगा वारहभागो । अवंधगा अट्ठणव-चोदसभागो सव्वलोगो वा । दोण्णं वंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो । पंचसंठाणं इत्थिभंगो । हुंडसंठाणं णवुंसगवेदं साधारणेण वि वेदभंगो । णवरि अवंधगाणं खेत्तभंगो । ओरालिय-अंगोवंगबंधगा अट्ठचोदसभागो, अयं० अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा । वेउव्वियसरीर-अंगोवंगबंधगा पाग्गभागो । ६५

अर्थात् लोकके असंख्यातर्वे भाग हैं । स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, नरकायु, देवायु, तीन जातिमें इसी प्रकार है । आहारकट्टिक और तीर्थकरके वंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है । अवंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । मनुष्यायु, तिर्यचायु, मनुष्यगति, मनुष्याणुपूर्वी, आतप, उद्योत तथा दो गोत्रके वंधकोंका ६८ है । अवंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । नरक-गति, देवगति, नरकानुपूर्वी, देवानुपूर्वीके वंधकोंका ६८ है । अवंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वीके वंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ६८, ६९ है । चार गतियोंके वंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है । पारों आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए । ऐकान्द्रिकके वंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ६८, ६९ है । पंचेन्द्रिकके वंधकोंका ६८, ६९ है, अवंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । पांचों जातियोंके वंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके क्षेत्रके समान भंग है । औदारिक शरीरके वंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । [अवंधकोंका] ६८, ६९ है । दो अंतर शरीरके वंधकोंका ६९ है । अवंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । दोनों अंतरोंके वंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है । ५ भव्यको भव्यको भंग भंग है । हुंडक संस्थानका नपुंसकवेदके समान भंग है । ६ संस्थानका भव्यको वेदके समान भंग है । विमोष, अवंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् वेदकी भंग है । अट्ठवार अट्ठवार वंधकोंका ६८ है । अवंधकोंका ६८, ६९ वा सर्वलोक है । अट्ठवार अट्ठवार वंधकोंका ६८, ६९

(१) "तिथि वेदके वंधगा सव्वलोगो, अट्ठवार देवायु-मणुसगादि-मणुसाणुपुव्वि-आदा-उज्जोवं दोगोदं वंधगा अट्ठ-चोदसभागो । अवंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा । दोगदि-दोआणुपुव्वि-बंधगा छचोदसभागो । अवंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुव्विबंधगा अट्ठणवचोदसभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा ५ अट्ठवारहभागो । चदुण्णं गदीणं वंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो । एवं आणुपुव्वीणं । एइंदियबंधगा अट्ठणवचोदसभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा अट्ठवारहभागो । पंचिंदियं वंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा अट्ठणवचोदस-भागो, सव्वलोगो वा । पंचणं जादीणं वंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो । ओरालियसरीरं वंधगा अट्ठणव-चोदसभागो, सव्वलोगो वा । ६० [अवंधगा] अट्ठवारहभागो । वेउव्वियं वंधगा वारहभागो । अवंधगा अट्ठणव-चोदसभागो सव्वलोगो वा । दोण्णं वंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा । अवंधगा खेत्तभंगो । पंचसंठाणं इत्थिभंगो । हुंडसंठाणं णवुंसगवेदं साधारणेण वि वेदभंगो । णवरि अवंधगाणं खेत्तभंगो । ओरालिय-अंगोवंगबंधगा अट्ठचोदसभागो, अयं० अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा । वेउव्वियसरीर-अंगोवंगबंधगा पाग्गभागो । ६५

- अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सच्चलोगो वा । दोण्णं वंधगा अट्ठवारहभागो ।
 अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सच्चलोगो वा । छसंधणं वंधगा अट्ठचोद्दसभागो ।
 अवंधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा । एवं साधारणेण वि । परघादुस्सागं वंधगा अट्ठ-
 वारहभागो सच्चलोगो वा । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा ।
 ५ उच्चागोदं वंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा । अवंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा ।
 पसत्थविहायगदिं वंधगा अट्ठचोद्दसभागो । अवंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा ।
 अप्पसत्थविहायगदिं वंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सच्चलोगो
 वा । दोण्णं वंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सच्चलोगो वा ।
 एवं दोसरणं । तस-बंधगा अट्ठवारहभागो । अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सच्चलोगो
 १० वा । थावर-बंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठवारहभागो ।
 दोण्णं पगदीणं वंधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा । अवंधगा खेत्तमंगो । वादर-बंधगा
 अट्ठतेरहभागो । अवंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । सुद्धम-बंधगा
 लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठतेरहभागो । दोण्णं पगदीणं
 वंधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा । अवंधगा खेत्तमंगो । एवं पज्जत्तापज्जत्त-
 १५ पत्तेय-साधारणं च । सुभग-आदेज्जाणं वंधगा अट्ठचोद्दसभागो, [अवंधगा] अट्ठ-
 तेरहभागो, सच्चलोगो वा । दूभग-अणादेज्जाणं वंधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।

अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । दोनों अंगोपांगोंके वंधकोंका ५४, ५४ है । अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । छह संहननके वंधकोंका ५४ है । अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । सामान्यसे भी छह संहननका इसी प्रकार जानना चाहिए । परघात, उच्छ्वासके वंधकोंका ५४, ५४ अथवा सर्वलोक है । अवंधकोंका लोकके असंख्यातवें भाग वा सर्वलोक है । उच्चगोत्रके वंधकोंका ५४, ५४ है । अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । प्रशस्तविहायोगतिके वंधकोंका ५४ है । अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । अप्रशस्त विहायोगतिके वंधकोंका ५४, ५४ है । अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । दोनोंके वंधकोंका ५४, ५४ है । अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । दो स्वरोंमें विहायोगतिके समान है । तस प्रकृतिके वंधकोंका ५४, ५४ है । अवंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । रथावरके वंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ५४, ५४ है । दोनोंके वंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान है अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है । वादरके वंधकोंका ५४, ५४ है । अवंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । सूद्धमके वंधकोंका लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ५४, ५४ है । दोनोंके वंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन है । पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

सुभग; आदेयके वंधकोंका ५४ है । [अवंधकोंका] ५४, ५४ वा सर्वलोक है । दुर्भग, अनादेयके वंधकोंका ५४, ५४ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ५४ है । सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेयके

अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । दोण्णं पगदीणं वंधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।
अवंधगा खेत्तभंगो । जसगित्तिस्स वंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अवंधगा अट्ठ-
तेरहचोद्दसभागो, सच्चलोगो वा । अजसगित्तिस्स वंधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो
वा । अवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो । दोण्णं वंधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा ।
अवंधगा णत्थि । उच्चागोदं वंधगा अट्ठभागो, अवंधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो ५
वा । णीचागोदं वंधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठभागो । दोण्णं
गोदाणं वंधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि ।

§३११. एवं पुरिसवेदस्स । णवरि तित्थयरं वंधगा अट्ठचोद्दसभागो । अवंधगा
अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।

§३१२. णवुंसगवेद०—धुविगाणं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा णत्थि । धीज- १०
गिद्धितियं अणंताणुबंधिचट्ठकं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा छच्चोद्दसभागो ।
णिद्धा-पयला-पच्चक्खणाव० ४ भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं
बंधगा सच्चलोगो । अवंधगा खेत्तभंगो । सादासाद-बंधगा अवंधगा सच्चलोगो ।
बंधकोंका ४८, ४९ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका क्षेत्रवत् भंग है । यशःकीर्तिके बंधकोंका ४८, ४९
है । अवंधकोंका ४८, ४९ वा सर्वलोक है । अयशःकीर्तिके बंधकोंका ४८, ४९ वा सर्वलोक है ।
अवंधकोंका ४८, ४९ है । दोनोंके बंधकोंका ४८, ४९ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—दोनोंके अवंधक उपशांत कपायादिमें होते हैं अत एव स्त्रीवेदमें अवंधकोंका अभाव
वताया है ।]

उच्चगोत्रके बंधकोंका ४८ है । अवंधकोंका ४८, ४९ वा सर्वलोक है । नीच गोत्रके
बंधकोंका ४८, ४९ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ४८ है । दोनों गोत्रोंके बंधकोंका ४८, ४९ वा
सर्वलोक है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—दो गोत्रोंका वर्णन आतप, उद्योतके साथ पूर्वमें किया है और यश पुनः वर्णन
हुआ है । यहाँका गोत्रका वर्णन विशेष संगत प्रतीत होता है ।]

§३११. पुरुषवेदमें इसी प्रकार है । विशेष, तीर्थकर प्रकृतिके बंधकोंका ४८, ४९ है । अवंधकोंका
४८, ४९ वा सर्वलोक है ।^१

§३१२. नपुंसकवेदमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । गन्धक-
गृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ के बंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका ४८, ४९ है ।

[विशेष—भारणांतिक पद परिलख असंयत सम्प्रसारि नपुंसकवेदीका अष्टाक्षरकाले भर्तृव
की अपेक्षा ४८ भाग कम है (पृ० २७८) ।]

निद्रा, प्रचला, प्रत्याख्यानावरण ४, भय-दुग्धला, तेजस-सर्पला, वर्ण ५, अगु-नाभु,
उपपात, निर्माणके बंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका क्षेत्रवत् भंग है । यशःकीर्तिके बंधकोंका ४८, ४९
है ।

(१) "समानिभारणित्ति-अवंधकस्स-विहवि केरुद्वि वेत्थ-सोविह । अणित्तं अणित्तं-विह-
अट्ठचोद्दसभागो वा देवता कोटिदा ।" —पट्टपं० फो० सू० १०६ ।

दोणं वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा गत्थि । एवं जस-अजसगिति-दोगोदाणि ।
 मिच्छत्तं वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा वारहभागो० । अपच्चक्खाणावरण-चउक्कं
 वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा छच्चोद्दसभागो । इत्थि० पुरिस० णउंसग-वेदाणं
 वंधगा अवंधगा सव्वलोगो । तिणं वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा गत्थि । हस्सा-
 ५ दि० ४ वंधगा अवंधगा [एवं] दोणं युगलाणं वंधगा अवंधगा खेत्तमंगो ।
 एवं पंचजादि-छसंटा० तसथावरादि-अट्टयुगलं दो-आयु० । आहारदुगं तित्थयरं खेत्त-
 मंगो । अवंधगा सव्वलोगो । तिरिक्खायु-बंधगा अवंधगा सव्वलोगो । मणुसायु-
 वंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । अवंधगा सव्वलोगो । चट्ठणं
 आयुगाणं वंधगा अवंधगा सव्वलोगो । एवं छसंव० । दोविहा० दोसर० दोगदि०
 १० दोआणु० वंधगा छच्चोद्दसभागो । अवं० सव्वलोगो । दोगदि० दोआणु० वंधगा
 अवंधगा सव्वलोगो । चट्ठगदि-चट्ठआणु० वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा खेत्तमंगो ।

है । साता-असाताके वंधकों अवंधकोंका सर्वलोक स्पर्शन है । दोनोंके वंधकोंका सर्वलोक है ।
 अवंधक नहीं है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दोनों गोत्रोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । मिथ्यात्वके
 वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{१}{४}$ भाग है ।^१

[विशेष-भारणांतिक पद परिणत मिथ्यात्वके अवंधक सासादन सम्यक्स्वी जीवोंने $\frac{१}{४}$
 भाग स्पर्श किया, कारण नारकियोंके ५ राजू तथा तिर्यचोंके ७ राजू इस प्रकार १२ राजू बाहुल्य
 वाला राजू प्रतर प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र है (२७७) ।]

अप्रत्याख्यानावरण ४ के वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{१}{४}$ है ।^२

[विशेष-भारणांतिक पद परिणत संयतासंयतोंने $\frac{१}{४}$ स्पर्श किया है कारण अच्युत कल्पके
 ऊपर संयतासंयत तिर्यचोंके गमनका अभाव है (२७८) ।]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके पृथक्-पृथक् रूपसे वंधकों और अवंधकोंका सर्वलोक
 स्पर्शन है । तीनों वेदोंके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । हास्यादि चारके पृथक् पृथक्
 रूपसे वंधकों, अवंधकोंका इसी प्रकार है । दोनों युगलोंके वंधकों अवंधकोंका क्षेत्रके समान
 भंग है । इसी प्रकार पाँच जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ८ युगल तथा २ आयुमें जानना
 चाहिए । आहारकद्विक तथा तीर्थकरका क्षेत्रवत् भंग है । अवंधकोंके सर्वलोक है । तिर्यचायुके
 वंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । मनुष्यायुके वंधकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग है, वा सर्वलोक
 है । अवंधकोंका सर्वलोक है । चारों आयुके वंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । छह संहननमें
 इसी प्रकार है । दो विहायोगति, दो स्वर, दो गति, दो आनुपूर्वीके वंधकोंका $\frac{१}{४}$ भाग है ।
 अवंधकोंका सर्वलोक है । दो गति, २ आनुपूर्वीके वंधकों अवंधकोंका सर्वलोक है । चार गति,

(१) “सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । वारह चोद्दसभागा
 वा देसणा ।” -पट्खं० फो० सू० ११२, ११३ ।

(२) “णउंसयवेदेसु असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदि-
 भागा, छच्चोद्दसभागा देसणा ।” -सू० ११५ ।

ओरालियसरीरसस वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा वारह० । वेडव्विय० वंधगा
वारह० । अवंधगा सच्चलोगो । दोण्णं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा खेत्तमंगो ।
ओरालिय-अंगोवंगं वंधगा, अवंधगा सच्चलोगो । वेडव्विय-अंगोदंगं, वंधगा वारह-
भागो, अवंधगा सच्चलोगो । दोण्णं वंधगा अवंधगा सच्चलोगो । परयादुत्तासं
आदावुज्जोवं वंधगा अवंधगा सच्चलोगो । एवं णीत्तुच्चागोदाणं ।

§३१३. अवगदवेदे खेत्तभंगो । एवं अकसाह० केवल्लिणा० संज० सामाह०
छेदो० परिहा० सुह्रमं प० (सुह्रमसंप०) यथाक्खाद० केवलदंसणं ति ।

§३१४. कोधादि० ४-ओघमंगो । णवरि धुविगाणं वंधगा सव्वलेनो । अवंधगा
णत्थि । यं हि अवंधगा अत्थि तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।

§३१५, मदि० सुद०—धुविगाणं वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । सादा- १०
साद-बंधगा अवंधगा सव्वलोगो । दोण्णं वंधगा सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि ।
एवं तिण्णिवे० हस्सादि-दोयुगलं पंचजाद-छसंठा० तसथावरदिण्णदुगलं दोनोदाणं
च । मिच्छत्तं वंधगा सव्वलोगो । अयं० अट्टवारह० । दो-आयुबंधगा खेत्तमंगो ।

चार आनुपूर्विके बंधकोंका सर्वलोक है, अवबंधोंका क्षेत्रके समान भंग है। औद्योगिक शरीरके बंधकोंका सर्वलोक है। अवबंधोंका दृष्टि है। वैक्रियिक शरीरके बंधकोंका दृष्टि है। अवबंधोंका सर्वलोक है। दोनोंके बंधकोंका सर्वलोक है। अवबंधोंका क्षेत्रके समान है। औद्योगिक अंगापांगके बंधकों और अवबंधोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगापांगके बंधकोंका दृष्टि है। अवबंधोंका सर्वलोक है। दोनोंके बंधकों अवबंधोंका सर्वलोक है। परमाणु, इन्द्रिय, अणु, उद्योतके बंधकों अवबंधोंका सर्वलोक है। इसी प्रकार नीचे गोत्र, वंश गोत्रका स्वरूप जानना चाहिए।

§३१३. अपगतवेदमें क्षेत्रके समान भंग है। अथवाय, वेदव्यापन, संकलन, गणनादि, छेदोपरस्थापना, परिवारविशुद्धि, सुचमसांपराय, यथास्थित, वैष्णवार्चन प्रभृति कार्य हैं।

§३१४. प्रोधादि ४ कषायमें-प्रोषके समान भंग है। विशेष, प्रोष मूलवर्षों में सर्वलोक है। अवंधक नहीं है। जहाँ अवंधक है, वहाँ लोहका अंगिकाओं का भंग नहीं है।

§३१५. मत्स्यज्ञानी धृताज्ञानीमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंशधरोंका सर्वलोक है । अथवा नहीं है । साता, असाताके वंशधरों अवंशधरोंका सर्वलोक है । दोनोंके वंशधरोंका सर्वलोक है । अथवा नहीं है । तीन वेद, एत्यादि दो सुगल, ५ जाति, ६ संस्थान, ७ अन्धकारके नाश करनेवाले २ गोत्रोंमें इसी प्रकार है । सिध्दात्यके वंशधरोंका सर्वलोक है । अथवा नहीं है ।

[विशेष—मिथ्यात्वके अवधारक नानादिन : नवकाली : उद्दिष्टी : पदार्थ : मिथ्यात्व : अज्ञान : वेदना, कषाय, वैमिषिक पदार्थों में १. भाग है । अज्ञानमिथ्याकी अवधारणा : अज्ञान : २. अज्ञान : देव-नरपाण्डुके वंधकोंका क्षेत्रके नाना भाग है । अज्ञानमिथ्या : अज्ञानमिथ्या : अज्ञानमिथ्या]

()

- अबंधगा सच्चलोगो । तिरिक्खायुबंधगा अबंधं सच्चलोगो । मणुसायु-बंधगा अट्ट-
वारहं सच्चलोगो । अबंधगा सच्चलोगो । चटुआयुबंधं अबंधं सच्चलोगो । एवं
छसंधं दोविहां दोसरं । णिरयगदि-णिरयाणुं बंधगा छच्चोदसं । अबंधं सच्च-
लोगो । दोगदिं दोआणुं बंधं अबंधं सच्चलोगो । देवगदि-देवगदिपाओं बंधगा
५ पंच-चोदसं । अबंधं सच्चलोगो । चटुगदि-चटुआणुं बंधगा सच्चलोगो । अबंधगा
णत्थि । ओरालिं बंधगा सच्चलोगो । अबंधगा एक्काग्रहभागो । वेउच्चियाणुं (?)
(वेउच्चिय) बंधगा एक्काग्रहभागो । अबंधगा सच्चलोगो । दोण्णं बंधगा सच्चलोगो ।
अबंधगा णत्थि । ओरालियं अंगोवंगं बंधगा अबंधगा सच्चलोगो । वेगुच्चियं
अंगोवंगं बंधगा [अबंधगा] वेगुच्चियं भंगो । दोण्णं बंधगा अबंधं सच्चलोगो ।
१० §३१६. एवं अब्भवसिद्धिं । मिच्छादिद्विम्हि भंगे धुविगाणं बंधगा अट्टतेरह-
भागो, सच्चलोगो वा । अबंधगा णत्थि । सादासादं बंधगा अबंधगा अट्टतेरहभागो,
सच्चलोगो वा । दोण्णं बंधगा अट्टतेरहभागो, सच्चलोगो वा । अबंधगा णत्थि ।
एवं चटुणो ४ (?) थिराथिर-सुभासुभाणं । मिच्छत्त-बंधगा अट्टतेरहं सच्चलोगो वा ।
अबंधगा अट्टवारहभागो । इत्थिं पुरिसं बंधगा अट्टवारह-चोदसं । अबंधं अट्टतेरहं

बंधकों अबंधकोंका सर्वलोक है । मनुष्यायुके बंधकोंका ४, ५ वा सर्वलोक है । अबंधकोंका
सर्वलोक है । चार आयुके बंधकों अबंधकोंका सर्वलोक है । छह संहनन, दो विहायोगति,
दो स्वरमें इसी प्रकार है । नरकगति, नरकानुपूर्वीके बंधकोंके ४ है । अबंधकोंके सर्वलोक है ।
मनुष्यगति-तिर्यचगति, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वीके बंधकों अबंधकोंका सर्वलोक है ।

देवगति, देवगत्यानुपूर्वीके बंधकोंका ४, अबंधकोंके सर्वलोक है । ४ गति, ४ आनु-
पूर्वीके बंधकोंका सर्वलोक है । अबंधक नहीं हैं । औदारिक शरीरके बंधकोंका सर्वलोक है ।
अबंधकोंके ५ है । वैक्रियिक शरीरके बंधकोंका ५ है । अबंधकोंका सर्वलोक है ।

[विशेष-उपपादकी अपेक्षा नीचेके ५ राजू तथा ऊपरके छह राजू इस प्रकार ५ भाग
स्पर्शन है (२८२) ।]

दोनों शरीरके बंधकोंका सर्वलोक है । अबंधक नहीं हैं । औदारिक अंगोपांगके बंधकों
अबंधकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अंगोपांगके बंधकों (अबंधकों) का वैक्रियिक शरीरके समान
है अर्थात् बंधकोंका ५, अबंधकोंका सर्वलोक भंग है । दोनोंके बंधकों अबंधकोंका सर्वलोक है ।

§३१६. अभव्यसिद्धिकोंमें इसी प्रकार है । मिथ्यादृष्टियोंमें ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका
४, ५ वा सर्वलोक है । अबंधक नहीं हैं ।

[विशेष-मेस्तलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार ४ है तथा मेस्तलसे ऊपर
७ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार ५ भाग है ।]

साता-असाताके बंधकों अबंधकोंका ४, ५ वा सर्वलोक है । दोनोंके बंधकोंका ४, ५ वा
सर्वलोक है । अबंधक नहीं हैं । ४ नोकपाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभमें इसी प्रकार है ।
मिथ्यात्वके बंधकोंका ४, ५ सर्वलोक है, अबंधकोंका ४, ५ वा है । स्त्रीवेद पुरुषवेदके

सञ्चलोगो वा । णवुंसं वंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्चलो० । अवंधगा अट्ठत्तेरहं । तिण्णं
वेदानं वंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि । इत्थिवेदमंगो पंचिदिय-
जादि-पंचसंठा० छसंधं तससुभगं आदेज्जं । णवुंसगमंगो एइंदिय-हुंडसंठा०
थावरदुभग-अणादेज्जाणं । णवरि एइंदिय-थावर-बंधगा अट्ठणवं सञ्चलोगो वा ।
अवंधगा अट्ठत्तेरहभागो । पत्तेणेण साधारणेण वेदमंगो । दोआयु० तिण्णजादि- ५
बंधगा खेत्तमंगो । अवंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्चलोगो वा । दोआयु० मणुसगादि०
मणुसाणु० आदायं उच्चागोदं वंधगा अट्ठत्तेरहभागो । अवंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्च-
लोगो वा । णिरयगदिवंधगा छत्तोदसभागो । अवंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्चलोगो वा ।
तिरिक्खगादि० णीचं वंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्चलोगो वा । अवंधगा अट्ठत्तेरहं ।
णवरि णीचा० अट्ठभागो । देवगादि-बंधगा पंचत्तोदसं । अवंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्च- १०
लोगो वा । चटुण्णं गदीणं वंधगा अट्ठत्तेरहभागो, सञ्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि ।
एवं चेव आणुपुच्चि-णीचुच्चागो० । ओरालियसरिं वंधगा अट्ठत्तेरहभागो सञ्चलोगो
वा । अवंधगा एककारहभागो । वेज्जिय-बंधगा एककारहं । अवंधगा अट्ठत्तेरह-
भागो । दोणं वे० (वं०) अट्ठत्तेरहं सञ्चलो० । अवंधगा णत्थि । ओरालि०
अंगो० वंधगा अट्ठत्तेरहं । अवंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्चलो० । वेज्जिय० अंगो० वंधगा १५
एककारहं । अवंधगा अट्ठत्तेरहं सञ्चलो० । दोणं वंधगा अट्ठत्तेरहं । अवंधगा

बंधकोंका ४६, ४६ है, अवंधकोंका ४६, ४६ वा सर्वलोक है । नपुंसकवेदके बंधकोंका ४६, ४६ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका ४६, ४६ है । तीनों वेदोंके बंधकोंका ४६, ४६ वा सर्वलोक है ।
अवंधक नहीं हैं । पंचेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ६ मांजन, ग्रन्थ, सुभग, आदेज्जमें सर्ववेदका भंग है ।
एकेन्द्रिय, हुंडक संस्थान, रथावर, दुर्भग तथा अनवेद्यमें नपुंसकवेदका भंग है । विशेष, एकेन्द्रिय,
स्थावरके बंधकोंके ४६, ४६ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ४६, ४६ है । अन्तरिक्ष तथा मनुष्यके
वेदके समान भंग है । दो आयु, तीन जातिके बंधकोंका छेकके समान भंग है । अवंधकोंका
४६, ४६ वा सर्वलोक है । दो आयु, मनुष्यजाति, मनुष्यलुप्यी, अन्तरिक्ष तथा अन्तरिक्षके बंधकोंके
४६ है । अवंधकोंके ४६, ४६ वा सर्वलोक है । नरकजातिके बंधकोंके ४६, ४६ है । अवंधकोंके ४६, ४६
वा सर्वलोक है । तिर्यप गति, नीच गोत्रके बंधकोंके ४६, ४६ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ४६, ४६
४६, ४६ है । विशेष, नीच गोत्रका ४६ है । देवजातिके बंधकोंके ४६, ४६ है । अवंधकोंके ४६, ४६
वा सर्वलोक है । पारो गतियोंके बंधकोंके ४६, ४६ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ४६, ४६ है ।
इसी प्रकार आनुपूर्वियों तथा नीच, उच्च गोत्रोंके समान सर्वलोक ।

सौंदर्यिक शरीरके बंधकोंका ४६, ४६ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ४६, ४६ है ।
वैदिक शरीरके बंधकोंका ४६ है । अवंधकोंके ४६, ४६ है । देवजातिके बंधकोंके ४६, ४६
सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । सौंदर्यिक शरीरके बंधकोंके ४६, ४६ है । अवंधकोंके
४६, ४६ वा सर्वलोक है । वैदिक शरीरके बंधकोंके ४६, ४६ है । अवंधकोंके ४६, ४६ है ।

- अट्ठणवचो० सच्चलोगो वा । परघादुस्सा० बंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा
 लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । उज्जोव-बंधगा अट्ठतेरहभागो, अवंधगा
 अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा । एवं जसगित्ति० । पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठवारह-
 भागो । अवंधगा अट्ठतेरह० सच्चलो० । अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठवारह० ।
 ५ अवंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । दोण्णं बंधगा अट्ठवारह० । अवं० अट्ठणव-
 चोदसभागो, सच्चलोगो वा । एवं दोसर० । वादरबंधगा अट्ठतेरह० । अवंधगा
 लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । तच्चिवरीदं सुद्धमं । दोण्णं बंध० अट्ठतेरह०
 सच्चलोगो वा । अवं० णत्थि । पज्जत्त-पत्तेग० बंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा ।
 अवं० लोगस्स असंखेज्जदिभागो सच्चलोगो वा । तच्चिवरीदं अपउज० साधारण० ।
 १० दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि । [जस० बंधगा अट्ठ-
 तेरह० । अवं० अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा ।] अज्जस० बंधगा अट्ठतेरह सच्चलो० ।
 अवं० अट्ठतेरह० । दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवंधगा णत्थि ।

§३१७. आभि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० अट्ठकसा० पुरिस० भयदु०
 पंचिदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुभगादि-
 १५ तिणिण णिमिण-उच्चागोदं-पंचंतराहगाणं बंधगा अट्ठचो० । अवं० खेत्तभंगो ।

है । दोनों अंगोपांगोंके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ है । अवंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । परघात,
 उच्छ्वासके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक
 है । उद्योतके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ है । अवंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । यशःकीर्तिमें इसी
 प्रकार जानना चाहिए ।

प्रशस्त विहायोगतिके बंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ है । अवंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । अप्रशस्त-
 विहायोगतिके बंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ है । अवंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । दोनोंके बंधकोंके
 ढ़च्छ, ढ़च्छ है । अवंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । इसी प्रकार दो स्वरके विषयमें जानना
 चाहिए । वादरके बंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ है । अवंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक
 है । सूद्धमके विषयमें विपरीत क्रम है अर्थात् बंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक
 है । अवंधकोंका ढ़च्छ वा ढ़च्छ है । दोनोंके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं
 हैं । पर्याप्त प्रत्येकके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । अवंधकोंमें लोकका असंख्यातवां
 भाग वा सर्वलोक है । अपर्याप्त तथा साधारणमें इसके विपरीत क्रम है अर्थात् बंधकोंके लोकका
 असंख्यातवां भाग वा सर्वलोक है । अवंधकोंके ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । दोनोंके बंधकोंका
 ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । [यशःकीर्तिके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ है । अवंधकोंका
 ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है ।] अयशःकीर्तिके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । अवंधकोंका
 ढ़च्छ, ढ़च्छ है । दोनोंके बंधकोंका ढ़च्छ, ढ़च्छ वा सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं ।

§३१७. आभिनिवोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय, पुरुष-
 वेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कामाण, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त-
 विहायोगति, त्रस ४, सुभगादि ३, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अंतरायके बंधकोंके ढ़च्छ, अवंधकोंमें क्षेत्र

खेत्तभंगो० ।

§३१९. संजदासंजद-ध्रुविगाणं वंधगा छच्चोद्दस० । अवंधगा णत्थि । सादा-साद-बंधा(धगा) अवंधगा छच्चोद्दस० । दोणं पगदीणं वंधगा छच्चोद्दसभागो । अवंधगा णत्थि । एवं चटुणोक्क० थिरादि-तिण्णिगुगल० । देवायु-तिथयरं वंधगा ५ खेत्तभंगो । अव० छच्चोद्दसभागो ।

§३२०. असंजदेसु-ध्रुविगाणं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा णत्थि । श्रीणगिद्वितियं अणंताणुवं० ४ वंधगा सच्चलो० । अवंधगा अट्ठचोद्दस० । मिच्छत्तबंधगा सच्चलोगो । अव० अट्ठचारह० । वेउच्चिय-छक्कं आयुचटुक्कं तिथयरं च ओवं । ससं मदि-अण्णाणिभंगो ।

१० §३२१. चक्खुदं० तस-पज्जत्त-भंगो । णवरि केवल्लिभंगो णत्थि । अचक्खुदं० ओवं । णवरि केवल्लिभंगो णत्थि ।

§३२२. किण्ह-णील-काउ०-ध्रुविगाणं वंधगा सच्चलोगो । अवंधगा णत्थि । श्रीणगिद्वि ३ अणंताणु० ४ वंधगा अवंधगा खेत्तभंगो । मिच्छत्तबंधगा सच्चलोगो । अवंधगा पंच-चत्तारि-वे-चोद्दसभागो वा ।

स्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपरायमें—'क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ।

§३१९. संयतासंयतोमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका $\frac{1}{4}$ है । अवंधक नहीं है । साता-असाताके वंधकों अवंधकोंका $\frac{1}{4}$ है । दोनों प्रकृतियोंके वंधकोंका $\frac{1}{4}$ है । अवंधक नहीं है । हात्थ-रति, अरति-शोक तथा स्थिरादि तीन युगलोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । देवायु तथा तीर्थकर प्रकृतिके वंधकोंका क्षेत्रके समान है । अवंधकोंका $\frac{1}{4}$ है ।

§३२०. असंयतोमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधक नहीं हैं । त्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुवंधी ४ के वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{1}{4}$ है । मिथ्यात्वके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ है^१ । वैक्रियिकपट्क, आयु ४ तथा तीर्थकरका ओघवत् भंग है । शेष प्रकृतियोंका मत्तज्ञानके समान भंग है ।

§३२१. चक्षुदर्शनमें—त्रस-पर्याप्तकके समान भंग है । विशेष, केवली-भंग नहीं है । अचक्षु-दर्शनमें ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, केवली-भंग नहीं है ।

§३२२. कृष्ण-नील-कापोत लेख्यामें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंके सर्वलोक है । अवंधक नहीं है । त्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुवंधी ४ के वंधकों अवंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है । मिथ्यात्वके वंधकोंका सर्वलोक है । अवंधकोंका $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$, $\frac{3}{4}$ है^२ ।

(१) “पमचसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।” —पट्खं० फो० सू० ९ ।

(२) “सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचारह चोद्दसभागा वा देस्सणा ।” सू० ३-४ ।

“सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । पंचचचारिवे-चोद्दसभागा वा देस्सणा ।” सू०-१४७, १४८ ।

दोआयु-देवगदि-देवाणु० तित्थयर-बंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा सच्चलोगो ।
तिरिक्ख-मणुसायु० णवुंसगभंगो । चट्ठआयु-बंधगा अवंधगा सच्चलोगो । णिर-
यगदिदुगं वेगुच्चियदुगं बंधगा छच्चोद्दस-चत्तारिवे० । अवंधगा सच्चलोगो । ओगलि०
बंधगा सच्चलोगो । अवंधगा छचत्तारि-वेचोद्दस० । [वेउच्चिय० बंधगा छचत्ताग्नि-
वेचोद्दस ० । अवंधगा सच्चलोगो ।] दोण्णं सरीरणं बंधगा सच्चलोगो । अवंधगा ५
णत्थि । सेसाणं असंजदभंगो ।

§३२३. तेजलेस्साए-पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण० ४
अगु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पंचंत० बंधगा अट्टणवचो० । अवंधगा
णत्थि । थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि० ४ बंधगा अट्टणवचो० । अवंधगा अट्टचोद्धन-

[विशेष-मारणांतिक समुद्रात तथा उपपाद-पद-परिणत छठवें नरकके नारकी सासादन गुणस्थानीने कृष्णलेभ्यायुक्त हो दंड, नील लेभ्या वाले ५ वीं पृथ्वीपालोने दंड तथा पाषाण लेभ्या-वाले तीसरी पृथ्वीके नारकी सासादनसम्यक्स्त्री जीवोंने दंड भाग स्पर्श किया है (पृ० २५१ :)]

देवायु, नरकायु, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थकरके बंधकोंका क्षेत्रके समान संख्या
असंख्यातयां भाग है। अवंधकोंका सर्वलोक है। तिर्यचायु, मनुष्यायुका नपुंसकवेदके समान
भंग है। चारों आयुके बंधकों अवंधकोंका सर्वलोक जानना चाहिए।

नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगके बंधनोंके हैं। अवंधकोंके सर्वलोक हैं।

[विशेष—इन प्रकृतियोंके बंधक मनुष्य तथा निर्यस ही होंगे। देव तथा नारकी इन प्रकृतियोंका बंध नहीं करते हैं। सातवें नरकमें उपपाद या नारयानिकर्मी अपेक्षा प्राण क्षेत्रमें रहे हैं। नील लेख्या में ५ वीं पृथ्वीकी अपेक्षा उपपाद या नारयानिके प्राण रहे हैं। पद्म लेख्यामें तीसरी पृथ्वीकी अपेक्षा रहे हैं।]

औदरिक शरीरके बंधनोंके सर्वलोक है। अवंधनोंके दृ. १, २, ३, ४ । [यौनिक शरीरके बंधनोंका दृ. १, २, ३ है, अवंधनोंका सर्वलोक है ।] दोला शरीरके बंधनोंके सर्वलोक है, अवंधक नहीं है। मेष प्रकृतियोंका अवंधनोंके गगन भग है ।

[विशेष-आंतरिक शरीरके संबंधक नारसियोंमें उपर्युक्त तथा अन्य-अन्य-अंतरिक
सातवीं, पांचवी तथा तीसरी पृथ्वीवी दृष्टिसे]

इरद. तेजोलेखनाभि—५. मानावरण, ६. दर्शनपरण, ७. शिष्टपत्र, अथ-सुश्रुति, विज्ञानाचार्यः
वर्ण ४, अनुसूच्य ४. वादर, पञ्चात, प्रत्येक, निर्माणा तथा ५. कर्मकाण्डे शिष्टपत्र १, २, ३,
अध्याय नवीं पुं ।

[विशेष-विहारप्रमुखभाग, धेनुता, पद्मपत्रादि वैदिकीय पद संज्ञायाः अन्तर्गतः]
 ५५ भाग, नारण्योक्तः समुदायः परित्यक्तः ज्ञेयः । भागः स्वयं विद्यते ।

(१) "तैत्तिरीयसंहितायां निषाद्विचित्रवर्णनाद्दर्शनः । तेषु चोक्तं यत्तन्मन्त्रोपनिषत्प्रमाणम् । अष्टाहरेन्द्रेन्द्रसमावा वा देवताः । -अथर्ववेदः पृष्ठे १०७३-४ ।

भागो । सादासाद-बंधगा अट्ठणवचो० । दोण्णं वंधगा अट्ठणवचो० । अवंधगा णत्थि । एवं चट्ठणोक्क० थिरादि-तिण्णि-युगलं । मिच्छत्त-उज्जोव-बंधगा अट्ठणवचोद्दस० । अचच्चक्खानावरण० ४ वंधगा अट्ठणवचो० । अवंधगा दिवड्ठचोद्दसभागो । पच्चक्खानावरण० ४ वंधगा अट्ठणवचो० । अवंधगा खेत्तभंगो । इत्थि० पुरिस० वंधगा अट्ठचोद्दस० । अवंधगा अट्ठणवचो० । णवुंस० वंधगा अट्ठणवचो० । अवंधगा अट्ठचोद्दस० । तिण्णि वेदाणं वंधगा अट्ठणवचो० । अवंधगा णत्थि । इत्थिभंगो दोआपु-मणुसगदिदुगं पंचिदिं० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंध० आदा० दोविहा० तस-सुभग-आदे० तित्थयरं उच्चागोदं च । णवुंसगभंगो तिरिक्खगदिदुगं एहंदि० हुंडसंठा० थावर-दूभग-

स्त्यागृद्धित्रिक, अनन्तानुबंधी ४ के बंधकोंका ढँह, ढँह है । अवंधकोंका ढँह है ।^१

[विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणांतिक पद परिणत मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वी जीवोंने पीत लेख्यामें ढँह स्पर्शन किया है । विशेष, मिश्र गुणस्थानमें मारणांतिक नहीं होता है । उपपादपरिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोंके ढँह भाग होता है ।^२ (२९६)]

साता, असाताके बंधकोंका ढँह, ढँह है । दोनोंके बंधकोंका ढँह, ढँह है । अवंधक नहीं है । हास्यरति, अरतिशोक, स्थिरादि तीन युगलमें इसी प्रकार जानना चाहिए । मिथ्यात्व तथा उद्योतके बंधकोंके ढँह, ढँह है । अवंधकोंके ढँह है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकोंके ढँह, ढँह है । अवंधकोंके ढँह है ।

[विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक पदसे परिणत मिथ्यात्वी तथा सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंने ढँह, मारणांतिक समुदघात परिणत उक्त जीवोंने ढँह तथा उपपाद परिणत उन जीवोंने ढँह स्पर्श किया है । मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमें भी ढँह, ढँह भाग है । विशेष, मिश्रमें मारणांतिक नहीं होता है । उपपाद परिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोंने ढँह स्पर्श किया है ।]

प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकोंका ढँह, ढँह है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातयां भाग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बंधकोंका ढँह, अवंधकोंके ढँह, ढँह है । नपुंसकवेदके बंधकोंके ढँह, ढँह है । अवंधकोंके ढँह है । तीनों वेदोंके बंधकोंके ढँह, ढँह है । अवंधक नहीं हैं । मनुष्य-तिर्यचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, पंच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेय, तीर्थकर तथा उद्यगात्रका स्त्रीवेदके समान जानना चाहिए । तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, हुंडकसंस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय तथा नीचगोत्रका

(१) “सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मदिदुहीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदि-भागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ।”-पट्खं० फो० सू० १५२-१५३ ।

(२) “संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । दिवड्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ।”-सू० १५४-१५५ ।

अणादे० णीचागोदं च । देवायु-आहारदुर्गं वंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा अट्ठणव-
चोद्दस० । देवगादि० ४ वंधगा दिवड्ढ-चोद्दसभागो । अवंधगा अट्ठणवचो० ।
ओराणियसरीरं वंधगा अट्ठणवचो० । अवंधगा दिवड्ढचोद्दसभागो । एवं पत्ते०
साधारणेण वि । सच्चपगदीणं वंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अवंधगा पात्ति ।
आयु० अंगोवंग-संघटण-विहाय० [एवं] ।

§३२४. पश्माए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंजल० भयदु० पंचिदि० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिण-पंचंतराइयाणं वंधगा अट्ठ० । अवंधगा
णत्थि । थीणगिद्धितियं सिच्छत्त० अणंताणु० ४ वंधा (धगा) अवंधगा अट्ठचोद्द-
सभागो । एवं दोआयु० उज्जोवं तित्थयरं च । सादासादाणं वंधा (धगा) अव-
ंधगा अट्ठचोद्दसभागो । दोण्णं वंधगा अट्ठचोद्दसभागो । अवंधगा णत्थि । एवं १०
बंधगा वेदणीयभंगो । सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण । णवरि देवायु-बंधगा त्तेगभंगो ।
अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । तिण्णं आयु० वंधा (धगा) अवंधगा अट्ठचोद्दस-

नपुंसकवेदके समान भंग है। देवायु, आहारकट्टिकके बंधकोंके क्षेत्रके समान लोचका प्रसंग-
तवां भाग है। अवंधकोंका १४, १४ है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैजिनिक शरीर, वैजिनिक
अंगोपांगके बंधकोंके १४, अवंधकोंके १४, १४ है। औदारिक शरीरके बंधकोंके १४, १४, १४
अवंधकोंके १४ है। प्रत्येक तथा सामान्यसे भी इसी प्रकार है। नैप नर्य प्रकृतियोंके बंधकोंके
१४, १४ है। अवंधक नहीं हैं। आयु, अंगोपांग, संज्ञनन तथा विद्यायोगादि [इसी प्रकार
जानना चाहिए]।

§३२४. पद्मलेश्यामै—५ शानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संव्ययन, भय-सुगुप्ता, संवेगित्य, तर्जि, तैजस, कामाणि, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, ग्रस ४, निर्माण तथा ५ अंगमयं संव्ययं ५, ६ । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—पदालेश्या वाले मिथ्यात्मके अविरत सम्बन्धकी पर्याप्त जीवोंने विचारपूर्वक रूप से वेदना, कषाय, वैमिषिक तथा मारणांतिकारी अपेक्षा ९ राशु उदर तथा गोले को राशु, ... तथा रपर्श किया है। उपपाद परिणत उक्त जीवोंने ११ स्वर्ग किया है। विचार, विचारपूर्वक तथा उपपाद मारणांतिकपनेका अभाव है। (पृ. १९८)]

स्थानगृहद्विषय, निध्यातव, अमृतसुखी ७ के वंशकी वंशधरिका १ है। मनुष्य
तिर्ययायु, ज्योत तथा तीर्थयात्रा इन्नी प्रकार है। मनुष्य, अमृतसुखी वंशकी वंशधरिका १ है।
दोनोके वंशधरिका १ है। अद्वयक नहीं है। इन प्रकार वंशके वंशकी वंशधरिका १ है।
तीन युगलमें वेदनीयके समान भंग है। शेष प्रवृत्तियोंका प्रवेश नष्ट मनुष्य के वंशकी वंशधरिका १ है।
विशेष, वेदसुखी वंशधरिका द्वेष्टके समान भंग है। अद्वयक वंशकी वंशधरिका १ है।
अद्वयधरिका १ है। तीन अद्वय (मनुष्य विद्या) के वंशकी वंशधरिका १ है।

[illegible]

भागो । देवगदि० ४ वंधगा पंचचोद्दस० । अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । अप-
च्चक्खाणा० ४ ओरालियस० ओरालिय० अंगो० छसंव० साधारणेण वंधगा
अवंधगा पंचचोद्दस० । पच्चक्खाणा० ४ वंधगा अट्ठचोद्दस० । अवंधगा खेत्त-
भंगो । आहारदुगं देवायुभंगो ।

- ५ §३२५. सुकाए—पंचणा० छदंस० अट्ठकसा० भयदु० पंचिदि० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिण-पंचंतराइयाणं वंधगा छच्चोद्दसभागो । अवंधगा
केवलिभंगो । श्रीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० मणुसायु-तित्थयरं वंधगा छच्चो-

देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगके वंधकोंका ढँह है । अवंधकोंका
ढँह है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, ६ संहननके वंधकों
अवंधकोंका सामान्यसे ढँह है ।

[विशेष—देशसंयमी पद्मलेश्या वाले जीवोंके मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा शतार सहस्रार
कल्पके स्पर्शनकी दृष्टिसे ढँह कहा है । ^१]

प्रत्याख्यानावरण ४ के वंधकोंका ढँह है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां
भाग भंग है ।

[विशेष—प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक प्रमत्तसंयतोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग
कहा है । ^२]

आहारकद्विकका देवायुके समान भंग है अर्थात् वंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग है ।
अवंधकोंके ढँह है ।

§३१५. शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कपाय, भय-जुगुप्सा,
पंचेन्द्रिय, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अंतरायके वंधकोंका ढँह
है^३ । अवंधकोंके केवली-भंग है ।

[विशेष—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र तथा असंयत सम्यक्त्वी शुक्लेश्यावालोंने विहारवत्
स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत जीवोंने ढँह स्पर्श किया है ।
स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक पद परिणत संयतासंयतोंने लोकका
असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । मारणांतिक पद परिणत उक्त जीवोंने ढँह भाग स्पर्श किया है ।
कारण तीर्थच संयतासंयतोंका शुक्लेश्याके साथ अच्युत कल्पमें उपपाद पाया जाता है । मिश्र-
गुणस्थानमें उपपाद तथा मारणांतिक पद नहीं होते हैं । (पृ० ३००)]

स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि ८ कपाय, मनुष्यायु, तीर्थकरके वंधकोंके

(१) संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । पंचचोद्दसभागा वा
देस्सणा ।” —पट्खं० फो० सू० १५९-१६० ।

(२) “प्रमत्ताप्रमत्तैल्लोकस्यासंख्येयभागः ।” —स० सि० १।८ ।

(३) “सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ।” छच्चोद्दसभागा वा देस्सणा ।” —सू० १६२-१६३ ।

भागो । देवगदि० ४ वंधगा पंचचोद्दस० । अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । अप-
च्चक्खाणा० ४ ओरालियस० ओरालिय० अंगो० छसंव० साधारणेण वंधगा
अवंधगा पंचचोद्दस० । पच्चक्खाणा० ४ वंधगा अट्ठचोद्दस० । अवंधगा खेत्त-
भंगो । आहारदुगं देवायुभंगो ।

५ §३२५. सुक्काए—पंचणा० छदंस० अट्ठकसा० भयदु० पंचिदि० तेजाक०
वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिण-पंचंतराह्याणं वंधगा छच्चोद्दसभागो । अवंधगा
केवलिभंगो । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० मणुसायु-तित्थयरं वंधगा छच्चो-

देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगके वंधकोंका ढँह है । अवंधकोंका
ढँह है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, ६ संहननके वंधकों
अवंधकोंका सामान्यसे ढँह है ।

[विशेष—देशसंयमी पद्मलेश्या वाले जीवोंके मारणांतिक समुद्रघातकी अपेक्षा शतार सहस्रार
कल्पके स्पर्शनकी दृष्टिसे ढँह कहा है । ^१]

प्रत्याख्यानावरण ४ के वंधकोंका ढँह है । अवंधकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां
भाग भंग है ।

[विशेष—प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक प्रमत्तसंयतोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग
कहा है । ^२]

आहारकद्विकका देवायुके समान भंग है अर्थात् वंधकोंके लोकका असंख्यातवां भाग है ।
अवंधकोंके ढँह है ।

§३२५. शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कपाय, भय-जुगुप्सा,
पंचेन्द्रिय, तैजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अंतरायके वंधकोंका ढँह
है ^३ । अवंधकोंके केवली-भंग है ।

[विशेष—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र तथा असंयत सम्यक्त्वी शुक्लेश्यावालोंने विहारवत्
स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत जीवोंने ढँह स्पर्श किया है ।
स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक पद परिणत संयतासंयतोंने लोकका
असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । मारणांतिक पद परिणत उक्त जीवोंने ढँह भाग स्पर्श किया है ।
कारण तिर्यच संयतासंयतोंका शुक्लेश्याके साथ अच्युत कल्पमें उपपाद पाया जाता है । मिश्र-
गुणस्थानमें उपपाद तथा मारणांतिक पद नहीं होते हैं । (पृ० ३००)]

स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि ८ कपाय, मनुष्यायु, तीर्थकरके वंधकोंके

(१) संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । पंचचोद्दसभागा वा
देस्सणा ।” —पट्खं० फो० सू० १५९-१६० ।

(२) “प्रमत्ताप्रमत्तैल्लोकस्यासंख्येयभागः ।” —स० सि० १।८ ।

(३) “सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ।” छच्चोद्दसभागा वा देस्सणा ।” —सू० १६२-१६३ ।

द्दसभागो । अवंधगा छच्चोद्दसभागो, केवलिभंगो । साद-बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो । अवंधगा छच्चोद्दसभागो । असाद-बंधगा छच्चोद्दसभागो । अवंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो । दोणं बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो । अवंधगा णत्थि । देवगदि० ४ बंधगा छच्चोद्दस० । अवंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो । एवं णेदव्वं । भवसिद्धि ओघं ।

५

§३२६. सम्मादिट्ठि ओधिभंगो । णवरि केवलिभंगो कादव्वो । खड्ग-सम्मादिट्ठि० पंचणा० छदंस० वारसक० पुरिस० भयदु० पंचिदि० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराङ्गाणं बंधगा अट्ठचोद्दस० । अवंधगा केवलिभंगो । एवं सेसाणं पगदीणं सम्मादिट्ठि-भंगो । णवरि मणुसगदिपंचगं अवंधगा । देवगदि० ४ बंधगा खेत्तभंगो । १० वेदगे ओधिभंगो पत्तेणेण साधारणेण । अवंधगा णत्थि ।

§३२७. उवसमस० खड्गसम्मादिट्ठिभंगो । णवरि केवलिभंगो णत्थि । तित्थयरं

$\frac{१}{४}$ भाग हैं । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ वा केवली-भंग है । साताके बंधकोंके $\frac{१}{४}$ भाग तथा केवली-भंग है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ है । असाताके बंधकोंके $\frac{१}{४}$ है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ वा केवली-भंग है । दोनोंके बंधकोंके $\frac{१}{४}$ वा केवली-भंग है । अवंधक नहीं है । देवगति ४ के बंधकोंके $\frac{१}{४}$ है । अवंधकोंके $\frac{१}{४}$ तथा केवली-भंग है । शेष प्रकृतियोंका इसी प्रकार निकालना चाहिए ।

भव्यसिद्धिकोंमें 'ओधवत् भंग है ।

§३२६. सम्यक्त्वियोंमें^२ अवधिज्ञानके समान भंग है । विशेष, यहाँ केवली-भंग करना चाहिए ।

[विशेष—सम्यक्त्वमार्गणामें चतुर्थसे लेकर चौदहवें गुणस्थानका सद्भाव है । इस कारण यहाँ केवली-भंग भी कहा है ।]

क्षायिक सम्यक्त्वियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अंतरायके बंधकोंका $\frac{१}{४}$ है । अवंधकोंका केवली-भंग है ।

[विशेष—विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा अचिरत गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वोंने $\frac{१}{४}$ भाग स्पर्श किया है । (ध० टी० फो० पृ० ३०२)]

इस प्रकार शेष प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके समान भंग है । मनुष्यगति ५ के अवंधकोंमें विशेष जानना चाहिए । देवगति ४ के बंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है ।

वेदकसम्यक्त्वमें—अवधिज्ञानके समान प्रत्येक तथा सामान्यसे भंग है । यहाँ अवंधक नहीं हैं ।

§३२७. उपशमसम्यक्त्वमें—क्षायिकसम्यक्त्वोंके समान भंग है । विशेष, यहाँ केवली-भंग नहीं है । तीर्थकरके बंधकोंका क्षेत्रके समान भंग है ।

(१) “भवियाणुवादेण भवसिद्धिएत्तु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लिचि ओघं ।”—यट्खं०

फो० सू० १६५ ।

(२) “सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु अवज्जदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लिचि ।”—सू० १६५ ।

बंधगा खेत्तभंगो ।

§३२८. सासणे धुविगाणं वंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा णत्थि । सादासादबंधगा अवंधगा अट्ठवारह० । दोणं वंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा णत्थि । एवं चदुणोक्क० । थिरादि-तिण्णि-युगलं । इत्थि० पुरिस० वंधगा अवंधगा अट्ठएक्कारसभागो० ॥ ५ दोणं वंधगा अट्ठएक्कारस० । अवंधगा णत्थि । एवं पंचसंठा० पंचसंघ० दो विहाय० दोसर० । दो आयु-मणुसगदिदुगं उच्चागोदं वंधगा अट्ठ चोद्दस० अवंधगा अट्ठवारह० । देवायुबंधगा खेत्तभंगो । अवंधगा अट्ठवारह० । तिण्णि आयु-बंधगा अट्ठचोद्दस० । अवंधगा अट्ठवारहभागो । तिरिक्खगदिदुगं णीचागोदं च वंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा अट्ठचोद्दसभागो । देवगदि० ४ वंधगा पंच-
१० चोद्दस० । अवंधगा अट्ठवारहभागो । तिण्णं गदीणं वंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा णत्थि । ओरालि० ओरालि० अंगो० पंचसंघ० वंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा पंच-चोद्दसभागो । उज्जोवं वंधगा अवंधगा अट्ठवारहभागो । सुभग-आदे० वंधगा अट्ठ-चोद्दस० । अवंधगा अट्ठवारहभागो । दूभग-अणादे० वंधगा अट्ठवारह० । अवंधगा अट्ठचोद्दस० । दोणं वंधगा वेदणीयभंगो ।

१५ §३२९. सम्मामिच्छाइट्ठि धुविगाणं वंधगा अट्ठ-चोद्दस० । अवंधगा णत्थि ।

§३२८. सासादनमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका ढ़्छ, १३ है । अवंधक नहीं है । साता, असताके वंधकों अवंधकोंका ढ़्छ, १३ है । दोनोंके वंधकोंका ढ़्छ, १३ है । अवंधक नहीं है । इस प्रकार हास्यादि चार नोकपाय तथा स्थिरादि तीन युगलमें जानना चाहिए । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वंधकों अवंधकोंके ढ़्छ, १३ है । दोनोंके वंधकोंके ढ़्छ, १३ है । अवंधक नहीं है । ५ संस्थान (हुंडक विना) ५ संहनन (असंप्राप्तासृपाटिका विना), दो विहायोगति तथा दो स्वरमें इसी प्रकार है । तिर्यच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रके वंधकोंके ढ़्छ है । अवंधकोंके ढ़्छ तथा १३ है । देवायुके वंधकोंमें क्षेत्रवत् भंग है । अवंधकोंमें ढ़्छ, १३ है । तीन आयु (नरक विना) के वंधकोंके ढ़्छ, अवंधकों ढ़्छ, १३ है । तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, नीचगोत्रके वंधकोंके ढ़्छ, १३ है । अवंधकोंके ढ़्छ है । देवगति ४ के वंधकोंके ढ़्छ है । अवंधकोंके ढ़्छ, १३ है । तीनों गतियोंके (नरक विना) वंधकोंके ढ़्छ, १३ है । अवंधक नहीं है । औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, ५ संहननके वंधकोंके ढ़्छ, १३ है । अवंधकोंके ढ़्छ है । उद्योतके वंधकों अवंधकोंके ढ़्छ, १३ है । सुभग, आदेयके वंधकोंके ढ़्छ है । अवंधकोंके ढ़्छ, १३ है । दुर्भग, अनादेयके वंधकोंके ढ़्छ, १३ है । अवंधकोंके ढ़्छ है । सुभग, दुर्भग तथा आदेय-अनादेय के वंधकोंमें वेदनीयके समान भंग है ।

§३२९. सम्मामिच्छाइट्ठिमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका ढ़्छ है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे दो राजू, ढ़्छ भाग है । (ध० टी० फो० पृ० १६७)]

देवगादि० ४ बंधगा खेत्त-भंगो । अवंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो । मणुसगादिपंचगं बंधगा अट्ठ-चोद्दस० । अवंधगा खेत्तभंगो । सेसाणं पत्तेगेण बंधगा अवंधगा अट्ठ-चोद्दस-भागो । साधारणेण धुविगाणं भंगो ।

§३३०. सण्णी सणजोगिभंगो । असण्णी खेत्तभंगो । णवरि एइंदियपगदीणं एइंदियभंगो ।

§३३१. आहारादि (?) (आहार०) ओघं । णवरि केवल्लिभंगो णत्थि । अणाहार० कम्मइगभंगो । णवरि वेदणीयं साधारणेण ओघं ।

एवं फौसणं समत्तं ।

देवगति ४ के बंधकोंके क्षेत्रके समान भंग है । अवंधकोंके $\frac{1}{4}$ है । मनुष्यगति ५ के बंधकोंके $\frac{1}{4}$ है । अवंधकोंके क्षेत्रके समान है । शेष प्रकृतियोंके प्रत्येकसे बंधकों अवंधकोंका $\frac{1}{4}$ है । सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंका भंग है ।

§३३०. संज्ञीमें—मनोयोगियोंका भंग है । असंज्ञीमें—क्षेत्रके समान है । विशेष, एकेन्द्रिय जातिका एकेन्द्रियके समान भंग है ।

§३३१. आहारकोंमें ^१ ओघवत् भंग है । किन्तु केवल्लिभंग नहीं है ।

[विशेष—मिथ्यादृष्टी जीवके सर्वलोक है, सासादनके लोकका असंख्यातवां भाग, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{4}$ भाग है । मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वीके लोकका असंख्यातवां भाग, $\frac{1}{4}$ है । देशसंयतके असंख्यातवां भाग वा $\frac{1}{4}$ है । प्रमत्तसंयतसे सयोगि जिनपर्यन्त लोकका असंख्यातवां भाग है । विशेष, सयोगकेवलीके प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घात आहारक अवस्थामें नहीं होते ।]

अनाहारकोंमें—कामाण काययोगवत् है । विशेष, वेदनीयका सामान्यसे ओघवत् भंग है^२ ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

(१) “आहाराणुवादेण आहारएणु मिच्छादिद्वी ओघं । सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं । पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स अत्तंखेज्जदिभागो ।” —पट्खं० फौ० सू० १८१-१८३ ।

(२) “अनाहारकेणु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येय-भागः, एकादश चतुर्दशभागा वा देशोनाः । सयोगकेवल्लिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा । अयोगकेवल्लिनां लोकस्यासंख्येयभागः ।” —स० सि० १-८ ।

“आणाहारएणु कम्मइयकायजोगिभंगो । णवरि विसेतो । अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ! लोगस्स अत्तंखेज्जदिभागो ।” —सू० १८४-१८५

[कालानुगम-परूवणा]

§३३२. कालानुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ।

§३३३. तत्थ ओघेण पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तेजाक० आहारदुगं वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमिण० तित्थयर-पंचंतराङ्गणं वंधगा अवंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सच्चद्धा । सादासादानं वंधा (बंधगा) अवंधगा० सच्चद्धा । दोणं वंधगा अवंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सच्चद्धा । एवं सेसाणं पगदीणं वेदणीय-भंगो । णवरि तिणिआयु-बंधगा केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्चद्धा । तिरि-क्खायुबंधाबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सच्चद्धा । एवं चदुआयुगणं । एवं ओघभंगो काजोगीसु ओरालियकाजोगी० भवसिद्धि० आहारगत्ति । णवरि भवसिद्धिये दोवेदणीयस्स अवंधगा केव० कालादो होंति ? साधारणेण जहण्णुक्कस्सेण अंतो-

[कालानुगम]

§३३२. कालानुगमका (नानाजीवोंकी अपेक्षा) ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

§३३३. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय-जुगुप्सा, तेजस, कामीण, आहारकट्टिक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अंतरायोंके बंधक अवंधक कितने काल तक होते हैं ? नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं । साता असाताके बंधक अवंधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं । दोनोंके बंधक अवंधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं । शेष प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग है । विशेष, ३ आयुके बंधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक है । अवंधकोंका सर्वकाल है । तिर्यचायुके बंधक अवंधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं । इसी प्रकार चार आयुका जानना चाहिए ।

काययोगी, औदारिककाययोगी, भव्यसिद्धिक, आहारक मार्गणापर्यन्त ओघवत् जानना चाहिए । इतना विशेष है कि भव्यसिद्धिकोंमें दो वेदनीयके^२ अवंधक कितने काल तक होते हैं ?

(१) “ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा । सच्चकालं णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिट्ठीणं वोच्छेदो णत्थित्ति भणिदं होदि ॥”—ध० टी० का० पृ० ३२३ ।

“सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।”—पट्खं० का० सू० ५, ६ ।

(२) “चदुण्हं खवगा अबोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।”—पट्खं० का० सू० २६ ।

मुहुत्तं । सेसाणं मग्गणाणं वेदणीयस्स साधारणेण अवंधगा णत्थि । णवरि काजोगि-
ओरालियका० तिण्णं आयुगाणं जहण्णेण एगसमओ ।

§३३४. आदेसेण णेरइयेसु धुविगाणं वंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सच्चद्धा ।
अवंधगा णत्थि । श्रीणगिद्धि-तियं मिच्छत्त-अणंताणु० ४ उज्जोव-तित्थयराणं ओघं ।
तिरिक्खायु-बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदो- ५
वमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्चद्धा । मणुसायु-बंधगा केव० जहण्णुक्कसेण
अंतोमुहुत्तं । अवंधगा सच्चद्धा । दो-आयु वंधगा केवचिरं ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क-
स्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सच्चद्धा । सेसाणं पत्तेणेण सव्वे विग-
प्पा सच्चद्धा । साधारणेण अवंधगा णत्थि । एवं सच्चणेरइगाणं ।

§३३५. तिरिक्खेसु-चदुआयु ओघं । सेसाणं सव्वे विगप्पा सच्चद्धा । एवं एइदि० १०

सामान्यकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है ।

[विशेष—दोनों वेदनीयके अवंधक अयोगी जिनकी अपेक्षा अंतर्मुहूर्त काल कहा है ।]

शेष मार्गाणाओंमें सामान्यसे वेदनीयके अवंधक नहीं हैं । विशेष, काययोगियों, औदारिक
काययोगियोंमें तीन आयुके वंधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे एक समय पर्यन्त होते हैं ।

§३३४. आदेशसे—नारकियोंमें ध्रुवप्रकृतियोंके वंधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल
होते हैं । अवंधक नहीं हैं ।^१ स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, उद्योत और तीर्थकरके
बंधकोंमें ओघके समान सर्वकाल जानना चाहिए । तिर्यचायुके वंधक कितने काल तक होते हैं ?
जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । अवंधक सर्वकाल होते हैं ।
मनुष्यायुके वंधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्य तथा उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त होते हैं । अवंधक
सर्वकाल होते हैं । दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यचायुके वंधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे
अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । अवंधक सर्वकाल होते हैं । शेष प्रकृ-
तियोंमें सर्व विकल्प पृथक्-पृथक् रूपसे सर्वकालरूप होते हैं । साधारणसे अवंधक नहीं हैं ।
इसी प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए ।

§३३५. ^२तिर्यचगतिमें चार आयुके वंधक अवंधक कितने काल तक होते हैं ? ओघके समान
जानना चाहिए । शेष सर्व विकल्प सर्वकाल प्रमाण हैं ।^३ एकेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक,

(१) “णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।”—पट्खं०
का० ३३ ।

(२) “तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।”
—पट्खं० का० ४७ ।

(३) “एइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।” (इ० १०७) । “पुढविकाइया-
आउकाइयात्तेउकाइया-वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।” (इ० १३९) ।

‘बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवगप्फदिकाइय-पत्तेयत्तरीर-अवज्जत्ता केवचिरं

पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-पत्तेय० तेसिं वादर-वादर-अपज्जत्त-सव्वसुहुम० वणप्फदि-णिगोद-मदि० सुद० असंजद० तिण्णि लेस्सा० अब्भवसि० मिच्छादिट्ठि-असण्णित्ति ।

§३३६. पंचिंदिय-तिरिक्खेसु चदुआयु जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोव-
५ मस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वद्धा । सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा ।

§३३७. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्ज०-दो आयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वद्धा । एवं सव्वविगल्लिंदिय-पंचिंदिय-तस० अपज्जत्त-वादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ०-वादरवणप्फदिपत्तेय-पज्जत्ताणं ।

१० §३३८. मणुसेसु सादासादबंधगा सव्वद्धा । दोणं वेदणीयाणं बंधगा सव्वद्धा ।

तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पति, प्रत्येक तथा इनके वादर तथा वादर अपर्याप्तकोंमें, सर्व सूक्ष्मोंमें, वनस्पतिनिगोदोंमें, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादिलेश्यात्रय, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए ।

§३३६. पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें—चार आयुके बंधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे अंत-मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग पर्यन्त होते हैं । अवंधक सर्वकाल होते हैं । शेष प्रकृतियोंके सर्व विकल्प सर्वकाल जानना चाहिए ।

§३३७. पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यचलब्धपर्याप्तकोंमें दो आयु (नर-तिर्यचायु) के बंधक जघन्यसे अंतमुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । अवंधक सर्वकाल होते हैं । सर्वविकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय त्रस इनके अपर्याप्तकोंमें वादर-पृथ्वी-जल-अग्नि-वायुकायिक, वादर वनस्पति प्रत्येक तथा इनके पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§३३८. मनुष्योंमें—साता असाता वेदनीयके बंधकोंका सर्वकाल है । दोनों वेदनीयके बंधकों का सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्य-उत्कृष्टकाल अंतमुहूर्त है ।

[विशेष—दोनों वेदनीयके अवंधक अयोगिजिनोंकी अपेक्षा अंतमुहूर्त कहा गया है ।]

कालादो हांति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।” (१४८) । “सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउ-काइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सुहुमेइंदिय पज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ।” (सू० १५१) । “णाणाणुवादेण मदि अण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओधं ।” (२६०) । “असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ओधं ।” (२७५) । “किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सि-एसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो हांति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।” (२८३) । “अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो हांति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।” (३१५) । “मिच्छादिट्ठी ओधं ।” (३२९) । “असणी केवचिरं कालादो हांति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।” (३३४) ।

(१) “चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो हांति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।” —पट्खं० का० २६ ।

अबंधगा जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोआयु० बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सच्चद्धा । दोआयु० बंधगा जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा सच्चद्धा । चदुआयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सच्चद्धा । सेसाणं सच्चे भंगा सच्चद्धा ।

§३३९. एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि चदुआयु पत्तेगेण साधारणेण य ५ बंधगा जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सच्चद्धा ।

§३४०. मणुस-अपज्जत्तेसु-धुविगाणं बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा णत्थि । सादासाद-बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । दोण्णं बंधगा जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा णत्थि । १० दो-आयु० पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलि-दोवमस्स असंखेज्जदिभागो । ओरालि० अंगो० छसंधड० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० दोसरं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं पत्तेगेण साधारणेण वि । सेसाणं वेदणीयभंगो ।

दो आयुके बंधक जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । अबंधक सर्वकाल होते हैं । दो आयुके बंधक जघन्य-उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त होते हैं । अबंधकोंका सर्वकाल है । चारों आयुके बंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । अबंधक सर्वकाल होते हैं । शेष प्रकृतियोंके सर्वभंग सर्वकाल जानना चाहिए ।

§३३९. मनुष्य पर्याप्तकों, मनुष्यनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि चार आयुके प्रत्येक तथा सामान्यसे बंधक जघन्य और उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त पर्यन्त होते हैं । अबंधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं ।

§३४०. मनुष्य लब्धपर्याप्तकोंमें^१—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग पर्यन्त होते हैं । अबंधक नहीं हैं । साता-असाता वेदनीयके बंधक अबंधक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । दोनोंके बंधक जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण पर्यन्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । अबंधक नहीं हैं । दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बंधक-अबंधक प्रत्येक साधारणसे जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पत्योपमके असंख्यातवें भाग हैं । औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, परघात-उच्छ्वास-आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बंधक अबंधक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमके असंख्यातवें भाग हैं । सामान्य तथा प्रत्येकसे इसी प्रकार जानना चाहिए । शेषका वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

(१) “मणुस-अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।” —पट्खं० का० ८३-८४ ।

§३४१. देवाणं णिरयभंगो । णवरि एइंदियपयडि जाणिद्वं भाणिद्वं ।

§३४२. पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्ता वेदणीयं साधारणेण अवंधगा जहणुक्क-
स्सेण अंतोमुहुत्तं, चदुण्णं आयुगाणं वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्क० पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो । सेस-भंगा सच्चद्धा ।

५ §३४३. एवं तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि० । णवरि वेदणीयस्स साधारणेण अवंधगा
णत्थि । चदुआयु० वंधगा जहण्णेण एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।
दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०
४ अगु० उप० णिमिण० पंचंतराहगाणं वंधगा सच्चद्धा । अवंधगा जह० एगसमओ,
उक्क० अंतोमुहुत्तं । सादासादाणं वंधगा अवंधगा सच्चद्धा । दोण्णं वंधगा सच्चद्धा,
१० अवंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाणं वंधगा अवंधगा सच्चद्धा । तिण्णं
वेदाणं वंधगा सच्चद्धा । अवंधगा जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं दोयुगल-

§३४१. देवोंमें—नारकियोंके समान भंग^१ है । विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय प्रकृतिको भी
जानकर कहना चाहिए ।

[विशेष—नारकी जीव मरणकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य या तिर्यंच होते हैं,
किन्तु देवों की उत्पत्ति एकेन्द्रियोंमें भी होती है । अतः देवगति में एकेन्द्रिय जातिके वंधका भी
उल्लेख है ।

§३४२. पंचेन्द्रिय त्रस तथा इनके पर्याप्तकोंमें—साधारणसे वेदनीयके अवंधकोंका जघन्य,
उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है । चार आयुके वंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्योपमका
असंख्यातवां भाग है । शेष भंग सर्वकाल हैं ।

§३४३. तीन मनोयोग, तीन वचनयोगमें इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि वेदनीयके
सामान्यसे अवंधक नहीं है । चार आयुके वंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट पत्योपमका
असंख्यातवां भाग काल है । दो मन तथा दो वचनयोगमें—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्श-
नावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण
तथा पाँच अंतरायोंके वंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे
अंतर्मुहूर्त है । साता-असाताके वंधकों-अवंधकोंका काल सर्वकाल है । दोनोंके वंधकोंका सर्वकाल
है । अवंधक नहीं हैं । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके वंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । तीनों
वेदोंके वंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है ।

(१) “णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा । सासण-
सम्मादिट्ठी-सम्मादिच्छादिट्ठी ओधं ।” —पट्खं० का० ३६ ।

‘सासण-सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।’ (५, ६) । “सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।” (९, १०) । असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं
कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।” —पट्खं० का० १३ ।

चदुगदि-पंचजादि-दोसरीर-छसंठाण-चदुआणुपुन्वि० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदं च । आहारदुगं दो-अंगो० छस्संघं० परघादुस्सास-आदाउज्जो० दो विहाय० दोसर० तित्थय० पत्तेगेण साधारणेण बंधगां-अबंधगा सव्वद्धा । चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जह० एगस०, उक्क० पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वद्धा ।

§३४४. एवं चक्खुदं० अचक्खुदं० सण्णि त्ति । णवरि चक्खुदं० सण्णि० आयु० ५ तस-भंगो । अचक्खुदं० आयु० ओघं ।

§३४५. ओरालिमि०-ध्रुविगाणं बंधगा सव्वद्धा । अवंधगा जह० एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जसमया । सादासाद-बंधगा अवंधगा सव्वद्धा । दोण्णं बंधगा सव्वद्धा, अवंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाणं बंधगा अवंधगा सव्वद्धा । तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वद्धा । अवंधगा जह० एगस० । उक्क० संखेज्जसमया । एवं दोण्णं १०

हास्यादि दो युगल, चार गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नव युगल तथा दो गोत्रोंमें भी इसी प्रकार जानना, अर्थात् अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतमुहूर्त है तथा बंधकोंका सर्वकाल है । आहारकद्विक, २ अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, २ स्वर तथा तीर्थकर प्रकृतिके बंधकों अवंधकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे सर्वकाल है । चार आयुके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । अवंधकोंका सर्वकाल है ।

§३४४. चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन तथा संज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, चक्षुदर्शन एवं संज्ञी जीवोंमें आयुका त्रसके समान भंग है । आयुका अचक्षुदर्शनमें ओघवत् जानना चाहिए ।

§३४५. औदारिकमिश्र काययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका सर्वकाल है, अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय प्रमाण है । साता-असाताके बंधकों-अबंधकोंका सर्वकाल है । दोनोंके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधक नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । तीनों वेदोंके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है । इस प्रकार दो युगलोंमें जानना चाहिये । दो आयुमें ओघवत् जानना

(१) “दंड समुद्धातसे कपाटको प्राप्त होकर वहाँ एक समय रहकर प्रतर समुद्धातको प्राप्त हुए केवलियोंके यह एक समय प्रमाण काल होता है । अथवा रुचकसे कपाटसमुद्धातको प्राप्त होकर और एक समय रहकर दंडसमुद्धातको प्राप्त होने वाले केवलियोंके एक समय काल होता है । कपाटसमुद्धातके आरोहण-अवरोहणरूप क्रियामें संलग्न क्रमशः दंड प्रतररूप पर्याय परिणत संख्यात समयोंकी पंक्तिमें स्थित संख्यातकेवलियोंके द्वारा अधिकृत अवस्थामें संख्यात समय पाये जाते हैं ।” —ध० टी० का० ४०४ ।

“सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहन्गेग एगसमयं, उक्कस्सेण संखेज्ज-समयं” —पट्खं० का० १९३-९४ ।

युगलाणं । दोआयु ओधं । देवगदि० ४ तित्थय० वंधगा जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अवंधगा सच्चद्धा । दोगदिवंधगा अवंधगा सच्चद्धा । तिण्णं गदीणं वंधगा सच्चद्धा । अवंधगा जह० एगसमओ । उक्क० संखेज्जसमया । मिच्छत्तवंधगा सच्चद्धा । अवंधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । थीणगिद्धि-तियं ५ अणंताणुवंधि० ४ ओरालि० वंधगा सच्चद्धा । अवंधगा जह० एगसमओ । उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं सच्चाणं णेदच्चं ।

§३४६. एवं कम्मइयका० । णवरि थीणगिद्धित्तिगं मिच्छ० अणंताणु० ४ वंधगा सच्चद्धा, अवंधगा जह० एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । देवगदि० ४ तित्थयरं वंधगा जह० एगस० । उक्क० संखेज्जसमया । अवंधगा १० सच्चद्धा । ओरालिय-बंधगा सच्चद्धा । अवंधगा जह० एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जसमया ।

§३४७. वेउव्विकायजोगिस्स देवोधं । वेउव्वियमिस्स० धुविगाणं वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । थीणगि-

चाहिये । देवगति ४, तीर्थकरके बंधकोंका जघन्य, उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त है ।^१ अवंधकोंका सर्वकाल है । दो गतिके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । तीन गतिके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है । मिथ्यात्वके बंधकोंका सर्वकाल है ।^२ अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवाँ भाग है । स्त्यानगृद्धि-त्रिक, अनंतानुबंधी ४ तथा औदारिक शरीरके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सर्व प्रकृतियोंका जानना चाहिए ।

§३४६. कार्माणकाययोगियोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धि-त्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ के बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका^३ जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवाँ भाग है । देवगति ४, तीर्थकरके बंधकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट संख्यात समय है । अवंधकोंका सर्वकाल है । औदारिक शरीरके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट संख्यात समय है ।

§३४७. वैक्रियिक काययोगियोंमें—देवोंके ओघवत् जानना चाहिए । वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका काल जघन्यसे अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें

(१) “असंजदसम्मादिद्धी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।”-पट्खं० का० १८९-९० । (२) “सासणसम्मादिद्धी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।”-पट्खं० का० १८५-८६ । (३) “सासणसम्मादिद्धी असंजदसम्मादिद्धी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।”-पट्खं० का० २२०-२१ । (४) “वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्धीअसंजदसम्मादिद्धी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।”-पट्खं० का० २०१-२०२ ।

द्वितिगं मिच्छत्त अणंताणुबंधि० ४ बंधगा अवंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । णवरि मिच्छत्त-अवंधगा जहण्णेण एगसमओ । दोवेदणीय-बंधगा अवंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । दोणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । एवं तिणं वेदाणं दोणं युगलानं दोगदि-दोजादि-छस्संठाण-दोआणुपुब्बि- ५ तसथावरादि-पंच-युगल-दोगोदाणं च । ओरालि-अंगोवंग-छस्संघडण-दोविहायगदि-दोसरानं बंधगा अवंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । तित्थयरं-बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अवंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§३४८. आहारका०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतो- १० मुहुत्तं । अवंधगा णत्थि । सेसाणं बंधगा अवंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§३४९. आहारमि०-धुविगाणं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अवंधगा

भाग है । अवंधक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी चारके बंधकों अवंधकोंका काल जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवं भाग है । ^१विशेष यह है कि मिथ्यात्वके अवंधकोंका जघन्य काल एक समय है । दोनों वेदनीयके बंधकों अवंधकोंका जघन्यसे काल एक समय, उत्कृष्टसे पत्यका असंख्यातवां भाग है । दोनोंके बंधकोंका काल जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यका असंख्यातवां भाग है । अवंधक नहीं है । तीनों वेदों, हास्यादि दो युगलों, २ गति, २ जाति, ६ संस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि पंचयुगल तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरोंके बंधकों-अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । तीर्थकरके बंधकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । अवंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

§३४८. आहारकाययोगियोंमें^२ ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधकों अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है ।

§३४९. आहारकमिश्रमें-^३ ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है ।

(१) “सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।”-पट्खं० का० २०५-२०६ ।

(२) “आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।”-पट्खं० का० २०९-२१० ।

(३) “आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।”-पट्खं० का० २१३-१४ ।

णत्थि । वेदणीय-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोणं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अवंधगा णत्थि । आयु० तित्थय० सादभंगो ।

§३५०. इत्थिवे०-पंचणा० चटुदंस० चटुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वद्धा । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-वारसक० आहारदुग-परघादुस्तासआदा-उज्जीव-
 ५ तित्थयरारणं बंधगा अवंधगा सव्वद्धा । णिहापचल (ला)-भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वद्धा । अवंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । सादासाद-बंधगा अवंधगा सव्वद्धा । दोणं बंधगा सव्वद्धा । अवंधगा णत्थि । एवं तिण्णि-वेद-जस०-अजस० दोगोदं च । हस्सरदि-अरदि-सोगं बंधगा अवंधगा सव्वद्धा । दोणं युगलाणं बंधगा सव्वद्धा । अवंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण
 १० अंतोमुहुत्तं । सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण वि हस्सरदीणं भंगो । चटुआयुगाणं बंधगा पत्तेगेण जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वद्धा । साधारणेण चटुआयुगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदो-
 वमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा सव्वद्धा ।

अबंधक नहीं है । वेदनीयके बंधकों अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । दोनोंके बंधकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । अवंधक नहीं है । आयु तथा तीर्थकरमें साताके समान भंग है ।

§३५०. स्त्रीवेदमें-^१ ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संस्वलन, ५ अंतरायके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधक नहीं है । स्थानगृद्धिन्निक, मिथ्यात्व, १२ कपाय, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थकरके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है ।^२ निद्रा-प्रचला, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है^३ । साता असाता वेदनीयके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । दोनोंके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधक नहीं है । तीन वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । हास्य-रति, अरति-शोकके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । दोनों युगलोंके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंमें प्रत्येक तथा सामान्यसे हास्य-रतिके समान भंग जानना चाहिए । चार आयुके बंधकोंका प्रत्येकसे जघन्यकी अपेक्षा अंतर्मुहूर्त काल है, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । अवंधकोंका सर्वकाल है । सामान्यसे चार आयुके बंधकोंका काल जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यका असंख्यातवां भाग है । अवंधकोंका सर्वकाल है ।

(१) “इत्थिवेदेषु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।” -पट्खं० का० २२७ । (२) “असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।” -पट्खं० का० २३२ । (३) “चटुणं उवसमा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।” -पट्खं० का० २२-२३ ।

§३५१. एवं पुरिसवेदस्स वि । एवं चेव णवुंसगवेद-कोधादितिणं कसायाणं ।
णवरि तिरिक्खायुबंधगा अवंधगा सव्वद्धा । साधारणेण चटुआयुगाणं वंधगा अवंधगा
सव्वद्धा । एवं चेव लोभे वि । णवरि पंचणा० चटुदं० पंचंतराइगाणं वंधगा सव्वद्धा ।
अवंधगां णत्थि ।

३५२. अवगदवेदेसु-सादस्स वंधाबंधगा सव्वद्धा । सेसाणं वंधगा जहण्णेण ५
एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अवंधगा सव्वद्धा ।

§३५३. अकसाइगेसु-सादस्स वंधगा अवंधगा सव्वद्धा । एवं केवलणा०
केवलदंसं ।

§३५४. विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-भंगो । णवरि मिच्छत्त-अवंधगा जहण्णेण एग-
समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । १०

§३५५. आभि० सुद० ओधि०-ध्रुविगाणं वंधगा सव्वद्धा । अवंधगा जहण्णेण

§३५१. पुरुषवेदमें-इसी प्रकार जानना चाहिए । नपुंसकवेदमें भी इसी प्रकार है । क्रोध-मान-
मायाकषायमें भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि तिर्यचआयुके वंधकों अवंधकोंका सर्वकाल
है । सामान्यसे चार आयुके वंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । लोभकषायमें-इसी प्रकार जानना
चाहिए । विशेष यह है कि ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण तथा ५ अंतरायोंके वंधकोंका सर्वकाल है ।
अवंधक नहीं है ।

§३५२. अपगत वेदमें-सातावेदनीयके वंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंके
बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । अवंधकोंका सर्वकाल है ।

§३५३. अकषायियोंमें-साता वेदनीयके वंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । केवलज्ञान, केवल-
दर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§३५४. विभंगज्ञानमें^१-पंचेन्द्रिय तिर्यचके समान भंग जानना चाहिए । विशेष यह है कि
मिथ्यात्वके अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

§३५५. २आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें-ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका सर्व-

(१) “विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।”
-षट्खं० का० २६२ । “सासणसम्मादिट्ठी ओधं (२६५) णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ,
उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।” ५-६ ।

(२) “आभिणिवोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुटि जाव खीणकषाय-
वीदराग-छदुमत्थात्ति ओधं ।”-सू० २६६ । “असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा । संजदासंजदा.....सव्वद्धा । पमत्त-अपमत्तसंजदा.....सव्वद्धा । चटुदं उक्कस्स..... णाणा-
जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । चटुदं सव्वगा अजोमिक्खणी.....जहण्णेण
अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।”-सू० १३, १६, १९, २२, २३, २६, २७ ।

एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अट्ठकसा० आहारदु० वज्जरिसम० तित्थिय०
बंधाबंधगा सच्चद्धा । सेसाणं दोण्णं मणजोगीणं भंगो । णवरि मणुसायु० मणुसिभंगो ।
देवायु० ओघं ।

§३५६. एवं ओघिदंस० । एवं चेव मणपज्जव० सामा० छेदो० । णवरि देवायु०
५ मणुसिभंगो । संजदा मणुसिभंगो ।

§३५७. परिहार-धुविगाणं बंधगा सच्चद्धा । अवंधगा णत्थि । दोवेदणीयाणं
बंधाबंधगा सच्चद्धा । दोण्णं पगदीणं बंधगा सच्चद्धा । अवंधगा णत्थि । देवायु०
मणुसिभंगो । सेसं वेदणीयभंगो ।

§३५८. एवं संजदासंजदाणं । देवायु० ओघं । सुट्ठम० सच्चानं बंधगा जहण्णेण
१० एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अवंधगा णत्थि ।

§३५९. तेज देवोघं । एवं पम्माए वि । सुक्काए धुविगाणं बंधाबंधगा सच्चद्धा ।

काल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । आठ कपाय, आहारकट्टिक, वज्रवृषभसंहनन, तीर्थकरके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंका दो मनोयोगियोंके समान भंग है । अर्थात् बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । विशेष यह है कि मनुष्यायुका मनुष्यनियोंके समान भंग है । देवायुके विषयमें ओघवत् जानना चाहिए ।

§३५६. इसी प्रकार अवधिदर्शनमें जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, संयममें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि देवायुके बंधकोंमें मनुष्यनीका भंग जानना चाहिए । संयतोंमें मनुष्यनीका भंग है ।

§३५७. परिहारविशुद्धिसंयममें—ध्रुवप्रकृतियोंके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधक नहीं है । दोनों वेदनीयोंके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । दोनों प्रकृतियोंके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधक नहीं है । देवायुका मनुष्यनीके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमें वेदनीयका भंग है ।

§३५८. संयतासंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । देवायुका ओघवत् भंग जानना चाहिए । सुट्ठमसांपरायसंयममें सर्व प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्यकाल एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । अवंधक नहीं है ।

§३५९. तेजोलेश्यामें—देवोंके ओघ समान है । पद्मालेश्यामें—इसी प्रकार है । शुक्लेश्यामें—ध्रुवप्रकृतियोंके बंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंका मनुष्यपर्याप्तकके समान भंग है ।

(१) “सुट्ठमसांपरायसुद्धिसंजदेसु सुट्ठमसांपरायसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं ।”—२७२ । (२) “तेज-लेस्सिय पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी.....सच्चद्धा” —पट्खं० का० २९१ । “सासण-सम्मादिट्ठी ओघं ।”—२९४ । “सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।”—२९५ । “संजदासंजदपमत्तव्यमत्तसंजदा.....सच्चद्धा ।”—२९६ । (३) “सुक्कलेस्सिएसु चट्ठण्हसुवसमा चट्ठण्हं खवा सजोगिकेवली ओघं ।”—३०८ ।

सेसं मणुस-पज्जत्तभंगो ।

§३६०. सम्मादि० दोआयु ओधिभंगो । सेसं सव्वद्धा । एवं खड्ग-सम्मा० । दोआयु सुक्कभंगो । वेदगे०—ध्रुविगाणं वंधा (वंधगा) सव्वद्धा, अवंधगा णत्थि । सेसं ओधिभंगो । णवरि साधारणेण अवंधगा णत्थि ।

§३६१. उवसमसम्मा०—ध्रुविगाणं वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलि- ५
दोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।
अपच्चक्खाणा० ४ वंधगा अवंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो । पच्चक्खाणा० ४ वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । सादासाद-बंधगा-
अवंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । दोणं १०
वेदणीयाणं वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।
अवंधगा णत्थि । मणुसगदि-पंचगं वंधगा अवंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । देवगदि० ४ वंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं अवंधा (अवंधगा) । णवरि जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§३६०. सम्यग्दृष्टियोंमें—दो आयुके बंधकों अवंधकोंका ओघके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमें सर्वकाल भंग है । क्षायिकसम्यक्त्वियोंमें—इसी प्रकार है । दो आयुका शुक्लेश्याके समान भंग है । वेदकसम्यक्त्वियोंमें—ध्रुवप्रकृतियोंके बंधकोंका सर्वकाल है । अवंधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग है । विशेष यह है कि सामान्यसे अवंधक नहीं है ।

§३६१. १ उपशमसम्यक्त्वियोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका काल जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्यके असंख्यातवें भाग हैं । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट से अंतर्मुहूर्त है ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकों अवंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्योपमके असंख्यातवें भाग है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । अवंधकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । साता-असाताके बंधकों अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग जानना चाहिए । दोनों वेदनीयोंके बंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । अवंधक नहीं है । मनुष्यगतिपंचकके बंधकों अवंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । देवगति ४ के बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका

(१) “उवसमसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वी सज्जदसंजदा केवचिरं कालदो हेति ? माणावेव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।” —पट्ठ० का० सू० ३१९-२० ।

“पमत्तसंजदपडुडि जाव उवसंतकलाय वीदरागहदुमत्थात्ति केवचिरं कालदो हेति ? माणावेव पडुच्च जहण्णेण एगसमव उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।” —३२३-२४ ।

आहारदुगं वंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अवंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं तित्थयरस्स । चदुणोक्क-
सायाणं वंधगा अवंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागो । दोण्णं युगलाणं वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-
५ ज्जदिभागो । अवंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं थिरादि-
तिणिण्युगलाणं ।

§३६२. सासणे-धुविगाणं वंधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदि-
भागो । अवंधगा णत्थि । एवं वेदणीयं पत्तेगेण वंधगा अवंधगा । साधारणेण वंधगा
अवंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।
१० अवंधगा णत्थि । एवं सव्वाणं । दोआयु० वंधावंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क०
पलिदो० असंखेज्जदिभागो । मणुसायुवं० देवमंगो । अवंधगा जह० एगस० उक्क०
पलिदो० असंखेज्जदिभागो । एवं साधारणेण वि ।

§३६३. सम्मासि० धुविगाणं वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो०

असंख्यातवां भाग है । इसी प्रकार अवंधकोंका जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहां जघन्य अंतर्मुहूर्त है । आहारकद्विकके वंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । अवंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । तीर्थकरका इसी प्रकार जानना चाहिए । चार नोकप्रायोंके वंधकों अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असं-
ख्यातवां भाग है । दोनों युगलोंके वंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्टसे पल्योपमका असं-
ख्यातवां भाग है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । स्थिरादि तीन युगलोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§३६२. सासादनमें—'ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपम-
का असंख्यातवां भाग है । अवंधक नहीं है । वेदनीयके वंधकों अवंधकोंमें प्रत्येकसे इसी प्रकार
है । सामान्यसे वंधकों अवंधकोंका जघन्यसे एक समय है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग
है । अवंधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । दो आयुके वंधकों अवंधकोंका
जघन्यसे अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । मनुष्यायुके वंधकोंमें देवोंके
समान भंग है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ।
इसी प्रकार सामान्यसे भी जानना चाहिए ।

§३६३. सम्यक्त्वमिध्यात्वमें—'ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका काल जघन्यसे अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट-

(१) "सासणसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो हंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्क-
स्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।" —पट्खं० का० ५-६ ।

(२) "सम्माभिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो हंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क-
स्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।" —९-१० ।



असंखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । सादासादानं वंधगा० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो । दोण्णं वंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागो । अवंधगा णत्थि । एवं परियत्तमाणियाणं सव्वाणं । मणुस-
गदिपंचगं देवगदि० ४ वंधाबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो । एवं साधारणेण वि । अवंधगा णत्थि । ५

§३६४. अणाहारे ध्रुविगाणं वंधगा अवंधगा सव्वद्धा । देवगदिपंचगं वंधगा
जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जा समया । अवंधगा सव्वद्धा । सेसाणं वंधा-
बंधगा सव्वद्धा ।

एवं कालं समत्तं ।

— — — — —

से पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । अवंधक नहीं है । साता-असाताके वंधकोंका जघन्य
से एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । दोनोंके वंधकोंका जघन्यसे अंतर्मुहूर्त
है । उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । अवंधक नहीं है । परिवर्तमान सर्वप्रकृतियों
में इस प्रकार जानना चाहिए । मनुष्यगतिपंचक, देवगति ४ के वंधकों अवंधकोंका जघन्यसे
अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । इस प्रकार सामान्यसे भी भंग जानना
चाहिए । अवंधक नहीं है ।

§३६४. अनाहारकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है । देवगतिपंचकके
बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है । अवंधकोंका सर्वकाल है । शेष
प्रकृतियोंके वंधकों अवंधकोंका सर्वकाल है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालप्ररूपणा समाप्त हुई ।

— — — — —

[अंतराणुगम-परूषणा]

§३६५. अंतराणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य ।

§३६६. तत्थ ओघेण-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० आहारदुगं तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमिण-तित्थयर-पंचंतराह्मणां वंधा-अवंधगा णत्थि अंतरं णिरंतरं । तिण्णि आयु० वंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण चउ-
५ व्वीसं मुहुत्तं । अवंधगा णत्थि । तिरिक्खायुवंधावंधगा णत्थि अंतरं । चदुआयुवंधा-
अवंधगा णत्थि अंतरं । सेसविगप्पाणं वंधगा अवंधगा णत्थि अंतरं । एवं काजोगि (?) ।

§३६७. ओघमंगो काजोगि-ओरालिक्काजोगि-भवसिद्धि-आहारगत्ति । णवरि भवसिद्धि० ।

§३६८. आदेसेण णेस्इगेसु-दो-आयुवंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण
१० चउव्वीसं मुहुत्तं अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं, मासं, वेमासं, चत्तारि मासं, छम्मासं,

[अंतराणुगम]

[^१अंतरशब्द छिद्र, मध्य, विरह आदि अनेक अर्थोंका द्योतक है । यहाँ अंतर शब्द विरहकालका द्योतक है । एक वस्तु अवस्थाविशेषमें कुछ समय रहकर कुछ कालके लिए अवस्थान्तर रूप हो गयी और बादमें वह उस अवस्थाविशेषको पुनः प्राप्त हो गयी । इस मध्यवर्ती कालको अंतर कहते हैं । यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा वर्णन किया गया है ।]

§३६५. यहाँ ओघ तथा आदेशकी अपेक्षा अंतरका दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

§३६६. ओघसे ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, आहारक-द्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अंतरायोंके वंधकों अवंधकोंका अंतर नहीं है, निरंतर वंध है ।

नरक-मनुष्य-देवायुके वंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अंतर है । अवंधक नहीं है । तिर्यचायुके वंधकों अवंधकोंका अंतर नहीं है । चार आयुके वंधकों अवंधकोंका अंतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंके वंधकों अवंधकोंका अंतर नहीं है ।

§३६७. काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक आहारक पर्यन्त ओघकी तरह अंतर जानना चाहिए । भव्यसिद्धिकोंमें विशेष जानना चाहिए ।

§३६८. आदेशसे-नारकियोंमें मनुष्य-तिर्यचायुके वंधकोंका अंतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त, ४८ मुहूर्त, पक्ष, मास, दो मास, चार मास, छह मास तथा बारह मास अंतर

(१) “अन्तरशब्दस्यानेकार्थवृत्तेऽद्विद्रष्टव्यविरहेष्वन्यतमग्रहणम् ।” -त० रा० पृ० ३० ।

“अन्तरमुच्छेदो विरहो परिणामान्तरगमनं णत्थित्तगमनं अण्णभावव्वहाणमिदि एयट्ठो ।” -ध० टी० अंतरा० पृ० ३ ।

वारसभासं । एवं सव्वणेरइगाणं । सेसं पगदीणं णत्थि अंतरं ।

§३६९. तिरिक्खेसु-आयु० ओघं । सेसं णत्थि अंतरं । एवं एइंदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० तेसिं चेव वादरअपज्ज० सव्वसुहुम-सव्ववणप्फदि-निगोद-वादर-वणप्फदि-पत्तेय तस्सेव अपज्जत्त-मदि० सुद० असंज० तिणिले० अव्ववसिद्धि-मिच्छादिट्ठि याव असण्णत्ति । एदेसिं च किंचि विसेसं ओघादो साधेदूण णेदव्वं । ५ पंचिंदिय तिरिक्ख० ४ तिण्णि आयु० ओघं । तिरिक्खायु-बंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । पज्जत्तजोणिणीसु चउव्वीसं मुहुत्तं । चदु-आयु-तिरिक्खायुभंगो । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्ज० तिरिक्खायु० जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । मणुसायु ओघं । दो-आयु० तिरिक्खायुभंगो । सेसं णत्थि अंतरं । एवं पंचिंदिय-तस-अपज्ज० विगल्लिंदिय-वादर पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वादर-वणप्फदि-पत्तेय-१० पज्जत्ताणं । णवरि तेउ० आउ चउव्वीसं मुहुत्तं ।

§३७०. मणुसेसु-चदु-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं । दो वेदणी० अवंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण छम्मास० । मणुसिणीसु

है । इसी प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका अंतर नहीं है, कारण उनका निरंतर बंध होता है ।

§३६९. तिर्यचोंमें—आयुके बंधकोंका अंतर ओघवत् जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंके बंधकोंका अंतर नहीं है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु तथा इनके वादर अपर्याप्तक भेदोंमें, संपूर्ण सूक्ष्म, सर्व वनस्पतिनिगोद, वादरवनस्पति—प्रत्येक तथा उनके अपर्याप्तकोंमें एवं मत्स्यज्ञान, श्रुताज्ञान, असंयम, तीन लेश्या, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टिसे असंज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । इनमें पायी जाने वाली विशेषताओंको ओघ-वर्णनसे जानकर निकालना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यचअपर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतीमें—तीन आयुका ओघवत् है । तिर्यचायुके बंधकोंका अंतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । पर्याप्तक योनिमती तिर्यचोंमें अंतर २४ मुहूर्त है । चार आयुके बंधकोंमें तिर्यचायुके समान भंग है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें तिर्यचायुका अंतर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त है । मनुष्यायुका ओघवत् अंतर है । दो आयुके बंधकोंका तिर्यचायुके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमें अंतर नहीं है ।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय, वादर पृथ्वी, वादर अप्, वादर तेज, वादर वायु, वादर वनस्पति प्रत्येक पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । विशेष, तेजकायमें आयुका २४ मुहूर्त अंतर है ।

§३७०. मनुष्यगतिमें—चार आयुके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अंतर है । दो वेदनीयके अवंधकोंका जघन्यसे अंतर एक समय, उत्कृष्टसे छह माह है ।

वासपुधत्तं । सेसं णत्थि अंतरं । मणुस-अपज्ज० सव्वाणं जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§३७१. देवाणं-णिरयभंगो । णवरि सच्चट्टे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । पंचि-
दियतस० २ तिण्णि आयु-बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं । तिरि-
५ क्खायु-बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । पज्जत्ते चउव्वीसं मुहुत्तं ।
सेसं मणुसोधं । तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०-चदुआयु० बंधगा जहण्णेण एगस० ।
उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं । सेसं णत्थि अंतरं ।

§३७२. दोमण० दोवचि०-चदुआयु० तिण्णि सणभंगो । पंचणा० छदंसणा० चदुसंज०
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा

[विशेष—साता-असातायुगलके अवंधक अयोगकेवली होंगे । उनका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय है, उत्कृष्ट अंतर छह मास है ।]

मनुष्यनियोंमें—दोनों वेदनीयोंके अवंधकोंका अंतर वर्षप्रत्यक्ष है । शेषका अंतर नहीं है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें—सर्व प्रकृतियोंका जघन्यसे अंतर एक समय, उत्कृष्टसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

§३७१. देवोंमें—नरकके समान भंग है । विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिमें पत्योपमके संख्यातवें भाग प्रमाण अंतर है ।

पंचेन्द्रिय-पर्याप्त, त्रस-पर्याप्तकोंमें—तीन धायुके बंधकोंका अंतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है । तिर्यचायुके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अंतर्मुहूर्त अंतर जानना चाहिए । पर्याप्तकोंमें २४ मुहूर्त हैं । शेष प्रकृतियोंमें मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए ।

तीन मनयोगी, तीन वचनयोगीमें—१ आयुका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अंतर है । शेष प्रकृतियोंमें अंतर नहीं है ।

§३७२. दो मनयोगी, दो वचनयोगीमें—४ आयुके अंतरका तीन मनयोगीके समान भंग है । अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है । पांच ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, तेजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके बंधकोंका अंतर नहीं है ।

(१) “चदुहं खवग-अवोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होंदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण छम्मासं ।” —पट्खं० अंतरा० १६, १७ । “उत्कृष्टेन प्रमासाः ।” —स० सि० १, ८ ।

(२) “मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु चदुहमुव्वसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होंदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।” —७०, ७१ । “मणु-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं काला-दो होंदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।” —७८ । “किमट्ठमेदस्स एम्महंतस्स रासिस्स अंतरं होंदि ? एसो सहावो एदस्स । ण च सहावे बुत्तिवादस्स पवेसो आत्थिभिण्णविसयादो ।” —ध० टी० अ० ५६ । “उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।” —७८७ ।

जहण्णेण एगसं । उक्कस्सेण छम्मासं । सेसं पत्तेगेण साधारणेण य वंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा जहण्णेण एगसं । उक्कस्सेण छम्मासं । णवरि थीणगिद्वितिगं मिच्छत्त-
वारसकं । दोअंगो । छस्संव । परघादुस्सासं आहारदुगं आदाउज्जोवं दोविहाय । दोसरं वंधगा अवंधगा णत्थि अंतरं ।

§३७३. एवं चक्खुं अचक्खुं सण्णि चि । णवरि अचक्खुदंसं आयुं ओघं । ५ ओरालियमिस्सं-ध्रुविगाणं वंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा जहण्णेण एगसं, उक्कस्सेण वासपुधत्तं । थिणगिद्वि ३ मिच्छत्त-अणंताणुवंधि ४ ओरालि वंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा जहण्णेण एगसं । उक्कस्सेण मासपुधत्तं । दोआयुं छस्संव । दोविहाय । दोसरं वंधा-अवंधगा णत्थि अंतरं । णवरि मणुसायु ओघं । तित्थयरं वंधगा जहं एगसं । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । अवंधगा णत्थि अंतरं । सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण य ?

अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अंतर है । शेषके वंधकोंका सामान्य तथा प्रत्येक रूपसे अंतर नहीं है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ६ माह अंतर है । विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कपाय, दो अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आहारकद्विक, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरोंके वंधकों अवंधकोंका अंतर नहीं है ।

§३७३. इसी प्रकार चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शनसे संज्ञी पर्यन्त जानना चाहिए । विशेष यह है कि अचक्षुदर्शनमें आयुका ओघवत् अंतर है ।

औदारिक मिश्रकाययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंका अंतर नहीं है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अंतर है ।^१

[विशेष—इस योगमें ध्रुव प्रकृतियोंके अवंधक सयोगकेवली होंगे । वहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय है और उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है । कारण, कपाट समुद्धात रहित केवली जघन्यसे एक समय तथा उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व पर्यन्त होते हैं ।—ध० टी० अन्तरा० पृ० ५१]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुवंधी ४ तथा औदारिक शरीरके वंधकोंका अंतर नहीं है । अवंधकोंका अंतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अंतर है । दो आयु, ६ संहनन और २ विहायोगति, २ स्वरके वंधकों अवंधकोंका अंतर नहीं है । विशेष यह है कि मनुष्यायुके विषयमें ओघवत् जानना ।^२ तीर्थकरके वंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अंतर है । अवंधकोंका अंतर नहीं है ।

[विशेष—इस योगमें तीर्थकर प्रकृतिके वंधक चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव होंगे । उनका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अंतर कहा है ।]

(१) “सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमं उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।” —पट्खं० अन्तरा० १६६-६७ ।

(२) “असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमं उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।” —१६३-६४ ।

णत्थि अंतरं । अवंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

§३७४. वेउव्वियका०-देवोधं । वेउव्वियमिस्स-धुविगाणं वंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वारस मुहुत्तं । अवंधगा णत्थि अंतरं । थिणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणंताणु-वं० ४ अवंधगा, तित्थय० वंधगा ओरालियमिस्सभंगो । सेसाणं वंधावंधगा जहण्णेण ५ एगस० । उक्क० वारसमुहुत्तं । णवरि एइदिय० ३ चउव्वीसं मुहुत्तं ।

§३७५. आहार० आहारमिस्स०-धुविगाणं वंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । अवंधगा णत्थि अंतरं । सेसाणं वंधावंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

§३७६. कम्मङ्ग-कायो ओरालियमिस्स-भंगो ।

१० §३७७. इत्थिवेदे-धुविगाणं वंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा णत्थि । णिद्दा-पचला-भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ उप० णिमिणं वंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा

शेष प्रकृतियोंके बंधकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे अंतर नहीं है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अंतर है ।

§३७४. वैक्रियिक काययोगमें—देवोंके ओधवत् जानना चाहिए । वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य अंतर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अंतर है^१ । अवंधकोंका अंतर नहीं है । स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ के अवंधकोंका तथा तीर्थकरके बंधकोंका औदारिक मिश्रकाय योगके समान भंग जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंके बंधकों अवंधकोंका जघन्य अंतर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अंतर है । विशेष यह है कि एकेन्द्रिय-त्रिकका अंतर २४ मुहूर्त जानना चाहिए ।

§३७५. आहारक तथा आहारक मिश्रकाययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अंतर है^२ । अवंधकोंमें अंतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंके बंधकों अवंधकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अंतर है ।

§३७६. कार्माणकाययोगमें—औदारिक मिश्रकाययोगके समान भंग जानना चाहिए ।

§३७७. स्त्रीवेदमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंका अंतर नहीं है । इनके अवंधक नहीं हैं । निद्रा-प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उपघात, निर्माणके बंधकोंका अंतर नहीं

(१) “वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमवं उक्कस्सेण वारसमुहुत्तं ।” —पट्खं० अंतरा० १७०-१७१ ।

(२) “आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमवं, उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।” —१७४-१७५ ।

(३) “इत्थिवेदेसु दोहमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्ण-क्कस्समोवं ।” —पट्खं० अंतरा० १८७ ।

जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त वारसकसा० दोअंगो० छस्संघ० आहारदु० परघादुस्सा० आदाउज्जोव-दोविहाय० दोसर० बंधगा० णत्थि अंतरं । अवंधगा णत्थि अंतरं । एवं वेदणीय-तिण्णिवेद-जस० अज्जस० तित्थय० दोगोदाणं । सेसाणं पत्तेगेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । साधारणेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं ।

५

§३७८. एवं पुरिसवेदं णवुंसगवेदं । णवरि पुरिसे यं हि वासपुधत्तं, तं हि वासं सादिरेयं । इत्थि० पुरिस० चदुआयु० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो । णवुंसगे ओवं ।

§३७९. कोधादिसु तिसु पुरिसभंगो । णवरि तिरिक्खायु ओवं । एवं लोभे, णवरि छम्मासं ।

है ।^१ अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अंतर है । स्नानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, वारह कषाय, दो अंगोपांग, ६ संहनन, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरके बंधकोंका अंतर नहीं है । अवंधकोंका भी अंतर नहीं है । इसी प्रकार वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर तथा २ गोत्रका जानना । शेष प्रकृतियोंके बंधकों अवंधकोंका प्रत्येकसे अंतर नहीं है । सामान्यसे भी इनका अंतर नहीं है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अंतर है ।

§३७८. पुरुषवेद नपुंसकवेदमें इस प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि पुरुषवेदमें वर्ष-पृथक्त्वके स्थानमें साधिकवर्ष जानना चाहिए ।

[विशेष—पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गये, अतः अपूर्वकरण गुणस्थान अंतर युक्त हो गये । पुनः ६ मास व्यतीत होनेपर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर आरुढ़ हो गये । पुनः ४, ५ मासका अंतर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़े । पुनः १, २ मासका अंतर कर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर चढ़े । इस प्रकार संख्यात वार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे ही क्षपक श्रेणीपर आरोहण करा करके पश्चात् पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढ़ने पर साधिक वर्ष प्रमाण अंतर हो जाता है । क्योंकि निरंतर ६ मासके अंतरसे अधिक अंतरका होना असंभव है । इसी प्रकार 'पुरुषवेदी' अनिवृत्तिकरण क्षपकका भी अंतर जानना चाहिए । कितनी ही सूत्र पोथियोंमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अंतर ६ मास पाया जाता है ।]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा ४ आयुके बंधकों अवंधकोंमें पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भंग जानना चाहिए । नपुंसकवेदमें—ओघवत् जानना चाहिए ।

§३७९. क्रोध-मान-मायाकषायमें—पुरुषवेदके समान भंग है । विशेष इतना है कि निर्यद्वायुके बंधकों अवंधकोंका अंतर ओघवत् जानना चाहिए । लोभकषायमें—इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष, यहां अंतर छह मास जानना चाहिए ।

(१) “णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।” —पट्खं० अंतरा० १२, १३ ।

(२) “पुरिस वेदएसु” दोणं खवाणमंतरं केवनिरं कालादो हेदि । पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण वासं सादिरेयं । —पट्खं० अंतरा० १९३, २०४, २०५ ।

§३८०. अवगदवेदेसु सादवंधाअवंधगा णत्थि अंतरं । सेसं वंधगा जहण्णेण एगसं, उक्कस्सेण छम्मासं । अवंधगा णत्थि अंतरं ।

§३८१. अकसाइगेसु साद-वंधा अवंधगा णत्थि अंतरं । एवं देवलदंसणां । विभंगे पंचिदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो ।

५ §३८२. आभि० सुद० ओधि० दो आयु० वंधगा जहण्णेण एगसं, उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं । सेसाणं दो-मणभंगो । ओधिणा० वासपुधत्तं ।

§३८३. एवं मणपज्जव० ओधिदं० । णवरि मणपज्जव० देवायु० वासपुधत्तं ।

§३८४. एवं परिहारे संजडु० (१) तं चेव, णवरि मास-पुधत्तं । एवं सामाइ० छेदोप० । संजदासंजदा० सुहुमसं० सव्वाणं वंधगा जहण्णेण एगसं । उक्कस्सेण १० छम्मासं अंतरं । अवंधगा णत्थि । यथाक्खाद०-सादवंधगा णत्थि अंतरं । अवंधगा जहण्णेण एगसं उक्कस्सेण छम्मासं (सं) ।

§३८०. अपगतवेदमें-साताके वंधकों अवंधकोंमें अंतर नहीं है । शेष प्रकृतिके वंधकोंमें जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह माह अंतर है । अवंधकोंका अंतर नहीं है ।

§३८१. अकपायियोंमें-साताके वंधकों अवंधकोंमें अंतर नहीं है । केवलज्ञान, केवलदर्शनमें इसी प्रकार जानना । विभंगावधिमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंका भंग जानना चाहिए ।

§३८२. आभिनिबोधिक श्रुत तथा अवधिज्ञानमें-दो आयु अर्थात् मनुष्य-देवायुके वंधकोंका जघन्यसे एकसमय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अंतर है । शेष प्रकृतियोंमें दो मनयोगियोंके समान भंग है । अवधिज्ञानियोंमें वर्षपृथक्त्व अंतर है ।

§३८३. मनःपर्ययज्ञान अवधि दर्शनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि मनःपर्ययज्ञानमें देवायुका अन्तर वर्षपृथक्त्व है^२ ।

§३८४. परिहारविशुद्धिमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वर्षपृथक्त्वके स्थानमें मासपृथक्त्व जानना चाहिए । इसी प्रकार सामायिक छेदोपस्थापना संयममें जानना चाहिए । संयतासंयत और सूक्ष्म सांपराय संयममें सर्व प्रकृतियोंके वंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अंतर है । अवंधक नहीं है ।

यथाख्यातसंयममें-साता वेदनीयके वंधकोंका अंतर नहीं है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट छह मास अंतर जानना चाहिए ।^३

[विशेष-साता वेदनीयके अवंधकोंका इस संयममें अयोगकेवली गुणस्थान है । उसका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट अंतर छह मास है ।]

(१) “आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणीसु...चडुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण मासपुधत्तं ।” -पट्खं० अंतरा० २३२, २४१, २४२, २४५ ।

(२) “मणपज्जवणाणीसु...चडुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।” -२४६, २४९, २५० ।

(३) “चडुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण छम्मासं ।” -१६, १७ ।

§३८५. तेउपम्माणं-तिणिण-आयु० वंधा जह० एगस० । उक्कस्सेण अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं ।

§३८६. सुक्काए-दो आयु० मासपुधत्तं ।

§३८७. सम्मादिट्ठि आभिणिभंगो । खड्गसम्मा० वासपुधत्तं । सेसाणं णत्थि अंतरं । वेदगसम्मा० आयु० आभिणिभंगो । सेसं णत्थि अंतरं । ५

§३८८. उवसमसम्मा०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसभ० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोदं पंचंतराङ्गाणं वंधगा जहण्णेण एगस० उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि । [अवंधगा] जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण वासपुधत्तं । णवरि वज्जरिस० अवंधगा सत्तरादिंदियाणि । मणुसगदि० ४ वज्जरिसभ-भंगो । दोवेदणी० वंधा-अवंधगा जहण्णेण १० एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि । दोण्णं वंधगा जहण्णे० एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि । अवंधगा णत्थि । चदुणोक० वंधा-बंधगा जहण्णेण एगस० ।

§३८५. तेजोलेश्या-पद्मलेश्यामें-तीन आयुके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट से ४८ मुहूर्त तथा पक्ष प्रमाण अंतर है ।

§३८६. शुक्लेश्यामें-दो आयुके बंधकोंका मासपृथक्त्व अंतर है ।

§३८७. सम्यग्दृष्टियोंमें-आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है । क्षायिक सम्यक्त्वीमें दो आयुके बंधकोंका वर्षपृथक्त्व अंतर है^१ । शेष प्रकृतियोंका अंतर नहीं है । वेदक सम्यक्त्वियोंमें-आयुके बंधकोंका आभिनिबोधिक ज्ञानके समान है । शेष प्रकृतियोंमें अंतर नहीं है ।

§३८८. उपशमसम्यक्त्वियोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरु-लघु ४, प्रशस्तविहायोगति, व्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अंतरायोंके बंधकोंका अंतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात रातदिन है^२ । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अंतर है ।

[विशेष-इन प्रकृतियोंके अवंधक उपशांतकपायी होंगे, उनका जघन्य अंतर एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है ।]

विशेष यह है कि वज्रवृषभनाराचके अवंधकोंका अंतर सात दिन रात है । मनुष्यजाति ४ के बंधकोंका अंतर वज्रवृषभनाराचसंहननके समान है । दो वेदनीयके बंधकों अवंधकोंका अंतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात है । साता असाताके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात है । अबंधक नहीं है । चार नोकपायों अर्थात् दास्यादिचतुष्पके

(१) “चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमं उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।” -पट्खं० अं० सू० ३४३, ४४ ।

(२) “उवसमसम्मादिट्ठिनु अत्तंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमं उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि ।” -पट्खं० अं० सू० ३५६, ३५७ ।

उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि । दोण्णं युगलाणं वंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि । अवंधगा जहण्णेण एगस० । उक्क० वासपुधत्तं । एवं परिगच्छि [माणि] याणं । अपच्चक्खाणावरण० ४ वंधगा जहण्णेण एगस० । उक्क० सत्तरादिंदियाणि । अवंधगा जह० एगस० । उक्क० चोद्दसरादिंदियाणि । पच्चक्खाणावरण० ४ वंधगा जह० एगस० । उक्क० सत्तरादिदि० । अवंधगा जह० एगस० उक्क० पण्णारसरादिदि० । आहारदुगं तित्थयरं वंधगा जह० एगस० । उक्क० वासपुधत्तं । अवंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि ।

§३८९. सासणे-सच्चे विगप्पा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं सम्मामि० ।

१० §३९०. अणाहारै-ध्रुविगाणं वंधा-अवंधगा णत्थि अंतरं । एवं सेसाणं । णवरि देवगदि० ४ वंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं । तित्थयरं वंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कसेण वासपुधत्तं अंतरं । अवंधगा णत्थि ।

एवं अंतरं समत्तं ।



बंधकों अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अंतर है । दोनों युगलोंके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अन्तर है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है । परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात अंतर है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे १४ दिन रात है^१ । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधकोंका जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट से ७ दिनरात अंतर है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १५ दिनरात है ।^२ आहारकट्टिक तीर्थकरके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है । अवंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात है ।

§३८९. ^३सासादनमें सर्व विकल्प जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्त्योपमके असंख्यातवे भाग हैं । इसी प्रकार सम्यक्मिथ्यात्वमें जानना ।

§३९०. अनाहारकोंमें-ध्रुवप्रकृतियोंके बंधकों अवंधकोंका अंतर नहीं है । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए । विशेष, देवगति चारके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व है । तीर्थकर प्रकृतिके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।



(१) “संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण चोद्दसरादिंदियाणि ।” —पट्खं० अं० सू० ३६०, ३६१ ।

(२) “पमच्चअपमच्चसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण पण्णारसरादिंदियाणि ।” —३६४, ६५ ।

(३) “सासणसम्मादिट्ठी-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।” —३७५, ७६ ।

भावाणुगम-परूवणा

§३९१. भावाणुगमेण दुविहो णिदेसो । ओघेण आदेसेण य ।

§३९२. तत्थ ओघेण-पंचणा० छदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणपंचंतराइगाणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा । थीणगिद्धित्तिगं वारसकसा० वंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगात्ति को भावो ? ५ उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । मिच्छत्त-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगात्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा । साद-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो ।

[भावानुगम]

§३९१. भावानुगमका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

§३९२. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तरायोंके बंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक भाव वा क्षायिकभाव हैं ।

[विशेष—इन प्रकृतियोंका अवंध उपशांत कपाय अथवा क्षीणमोहमें होगा, अत एव उपशम श्रेणीकी अपेक्षा औपशमिक और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्षायिकभाव है ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक, १२ कपायके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंमें कौन भाव है ? औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

[विशेष—इनके अवंधकोंका प्रमत्तसंयत गुणस्थान होगा । वहाँकी अपेक्षा तीन भाव कहे गये हैं ।]

मिथ्यात्वके बंधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंमें कौनसा भाव है ? औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक या पारिणामिक ।

[विशेष—यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके जीवत्व, भव्यत्व अथवा अभव्यत्व रूप पारिणामिक भावोंका भी वर्णन किया जा सकता है, किंतु यहाँ दर्शन मोहके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमकी अपेक्षा न रखकर उत्पन्न होनेवाले पारिणामिक भावकी विशेष विवक्षावश मिथ्यादृष्टि जीवके उसका वर्णन नहीं किया गया है । मिथ्यात्वके अवंधकोंमें पारिणामिकभाव ज्ञानादन गुणस्थानकी अपेक्षा कहा गया है ।

शंका—सासादन गुणस्थानमें अनन्तानुबंधी चतुष्कके उदयकी अपेक्षा औदयिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यहाँ दर्शन मोहनीयकर्मके सिवाय अन्य कर्मोंके उदयकी विवक्षा नहीं की गयी है ।]

अवंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा खङ्गो वा [असाद-वंधगात्ति को भावो ?] ओदङ्ग० । [अवंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा] खङ्गो वा खयोवसमिगो वा । दोणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगात्ति को भावो ? खङ्गो भावो । इत्थि० णवुंस० वंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगात्ति को भावो । ५ ओदङ्गो वा उवसमिगो वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुंस० पारिणामिगो भावो । पुरिसवे० वंधगात्ति ओदङ्गो भावो । अवंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो वा खङ्गो वा । तिण्णं वेदाणं वंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो ।

सातावेदनीयके वंधकोंमें कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंमें कौन भाव है ? औदयिक या क्षायिक है ।

[विशेष—सातावेदनीयकी वंध व्युच्छित्तिवाले अयोगकेवली गुणस्थानमें क्षायिकभाव है, किन्तु असाताके वंधक अथवा साताके अवंधकके औदयिक भाव है; कारण साता और असाताके परस्पर प्रतिपत्ती होनेसे असाताके वंधकालमें साताका अवंध होगा । इस दृष्टिसे औदयिक भावका निरूपण किया है ।]

[असाता वेदनीयके वंधकोंके कौनसा भाव है ?] औदयिक है । [अवंधकोंके कौनसा भाव है ? औदयिक] या क्षायिक या क्षायोपशमिक है ।

[विशेष—असाताकी वंधव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है, अत एव अप्रमत्त गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है ।]

दोनोंके वंधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंमें कौनसा भाव है ? क्षायिकभाव है ।

[विशेष—यहाँ दोनोंके अवंधक अयोगकेवलीकी अपेक्षा क्षायिकभाव कहा है ।]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके वंधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक या क्षायोपशमिक है । इतना विशेष है कि नपुंसकवेदके अवंधकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

[विशेष—यहाँ स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके अवंधकोंमें औदयिक भावका निरूपण पुरुषवेदके वंधककी अपेक्षासे किया है । नपुंसकवेदके अवंधक सासादन गुणस्थानमें होते हैं । वहाँ दर्शन मोहनीयके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमका अभाव होनेसे पारिणामिक भाव कहा है ।]

पुरुषवेदके वंधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक, औपशमिक वा क्षायिक है ।

[विशेष—पुरुषवेदके अवंधक अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमें होंगे । वहाँ चारित्र्यमोहनीयके उपशम अथवा क्षयमें तत्पर जीवोंकी अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । पुरुषवेदके अवंधक किन्तु स्त्री-नपुंसकवेदके वंधककी अपेक्षा औदयिक भाव होगा ।]

तीनों वेदोंके वंधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौनसा भाव है ? क्षायिक या औपशमिक है ।

अवंधगात्ति को भावो ? खड्गो वा उवसमिगो वा । इत्थि णवुंसकभंगो चदु-आयु-
तिणिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० तिणि आणु०
आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि० ४ अप्पसत्थवि० (?) उच्चागोदं च । पुरिसभंगो
हस्सरदि-देवगादि-पंचिदि० वेउव्वि० आहार० समचदु० दोआंगो० देवाणु० परघा-
दुस्सा० पसत्थविहाय० तस० ४ थिरादि-छक्कं तित्थयरं [णीचागोदं च] । पत्तेगेण ५
साधारणेण चदुआयु-दो-अंगो० छस्संघ० २ विहाय० दोसराणं वंधगा त्ति को भावो ?
ओदइगो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खड्गो वा ।
णवरि चदुआयु० छस्संघ० अवंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा
खड्गो वा खयोवसमिगो वा । दो युगल-चदुगदि-पंचजादि-दोसररी० छसंठा० चदुआणु०
तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च वंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगात्ति को १०
भावो ? उवसमिगो वा खड्गो वा । एवं ओघभंगो मणुसगदि(?) तिगं पंचिदिय-तस० २

[विशेष-वेदत्रयके अवंधकके अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमें ज्ञायिक तथा औपशमिक भाव कहा है ।]

४ आयु, देवगतिको छोड़कर तीन गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान-
को छोड़कर शेष पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, देवानुपूर्विके बिना तीन आनुपूर्विके,
आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, थावरादि ४, अप्रशस्त विहायोगति(?) तथा उच्च गोत्रके वंधकोंमें
स्त्रीवेद और नपुंसक वेदके वंधकोंके समान भाव जानना चाहिए अर्थात् वंधकोंके औदयिक भाव
हैं तथा अवंधकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

[विशेष-यहाँ अप्रशस्त विहायोगतिका दो बार उल्लेख आया है । प्रतीत होता है, आदेयके
स्थानमें अप्रशस्तविहायोगतिका पुनः उल्लेख हो गया है ।]

हास्य, रति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, समचतुरस्र-
संस्थान, वैक्रियिक तथा आहारक-अंगोपांग, देवानुपूर्विके, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति,
त्रस ४, स्थिरादि ६, तीर्थकर प्रकृति, [नीच गोत्र] के वंधकोंमें पुरुषवेदके समान भंग है, अर्थात्
औदयिक भाव है, अवंधकोंमें औदयिक, ज्ञायिक वा ज्ञायोपशमिक है । प्रत्येक तथा सामान्यसे
४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरोंके वंधकोंमें कौन भाव है ? औदयिक
है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा ज्ञायिक भाव है । विशेष यह है कि
४ आयु, ६ संहननके अवंधकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा ज्ञायोपशमिक भाव है ।
हास्य रति युगल, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्विके, प्रस-
थावरादि ९ युगल और दो गोत्रोंके वंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके
कौन भाव है ? औपशमिक या ज्ञायिक भाव है ।

[विशेष-हास्य, गोत्रादिके अवंधक उपशान्त कषाय या क्षीणकषाय गुणस्थानमें होंगे, वहाँ
उक्त भाव कहे हैं ।]

मनुष्यत्रिक (मनुष्य, पर्याप्तमनुष्य तथा मनुष्यनी) : पंचेन्द्रिय-पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, प्रस,

पंचमण० पंचवचि० काजोगि-ओरालिय का० चक्खु० अचक्खु० मुक्कले० भवसिद्धि० सण्णि-अणाहारग त्ति । णवरि (अ) जोगादिसु (?) वेदणीय वंधगा णत्थि ।

§३९३. आदेसेण णेरइगेसु-धुविगाणं वंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो । अवंधगा णत्थि । धीणगिद्वित्तिगं अणंताणुबंधि० ४ वंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो । अवंधगात्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । सादा-सादवंधगा अवंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो । दोण्णं वंधगा त्ति०? ओदइगो भावो । अवंधगा णत्थि । एवं चदुणोक्कसा० थिरादि-तिण्णिण्युगल० । मिच्छन्तं वंधगा

त्रसपर्याप्तक, पंच मनोयोगी, पंच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यक, भव्यसिद्धिक, संज्ञी तथा अनाहारकोंमें ओवके समान भंग है । इतना विशेष है कि (अ) योगादिकोंमें वेदनीयके वंधक नहीं है (?) ।

[विशेष-वेदनीयके अवंधक, अयोगकेवली होते हैं । इस दृष्टिसे 'जोगादिसु'के स्थान पर 'अजोगी' पाठ होने पर अर्थकी संगति बैठती है ।]

§३९३. आदेशसे-नारकियोंमें ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंके कौन भाव है? औदयिक है । अवंधक नहीं है । स्थानगृद्धित्रिक, अन्तानुबंधी ६ के वंधकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है । साता असाताके वंधकों अवंधकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है ।

[विशेष-नरक गतिमें साताका वंधक असाताका अवंधक होगा, असाताका वंधक साताका अवंधक होगा इसलिये अन्यतरके वंधककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है ।]

दोनोंके वंधकोंके कौन भाव है? औदयिक है । अवंधक नहीं है । इसी प्रकार चार नो-कपाय, स्थिरादि तीन युगलमें जानना चाहिए । मिथ्यात्वके वंधकोंके कौन भाव हैं? औदयिक है ।

[विशेष-शंका-मिथ्यात्वके वंधकोंके औदयिक भाव न कहकर क्षायोपशमिक भाव कहना चाहिये था, कारण उनके सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उनके सदवस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उनके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदय रूप उपशमसे और मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यादृष्टिरूप भाव उत्पन्न होता है ।

समाधान-सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षय अथवा सदवस्थारूप उपशम अथवा अनुदयरूप उपशमसे मिथ्यादृष्टि भाव नहीं होता । कारण, ऐसा माननेमें दोष आता है । जो जिससे नियमतः उत्पन्न होता है, वह उसका कारण होता है । ऐसा न माननेपर अनवस्था दोष आयगा । कदाचित् यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके कालमें जो भाव विद्यमान हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं, तो फिर ज्ञान दर्शन असंयम आदि भी मिथ्यात्वके कारण हो जायेंगे, किन्तु ऐसा नहीं है; कारण इस प्रकारका व्यवहार नहीं पाया जाता । अत एव यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि भाव होता है कारण इसके बिना मिथ्यात्व भावकी उत्पत्ति नहीं होती । (ध० टी० भाव० पृ० २०७)]

त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा । इत्थि० णवुंस-बंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुंस० अवंधगात्ति पारिणामियो वि । पुरिस बंधा-अवंधगा त्ति ओदङ्गो भावो । तिण्णि वेदाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा ५ णत्थि । एवं इत्थि-णवुंसभंगो तिरिक्खायु-तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु०-उज्जोव-अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च । पुरिसभंगो मणुसायु-मणुसगदि-समचदु०-वज्जरिसभ० मणुसाणु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदे० तित्थय० उच्चागोदं च । पत्तेगेण साधारणेण सेसाणं सव्वाणं बंधगा ओदङ्गो भावो ।

मिथ्यात्वके अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं ।

[विशेषार्थ—शंका—मिथ्यात्वके अवंधक सासादन सम्यक्त्वीके अनन्तानुबंधी चतुष्कका उदय पाया जाता है, इसलिए सासादन गुणस्थानमें औदयिक भाव क्यों नहीं कहा ?]

समाधान—मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानोंमें चारित्र मोहनीयके उदयवश असंयम भाव होते हुए भी चारित्र मोहनीयकी विवक्षा नहीं की गयी है । इस कारण विवक्षित दर्शन मोहनीयके उदय, क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशमके अभाव होनेसे सासादन सम्यक्त्वीके पारिणामिक भाव कहा है । (ध० टी० भाव० पृ० २०७)]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक हैं । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक हैं ।

[विशेष—यहाँ उक्त वेदद्वयके अवंधक किंतु पुरुषवेदके बंधककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है ।]

यहाँ इतना विशेष है कि नपुंसकवेदके अवंधकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

पुरुषवेदके बंधकों अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं ।

[विशेष—नरक गतिमें आदिके चार ही गुणस्थान होते हैं और पुरुषवेदकी बंधव्युच्छित्ति नवमें गुणस्थानमें होती है, तब पुरुषवेदके अवंधकका भाव अन्य वेदोंके बंधका समझना चाहिए । अन्य वेदोंका बंध होते हुए पुरुषवेदका बंध न होना पुरुषवेदका अवंधकपना है ।]

तीन वेदोंके बंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक हैं । अवंधक नहीं हैं ।

तिर्यच आयु, तिर्यचगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रदान-विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति तथा नीच गोत्रमें स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेदके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् बंधकोंके औदयिक भाव हैं; अवंधकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक हैं । मनुष्यायु, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वक्र-वृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर तथा वृष्णेन्द्रमें पुरुषवेदके समान भंग है; अर्थात् बंधकों अवंधकोंके औदयिक भाव हैं । नैऋ प्रकृतियोंके बंधकोंमें प्रत्येक तथा साधारणसे औदयिक भाव है । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार पहली दृष्टीमें

अवंधगा णत्थि । एवं पढमाए । विदियाए याव सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि खड्गं णत्थि । सत्तमाए मिच्छत्त-तिरिक्खायु वंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामियो वा । णवरि मिच्छत्त-अवंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो णत्थि ।

- ५ §३९४. तिरिक्खेसु-दु(धु)विगाणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा णत्थि । थीणागिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणंताणुवं० ४ वंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खड्गो वा खयोवसमिगो वा । णवरि मिच्छत्त-अवंधगा पारिणामिगो भावो । वेदणी० णिरयभंगो । एवं चटुणोकसा० थिरादिति-णियुग० तिण्णिवेदं णिरयभंगो । अपच्चक्खाणा० ४ वंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो १० भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? खयोवसमिगो भावो । इत्थि-णवुंसभंगो तिण्णि-आयु०

जानना । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी पर्यन्त इसी प्रकार जानना । विशेष यह है कि द्वितीय आदि पृथ्वियोंमें क्षायिकभाव नहीं है । [कारण क्षायिकसम्यक्त्वो जीवका प्रथम पृथ्वीपर्यन्त उत्पाद होता है ।] सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्व तथा तिर्यचायुके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं । विशेष, मिथ्यात्वके अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव नहीं है, अर्थात् यहाँ औपशमिक क्षायोपशमिक वा पारिणामिक भाव हैं ।

[विशेष-सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा पारिणामिक भाव है, अविरत सम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । संयमका घात करनेवाले कर्मोदयकी अपेक्षा असंयमरूप औदयिक भाव भी है ।]

§३९४. तिर्यचोमें-ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं । अवंधक नहीं है ।

[विशेष-इनके अवंधक उपशांत कपायादि गुणस्थानवाले होंगे । तिर्यचोमें केवल आदिके पाँच गुणस्थान होते हैं; इस कारण तिर्यचोमें ध्रुव प्रकृतियोंके अवंधकोंका अभाव कहा है ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुवंधी चारके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक हैं । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक हैं । इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अवंधकोंके पारिणामिक भाव पाया जाता है । वेदनीयका नरक गतिके समान भंग है, अर्थात् साता-असाताके वंधक अवंधकोंमें औदयिक भाव हैं । दोनोंके वंधकोंमें औदयिक भाव है, अवंधक नहीं हैं ।

चार नो कपाय, स्थिरादि तीन युगल, तीन वेदके वंधकों अवंधकोंमें नरकगतिके समान भंग है; अर्थात् वंधकोंमें औदयिक भाव हैं तथा अवंधकोंमें औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण चारके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक हैं । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? क्षायोपशमिक भाव हैं ।

[विशेष-यहाँ देशसंयमी जीवकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । क्षायोपशमरूप

तिणिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० तिणि आणु०
आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि० ४ दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागोदं च ।
पुरिसवेदभंगो देवायु-देवगदि-पंचिदि० वेउन्विय० समचदु० वेउन्वि० अंगो० देवाणु०

संयमासंयम परिणाम चारित्र मोहनीयके उदय होने पर उत्पन्न होते हैं। यहाँ प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और नोकपायोंके उदय होते हुए भी पूर्णतया चारित्रका विनाश नहीं होता। इस कारण प्रत्याख्यानादिके उदयकी क्षय संज्ञा की गयी है। उन्हीं प्रकृतियोंकी उपशम संज्ञा भी है, कारण वे चारित्र अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करती। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न हुए भावको क्षायोपशमिक भाव कहा है^१।

कोई आचार्य कहते हैं—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे उन्हींके सद्वस्थारूप उपशमसे तथा चारों संज्वलन और नव नोकपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षय, उनके सद्वस्थारूप उपशम तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्याख्यानावरण चारके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देश संयम होता है।

इस सम्बन्धमें वीरसेनस्वामी आलोचना करते हुए बताते हैं कि—उदयके अभावकी उपशम संज्ञा करनेसे उदयसे विरहित सर्व प्रकृतियोंकी तथा उन्हींके स्थिति, अनुभागके स्पर्धकों की उपशम संज्ञा प्राप्त हो जाती है, जिसका वर्तमानमें क्षय नहीं है, किंतु उदय विद्यमान है उसका क्षय नामकरण अयुक्त है; इसलिए ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको प्राप्त होंगे। किंतु इस बातका प्रतिपादक कोई सूत्र नहीं है। फलको देकर तथा निर्जराको प्राप्त होकर दूर हुए कर्म-स्कंधोंकी 'क्षय' संज्ञा करके देशविरत गुणस्थानको क्षायोपशमिक कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टि आदि सभी भावोंके क्षायोपशमिकत्वका प्रसंग प्राप्त होगा। इस कारण पूर्वोक्त अर्थ ही निर्दोष जानना चाहिए। (ध० टी० भावानु. पृ० २०२-२०३)]

तीन आयु (देवायु को छोड़कर) तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्र-संस्थान बिना शेष पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, देवानुपूर्वी बिना तीन आनु-पूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादिक ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्र-में स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके समान भंग है। अर्थात् बंधकोंके औदयिक भाव हैं। अवबंधकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं।

[विशेष—नरक-तिर्यच-मनुष्यायु औदारिक शरीर आदिके अवबंधक तिर्यचोंमें देश संयमी होंगे। उनके उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा औप-शमिक क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे हैं। चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा भी क्षायोपशमिक भाव कहा गया है। यहाँ जो अवबंधकोंके औदयिक भाव कहा है उसका कारण यह प्रतीत होता है कि यद्यपि वहाँ गतित्रिक आदिका अवंध है, किंतु देवगति आदिका तो बंध है; अतएव उनकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा गया है। कर्मबंधनके मूलमें कारणभूत औदयिक परिणामोंको लक्ष्यमें रखकर बंधकी अवस्थामें औदयिक भाव का उल्लेख किया है।]

देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैत्रिचिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैत्रिचिक अंग-

परधादुस्ता० पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्वर-आदेज्ज-उच्चागोदं च । एवं पत्तेगेण साधारणेण वेदणीय-भंगो । णवरि चदुआयु-दोअंगोवंग० छस्संव० दोविहा० दोसर० वंधगा-अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । णवरि छस्संवडणाणं अवंधगात्ति ओदइगादिचत्तारिभावो ।

५ §३९५. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख० ३ । णवरि जोणिणीसु खइगं णत्थि । सच्च-अपज्जत्ताणं तसाणं सच्चे० (?) खयोवसम-पारिणामियं णत्थि । विगप्पा ओदइ० ।

पांग, देवानुपूर्वी, परधात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्च गोत्रके बंधकोंमें पुरुषवेदके समान भंग हैं; अर्थात् बंधकों अवंधकोंमें औदयिक भाव है ।

[विशेष—तिर्यच गतिमें देवायु, देवगति, आदिकी बंध-न्युच्छित्तिवाले गुणस्थानका अभाव है, कारण यहाँ देश सयंम गुण स्थान तक ही पाए जाते हैं; अतः अवंधकोंका यह भाव है कि इन प्रकृतियोंके स्थानमें नरकायु आदिका बंध होता है; अतः देवायु आदिकी अवंध स्थितिमें नरकायु आदिके बंधकी अपेक्षा अवंधकोंमें औदयिक भाव कहा है ।]

इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे वेदनीयके समान भंग है अर्थात् बंधकोंके औदयिक भाव हैं, अवंधक नहीं है । विशेष यह है कि चार आयु, दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बंधकों अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं । विशेष छह संहननके अवंधकोंमें औदयिक आदि चार भाव (पारिणामिकको छोड़कर) हैं ।

[विशेष—शंका—दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वर, चार आयुके बंधकोंके औदयिक भाव ठीक हैं, इनके अवंधकोंमें औदयिक कैसे कहा ? दूसरी बात यह है कि जब छह संहननके अवंधकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे गये, तब यहाँ भी विहायोगति आदिके अवंधकोंमें केवल औदयिक भाव क्यों कहा ?]

समाधान—तिर्यच गतिमें दो विहायोगति, दो स्वर तथा दो अंगोपांगके अवंधक एकेन्द्रियत्वके साथ हैं, कारण एकेन्द्रियमें विहायोगति, स्वर तथा अंगोपांगका उदय नहीं है; इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है । एकेन्द्रियके सिवाय देव और नारकी भी छह संहननरहित पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा सम्यक्त्वत्रयकी दृष्टिसे औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव भी अवंधकोंमें कहे हैं ।]

§३९५. पंचेंद्रिय तिर्यच, पंचेंद्रिय तिर्यचपर्याप्त तथा पंचेंद्रिय योनिमत् तिर्यचोंमें इसी प्रकार जानना । इतना विशेष है कि योनिमत् तिर्यचोंमें क्षायिक भाव नहीं है ।

[विशेष—तिर्यच-स्त्रीमें क्षायिक भावके अभावका कारण यह है कि दर्शन मोहनीयका क्षपण मनुष्य गतिमें ही होता है और वद्धायुष्क क्षायिकसम्यक्त्वा जीवकी स्त्रीवेदी रूपसे उत्पत्ति नहीं होती । अतः स्त्रीतिर्यचमें क्षायिक भाव नहीं पाया जाता । (ध० टी० भावा० पृ० २१३)]

सर्व अपर्याप्त त्रसोंके सर्वभाव हैं; क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक नहीं है । औदयिक भाव विकल्प रूपसे है । (?)

§३९६. एवं अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति ।

§३९७. सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचकाय० आहार० आहारमि० मदि० सुद० विभंग० अब्भवासि० सासण० सम्मामि० मिच्छादि० असण्णि त्ति । णवरि मदि० सुद० विभंगे मिच्छ० अवंधगात्ति को भावो ? पारिणामिगो भावो ।

§३९८. देवाणं णिस्योवं याव णवगेवज्जा त्ति । णवरि देवोघादो याव सोधम्मी-
साणा त्ति । एइंदिय-आदाव-थावर-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगात्ति को
भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा ।
तप्पडिपक्खणं बंधा-अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । दोणं बंधगा त्ति
को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधा णत्थि । भवणवासि-वाणवेंतर-जोदिसिगेसु
खइगं णत्थि ।

१०

§३९९. ओरालिमि० पंचणा० छदंस० वारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु०
उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगात्ति को

§३९६. अनुदिश स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§३९७. सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पंचकाय, आहारक^१, आहारकमिश्र, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, अभव्यसिद्धिक, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्वी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगावधिमें मिथ्यात्वके अवंधकों-के कौन भाव हैं ? पारिणामिक भाव हैं ।

[विशेष—यहाँ सासादन गुणस्थानकी दृष्टिसे दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा गया है ।]

§३९८. देवोंमें—प्रैवेयकपर्यंत नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, देवोंके ओघसे सौधर्म ईशान स्वर्ग पर्यंत जानना चाहिए । एकेन्द्रिय आतप स्थावरके बंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक वा पारिणामिक भाव हैं । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बंधकों अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है । दोनोंके बंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है, अवंधक नहीं है । भयनवासी, वाण व्यंतर तथा ज्योतिषियोंमें क्षायिक भाव नहीं हैं ।

§३९९. औदारिक मिश्र काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कणाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण, तथा ५ अंतरायोंके बंधकोंके कौन भाव

(१) आहारक, आहारक मिश्रमें चार संवत्सन और सात नोकपायोंके उत्पन्न प्राप्त देवताकी रक्षार्थकी उपशम संज्ञा है; कारण पूर्णतया चारित्रिके घातनेकी शक्तिके वहाँ उत्पन्न प्रमादाला है । उनकी रक्षार्थ चारित्र मोहनीयकी प्रकृतियोंके सर्वघाती स्वर्षकोंकी धम संज्ञा है ; क्योंकि उनका उत्पन्न भाव नष्ट ही होता है । इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न संयम क्षायोपशमिक है । पूर्वोक्त स्वर्ण प्रकृतियोंके उत्पन्न ही क्षायोपशम संज्ञा है; कारण चारित्रिके घातनेकी शक्तिने अन्तर्द्वयी की क्षयोपशम संज्ञा है । इस प्रकार क्षयोपशमसे उत्पन्न प्रमादाला संयम क्षायोपशमिक है । (ध० टी० भावाणु० पृ० २०३)

भावो ? खड्गो भावो । शीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणंताणु० ४ वंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? खड्गो वा खयोवसमिगो वा । णवरि मिच्छत्त-पारिणामियो वि अत्थि । सादवंधावंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । असाद-बंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो वा खड्गो वा । दोणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा णत्थि । इत्थि-

हैं ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक भाव हैं ।

[विशेष—यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अवंधक सयोग केवलीकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है ।]

स्त्यानगृद्धिप्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुर्वधी चारके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक वा क्षायोपशमिक है । मिथ्यात्वके अवंधकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

[विशेष—शंका—यहाँ औपशमिक भाव क्यों नहीं कहा गया ?]

समाधान—चारों गतियोंके उपशमसम्यक्त्वी जीवोंका मरण न होने से इस योगमें उपशम-सम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शंका—उपशम श्रेणीपर चढ़ते-उतरते हुए संयतजीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण पाया जाता है ।

समाधान—यह सत्य है, किन्तु उपशम श्रेणीमें मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वीके औदारिक मिश्रकाययोग नहीं होता, कारण इनकी देवोंके सिवाय अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है । (ध० टी० भाषाणु० पृ० २१९)]

साताके वंधकों अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । असाताके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक वा क्षायिक भाव हैं । साता-असाताके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है, अवंधक नहीं है ।

[विशेष—शंका—जब साताके वंधकों-अवंधकोंमें औदयिक भाव कहा, तब असाताके वंधकों अवंधकोंमें औदयिक भाव ही कहना था । यहां असाताके वंधकोंमें औदयिकके साथ क्षायिक भाव क्यों कहा है ?]

समाधान—यहां यह ध्यान देना चाहिए कि औदारिक मिश्रयोगमें मिथ्यात्व, सासादन, अचिरति तथा सयोगकेवली गुणस्थान होते हैं । साताके अवंधक अयोगकेवली ही होंगे, जिनने साताकी वंध व्युच्छित्ति कर ली है । औदारिक मिश्रकाययोगमें अयोगकेवली गुणस्थान न होनेसे साता असाताके युगलके अवंधकोंका यहां अभाव कहा है ।

साता और असाताके वंधकोंके औदयिक भाव हैं । साताका वंध होनेपर असाताका वंध नहीं होता और असाताका वंध होनेपर साताका वंध नहीं होता, कारण ये परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं । एकके वंध होनेपर अन्यका अवंध होगा । यह अवंध वंधव्युच्छित्तिका द्योतक नहीं है । अवंधके अनन्तर तो पुनः वंध हो भी जाता है किन्तु जिस गुणस्थानमें वंध व्युच्छित्ति

णवुंसवंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमियो वा । णवरि णवुंसगेसु पारिणामियो वि अत्थि । पुरिसवेदगेसु वंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा । तिण्णं वेदाणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? खइगो भावो । इत्थि-णवुंस० भंगो दोआयु-दोगदि-चटुजादि-ओरालि० ५ पंचसंठा० ओरालिय-अंगो० छस्संव० दोआणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि० ४ दूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च । पुरिसवेदभंगो चटुणोक्क०

हुई है उसमें आनेके पूर्व उस प्रकृतिका वंध नहीं होगा। साताकी वंधव्युच्छित्ति जब सयोगकेवली गुणस्थानमें होती है तब साताके अवंधका अर्थ है असाताका वंध। असाताकी वंधव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है उसके पूर्व असाताके अवंधका तात्पर्य साताके वंधका होगा। प्रमत्त संयतके आगे असाताके अवंधका भाव उसकी वंधव्युच्छित्तिका होगा। इस कारण औदारिक मिश्रयोगकी अपेक्षा साताके अवंधक तथा वंधकके औदयिक भाव कहा है। कारण यहाँ साताके अवंधकके असाताका वंध होगा। असाता वेदनीयकी बात दूसरी है; वहाँ असाताके वंधकके औदयिक भाव होगा और असाताके अवंधक अर्थात् साताके वंधक सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव होगा। असाताके अवंधकके अप्रमत्त आदि गुणस्थान इस योगमें नहीं होंगे, इसलिए यहाँ औदयिक भावके साथ क्षायिक भाव भी असाताके अवंधकके साथ जोड़ा गया है। साताका अवंधक इस योगमें चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त ही पाया जायगा, उसके असाताका वंध होगा। इससे वंधक अवंधकके औदयिक भाव कहा है।]

स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं। अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक हैं। इतना विशेष है कि नपुंसक वेदके अवंधकोंके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

[विशेष—इस योगमें उपशम सम्यक्त्वका अभाव होनेसे औपशमिक भाव नहीं कहा।]

पुरुष वेदके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं। अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक वा क्षायिक भाव हैं।

[विशेष—पुरुष वेदके अवंधक किंतु स्त्री-नपुंसक वेदके वंधकों की अपेक्षा औदयिक भाव कहा है। पुरुष वेदकी वंधव्युच्छित्तियुक्त गुणस्थान इस योगमें सयोग केप्रतीका होगा उस अपेक्षासे क्षायिक भाव कहा है।]

तीनों वेदोंके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं। अवंधकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक भाव हैं।

[विशेष—औदारिकमिश्र काययोगमें तीनों वेदोंके अवंधक सयोगी जिन होंगे, इस कारण उपशम भाव न कहकर, क्षायिक भाव ही कहा है।

दो आयु, दो गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पांच संस्थान, औदारिक अंगेपंग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, व्यावरादि चार, दूभग, दूभग, अनादेय तथा नीचगोत्रके वंधकोंका स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके समान जानना चाहिए। एतद्वि

देवगादि-पंचिदि० वेउच्चि० समचट्ट० वेउच्चि० अंगो० देवाणु० परघादुस्ता०
 पसत्थवि० तस० ४ थिरादिदोणियुगलं सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च ।
 एवं पत्तेणेण साधारणेण वि । दो आयुवंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो ।
 अवंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामियो
 ५ वा । एवं दो अंगो० छस्संध० दो विहा० दो सर० किंचि विसेसो जाणिदूण णेदच्चं ।
 सेसाणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? खइगो
 भावो । तित्थयरं वंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ?
 ओदइगो वा खइगो वा ।

§४००. वेउच्चियका०-देवोधं । वेउच्चि० मि० तं चेव । णवरि आयु-णत्थि ।

१० §४०१. कम्मइगका० धुविगाणं वंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अव-
 धगात्ति को भावो ? खइगो भावो । थीणगिद्वितियं भिच्छत्त-अणंताणु० ४ वंधगा

चार नोकपाय, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्त संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्सर, आदेय तथा उच्चगोत्रमें पुरुषवेदके समान जानना चाहिए । इसी प्रकार प्रत्येक तथा सामान्यसे जानना चाहिए । दो आयुके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं ।

[विशेष-इस योगमें उपशम सम्यक्त्व न होनेसे तथा उपशम चारित्रिका सद्भाव न होनेके कारण औपशमिक भाव नहीं कहा है ।]

इस प्रकार दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके विषयमें किंचित् विशेषताको जानकर भंग निकल लेना चाहिए । शेष प्रकृतियोंके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक भाव है । तीर्थंकर प्रकृतिके वंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक वा क्षायिक भाव है ।

[विशेष-तीर्थंकर प्रकृतिका वंध न करनेवाले मिथ्यात्वीके दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा जा सकता है अथवा असंयत सम्यक्त्वीका अविरतत्व त्वयं औदयिक है । तीर्थंकर प्रकृतिकी वंध-न्युच्छित्तियुक्त इस योगमें सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है ।]

§४००. वैक्रियिक काययोगियोंमें देवोंके ओघवत् जानना चाहिए ।

वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें देवोंके ओघवत् हैं । इतना विशेष है कि यहाँ आयुका वंध नहीं पाया जाता है ।

[विशेष-इस योगमें मिथ्यात्वीके औदयिक, सासादन सम्यक्त्वीके पारिणामिक तथा असंयत सम्यक्त्वीके औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव हैं]

§४०१. कार्माण काययोगियोंमें ध्रुव प्रकृतियोंके वंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अव-
 न्धकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है । स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुर्वधी चारके

त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा । मिच्छ० [अ] वंध० पारिणामियो भावो । साद-बंधाबंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । असादबंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो खङ्गो वा । दोण्णं वंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधा (धगा) णत्थि । इत्थि-णवुंसबंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । ५ अवंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा । णवुंस० पारिणामियो भावो । पुरिस० वंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा खङ्गो वा । तिण्णं वंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? खङ्गो भावो । एवं इत्थिभंगो तिरिक्खग०

बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं ।

[विशेष—यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अवंधक अविरत सम्यक्त्वीकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे हैं । सयोगकेवलीकी भी अपेक्षा क्षायिक भाव है ।]

मिथ्यात्वके बंधकों(?)के कौन भाव है ? पारिणामिक है ।

[विशेष—यहाँ बंधकोंके स्थान पर अवंधक पाठ ठीक बैठता है, कारण पारिणामिक भाव सासादन गुणस्थान में पाया जाता है जहाँ मिथ्यात्वका अवंध है ।]

साताके बंधकों अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । असाताके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक भाव है । साता-असाता दोनोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है, अवन्धक नहीं है ।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं । नपुंसकवेदके अवंधकोंमें पारिणामिक भाव पाया जाता है ।

[विशेष—इसके अवंधक सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा है ।]

पुरुष वेदके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक है ।

[विशेष—इस योगमें पुरुषवेदके बंधका अभाव सयोगकेवलीके होगा, वहाँ मोह-क्षयजनित क्षायिक भाव है । अन्य वेदद्वयके बंधककी अपेक्षा औदयिक भाव भी कहा है ।]

तीनों वेदोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक है ?

[विशेष—यहाँ सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है ।]

तिर्यक्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यक्चतुर्ध्वी, अष्टोद, अष्टावक्रादि, दुर्गति,

चदुसंठा० चदुसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूमग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं
च । णवुंसकभंगो चदुजादि-हुंडसंठा० असंपत्तसे० आदाव-थावरादि० ४ । पुरिसभंगो
चदुणोक० दोगदि० पंचिदि० दोसरीर-समचदु० दोअंगो० वज्जरिसभ० दो-आणु०
परघादुस्सा० पसत्थवि० तस० ४ थिरादि दोणिण युगलं सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चागोदं
५ च । एवं पत्तेगेण साधारणेण वि ओरालियमिस्स-भंगो ।

§४०२. इत्थिवेदेसु-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराङ्गाणं बंधगा त्ति को
भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा णत्थि । थीणगिद्धि-त्तिय-मिच्छत्त-वारसक०
बंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो
वा खड्गो वा खयोवसमिगो वा । मिच्छत्त० पारिणामि० । णिदापचला०
१० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमि० बंधगा त्ति को भावो ?
ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खड्गो वा ।
सादबंधाबंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । असाद-बंधगा त्ति को भावो ?
ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो वा खड्गो वा खयोवसमिगो
वा । दोण्णं बंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा णत्थि । तिण्णं वेदाणं
१५ पत्तेगेण ओवं । णवरि पुरिस० अवंधगा त्ति ओदङ्गो भावो । साधारणेण बंधा०

दुस्वर, अनादेय, तथा नीच गोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग जानना चाहिए । चार जाति, हुण्डक संस्थान, असम्प्राप्तास्पष्टाटिका संहनन, आतप तथा स्थावरादि चार में नपुंसक, वेदके समान भंग जानना चाहिए । चार नोकषाय, दो गति, पंचेन्द्रिय जाति, दो शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो अंगो-पांग, वज्रवृषभसंहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्च गोत्रके बंधकोंमें पुरुषवेदके समान भंग जानना चाहिए । प्रत्येक और सामान्यसे औदारिक मिश्रकाययोगके समान भंग जानना चाहिए ।

§४०२. स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधक नहीं है । स्त्यानगृद्धिन्निक, मिथ्यात्व, वारह कपायके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । विशेष, मिथ्यात्वके अवंधकोंके पारिणामिक भाव है । निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक तथा क्षायिक हैं ।

साताके बंधकों अवंधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है ।

[विशेष—यहाँ साताके अवंधकोंके असाताके बंधककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है ।]

आसाताके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक हैं । दोनोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधक नहीं हैं । तीनों वेदोंका पृथक् पृथक् रूपसे ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि पुरुष

ओदङ्गो भावो । अवंधगा णत्थि । हस्सादि० ४ पत्तेगेण ओघभंगो । साधारणेण वंधगा ओदङ्ग० । अवंध० उवसमि० खड्गो० । एवं सव्वाणं ओघं । णवरि जस० अज्जस० दोगोदं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो ।

§४०३. एवं पुरिस० णवुंस० क्रोधादि० ४ । णवरि क्रोधे पुरिस० हस्सभंगो । माणे तिण्णं संजलणा० । मायाए दोण्णं संजलणा० । लोभे लोभ-संजल० धुविगाणं ५ भंगो । सेस-संजलणं णिदाभंगो ।

वेदके अवंधकोंमें औदयिक भाव है । सामान्यसे इनके वंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधकोंका अभाव है । हास्यादि चारका प्रत्येक से ओघवत् भंग जानना चाहिए । सामान्यसे हास्यादिके वंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । इस प्रकार शेष प्रकृतियोंमें ओघके समान भंग जानना चाहिए ।

[विशेष—हास्यादिकके अवंधक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होंगे । उनके उपशम तथा क्षायिक चारित्रकी दृष्टिसे औपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे हैं ।

शंका—अनिवृत्तिकरणमें कर्मोंका उपशम न होनेसे औपशमिक भाव कैसे कहा जायगा ?

समाधान—उपशम शक्तिसे समन्वित अनिवृत्तिकरणके औपशमिक भाव माननेमें आपत्ति नहीं है । इस प्रकार उपशम होने पर उत्पन्न होनेवाला तथा उपशम होने योग्य कर्मोंके उपशम-नार्थ उत्पन्न हुआ भाव औपशमिक कहलाता है । अथवा, भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें औपशमिक भाव बन जाता है । जैसे, सब प्रकारके असंयममें प्रवृत्त चक्रवर्ती तीर्थकरके 'तीर्थकर' यह संज्ञाकरण बन जाता है ।

शंका—अनिवृत्तिकरणमें मोहनीयका क्षय न होनेसे क्षायिक भावका कथन उचित नहीं है ।

समाधान—मोहनीयका एक देश क्षय करनेवाले वादरसाम्पराय सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोंके भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है । कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाए जानेसे अपूर्यकरण गुणस्थानमें भी क्षायिकभाव माना है । अथवा, उपचारसे अपूर्यकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए, इसमें अतिप्रसंगकी आशा नहीं करनी चाहिए । कारण, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगवश अतिप्रसंग दोषका परिहार होता है । (ध० टी० भाषाणु० पृ० २०५-६)]

शेष प्रकृतियोंमें इतना विशेष है कि यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तथा दो गोत्रोंका प्रत्येक सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भंग है ।

§४०३. पुरुषवेद, नपुंसकवेद तथा क्रोध आदि चार कषायोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि क्रोधमें, पुरुष वेदके वंधकोंका हास्यके समान भंग है । मानमें, तीन संज्वलन, मायामें, दो संज्वलन तथा लोभमें लोभ संज्वलनके वंधकोंका ध्रुव प्रकृतिके समान भंग है; अर्थात् वंधकोंके औदयिक और अवंधकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव हैं । संज्वलन कषायमें वंध होनेवाली शेष प्रकृतियोंके वंधकोंका निद्राके समान भंग है । अर्थात् वंधकोंके औदयिक, अवंधकोंके औपशमिक तथा क्षायोपशमिक हैं ।

§४०४. अवगदवेदेसु-पंचणा० चतुदंस० चतुसंज० जस० उच्चागोद-पंचंतराङ्गाणं वंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खङ्गो वा । सादवंध० को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? खङ्गो भावो ।

५ §४०५. अकसाङ्गेषु-साद-बंधगा० ओदङ्गो भावो । अवंधगा० खङ्गो भावो ।

§४०६. एवं केवलणा० यथाखाद० केवल-दंसणा० ।

§४०७. आभि० सुद० ओधि० मणपज्जव० संजद० ओधि० सम्मादि० खङ्ग० ओधं । णवरि मिच्छ-संयुत्ताओ वज्ज० ।

§४०८. सामाङ्ग० छेदो०-पंचणा० चतुदंस० लोभसंजल० उच्चागोद-पंचंतराङ्गाणं १० बंधगा० ओदङ्गो भावो । अवंधा णत्थि । सेसं मणपज्जव-भंगो । परिहारे-देवायु-बंध०

§४०४. अपगत वेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा ५ अंतरायोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । इनके अवंधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक तथा क्षायिक है ।

साता वेदनीयके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ? अवंधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है ।

[विशेष—अपगतवेदमें साताके अवंधक अयोगकेवली होंगे, उनके क्षायिक भाव है ।]

§४०५. अकपायियोंमें—साताके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है ।

[विशेष—शंका—अकपाय मार्गणा नहीं बन सकती, कारण जीवका जैसे ज्ञानदर्शन गुण है, उसी प्रकार कपाय नामका भी गुण है । गुणके विनाश माननेपर गुणीका भी विनाश होगा । इस प्रकार अकपायमार्गणा मानने पर जीवका अभाव हो जायगा ।

समाधान—ज्ञानदर्शनके समान कपाय नहीं है, अत एव कपाय जीवका लक्षण नहीं हो सकता । कर्मजनित कपाय भावको, जीवका लक्षण या गुण मानना अयुक्त है । कपायोंका कर्मसे उत्पन्न होना असिद्ध नहीं है, कारण कपायकी वृद्धि होने पर जीवके ज्ञानकी हानि अन्य प्रकारसे नहीं बन सकती, इसलिए कपायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है । गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि अन्यत्र वैसा नहीं देखा जाता । (ध० टी० भाषा० ५, पृ० २२३)]

§४०६. केवल ज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवल दर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§४०७. आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि ज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, संयम, अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टिके ओधवत् भाव जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ मिथ्यात्वसंयुक्त प्रकृतियोंको नहीं लेना चाहिए ।

§४०८. सामायिक छेदोपस्थापना संयममें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ संज्वलन, उच्च गोत्र, तथा ५ अंतरायोंके बंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधकों-अवंधकोंमें मनःपर्ययज्ञानके समान भंग जानना चाहिए ।

ओदङ्गो भावो । अवंध० ओदङ्ग० खयोवसमिगो वा । एवं असादादिछ० । सेसं ओदङ्ग० भावो ।

§४०९. सुहुमसं०-संजदासंजद-सञ्चाणं वंध० ओदङ्ग० । असंजद० तिणिण ले०-तिरिक्खोघं । णवरि अपच्चक्खणा० ४ अवंधगा णत्थि । तित्थय० वंधगा अत्थि ।

§४१०. तेउए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ ५ वादर-पज्जत्त-पचोय-णिमि० पंचंत० वंधगा० ओदङ्गो भावो । अवंधगा णत्थि । श्रीणगिद्धि० ३ अणंताणुवाधि० ४ वंधगा० ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति उवसमि० खइ० खयोवस० । मिच्छत्त० ओघं । साद० वंधा-अवंधगा त्ति ओदङ्गो भावो । असाद० वंध० ओदङ्गो भावो । अवंध० ओदङ्ग० खयोवसमिगो वा । दोण्णं वंधा०

परिहारविशुद्धि संयममें—देवायुके वंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधकोंके औदयिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

[विशेष—परिहारविशुद्धि संयम प्रयत्न अप्रमत्त गुणस्थानमें पाया जाता है । वहाँ देवायुके अवंधक अर्थात् वंध न करनेवाले जीवोंके चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । अन्य प्रकृतियोंके वंधकोंकी अपेक्षा औदयिक भाव है ।]

इसी प्रकार असाता, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, शोक तथा अरतिमें जानना चाहिए । शेषमें औदयिक भाव है ।

§४०९. सूक्ष्मसांपराय तथा संयमासंयममें—सर्व प्रकृतियोंके वंधकोंके औदयिक भाव है । असंयतों तथा कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें—तिर्यचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक देशसंयमी होते हैं उनका यहाँ अभाव है, कारण अशुभ-त्रिक लेश्या असंयतोंमें ही होती है ।]

इतना विशेष है कि जहां तिर्यचोंमें तीर्थकर प्रकृतिका वंध नहीं होता, वहाँ यहाँ तीर्थकर प्रकृतिका वंध होता है ।

§४१०. तेजोलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भयद्विक, तैजस-कर्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अंतरायोंके वंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधक नहीं है ।

[विशेष—तेजोलेश्या अप्रमत्त संयतपर्यन्त पायी जाती है, अतः यहाँ ज्ञानावरणादिके अवंधक नहीं पाये जाते हैं ।]

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ के वंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक है । निष्पत्त्यमें ओघवत् समान है । साता वेदनीयके वंधकों अवंधकोंमें औदयिक भाव है ? आसताके वन्धकोंमें औदयिक भाव है । अवन्धकोंमें कौन भाव है । औदयिक अथवा क्षायोपशमिक भाव है ।

[विशेष—असाताकी वंधव्युच्छित्तिवृत्त अप्रमत्त गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है । असाताके अवंधक किन्तु साताके वंधककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है ।]

ओदङ्गो भावो । अवंधा णत्थि । एवं चटुण्णोक० थिरादि-तिण्णियुगल-इत्थि-णवुंस०
 बंधगा ओदङ्गो भावो । अवंधगा ओदङ्ग० उवसमि० खङ्गो० खयोवस० । णवुंस०
 पारिणामि० । पुरिसवे० बंधा अवं० ओदङ्गो भावो । तिण्णि बंधा० ओदङ्गो भावो ।
 अवंधगा णत्थि । तिरिक्खायुबंधा० ओदङ्गो भावो । अवंधगा ओदङ्ग० उवस० खङ्ग०
 ५ खयोवस० । मणुस-देवायु बंधा० ओदङ्ग० । अवंधगा ओदङ्ग० खयोव० । तिण्णि-
 आयु० बंधा० ओदङ्ग० । अवंध० ओदङ्ग० खयोव० । इत्थि-णवुंसग-भंगो तिरिक्खादि-
 एङ्गदियजादि-पंचसंठा० पंचसंध० तिरिक्खाणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थवि० थावरदूभग-
 दुस्सर-अणा० णीचागोदं च । मणुसगदि-ओरालि० ओरालि० अंगो० वज्जरिस०
 मणुसाणु० बंध० ओदङ्गो भावो । अवं० ओदङ्ग० खयोवसमिगो वा । देवगदि० ४
 १० पंचिदि० आहारदुग-समचटु० पसत्थवि० तस० सुभग-सुस्सर-आदे० तित्थ्य० बंध० अवं०
 ओदङ्गो भावो । तिण्णं गदीणं बंध० ओदङ्ग० । अवंधगा णत्थि । एदेण वीजपदेण णेदव्वं ।

साता-असाता दोनोंके बंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधक नहीं हैं । इस प्रकार
 ४ नोकपाय, स्थिरादि ३ युगल, स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधकोंके
 औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । विशेष यह है कि नपुंसकवेदके
 अवंधकोंमें पारिणामिक भाव भी है ।

पुरुषवेदके बंधकों अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । तीनों वेदोंके
 बंधकोंमें औदयिक भाव है । अवंधक नहीं है । तिर्यचायुके बंधकोंमें औदयिक भाव है ।
 अवंधकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

[विशेष—अविरतसम्यक्त्वीके अन्य आयुबंधकी अपेक्षा औदयिक भाव है तथा तिर्यचायुके
 अवंधक सम्यक्त्वत्रयवालोंकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।
 देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्तकी अपेक्षा क्षायोपशमिक है ।]

मनुष्यायु-देवायुके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके औदयिक, क्षायो-
 पशमिक भाव है । तिर्यच-मनुष्य-देवायुके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।

[विशेष—तेजोलेश्यामें नरकायुका बंध नहीं होनेसे उसका ग्रहण नहीं किया है ।]

आयुत्रयके अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक तथा क्षायोपशमिक है । तिर्यचगति, एकेन्द्रिय-
 जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यचानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, स्थावर, दुर्भग,
 दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रमें स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात्
 बंधकोंके औदयिक है । अवंधकोंके औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक है ।

मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभसंहनन तथा मनुष्यानु-
 पूर्वीके बंधकोंके औदयिक भाव है । अवंधकोंके औदयिक वा क्षायोपशमिक भाव है ।

देवगति ४, पंचेन्द्रिय जाति, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति,
 त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा तीर्थकरके बंधकों अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ।
 तीन गतियोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधक नहीं है । इसी वीजपदके
 द्वारा अन्य प्रकृतियोंका वर्णन जानना चाहिए ।

§४११. एवं पम्माए, एइंदिय० आदाय-थावरं वज्ज ।

§४१२. वेदगे-ध्रुविगाणं वंधगा० ओदइगो भावो । अवंधा णत्थि । सेसाणं तेउ-भंगो । उवसम०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ पंचिदि० अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थयर० उच्चागोदं पंचंत० वंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंध० उवसमियो भावो । ५ साद-बंधा-अवंध० ओदइगो भावो । असाद-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइ० । अवंधगा त्ति० ओदइग० उवस० खयोवस० । दोण्णं वंधगा० ओदइ० । अवंधा णत्थि । अट्ठकसा० वंध० ओदइगो भावो । अवंध० उवस० खयोवसमिगो वा । हस्सरदि०

§४११. पद्मलेश्यामें—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय, आतप तथा स्थावर प्रकृतियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

§४१२. वेदकसम्यक्त्वमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधक नहीं हैं ।

[विशेष—वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है और ध्रुव प्रकृतियोंके अवंधक उपशान्तकपायी होते हैं । इस कारण यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अवंधक नहीं कहा है ।]

शेष प्रकृतियोंमें तेजोलेश्याके समान भंग है ।

उपशम सम्यक्त्वमें—५ ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक रहित ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, पंचेन्द्रिय जाति, अगुरुलघु, प्रशस्त विद्यायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र तथा पांच अतरायोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके औपशमिक भाव है । साता वेदनीयके बंधकोंके अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । असाता वेदनीयके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है ।

[विशेष—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्वकी नहीं होगा, अतः क्षायोपशमिक भाव चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी अपेक्षा जानना चाहिए ।]

साता असाताके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधक नहीं हैं । आठ प्रकृतियोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक या क्षायोपशमिक है ।

[विशेष—अप्रत्याख्यानवरण ४, प्रत्याख्यानवरण ४ के अवंधकोंके अप्रमत्तसंज्ञा गुणस्थान होगा । यहाँ उपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक भाव है तथा चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी अपेक्षा क्षायोपशमिक चारित्ररूप क्षायोपशमिक भाव है । उपशमसम्यक्त्वकी दर्शन मोहनीय न होनेसे क्षायिक भाव नहीं कहा है ।]

बंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंध० ओदङ्गो वा उवसमिगो वा । अरदि-
सोर्गं बंधगा त्ति ओदङ्ग० । अवंधगा० ओदङ्ग० उवस० खयोव० । दोण्णं बंधगा त्ति
ओदङ्ग० । अवंध० उवसमिगो भावो । एवं दोगदि-दोआणु० दोसरीर-दोअंगोवंग-
आहारदुग-थिरादि-तिण्णियुगलं ।

- ५ §४१३. अणाहारे-कम्मङ्गभंगो । णवरि साद० ओघं । साधारणेण वि ओघं ।
मिच्छत्त-संजुत्ताओ सोलस-पगदीओ ओघाओ । सच्चत्थ याव अणाहारग त्ति बंधगा
त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो
वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिओ वा भावो ।

एव भावं समत्तं ।



हास्य रतिके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके कौन भाव है ?
औदयिक वा औपशमिक है । अरति-शोकके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंध-
कोंके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायोपशमिक तथा औपशमिक भाव है ।

[विशेष—अरति-शोकके अवंधक किन्तु हास्य-रतिके बंधककी दृष्टिसे औदयिक भाव हैं ।
अरति, शोककी बंध-व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतोंके होती है । अत एव अरति, शोकके अवंधक अप्रमत्त
संयतोंकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । सम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक कहा है, कारण,
यहाँ उपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा वर्णन है ।]

हास्य-रति, अरति-शोक इन दोनों युगलोंके बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।
अवंधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ।

[विशेष—इन चारोंके अवंधक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती होंगे, वहाँ चारित्रमोहनीयकी
अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है ।]

इस प्रकार मनुष्य-देव गति, दो आनुपूर्वी, औदारिक-वैक्रियिक शरीर, २ अंगोपांग
आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलोंके बंधकोंमें कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवंधकोंके
कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ।

§४१३. अनाहारकमें—कामाण-काययोगके समान भंग है । विशेष यह है कि यहाँ साता वेद-
नीयका ओघवत् भंग जानना चाहिए । इसी प्रकार सामान्यसे भी ओघवत् जानना चाहिए ।
मिथ्यात्व संयुक्त^१ १६ प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है । सर्वार्थसिद्धिसे लेकर अनाहारकपर्यन्त
बंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवंधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक,
क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

(१) “मिच्छत्तुं संदा संपत्तेयक्खयावरादावं । सुहुमतिव वियल्लिंदी णिरयदुणिरयायुगं मिच्छे ॥”
—गो० क० गा० ९५ ।

[अप्पावहुगपरूवणा]

§४१४. अप्पावहुगं दुविधं, जीव-अप्पावहुगं चैव, अद्वा-अप्पावहुगं चैव । तत्थ जीव-अप्पावहुगं दुविधं, सत्थाणं परत्थाणं च । सत्थाण-जीवअप्पावहुगे दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ।

§४१५. तत्थ ओघेण सच्चत्थोवा पंचणाणावरणं अवंधगा जीवा, [बंधगा] अणंतगुणा ।

§४१६. सच्चत्थोवा चदुदंसणावरणाणं अवंधगा जीवा । णिदापचलाणं अवंधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि० ३ अवंधगा जीवा विसेसाहिया । बंधगा जीवा अणंतगुणा । णिदापचलाबंधगा जीवा विसेसाहिया । चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसाहिया ।

§४१७. सच्चत्थोवा सादासादाणं दोण्णं पगदीणं अवंधगा जीवा । सादबंधगा जीवा अणंतगुणा । असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया ।

[अल्पवहुत्व]

§४१४. अल्पवहुत्वके दो भेद हैं । एक जीव अल्पवहुत्व, दूसरा काल अल्पवहुत्व । जीव अल्पवहुत्व भी स्वस्थान जीव अल्पवहुत्व, और परस्थान जीव अल्पवहुत्वके भेदसे दो प्रकार हैं ।

[विशेष—अल्पता, बहुलताका वर्णन करनेवाला अनुगम अल्पवहुत्वानुगम हैं । ओघवर्णनमें अभेद दृष्टिको ग्रहण करनेवाले द्रव्याधिक नयका अवलंबन लिया जाता है । आदेश वर्णनमें भेदयुक्त दृष्टि को ग्रहण करनेवाले पर्यायाधिक नयका आश्रय लिया गया है ।^(१)]

स्वस्थान जीव अल्पवहुत्वमें ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश किया जाता है ।

§४१५. ओघसे—५ ज्ञानावरणके अवन्धक जीव सबसे कम हैं । [वन्धक] जीव इनमें अनन्तगुणें हैं ।

§४१६. चार दर्शनावरणके अवन्धक जीव सबसे कम हैं । निद्रा, प्रचलाके अवन्धक जीव इनमें विशेष अधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इनके वन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । निद्रा, प्रचलाके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं । चार दर्शनावरणके वन्धक जीव इनमें विशेषाधिक हैं ।

§४१७. साता असाता दोनों प्रवृत्तियोंके अवन्धक जीव सबसे कम अर्थात् न्योक्त हैं । साताके वन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । असाताके वन्धक जीव संख्यातगुणित हैं । दोनोंके वन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं ।

(१) "अप्यं च बहुलं च क्षणवहुत्वमपि । तेषामनुगमो अल्पवहुत्वमनुगमो । तेषां अल्पवहुत्वमनुगमो निरेसो दुविहो होति । ओघो आदेसेति । संखेज्जगुणावरो वन्धकविशेषो होति एवम् । अणंतगुणावरो वन्धकविशेषो दुप्पिणत्थावरणविशेषो वन्धकविशेषो आदेसो एवम् ।"—ध० टी० पृ० २५३ ।

§४१८. सव्वत्थोवा लोभसंजलण-अबंधगा जीवा । माय-संजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । माण-संजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । क्रोधसंजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणा० ४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । अपच्चक्खाणावर० ४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । अणंताणुबंधि० ४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । मिच्छत- ५ अबंधगा जीवा विसेसाहिया, बंधगा जीवा अणंतगुणा । अणंताणुबंधि० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । क्रोधसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । माणसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । मायसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । लोभसंजलण-बंधगा जीवा विसे० ।

§४१९. सव्वत्थोवा णवणोकसायाणं अबंधगा जीवा । पुरिस्वेदस्स बंधगा जीवा १० अणंतगुणा । इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णवुंसगवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । भयदुगुं० बंधगा जीवा विसे० ।

§४२०. सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा । चदुण्णं १५ आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

§४१८. सबसे स्तोक लोभ संज्वलनके अवन्धक जीव हैं । माया संज्वलनके अवन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं । मान संज्वलनके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके वन्धक जीव इनसे अनन्तगुणें हैं । अनन्तानुबन्धी ४के वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान संज्वलनके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया संज्वलनके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ संज्वलनके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४१९. नव नोकपायोंके अवन्धक जीव सर्वसे स्तोक अर्थात् अल्प हैं । पुरुषवेदके वन्धक जीव इनसे अनन्तगुणें हैं । स्त्रीवेदके वन्धक जीव इनसे संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके वन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । अरति, शोकके वन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसक वेदके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४२०. सर्वस्तोक मनुष्यायुके वन्धक जीव हैं । नरकायुके वन्धक इनसे असंख्यातगुणें हैं । देवायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके वन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । चारों आयुओंके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अवन्धक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४२१. सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चटुण्णं गदीण अवंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-बंधगा जीवा अणंतगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चटुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा पंचण्णं जादीणं अवंधगा जीवा । पंचिदिय० बंधगा जीवा अणंतगुणा । चटुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वीइंदिय ५ बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पंचण्हं जादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स बंधगा जीवा । वेउव्वियसरीरस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । पंचण्णं सरीराणं अवंधगा जीवा अणंतगुणा । ओरालिय-सरीरस्स बंधगा जीवा अणंतगुणा । तेजाकम्मइग-सरीरस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । यथा जादिणामाणं तथा संठाणणामाणं । सव्वत्थोवा आहार० अंगोवंग० बंधगा १० जीवा । वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालिय-अंगो० बंधगा जीवा अणंतगुणा । तिण्णि अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा वज्जरिस्सभसंघडणं बंधगा जीवा । वज्जणारायाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अट्ठणारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । खीलिय० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असंपत्तसेवट्ठ० बंधगा जीवा १५ संखेज्जगुणा । छस्संघडण-बंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

§४२१. देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक अर्थात् सबसे कम हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतियोंके अवन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । तिर्यचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पाँच जातियोंके अवन्धक जीव सबसे अल्प हैं । पञ्चेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । चतुरिन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । त्रीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । द्वीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक शरीरके बन्धक सबसे न्योक्त हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक असंख्यातगुणें हैं । पाँचों शरीरोंके अवन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । तेजस-कामीय शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । जाति नामकर्मके अल्पबहुत्वके समान संस्थान नामकर्मका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । आहारक अंगोपांगके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिक अंगोपांगके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । दोनों अंगोपांगोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वसुधकभस्महवनके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वज्रनाराचसंहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरस्यभस्महवनके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अर्धनाराचसंहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । कीलित भस्महवनके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । असंभ्राप्तासृपाटिका संहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । छट्ठ भस्महवनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पंचवहुत्वा रूप निर्माणके

§४१८. सव्वत्थोवा लोभसंजलण-अबंधगा जीवा । माय-संजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । माण-संजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । क्रोधसंजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणा० ४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । अपच्चक्खाणावर० ४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । अणंताणुबंधि० ४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । मिच्छत्त-
५ अबंधगा जीवा विसेसाहिया, बंधगा जीवा अणंतगुणा । अणंताणुबंधि० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । क्रोधसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । माणसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । मायसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । लोभसंजलण-बंधगा जीवा विसे० ।

§४१९. सव्वत्थोवा णवणोकसायाणं अबंधगा जीवा । पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा
१० अणंतगुणा । इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णयुंसगवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । भयदुगुं० बंधगा जीवा विसे० ।

§४२०. सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा । च्चदुण्णं
१५ आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

§४१८. सबसे स्तोक लोभ संज्वलनके अवन्धक जीव हैं । माया संज्वलनके अवन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं । मान संज्वलनके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणें हैं । अनन्तानुबन्धी ४के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४१९. नव नोकपायोंके अवन्धक जीव सर्वसे स्तोक अर्थात् अल्प हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणें हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव इनसे संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४२०. सर्वस्तोक मनुष्यायुके बन्धक जीव हैं । नरकायुके बन्धक इनसे असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अवन्धक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४२१. सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा । गिरियगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चट्ठणं गदीण अवंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-बंधगा जीवा अणंतगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चट्ठणं गदीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा पंचणं जादीणं अवंधगा जीवा । पंचिदिय-बंधगा जीवा अणंतगुणा । चट्ठुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । बीइंदिय ५ बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पंचणं जादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स बंधगा जीवा । वेउव्वियसरीरस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । पंचणं सरीराणं अवंधगा जीवा अणंतगुणा । ओरालिय-सरीरस्स बंधगा जीवा अणंतगुणा । तेजाकम्मइग-सरीरस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । यथा जादिणामाणं तथा संठाणणामाणं । सव्वत्थोवा आहार० अंगोवंग० बंधगा १० जीवा । वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालिय-अंगो० बंधगा जीवा अणंतगुणा । तिण्णि अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा वज्जरिस्समसंधणं बंधगा जीवा । वज्जणारायाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अद्धणारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । खीलिय० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असंपत्तसेवड्ड० बंधगा जीवा १५ संखेज्जगुणा । छस्संधण-बंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

§४२१. देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक अर्थात् सबसे कम हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतियोंके अवन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । तिर्यचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पाँच जातियोंके अवन्धक जीव सबसे अल्प हैं । पञ्चेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । चतुरिन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । त्रीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । द्वीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक शरीरके बन्धक सबसे स्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक असंख्यातगुणें हैं । पाँचों शरीरोंके अवन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । तैजस-कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । जाति नामकर्मके अल्पबहुत्वके समान संस्थान नामकर्मका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । आहारक अंगोपांगके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिक अंगोपांगके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । तीनों अंगोपांगोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वज्रवृषभसंहननके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वज्रनाराचसंहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नाराचसंहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अर्धनाराचसंहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । कीलित संहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । असंप्राप्तासृपाटिका संहननके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दृढ संहननके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वर्णचतुष्क तथा निर्माणके

- सन्वत्थोवा वण्ण० ४ णिमिण-अवंधगा जीवा, वंधगा जीवा अणंतगुणा । यथागदि तथाआणुपुच्चि । सन्वत्थोवा अगुरु० उपघा० अवंधगा जीवा । परघादुस्सा० वंधगा जीवा अणंतगुणा । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अगुरु० उपघा० वंधगा जीवा विसेसाहिया । सन्वत्थोवा आदावुज्जो० वंधगा जीवा, अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।
- ५ सन्वत्थोवा पसत्थविहाय० सुस्सर० वंधगा जीवा । अप्पसत्थविहाय० दुस्सर० वंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं वंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सन्वत्थोवा तसथावर-अवंधगा जीवा । तस० वंधगा जीवा अणंतगुणा । थावरवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं वंधगा जीवा विसेसाहिया । एवं सेसाणं जुगलाणं गोदंतियाणं । सन्वत्थोवा तित्थयर-बंधगा जीवा । अवंधगा जीवा
- १० अणंतगुणा । सन्वत्थोवा पंचंतराह्माणं अवंधगा जीवा । वंधगा जीवा अणंतगुणा ।

§४२२. आदेसेण—गदियाणुवादेण णिरयगदि-णेरइएसु-सन्वत्थोवा थीणगिद्धि० ३ अवंधगा जीवा, वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । छदंस० वंधगा जीवा विसेसाहिया ।

§४२३. सन्वत्थोवा सादवंधगा जीवा, असादवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं वंधगा जीवा विसेसाहिया ।

अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । इनके वंधक जीव अनन्तगुणें हैं । गतिके समान आनुपूर्वीका अल्पवहुत्व जानना चाहिए । अगुरुलघु, उपघातके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । परघात, उच्छ्वासके वंधक जीव अनन्तगुणें हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अगुरुलघु, उपघातके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । आतप, उद्योतके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । प्रशस्त विहायोगति, सुस्वरके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । त्रस-स्थावरके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । त्रसके वंधक जीव अनन्तगुणें हैं । स्थावरके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक जीव विशेष अधिक हैं ।

इस प्रकार गोत्र कर्म है अन्तमें जिनके-ऐसे शेष युगलोंका क्रम जानना चाहिए ।

[विशेष—नादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय-सदृश नामकर्मकी शेष युगल प्रकृतियोंका अल्पवहुत्व त्रस-स्थावरके समान जानना चाहिए । गोत्र कर्मका भी ऐसा ही है ।]

तीर्थकर प्रकृतिके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं । ५ अंतरायोंके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वंधक जीव अनंतगुणें हैं ।

§४२२. आदेशसे—गतिके अनुवादसे नरक गतिके नारकियोंमें स्त्यानगृद्धिन्निके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । छह दर्शनावरणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष—५ ज्ञानावरण, ५ अंतरायके सर्व नारकी वंधक हैं । अवंधक नहीं है । इस कारण इनका अल्पवहुत्व यहाँ नहीं कहा है । उनका एक साथ निरंतर वंध होता है ।]

§४२३. साताके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । असाताके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४२४. सव्वत्थोवा अणंताणुबंधं० ४ अवंधगा जीवा । मिच्छत्त-अवंधगा जीवा विसेसाहिया । बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । अणंताणुबंधि० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । वारसकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा । इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदिबंधगा जीवा विसेसाहिया । णवुंसकवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अरदिसोगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया ५ भयदु० बंधगा जीवा विसे० ।

§४२५. सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

§४२६. सव्वत्थोवा मणुसगादिबंधगा जीवा । तिरिक्खगादिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा णत्थि । एवं दो आणु० दो १० विहाय० थिरादिछयुगलं दोगोदं च । समचदु० बंधगा जीवा सव्वत्थोवा । सेस-संठाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एवं संघड० । सव्वत्थोवा उज्जोवं बंधगा जीवा । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा तित्थयरं बंधगा जीवा । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

§४२७. एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि मज्झिमासु सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा ५ जीवा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं आयुगस्स बंधगा जीवा

§४२४. अनन्तानुबंधी ४ के अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । १२ कषायोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । स्त्रीवेदके बंधक संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अरति, शोकके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४२५. मनुष्यायुके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनों आयुओंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४२६. मनुष्यगतिके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक नहीं हैं । इसी प्रकार २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंमें जानना चाहिए ।

समचतुरस्रसंस्थानके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । शेष संस्थानोंके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । इस प्रकार संहननमें भी जानना चाहिए ।

उद्योतके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तीर्थंकर प्रकृतिके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव^१ संख्यातगुणें हैं ।

§४२७. इसी प्रकार सात पृथ्वियोंमें जानना चाहिए । विशेष यह है, कि मध्यम पृथ्वियोंमें मनुष्यायुके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनों

(१) तीर्थंकर प्रकृतिका घम्मा, वंशा तथा मेधा पृथ्वीपर्यन्त ही बंध होता है । चतुर्थादिकमें नहीं होता है ।

विसेसाहिया । अवंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा सत्तमाए पुट्ठीए मणुस-
गदि-मणुसाणुपुब्बि-उच्चागोदाणं वंधगा जीवा । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुब्बि-णीचा-
गोदाणं वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं वंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा
जीवा णत्थि । सव्वत्थोवा तिरिक्खायुबंधगा जीवा । अवंधगा जीवा असंखेज्जगुणा ।

- ५ §४२८. तिरिक्खेसु-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि० ३ अवंधगा जीवा । वंधगा
जीवा अणंतगुणा । छदंसणा० वंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा सादबंधगा
जीवा । असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं वंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा
णत्थि । सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा० ४ अवंधगा जीवा । अणंताणुवं० ४ अवंधगा
असंखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अवंधगा जीवा विसे० । वंधगा जीवा अणंतगुणा । अणंताणु-
१० वं० ४ वंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरण० ४ वंधगा जीवा विसेसा० । अट्ठ-
कसायाणं वंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स वंधगा जीवा । इत्थिवेदस्स
बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अरदिसोगाणं वंधगा
जीवा संखेज्जगुणा । णवुंसकवेदस्स वंधगा जीवा विसेसाहिया । भयदुगुच्छाणं वंधगा जीवा
विसेसाहिया । आयु० अंगोवं० संघ० आदा० उज्जो० विहाय० संठाणं च मूलोवं ।
१५ सव्वत्थोवा पंचिंदिय-बंधगा जीवा । सेस-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा देव-

आयुओंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

सातवीं पृथ्वीमें—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं ।
तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी तथा नीच गोत्रके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनोंके (मनुष्यगति
तिर्यचगति आदि) बंधक जीव विशेष अधिक हैं । अवंधक नहीं हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव
सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

§४२८. तिर्यचगतिमें—स्थानगृद्धित्रिकके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । वंधक जीव अनन्त
गुणें हैं । ६ दर्शनावरणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

सातावेदनीयके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । असाताके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनों
के बंधक जीव विशेष अधिक हैं । अवंधक नहीं हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव सर्व
स्तोक हैं । अनन्तानुबंधी ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव विशेष
अधिक हैं । इसके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेष अधिक
हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । ८ कपायके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य,
रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके
बंधक जीव विशेष अधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आयु, अंगोपांग, संहनन, आतप, उद्योत, विहायोगति, संस्थानके बंधकोंमें मूलके ओघवत्
जानना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय जातिके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । शेष जातियोंके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

गदिवंधगा जीवा । गिरयगदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । मणुसगदिवंधगा जीवा अणंतगुणा । तिरिक्खगदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं वंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा वेउव्विय-बंधगा जीवा । ओरालियबंधगा जीवा अणंतगुणा । तेजाक्म्मइगबंधगा जीवा विसेसा० । संठाणं गिरयभंगो । सव्वत्थोवा परघादुस्सा० वंधगा जीवा । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अगु० उप० वंधगा जीवा विसेसा० । ५
सेसाणं युगलाणं सादासादभंगो । एवं पंचिंदियतिरिक्खाणं । णवरि यं हि अणंतगुणं तं हि असंखेज्जगुणं कादव्वं ।

§४२९. पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु-दंसणावरण-मोहणीय-गोदे एसेव भंगो । सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । गिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं १० आयुगाणं वंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । गिरयगदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चदुरिंदिय-बंधगा जीवा । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । १५
एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पंचिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा

देवगतिके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । नरक गतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वन्धक जीव अनन्तगुणें हैं । तिर्यचगतिके वन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतिके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । वैक्रियिक शरीरके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । औदारिक शरीरके वंधक जीव अनन्तगुणें हैं । तैजस, कार्माणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

संस्थानोंके वंधकोंमें नरकगतिके समान भंग हैं । अर्थात् समचतुरस्त संस्थानके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । शेषके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । परघात, उच्छ्वासके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अगुरुलघु, उपघातके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष युगलोंके वंधकोंमें साता असाताका भंग जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' है वहाँ 'असंख्यातगुणा' लगाना चाहिये ।

§४२९. पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें-दर्शनावरण, मोहनीय और गोत्रके वंधकोंमें यही भंग जानना चाहिये ।

मनुष्यायुके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । नरकायुके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों आयुके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

देवगतिके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । मनुष्यगतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरक गतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । चतुरिन्द्रिय जातिके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । त्रिन्द्रिय जातिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दो इन्द्रिय जातिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रियके वन्धक जीव

ओरालिय-सरीरबंधगा जीवा । वेडव्विय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तेजाकम्मइग०
बंधगा जीवा विसेसा० । संठाणं संघडणं पंचिंदिय-तिरिक्खमंगो । सव्वत्थोवा ओरालिय-
अंगोवंग-बंधगा जीवा । दोण्णं अंगो० अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेडव्विय-
अंगो० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा
५ परघादुस्सा० अवंधगा जीवा । बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अगु० उप० बंधगा जीवा
विसेसा० । सव्वत्थोवा पसत्थविहायगादि-बंधगा जीवा । सुस्सर-बंधगा जीवा०, दोण्णं
अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अप्पसत्थविहायगादि-बंधगा, दुस्सरबंधगा जीवा
संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा थावरादि० ४ बंधगा जीवा । तसादि ४ बंधगा जीवा
संखेज्जगुणा ।

१० §४३०. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेषु-सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगा जीवा ।
इत्थिवेदबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अगदिसोग-
बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा
विसेसा० । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज-
गुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा
१५ मणुसगादिबंधगा जीवा । तिरिक्खगादिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । दोण्णं बंधगा जीवा

संख्यातगुणें हैं । पंचेन्द्रियके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक
जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणके
बंधक जीव विशेषाधिक हैं । संस्थान और संहननके बंधककोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यचका भंग जानना
चाहिए । औदारिक अंगोपांगके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । दोनों अंगोपांगके अवंधक जीव
संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनों अंगोपांगके बंधक
जीव विशेषाधिक हैं । परघात, उल्लासके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । बन्धक जीव संख्यातगुणें
हैं । अगुरुलु, उपघातके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रशस्तविहायोगतिके बंधक जीव सर्व स्तोक
हैं । सुस्सरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अप्रशस्त
विहायोगतिके बंधक और दुस्सरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । थावरादि ४ के बंधक जीव सर्व
स्तोक हैं । तसादि ४ के बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४३०. पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें—पुरुषवेदके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । स्त्रीवेदके
बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । श्ररति, शोकके
बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके
बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।
दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक संख्यातगुणें हैं ।

मनुष्यगतिके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । तिर्यचगतिके बंधक संख्यातगुणें हैं । दोनोंके

विसेसा० । अवंधगा णत्थि । सव्व[त्थोवा] पंचिंदिय-बंधगा जीवा० । चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । दीइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । एइंदियबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा ओरालिय-अंगो० आदा-उज्जो० बंध० जीवा । अवंधगा जीवा संखेज्ज० । संठाण-संघडण० पर० उस्सा० दो विहा० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदं च पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो । एवं सव्व-
अपज्जत्तगाणं तसाणं सव्वएइंदिय-विगल्लिंदिय-सव्वपंचकायाणं च । णवरि वणप्फदि-
काय-णिगोदेसु सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंत-
गुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । अवंधगा जीवा संखेज्ज० ।

§४३१. मणुसेसु-सव्वत्थोवा पंचणा० अवंधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्ज-
गुणा । एवं अंतराइगाणं चेव । सव्वत्थोवा चदुदंस० अवंधगा जीवा । णिदापचला-
अवंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि० ३ अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । बंधगा
जीवा असंखेज्जगुणा । णिदापचला-बंधगा जीवा विसेसा० । चदुदंस० बंधगा जीवा
विसेसा० । सव्वत्थोवा सादासाद-अवंधगा जीवा । साद-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा ।
असाद-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा लोभ-

बंधक विशेषाधिक हैं, अवंधक नहीं हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । चौइंद्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बंधक संख्यातगुणें हैं । दोइन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक अंगोपांग, आतप, उद्योतके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । संस्थान, संहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल तथा दो गोत्रोंके बंधकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यचके समान भंग जानना चाहिए ।

इसी प्रकार सर्व लब्ध्यपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सर्व पंचकाय-
वालोंमें है । विशेष यह है, कि वनस्पति काय-निगोदियोंमें मनुष्यायुके बंधक जीव सर्व स्तोक
हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । दोनोंके
अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४३१. मनुष्यगतिमें—५ ज्ञानावरणके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । बंधक जीव असंख्यात-
गुणें हैं । इसी प्रकार अन्तरायोंमें भी जानना । अर्थात् अवंधक जीव सर्व स्तोक और बंधक
जीव असंख्यातगुणें हैं ।

चार दर्शनावरणके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । निद्रा-प्रचलाके अवंधक जीव विशेषाधिक
हैं । स्त्यानगृद्धित्रिके अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । निद्रा-
प्रचलाके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । चार दर्शनावरणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

साता, असाता वेदनीयके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । साताके बंधक जीव असंख्यात
गुणें हैं । असाताके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

संजल० अवंधगा जीवा । मायासंज० अवंध० जीवा विसेसा० । माण संज० अवंध० जीवा विसेसा० । क्रोधसंज० अवंध० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरण० ४ अवंध० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणाव० ४ अवंध० जीवा संखेज्ज० । अणंताणुबंधि० ४ अवंध० जीवा संखेज्जगु० । मिच्छ० अवंध० जीवा विसेसा० । वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा ।
 ५ अणंताणुबंधि० ४ वंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणावर० ४ वंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावर० ४ वंधगा जीवा विसेसा० । क्रोधसंज० वंधगा जीवा विसेसा० । माणसंज० वंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० अवंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० वंधगा जीवा विसेसा० । सच्चत्थोवा णवण्णं णोकसायाणं अवंधगा जीवा । पुरिस० वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सेसं
 १० तिरिक्खोवंधं । सच्चत्थोवा णिरयायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । चट्ठण्णं आयुगाणं वंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सच्चत्थोवा चट्ठण्णं गदीणं अवंधगा जीवा । देवगदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिरयगदिवंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिवंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिवंधगा जीवा

लोभ-संज्वलनके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । माया-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अनन्तानुबंधी ४ के अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अनन्तानुबंधी ४ के वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के वंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के वंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

नव नोकपायके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । पुरुषवेदके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । शेष प्रकृतियोंके तिर्यचोंके ओषवत् जानना चाहिए ।

[विशेष-खीवेदके वंधक संख्यातगुणें हैं । हास्य-रतिके वंधक संख्यातगुणें हैं । अरति-शोकके वंधक संख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके वंधक विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके वंधक विशेषाधिक हैं ।]

नरकायुके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवायुके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यायुके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । चारों आयुओंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

चारों गतिके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरकगतिके वन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यक्च

संखेज्ज० । सव्वत्थोवा पंचणं जादीणं अवंध० जीवा । पंचिदि० बंधगा जीवा
 असंखेज्जगुणा । सेसं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा आहारसरीर-बंधगा
 जीवा । पंचणं सरीराणं अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वियसरीरबंधगा जीवा
 संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखे० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० ।
 सव्वत्थोवा छणं संठाणाणं अवंधगा जीवा । समचट्ठ० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ५
 सेसं ओघं । सव्वत्थोवा आहार० अंगो० बंधगा जीवा । वेउव्वियअंगो० बंधगा
 जीवा संखेज्जगु० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिण्णि अंगोवंगाणं
 बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगु० । संघड० आदाउज्जो० दो विहा०
 दोसर० ओघं । सव्वत्थोवा वण्ण० ४ णिमिण-अवंधगा जीवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० ।
 सव्वत्थोवा अगु० उप० अवंधगा जीवा । परवादुस्सा० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । १०
 अवंधगा जीवा संखेज्जगु० । अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं युगलाणं
 ओघ-भंगो । णवरि यं हि अणंतगुणं तं हि असंखेज्जगुणं कादव्वं । सव्वत्थोवा
 तित्थयरबंधगा जीवा । अवंधगा-जीवा असंखेज्जगुणा ।

§४३२. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु एसेव भंगो । णवरि यं हि असंखेज्जगुणं दव्वं,
 तं हि संखेज्जगुणं कादव्वं । यासु सरिसताओ इमाओ पगदीओ गदिसु च जादिसु च १५

गतिके वन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । पांचों जातिके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । पंचेन्द्रिय जाति-
 के वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । शेष जातियोंके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । आहारक शरीरके
 वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके
 वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणके
 वंधक जीव विशेषाधिक हैं । ६ संस्थानोंके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । समचतुरस्रसंस्थानके
 वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

शेष संस्थानोंमें ओघवत् जानना चाहिए । अर्थात् शेषके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
 आहारक अंगोपांगके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके वंधक जीव संख्यात-
 गुणें हैं । औदारिक अंगोपांगके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तीनों अंगोपांगके वंधक
 जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायो-
 गति, २ स्वरोमें ओघवत् जानना चाहिए । वर्ण ४ और निर्माणके अवंधक जीव सर्व स्तोक
 हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अगुरुलघु, उपघातके अवन्धक जीव सर्व स्तोक
 हैं । परघात, उच्छ्वासके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
 अगुरुलघु, उपाघातके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष युगलोंमें ओघके समान भंग जानना
 चाहिए । इतना विशेष है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' कहा है वहाँ 'असंख्यातगुणा' कर लेना चाहिए ।

तीर्थकर प्रकृतिके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

§४३२. मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनियोंमें—इसी प्रकार भंग जानना चाहिए । यह विशेष है कि जहाँ
 असंख्यातगुणित द्रव्य कहा है, वहाँ संख्यातगुणित कर लेना चाहिए ।

गिरयगति-पंचिंदिय-पच्छा कादव्वा । आहारसरीरबंधगा थोवा । पंचणं सरीराणं
अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । ओरालि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेडुअ्वि० बंधगा
जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । तसादि-चदुयुगलणं च ।
सव्वत्थोवा अबंधगा जीवा अप्पसत्थाणं । बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तसादि० ४
५ बंधगा जीवा संखेज्ज० । विहाय० सरणामतिरिक्खणीभंगो ।

§४३३. देवेसु-गिरयभंगो । एवं याव सदरसहस्सारत्ति । किंचि विसेसो देवो-
घादो याव ईसाण त्ति, तं पुण इमं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा । इत्थिवे०
बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा
संखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० ।
१० सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स बंधगा जीवा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्वत्थोवा

जो गति और जाति नामकी समान प्रकृतियाँ हैं उनमें नरक गति और पंचेन्द्रिय जातिको
पीछे कर लेना चाहिए ।

[विशेष-चारों गतिके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं;
मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं; तिर्यच गतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं, नरकगतिके
बंधक जीव संख्यात गुणें हैं ।

पंच जातियोंके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । पंचेन्द्रियको छोड़कर शेषके बंधक जीव
संख्यातगुणें हैं । पंचेन्द्रियके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।]

आहारक शरीरके बंधक स्तोक हैं । ५ शरीरके अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदा-
रिक शरीरके बंधक जीव संख्यात गुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
तैजस कार्माण शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

यही क्रम त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकके युगलोंमें भी लगा लेना चाहिए ।

स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन अग्रशस्त प्रकृतियोंके अवंधक जीव सबसे स्तोक
हैं । बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । त्रसादिकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । विहायोगति, स्वर
नामक प्रकृतियोंमें तिर्यञ्चिनीके समान भंग जानना चाहिए ।

§४३३. देवोंमें नारकियोंके समान भंग जानना चाहिए । यह वात शतार, सहस्सार स्वर्ग पर्यन्त
जानना चाहिए । किन्तु देवोघकी अपेक्षा ईशान स्वर्ग पर्यन्त किंचित् विशेषता है । वह यह है ।

[विशेष-सौधर्मद्विक पर्यन्त एकेन्द्रिय, स्थावर, आतपका बंध होता है । सहस्सार पर्यंत
तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु तथा उद्योतका बंध होता है ।]

पुरुषवेदके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य-
रतिके बंधक जीव संख्यात गुणें हैं । अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसक वेदके
बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बंधक
जीव सर्व स्तोक हैं । एकेन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक अंगोपांगके

ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । संघड० आदा-उज्जो० दोवि-
हाय० दोसर० ओघभंगो । एवं विसेसो णादव्वो आणद याव णवगेवज्जा त्ति । सव्वत्थोवा
थीणगिद्धि० ३ बंधगा जीवा । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाणं बंधगा जीवा
विसेसा० । सव्वत्थोवा मिच्छत्त-बंधगा जीवा । अणंताणुवं० ४ बंधगा जीवा
विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । मिच्छत्तस्स अवंधगा जीवा विसेसा० । सेस-
५ बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा इत्थि-बंधगा जीवा । णवुंसबंधगा जीवा संखेज्ज-
गुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अरदिसो० बंध० जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे०
बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंध० जीवा विसेसा० । मणुसायुबंध० जीवा
थोवा । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । णगगोद० बंध० जीवा थोवा । सादिय० बंध०
जीवा संखेज्जगु० । खुज्ज० बंध० जीवा संखेज्ज० । वामण० बंध० जीवा संखेज्जगु० । १०
हुंडसं० बंध० जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंध० जीवा संखेज्ज० । संघडणं संठाण

बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । संहनन, आतप, उद्योत, २ विहा-
योगति, २ स्वरका ओघवत् जानना चाहिए ।

आनतसे लेकर नव प्रैवेयक पर्यन्त विशेषता निकाल लेनी चाहिए ।

[विशेष-आनतादि 'स्वर्गों'में तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु तथा उद्योतका बंध
नहीं होता है । सानत्कुमारादिमें एकेन्द्रिय, २ स्थावर तथा आतपका बंध नहीं होता है ।]

स्त्यानगृद्धित्रिकके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । शेष
प्रकृतियोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मिथ्यात्वके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक
हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके
बंधक विशेषाधिक हैं । ऋग्वेदके बंधक सबसे स्तोक हैं । नपुंसक वेदके बंधक जीव संख्यातगुणें
हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अरति शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
पुरुषवेदके बंधक विशेष अधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

[विशेष-आनतादि स्वर्गोंमें एक मनुष्यायुका ही बंध होता है ।]

न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । स्वाति संस्थानके बंधक जीव
संख्यातगुणें हैं । कुञ्जकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वामनके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
हुंडकसंस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । समचतुरल संस्थानके बंधक जीव संख्यात
गुणें हैं ।

(१) "कप्पित्थीदु ण तित्थं सदरचहल्लारगोचि तिरियदुगं ।

तिरियाज उज्जोवो अत्थि तदो पत्थि सदरचज ॥" -गो० क० गा० ११२ ।

(२) "गिरियेव होदि देवे आईत्तागोचि तच्च वान छिदी ।

सोलस चेव अवंधा भवणाति पत्थि तित्थदर ॥" -गो० क० गा० ११३ ।

भंगो । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं वंधगा जीवा थोवा । तप्पडिक्खणं वंधगा जीवा संखेज्ज० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । तित्थयरं वंधगा जीवा थोवा । अवंधगा जीवा संखेज्ज० । अणुदिस याव सच्चट्ठ त्ति सच्चत्थोवा हस्सरदि वंध० जीवा । अरदिसोग-बंध० जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० भयदु० वंध० जीवा विसेसा० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । आयु० तित्थय० आणदभंगो ।
 ५ णवरि सच्चट्ठे आयु० वंधगा जीवा थोवा । अवंध० जीवा संखेज्ज० ।

§४३४. पंचिदियेसु-पंचणा० सच्चत्थोवा अवंध० जीवा । वंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुदंस० अवंध० जीवा थोवा । णिहापचला-अवंध० जीवा विसेसा० । थीण-गिद्धि० ३ अवंध० जीवा असंखेज्ज० । वंध० जीवा असंखेज्ज० । णिदा-पचलाणं १० वंध० जीवा विसेसा० । चदुणं दंसणावरणाणं वंध० जीवा विसेसा० । सच्चत्थोवा लोभ-संजल० अवंधगा जीवा । माया-संज० अवंध० जीवा विसेसा० । माणसंज० अवंध० जीवा विसेसा० । क्रोधसंज० अवंध० जीवा विसेसा० । पच्चक्खणावरणी० ४ अवंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । [अपच्चक्खणा० ४ अवंधगा जीवा असंखेज्ज० ।] अणंताणुबंध० ४ अवंध० जीवा असं-

संहननोंमें संस्थानके समान भंग है । अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भंग, दुःस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रके वंधक जीव सबसे स्तोक हैं ।

इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ अर्थात् सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । शेष युगलोंके विषयमें नरक गतिके समान भंग हैं । तीर्थकर प्रकृतिके वंधक जीव सबसे स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धिमें—हास्य-रतिके वन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । अरति-शोकके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेद तथा भय-जुगुप्साके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष युगलोंमें नरक गतिके समान भंग हैं ।

आयु तथा तीर्थकरके वंधकोंमें आनतके समान भंग हैं । विशेष सर्वार्थसिद्धिमें आयुके वंधक सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४३४. पंचेन्द्रियोंमें—५ ज्ञानावरणके अवंधक जीव सबसे स्तोक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । ४ दर्शनावरणके अवंधक जीव सबसे स्तोक हैं । निद्रा-प्रचलाके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धिन्निके अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । निद्रा, प्रचलाके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । ४ दर्शनावरणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

लोभ संज्वलनके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । माया संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके अवंधक जीव विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । [अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।] अनन्तानुबंधी ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

खेज्ज० । मिच्छत्त-अवंध० जीवा विसेसा० । वंधगा जीवा असंखेज्ज० । एत्तो पडिलोमं विसेसाहियं । सादा-साद-पंचजादि-संठाण-संघड० वण्ण० ४ अगुरु० ४ आदाउज्जो० दोविहाय० तसादि-दसयुगल० तित्थय० दोगोद० पंचंतराइगाणं मणुसोधं । मणुसायुबंधगा जीवा थोवा । णिरयासु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चटुण्णं आयुगाणं ५ बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चटुण्णं गदीणं अवंधगा जीवा । देवगदि बंध० जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्व-त्थोवा आहारस्स० बंध० जीवा । पंचण्णं सरीराणं अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । तेजा- १० कम्मइ-बंधगा जीवा विसेसाहिया । आहार० अंगो० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं अंगोबंधगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । गदिमंगो आणुपुब्बीए ।

इससे विपरीत क्रम विशेष अधिकका शेष बंधकोंमें लगाना चाहिए अर्थात् अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीवोंमें विशेषाधिकका क्रम जानना चाहिए तथा क्रोध, मान, माया तथा लोभ संव्यलनमें विशेषाधिककी योजना प्रत्येकमें करनी चाहिए ।

साता, असाता, पंचजाति, ६ संस्थान, ६ संहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थकर, दो गोत्र, ५ अन्तरायोंके बंधकोंमें मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए ।

मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । चारों आयुओंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

४ गतिके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यच-गतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । आहारक शरीरके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक अंगोपांगके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बंधक जीव असंख्यात-गुणें हैं । औदारिक शरीर अंगोपांगके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तीनों अंगोपांगके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । आनुपूर्वमें गतिके समान भंग जानना चाहिए ।

§४३५. पंचिंदिय-पज्जत्तगेसु-एसेव भंगो । णवरि आयु० पंचिंदिय-तिरिक्ख-
 पज्जत्तभंगो । चदुगदिवंधगा जीवा थोवा । देवगदिवंधगा जीवा असंखेज्जगुणा ।
 मणुसगदिवंधगा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदिवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिरयगादि-
 वंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं वंधगा जीवा विसेसा० । पंचजादीणं अवंधगा
 ५ जीवा थोवा । चदुरिंदियवंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तीह्दि० वंध० जीवा
 संखेज्ज० । वीह्दि० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । एह्दियवंधगा जीवा संखेज्ज० ।
 पंचिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । आहारस० वंध० जीवा थोवा । पंचण्णं सरीराणं
 अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । ओरालि० वंध० जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० वंधगा जीवा
 संखेज्ज० । तेजाक० वंध० जीवा विसेसाहिया । आहारस० अंगो० वंधगा जीवा थोवा ।
 १० ओरालि० अंगो० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णि अंगो० अवंधगा जीवा संखेज्ज० ।
 वेउव्वि० अंगो० वंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं अंगोवंगाणं वंधगा जीवा विसेसाहिया ।
 थावरादि० ४ अवंधगा जीवा थोवा । वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तसादि ४ वंधगा
 जीवा संखेज्जगुणा । थिरादि ६ युगल-दोगोदाणं अवंधगा थोवा । थिरादिछक्क-
 उच्चगोदाणं च वंधगा असंखेज्जगुणा । तप्पडिपक्खाणं वंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।
 १५ णवरि दोविहा० दोसर० पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । एवं विसेसो तसेसु पंचिं-

§४३५. पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोमें—ऐसे ही (पंचेन्द्रिय समान) भंग जानना चाहिए । विशेष यह है कि आयुके बंधक जीवोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भंग करना चाहिए । चारों गतिके अवंधक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यंचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यात गुणें हैं । चारों गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पाँचों जातिके अवंधक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दो इन्द्रिय जातिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रियके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

आहारक शरीरके बंधक जीव स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव संख्यात-
 गुणें हैं । तैजस कार्माणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आहारक शरीरांगोपांगके बंधक जीव स्तोक हैं । औदारिक अंगोपांगके बंधक जीव असंख्यात-
 गुणें हैं । तीनों अंगोपांगके अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तीनों अंगोपांगके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थावरादि चतुष्कके अवंधक जीव स्तोक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । त्रसादिचतुष्कके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्थिरादि छह युगल, २ गोत्रोंके अवंधक जीव स्तोक हैं । स्थिरादिपट्क तथा उच्च गोत्रके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं अर्थात् अस्थि-
 रादि पट्क तथा नीच गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । विशेष यह है कि २ विहायोगति,

दियोधं । णवरि पज्जत्तगेषु तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णामस्स सव्वत्थोवा चदुगदि-अबंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसगदि-बंध० जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचण्णं जादीणं अवंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदियबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तीइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । वीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । ५ पंचिंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । एइंदिय-बंध० जीवा संखेज्जगुणा । तस-थावरादि चदुयुगलबंधगा जीवा थोवा । तसादि० ४ बंधगा जीवा असंखेज्ज० । थावरादि ४ बंधगा जीवा संखेज्जगु० । एदेण वीजेण णेदव्वं पंचमण० तिण्णिवचि० छण्णं कम्ममाणं-पंचिंदियभंगो । णवरि वेदणी० अवंधा णत्थि । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । १० तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुआयु-बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं अवंधगा जीवा थोवा । णिरयगदिबंधगा जीवा

२ स्वरोके बंधक जीवोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

त्रस जीवोंमें—पंचेन्द्रियके ओघवत् विशेष जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ पर्याप्तकोंमें तिर्यचायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

नामकर्मसम्बन्धी चार गतियोंके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पाँचों जातियोंके अवंधक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोइन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । एकेंद्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

त्रस स्थावरादि चार युगलके बंधक जीव स्तोक हैं । त्रसादि चारके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । स्थावरादि ४ के बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । इस वीजसे अर्थात् इस ढंगसे अन्य प्रकृतियोंमें जानना चाहिए ।

[विशेष—त्रस-स्थावरादि चार युगलके समान शेष वचे स्थिर, शुभ, सुभगादि युगलोंका वर्णन जानना चाहिए ।]

५ मनोयोगी, ३ वचनयोगियोंमें ६ कर्मोंके बंधक जीवोंमें पंचेन्द्रियके समान भंग निकालना चाहिए । विशेष यह है कि वेदनीयके अवंधक नहीं हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । चारों आयुके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

चारों गतिके अवंधक जीव स्तोक हैं । नरक गतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

असंखेज्ज० । देवगदिवंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदिवंधगा जीवा संखेज्ज० ।
 तिरिक्खगदिवंधगा जीवा संखेज्जगु० । चटुण्णं गदीणं वंधगा जीवा विसेसा० ।
 पंचण्णं जादीणं अवंधगा जीवा थोवा । चटुरिंदिय-बंध० जीवा असंखेज्ज० । तीइंदिय-
 वंधगा जीवा संखेज्ज० । वीइंदि० वंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिदिय० वंधगा जीवा
 ५ असंखेज्ज० । एइंदिय० वंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचण्णं जादीणं वंधगा जीवा
 विसेसा० । पंचण्णं सरीराणं अवंधगा जीवा थोवा । आहारस० वंधगा जीवा संखेज्ज० ।
 वेउव्विय० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० वंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तेजा-
 क० वंधगा जीवा विसेसाहिया । संठाणं अंगोवं० संधड० वण्ण० ४ आदा-उज्जो०
 दोविहाय० तसथावरादिछुगल-णिमिण-तित्थयर० पंचिंदियभंगो । गदिभंगो आणु-
 १० पुव्वि० । अगु० उप० अव० जीवा थोवा । परवादुस्ता० अवंधगा जीवा असंखेज्ज० ।
 वंधगा जीवा असंखेज्ज० । अगु० उप० वंधगा जीवा विसेसा० । सब्बत्थोवा वाद-
 रादि-तिणि-युगलाणं अवंधगा जीवा । सुहुमादितिणिबंधगा जीवा असंखेज्ज० ।
 वादरादि-तिणि-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । दोण्णं वंधगा जीवा विसेसा० ।

§४३६. वचिजोगि-असच्चमोसवचि०-तसपज्जत्तभंगो । काजोगीसु ओरालियका०-

देवगतिके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मनुष्य गतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यच-
 गतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतिके वंधक जीव विशेष अधिक हैं ।

पाँचो जातिके अवंधक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके वंधक जीव असंख्यातगुणें
 हैं । त्रीन्द्रिय जातिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोइन्द्रिय जातिके वंधक जीव संख्यातगुणें
 हैं । पंचेन्द्रिय जातिके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रिय जातिके वंधक जीव संख्यातगुणें
 हैं । पाँचों जातियोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पाँचो शरीरके अवंधक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके वंधक जीव संख्यातगुणें
 हैं । वैक्रियिक शरीरके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वंधक जीव संख्यात-
 गुणें हैं । तैजस, कार्माणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस-स्थावरादि
 ६ युगल, निर्माण और तीर्थकरके वंधकोंमें पंचेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए ।

आनुपूर्वीके वंधकोंमें गतिके समान जानना चाहिए ।

अगुरुलघु, उपघातके अवंधक जीव स्तोक हैं । परघात, उच्छ्वासके अवंधक जीव असं-
 ख्यातगुणें हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अगुरुलघु उपघातके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वादरादि तीन युगलोंके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । सूक्ष्मादि तीनके वंधक जीव
 असंख्यातगुणें हैं । वादरादि तीनके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक जीव
 विशेषाधिक हैं ।

§४३६. वचनयोगी, असत्यमृपा वचनयोगी अर्थात् अनुभय वचनयोगीमें त्रस पर्याप्तकके
 समान भंग हैं ।

ओधभंगो, किंचि विसेसा० ।

§४३७. ओरालिय-मिस्से-सव्वत्थोवा छदंसणा० अवंधगा जीवा । थीणगिद्धि ३ अवंधगा० संखेज्ज० । अवंधगा (?) (बंधगा) जीवा अणंतगु० । छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा वारसक० अवंधगा जीवा । अणंताणु० ४ अवंधगा० संखेज्ज० । मिच्छ० अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा अणंतगुणा । अणंताणुबंधि० ४ ५ बंधगा० विसेसा० । वारसक० बंधगा० जीवा विसेसा० । तिण्णं गदीणं [अ] बंधगा जीवा थोवा । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा अणंतगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तिण्णि गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा चटुण्णं सरीराणं अवंधगा जीवा । वेउन्वियसरीरं बंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा० अणंतगु० । तेजाक० बंधगा० विसेसा० । वेउन्विय अंगो० बंधगा १० जीवा थोवा । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा अणंतगु० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । अवंधगा जीवा संखेज्ज० । गदिभंगो आणुपुन्वि० । सेसं ओधं ।

काययोगियों तथा औदारिक काययोगियोंमें-ओधके समान भंग है । किन्तु उसमें विशेषाधिकका क्रम जानना चाहिए ।

§४३७. औदारिक मिश्रमें-६ दर्शनावरणके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके अवंधक जीव संख्यातगुणों हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके अवंधक (बंधक) जीव अनन्तगुणों हैं । ६ दर्शनावरणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-द्वितीय बार आगत स्त्यानगृद्धित्रिकके अवंधकके स्थानमें बंधकका पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है ।]

बारह कपायके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अनन्तानुबंधी ४ के अवंधक जीव संख्यातगुणों हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । बंधक जीव अनन्तगुणों हैं । अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । बारह कपायके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीन गतिके [अ] बंधक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणों हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव अनन्तगुणों हैं । तिर्यच गतिके बंधक जीव संख्यातगुणों हैं । तीनों गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-यहाँ नरकगतिका बंध नहीं होता है । इस कारण तीन गतियोंका वर्णन किया गया है ।]

चारों शरीरके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव संख्यातगुणों हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव अनन्तगुणों हैं । तेजस-कामाणिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैक्रियिक अंगोपांगके बंधक जीव स्तोक हैं । औदारिक अंगोपांगके बंधक जीव अनन्तगुणों हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणों हैं ।

आनुपूर्व्यमें गतिके समान भंग कहना चाहिए । शेष प्रकृतियोंमें ओधवत् जानना चाहिए ।

§४३८. वेउव्वियका० वेउव्वियमि० देवोधं ।

§४३९. आहार० आहारमि० सव्वट्ठभंगो ।

§४४०. कम्मइ० ओरालिय-मिस्स-भंगो । णवरि सव्वत्थोवा छदंसणा० अवंधगा जीवा । थीणगिद्धि ३ अवंधगा जीवा असंखे० । वंधगा जीवा अणंतगुणा । ५ छदंसणा० वंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा वारसक० अवंधगा जीवा । अणंताणु-बंधि० ४ अवंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मिच्छ० अवंधगा जीवा विसेसाहिया । वंधगा जीवा अणंतगु० । अणंताणुवं० ४ वंधगा जीवा विसेसा० । वारसक० वंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा तिण्णं गदीणं अवंधगा जीवा । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिवंधगा जीवा अणंतगु० । तिरिक्खगदिवंधगा जीवा संखेज्ज- १० गुणा । एदेण कमेण णेदव्वं ।

§४४१. इत्थिवेद०—सव्वत्थोवा णिदापचलाणं अवंधगा जीवा । थीणगिद्धि ३ अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । वंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिदापचलाणं वंधगा जीवा विसेसा० । चदुदंसण० वंधगा जीवा विसेसा० । वेदणीयं मणभंगो । सव्वत्थोवा पच्च-क्खाणा० चदु० अवंधगा जीवा । अपच्चक्खाणा० ४ अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । १५ अणंताणुवं० ४ अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंध० जीवा विसेसा० । वंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु० ४ वंध० जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४

§४३८. वैक्रियिक काययोगी और वैक्रियिक मिश्रयोगीमें देवोंके ओधवत् जानना चाहिए ।

§४३९. आहारक काययोगी और आहारक मिश्रयोगीमें सर्वार्थसिद्धिके समान भंग हैं ।

§४४०. कार्माण काययोगियोंमें—औदारिक मिश्र काययोगीके समान भंग कहना चाहिए । विशेष यह है कि ६ दर्शनावरणके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्यानगृद्धि ३ के अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । वंधक जीव अनन्तगुणों हैं । ६ दर्शनावरणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । १२ कपायके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । अनन्तानुबंधी ४ के अवन्धक जीव असंख्यातगुणों हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । वंधक जीव अनन्तगुणों हैं । अनन्तानुबंधी ४ के वंधक जीव विशेषाधिक हैं । १२ कपायके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । तीनों गतिके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके वंधक जीव संख्यातगुणों हैं । मनुष्यगतिके वंधक जीव अनन्त-गुणों हैं । तिर्यचगतिके वंधक जीव संख्यातगुणों हैं । इस क्रमसे अन्यत्र जानना चाहिये ।

[विशेष - इस योगमें नरकगतिका वंध नहीं होता है ।]

§४४१. स्त्रीवेदमें निद्रा, प्रचलाके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्यानगृद्धि ३ के अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । निद्रा, प्रचलाके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । चारों दर्शनावरणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वेदनीयके वंधक जीवोंमें मनोयोगीके समान भंग हैं ।

प्रत्याख्यानावरण ४ के अवन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । मिथ्यात्वके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं । वन्धक जीव असंख्यातगुणों हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के वन्धक जीव

बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । चदुसंजलण-
बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पुरिसवेद-बंधगा जीवा । इत्थिवेद-बंधगा जीवा
संखेज्जगु० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० ।
णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । भय दुगुं० बंधगा जीवा विसेसा० । णवणोक०
बंधगा जीवा विसेसा० । आयुचदुक्क-पंचिदि०-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । सव्वत्थोवा ५
चदुण्णं गदीणं अवंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदिबंधगा
जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज-
गुणा । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा पंचजादि-अवंधगा जीवा ।
चदुरिंदिय-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तीइदि० बंध० जीवा संखेज्ज० । वीइंदिय-
बंधगा जीवा संखेज्ज० । एइदि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंच-जादीणं बंधगा जीवा १०
विसेसाहिया । पंचसरीर० छसंठाणं तिण्णि-अंगो० छस्संध० दो विहा० दोसरं मण-
जोगिभंगो । सव्वत्थोवा अगु० उप० अवंधगा जीवा । परघादुस्सा० अवंध० जीवा
असंखेज्ज० । बंधगा जीवा संखेज्ज० । अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा० । तस-
थावरादि पंचयुगल-तित्थयर-दो गोदाणं मणजोगिभंगो । णवरि जस-अज्जस० दो

विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के
बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ४ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं ।
हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसक
वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नव नोकपायके
बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ४ आयुके बन्धकोंमें पचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्तकका भङ्ग जानना चाहिए ।

चारों गतिके अवन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । देवगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।
नरक गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यच
गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पंच जातियोंके अवन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यात-
गुणें हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यात गुणें हैं । दो इन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यात-
गुणें हैं । एकेन्द्रिय जातिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पांचों जातियोंके बंधक जीव
विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-यहां पंचेन्द्रिय जातिके बंधकोंका प्रमाण वर्णन करनेसे छूट गया प्रतीत होता है ।]

५ शरीर, ६ संस्थान, ३ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बंधक जीवोंमें
मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए ।

अगुरुलघु, उपघातके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । परघात, उच्छ्वासके अवंधक जीव
असंख्यातगुणें हैं । बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अगुरुलघु, उपघातके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

त्रस, स्थावरादि ५ युगल, तीर्थकर, २ गोत्रके विषयमें मनोयोगियोंमें समान भंग है ।
विशेष यह है कि यशःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति तथा दोनों गोत्रोंके सामान्यसे अवंधक नहीं हैं ।

गोदाणं साधारणेण अवंधगा णत्थि । सव्वत्थोवा वादरादि-तिणिण-युगल-अवंधगा जीवा । सुहुमादितिणिण युगल (?) वंधगा जीवा असंखेज्ज० । वादरादि-तिणिण युगल (?) वंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एवं पुरिसवे० । णवुंसगवे० ओवभंगो । णवरि विसेसो वि इत्थि-वेदेण साधिज्जदि ।

५ §४४२. अवगदवेदेसु-सव्वत्थोवा पंचणा० वंधगा० । अवंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं चदुदंसणा०, साद० जस० उच्चगो० पंचंत० । सव्वत्थोवा क्रोध-संजल० वंधगा । माण-संजल० वंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० वंधगा जीवा विसेसा० । लोभ-संज० वंध० जीवा विसेसा० । तस्सेव अवंधगा जीवा अणंतगुणा । मायासंज० अवंधगा जीवा विसे० । माण-संज० अव० जीवा विसे० । क्रोध-संज० अवंध० जीवा विसेसा० ।

१० §४४३. क्रोधे-णवुंसकभंगो । णवरि णव णोक्कसायं ओवं । माणे-सव्वत्थोवा क्रोध-संज० अव० जीवा । सेसं ओवं । णवरि क्रोध० वंधगा जीवा विसे० । माण-माय-लोभ-संजलणबंधगा जीवा विसेसा० । यायाए-सव्वत्थोवा माणसंज० अव०

वादरादि तीन युगलके अवंधक जीव सर्व स्तोक हैं । सूक्ष्मादि तीन युगल (?) के वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । वादरादि तीन युगल (?) के वंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

[विशेष-यहां सूक्ष्मादि तीन तथा वादरादि तीनके वंधकोंके साथमें युगल शब्द अधिक प्रतीत होता है । कारण सूक्ष्मादि तीन युगलके ही अंतर्गत वादरादि तीन प्रकृतियाँ हैं, एवं वादरादि तीन युगलमें सूक्ष्मादि तीन प्रकृतियाँ हैं ।]

पुरुषवेदमें—स्त्रीवेदके समान भंग हैं ।

नपुंसकवेदमें—ओववत् भंग है । विशेष, स्त्रीवेदसे जो विशेषता हो, उसे निकाल लेना चाहिए ।

§४४२. अपगतवेदियोंमें—५ ज्ञानावरणके वंधक जीव सर्वस्तोक हैं । अवंधक जीव अनन्त-गुणें हैं । इसी प्रकार ४ दर्शनावरण, साता वेदनीय, यशःकीर्त्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके वंधकों अवंधकोंमें भी जानना चाहिए ।

क्रोध-संज्वलनके वंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मान-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं । माया-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४४३. क्रोधमें—नपुंसकवेदके समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि ९ नोकपायोंके वंधकोंमें ओववत् जानना चाहिए ।

मानमें—क्रोध-संज्वलनके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । शेष प्रकृतियोंमें ओववत् जानना चाहिए । विशेष, क्रोधके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान, माया, लोभ, संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

जीवा सेसं माणकसाइ-भंगो । णवरि मायलोभसंज० वंधगा जीवा विसे० । लोभे-
मोह० ओघं । सेसं क्रोधभंगो । अकसाइ-सव्वत्थोवा साद-बंध० । अवंधगा जीवा
अणंतगु० । एवं केवलणा० केवलदंसणा० ।

§४४४. मदि० सुद०-सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अवंधगा जीवा । वंधगा जीवा
अणंतगुणा । सोलसक० वंधगा जीवा विसेसा० । सेसं तिरक्खोघं । णवरि सम्मत्त- ५
संयुत्तं णत्थि ।

§४४५. विभंगे-सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अव० जीवा । वंधगा जीवा असंखेज्ज० ।
सोलसक० वंधगा जीवा विसेसा० । दो वेदणी० णवणोक्क० छस्संठाण० छस्संध०
दो विहा० तसथावरादि छयुगलणं दोगोद० देवोघ-भंगो । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा
जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । १०
तिरिक्खायु-बंध० जीवा असंखेज्ज० । चटुण्णं आयुबंधगा जीवा विसे० । अवंधगा
जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंध० जीवा थोवा । देवगदि-बंध० जीवा असंखेज्ज० ।
मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । चटुण्णं

मायामें—मान संज्वलनके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । शेष प्रकृतियोंमें मान कपायियोंके
समान भंग जानना । विशेष यह है कि माया, लोभ संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
लोभमें—मोहनीयके ओघ समान है । शेष प्रकृतियोंमें क्रोधके समान भंग हैं ।
अकषाय जीवोंमें—साता वेदनीयके वंधक जीव सर्वस्तोक हैं । अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं ।
इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवलदर्शनवाले जीवोंमें जानना चाहिए ।

§४४४. मत्त्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें—मिथ्यात्वके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । वंधक जीव अनन्त-
गुणें हैं । सोलह कषायके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बारेमें तिर्यचोंके ओघ-
समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहां सम्यक्त्वके साथ बंधनेवाली प्रकृतियोंका
अभाव है ।

[विशेष—तीर्थंकर तथा आहारकद्विकका सम्यक्त्वके साथ ही वंध होता है । अतः इनका
बंध न होगा ।]

§४४५. विभंगज्ञानियोंमें—मिथ्यात्वके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । वंधक जीव असंख्यात-
गुणें हैं । सोलह कषायके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । २ वेदनीय, ९ नोकषाय, ६ संस्थान,
६ संहनन, २ विहायोगति, त्रसन्थावरादि ६ युगल तथा दो गोत्रोंमें देवोंके ओघवत् भंग हैं ।

मनुष्यायुके वंधक जीव सर्वस्तोक हैं । नरकायुके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके
बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । चारों आयुके वंधक
जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

नरकगतिके वंधक जीव स्तोक हैं । देवगतिके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके
बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । चारों गतिके वंधक
जीव विशेषाधिक हैं ।

गदीणं वंधगा जीवा विसेसा० । एवं आणुपु० । चदुरिंदिय-बंधगा जीवा थोवा । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । ग्रीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिदि० वंध० जीवा असंखेज्ज० । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचजादीणं वंधगा जीवा विसेसा० । वेउव्वियसरीरबंधगा जीवा थोवा । ओरालि० वंधगा जीवा असंखेज्ज० ।
 ५ तेजाक० वंध० जीवा विसे० । सव्वत्थोवा वेउव्वि० अंगो० वंधगा जीवा । ओरालि० अंगो० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं अंगो० वंधगा जी० विसेसा० । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । परघादुस्सा० अवंध० जीवा थोवा । वंधगा जीवा असंखेज्ज० । अगु० उप० वंधगा जीवा विसेसा० । आदावुज्जोव-देवोव० । सव्वत्थोवा सुट्ठमादि-
 तिणिण वंधगा जीवा । तप्पडिपक्खाणं वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं वंधगा
 १० जीवा विसेसा० ।

§४४६. आभि० सुद० ओधि०—सव्वत्थोवा पंचणा० अवंधगा जीवा । वंधगा जीवा असंखेज्ज० । एवं अंतराइगं । सव्वत्थोवा चदुदंस० अवंध० जीवा । णिदापचला-
 अवंध० जी० विसेसा० । वंधगा जीवा असंखेज्जगु० । चदुदंस० वंध० जीवा विसेसा० । दोवेदणी० देशोव० । सव्वत्थोवा लोभसंज० अवंध० जीवा । मायासंज० अवंध० जीवा

इसी प्रकार आनुपूर्वियोंमें जानना चाहिए ।

चौइन्द्रिय जातिके वंधक जीव स्तोक हैं । त्रीइन्द्रिय जातिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । द्वीन्द्रिय जातिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पंचेन्द्रिय जातिके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रियके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । ५ जातियोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैक्रियिक शरीरके वंधक जीव स्तोक हैं । औदारिक शरीरके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणिके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैक्रियिक अंगोपांगके वंधक जीव सर्वस्तोक हैं । औदारिक अंगोपांगके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनों अंगोपांगके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

परघात, उच्छ्वासके अवंधक जीव स्तोक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अगुरुल ७७, उपघातके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । आतप, उद्योतके वंधकोंमें देवोघवत् जानना चाहिए ।

सूक्ष्मादि ३ के वंधक जीव सर्वस्तोक हैं । इनके प्रतिपक्षी वादरादि ३ के वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४४६. आभिनिवोधिक, श्रुत, अवधिज्ञान में ५ ज्ञानावरणके अवंधक जीव स्तोक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । ऐसा ही अन्तरायका वर्णन जानना चाहिए अर्थात् अवंधक जीव सर्व-स्तोक हैं और वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

४ दर्शनावरणके अवंधक जीव सबसे कम हैं । निद्रा, प्रचलाके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । इसके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । ४ दर्शनावरणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

दो वेदनीयके वंधक अवंधक जीवोंमें देवोघवत् जानना ।

लोभ-संज्वलनके अवंधक जीव सबसे स्तोक हैं । माया-संज्वलनके अवंधक जीव विशेष

विसेसा० । माणसंज० अव० जीवा विसेसा० । क्रोधसंज० अव० जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणावर० ४ अवंध० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणावर० ४ अवंध० जीवा असंखेज्जगु० । वंध० जीवा असंखेज्ज० । पच्चक्खाणा० ४ वंध० जीवा विसेसा० । क्रोधसंज० वंध० जीवा विसेसा० । माणसंज० वंध० जीवा विसे० । मायासंज० वंध० जीवा विसे० । लोभसंज० वंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सत्तणोक० अवंधगा ५ जीवा । हस्सरदिवंधगा जीवा असंखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसेसा० । भयदुगुच्छाबंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० वंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सत्तणोक० (?) पुरिस० वंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवाउगं वंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं वंधगा जीवा विसे० । अव० जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं गदीणं अवंध० जीवा थोवा । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । १० मणुसगदिवंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं वंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पंचिदि० समचदुर० वज्जरिसभ-संध० वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-उच्चागोदाणं अवंधगा । वंध० जीवा असंखेज्ज० । पंचसरी० अवंधगा जीवा थोवा । आहारसरीर-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओगालि० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० वंधगा १५

अधिक हैं । मान-संज्वलनके अवंधक जीव इनसे कुछ अधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अवंधक जीव विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव संख्यातगुणों हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं तथा वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के वंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

सात नाकषायके अवन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । हास्य-रतिके वंधक जीव असंख्यात-गुणों हैं । अरति शोकके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके वन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । दोनोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं ।

दोनों गतिके अवंधक जीव स्तोक हैं । देवगतिके वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । मनुष्य गतिके वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । दोनोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुल्लयु ४, प्रशन्न, विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्च गोत्रके अवंधक जीव मन्त्रमे स्तोक हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं ।

५ शरीरके अवंधक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके वंधक जीव संख्यातगुणों हैं । वैदिक शरीरके वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । औदारिक शरीरके वंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । वैज्ज, कार्माणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

जीवा विसेसा० । सच्चत्योवा तिण्णि-अंगो० अवंधगा जीवा । आहार० अंगो० वंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउच्चिय० अंगो० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं वंधगा जीवा विसे० । थिरादि-तिण्णि-सुगलं पंचिदिय-अंगो । तिथयरं वंधगा जीवा थोवा । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० ।
५ एवं ओधिदंस० । मणपज्जवणा० ओधिभंगो । णवरि असंखेज्जपगदीओ णत्थि । संखेज्जगुणं कादच्चं ।

§४४७. एवं संजद० वेदणीयमणुसिभंगो ।

§४४८. साणाइ० छेदो०-सच्चत्योवा मायासंज० अवं० जीवा । माणसंज० अवं० जीवा विसेसा० । कोथ संज० अवं० जीवा विसेसा० । वंधगा जीवा असंखेज्ज० ।
१० माणसंज० वंधगा जीवा विसेसा० । माया संज० वंधगा जीवा विसे० । लोभसंज० वंधगा जीवा विसे० । सेसाणं किंचि विसेसेण मणपज्जवभंगो ।

§४४९. परिहार०-आहारकाजोगिभंगो । णवरि आहारदुगं अत्थि । सुद्धमसंपरा-

तीनों अंगोपांगके अवंधक जीव सबसे कम हैं । आहारक अंगोपांगके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिक अंगोपांगके वंधक असंख्यातगुणें हैं । तीनोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

स्थिरादि ३ सुगल्लोका पंचेन्द्रिय जातिके समान भंग जानना चाहिए ।

तीर्थङ्करके वंधक जीव स्तेक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । इसी प्रकार अवधि-दर्शनमें जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानमें अधिज्ञानके समान भंग है । विशेष यह है कि यहाँ मनःपर्यय ज्ञानमें असंख्यातगुणी संख्यावाली प्रकृति नहीं है । उनके स्थानमें संख्यातगुणोंका पाठ करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि मनःपर्यय ज्ञानमें संख्यातगुणोंका क्रम लगाना चाहिये ।

§४४७. इसी प्रकार संयममार्गमें जानना चाहिए । वेदनीयका मनुष्यनीके समान भंग है । अर्थात् साता-असाताके अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । साताके वंधक असंख्यातगुणें हैं । असाताके वंधक संख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक विशेषाधिक हैं ।

§४४८. सामायिक छेदोपस्थापना संयममें-माया-संज्वलनके अवंधक जीव सबसे कम हैं । मान-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मान-संज्वलनके वंधक जीव विशेष अधिक हैं । माया-संज्वलनके वंधक जीव विशेष अधिक हैं । लोभ-संज्वलनके वंधक जीव विशेष अधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें कुछ विशेषताके साथ मनःपर्यय ज्ञानके समान भंग है ।

§४४९. परिहारः-विशुद्धि संयममें-आहारक काययोगीके समान भंग है । विशेष, इस संयममें आहारकद्विकका वंध पाया जाता है ।

[विशेष-परिहारविशुद्धि संयममें आहारकद्विकके उदयका विरोध है, वंधका नहीं है ।]

सूद्धमसंपरायमें अल्पबहुत्व नहीं है ।

(१) “मणपज्जपरिहारे णवरि ण संहित्थिहारदुगं ।” —गो० क० ३२७ ।

इयस्स-णत्थि अप्पावहुगं । यथावखादस्स-अवंधगा जीवा थोवा । वंधगा जीवा संखेज्जगुणा । संजदासंजदा-परिहारभंगो । णवरि थोवा देवायु-तित्थयर-बंधगा जीवा । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । असंजद-तिरिक्खोघं । णवरि अपच्चक्खाणावरणस्स अवंधगा णत्थि । तित्थयरं ओघं ।

§४५०. चक्खुदंस०-तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं । णवरि एदेसिं दोण्णं ५ विसेसो णादब्बो ।

§४५१. तिण्णिलेस्सा-असंजदभंगो । तेउए-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि ३ अवं० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । छदंसण० बंधगा जीवा विसेसा० । दोवेदणी० णव-णोक्क० छस्संठाण-छसंध० आदाउज्जो० दोविहा० तसथाव० थिरादिछयुगं दोगोदं देवोघं । सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा० ४ अवंधगा जीवा । अपच्चक्खाणा० ४ अवंध० १० जीवा असंखेज्ज० । अणंताणुवं० ४ अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त० अवं० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु० ४ बंधगा जीवा

[विशेष-यहाँ ज्ञानावरण ५, अंतराय ५, दर्शनावरण ४, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा साता-वेदनीयका बंध होता है । इनके बंधकोंमें हीनाधिकपनेका अभाव है । यहाँ १७ प्रकृतियोंका सबके बंध होगा ।]

यथाख्यातसंयममें-अबंधक जीव स्तोक हैं । बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

[विशेष-यहाँ एक सातावेदनीयका ही बंध पाया जाता है ।]

संयतासंयतोमें-परिहारविशुद्धिके समान भंग है । विशेष, देवायु तथा तीर्थकरके बंधक स्तोक हैं । अबंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

असंयममें-तिर्यचोंके ओघवत् हैं । विशेष, यहां अप्रत्याख्यानावरणके अवंधक नहीं हैं । तीर्थकर प्रकृतिका ओघवत् जानना चाहिए ।

§४५०. चक्षुदर्शनमें-त्रस पर्याप्तकके समान भंग हैं ।

अचक्षुदर्शनमें-ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है, कि इन दोनोंमें जो विशेषता है उसे जान लेना चाहिये ।

§४५१. कृष्णादि तीन लेश्यामें-असंयतके समान भंग हैं ।

तेजोलेश्यामें-स्त्यानगृद्धिके अवंधक जीव सबसे स्तोक हैं । इनके बंधक जीव असंख्यात-गुणें हैं । ६ दर्शनावरणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

२ वेदनीय, ९ नोकपाय, ६ संस्थान, ६ संहनन, आतप, उद्योत, २ विद्यायोगानि, घन, स्थावर, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रका देवोघके समान समझना चाहिए ।

प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव सबसे कम हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । इसके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के बंधक

विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । चटुसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । सच्चत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णि बंधगा जीवा विसेसा० । अवं० जीवा असंखेज्ज० । एवं चित्तिज्जदि । एवं पुण ५ परिज्जदि । सच्चत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुच्चि० । पंचिंदिय-बंधगा जीवा थोवा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । दोण्णं बंधगा जीवा १० विसे० । आहारस० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वियबंधगा जीवा असंखे० । ओरालि० बंध० जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णं अंगो० एवं चैव । णवरि तिण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसे० । अवं० जीवा संखेज्ज० ।

§४५२. एवं पम्माए । णवरि थोवा इत्थिवेदाणं बंध० जीवा । णवुंस० बंधगा जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । चारों संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव सबसे कम हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तीनों आयुके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

[विशेष—इस देश्यामें नरकायुका वध नहीं होता है । यह चित्तनीय है तथा ऐसा समझमें आता है कि मनुष्यायुके बंधक जीव सबसे कम हैं ।]

देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तीनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

[विशेष—आयुके विषयमें दो प्रकारकी प्रतिपादना संभवतः दो परंपराओंको बताती हैं ।]

देवगतिके बंधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तीनों गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार आनुपूर्दीमें भी जानना चाहिए ।

पंचेन्द्रियके बंधक जीव स्तोक हैं । एकेन्द्रियके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आहारक शरीरके बंधक जीव स्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीनों अंगोपांगमें ऐसा ही है, किन्तु तीनों अंगोपांगके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४५२. पदालेश्यामें इसी प्रकार जानना चाहिये ।

यहाँ इतना विशेष है, स्त्रीवेदके बंधक जीव स्तोक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव

जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० ।
 पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा
 थोवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । तिण्णं
 बंधगा जीवा विसे० । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा थोवा ।
 तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं ५
 बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुत्वि० । सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा ।
 ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । वेउत्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक०
 बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा णग्गोदपरि० बंधगा जीवा । सादि-
 यसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वामणसं० बंधगा
 जीवा संखेज्ज० । हुंडसंठाण-बंधगा जीवा संखेज्ज० । समचदुर० बंधगा जीवा १०
 असंखेज्ज० । छण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । वज्जरिसभ-संघ० बंधगा जीवा थोवा ।
 वज्जणाराच० बंधगा जीवा संखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणं कादव्वं । छस्संघड० बंधगा
 जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । उज्जोव-तित्थय० बंधगा जीवा थोवा ।

संख्यातगुणें हैं । हास्य-रतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । भरति-शोकके बंधक जीव संख्यात-
 गुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके
 बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तीनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यात-
 गुणें हैं ।

मनुष्यगतिके बंधक जीव स्तोक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके
 बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तीनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमें भी समझना चाहिए ।

आहारक शरीरके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव अत-
 ख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणके बंधक
 जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार अंगोपांगमें भी समझना चाहिये ।

न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानके बंधक जीव सबसे कम हैं । स्थातिकसंस्थानके बंधक जीव संख्या-
 तगुणें हैं । कुञ्जकसंस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वामनसंस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें
 हैं । हुंडकसंस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । समचतुरस्रसंस्थानके बंधक जीव असंख्यातगुणें
 हैं । छहों संस्थानोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वज्रवृषभसंहननके बंधक जीव स्तोक हैं । वज्रनाराचसंहननके बंधक जीव संख्यात-
 गुणें हैं । आगेके संहननोंमें संख्यातगुणें अधिकका क्रम लगाना चाहिये । छह संहननोंके बंधक
 जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

उद्योत, तीर्थकरके बंधक जीव स्तोक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० बंधगा जीवा थोवा । तप्पडिपक्खं बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोणं बंधगा जीवा विसेसा० । थिरादि-तिणिण-युगलं देवोधं ।

§४५३. सुक्काए-पंचणा० पंचिदि० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि०
 ५ पंचंतराइगाणं अवंधगा जीवा थोवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । चटुदं० अवंधगा जीवा थोवा । णिहापचला० अवंधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि ३ [अ] बंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिहा-पचला-बंधगा जीवा विसे० । चटुदं० बंधगा जीवा विसेसा० । वेदणीयं देवोधं । लोभ-संज० अवंधगा जीवा थोवा । माया-संज० अवं० जीवा विसे० । माण-संज० अवं० जीवा विसे० । क्रोध-संज० अवं० जीवा विसे० । पच्चक्खाणा० ४ अवं० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणा० ४ अवं० जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अबंधगा (?) बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणावरण० बंधगा जीवा विसे० । क्रोधसंज० बंधगा जीवा विसे० । माणसंज० बंधगा जीवा विसे० । मायासंज० बंधगा

अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके बंधक जीव स्तोक हैं । इनके प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

स्थिरादि ३ युगलोंका देवोधके समान जानना चाहिए ।

§४५३. शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, पंचेन्द्रिय जाति, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण और ५ अन्तरायके अवंधक जीव स्तोक हैं । बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

४ दर्शनावरणके अवंधक जीव स्तोक हैं । निद्रा, प्रचलाके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके [अ]बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । निद्रा-प्रचलाके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । ४ दर्शनावरणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वेदनीयका देवोधके समान जानना चाहिए ।

लोभ-संज्वलनके अवंधक जीव स्तोक हैं । माया-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके अवंधक जीव विशेष अधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

अनंतानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अवंधक (बंधक) जीव संख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बंधक जीव

जीवा विसेसा० । लोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा णवणोक्क० अवंधगा जीवा । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंसक० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा विसेसा० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । सव्वत्थोवा दोण्णं गदीणं अवंधगा जीवा । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्णं सरीराणं अवंधगा जीवा थोवा । आहारस० बंध० जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्ज० । तेजाक्क० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा छस्संठा० अव० जीवा । णग्गोद- १० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सादिय-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वामणवं० जीवा संखेज्ज० । हुंडसं० बंध० जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंधगा जीवा संखेज्ज० । छण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । एवं छस्संध० ।

विशेषाधिक हैं ।

नव नोकपायके अवंधक जीव सबसे कम हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य-रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अरति-शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव सबसे कम हैं । देवायुके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । दानोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यात गुणें हैं ।

दोनों गति (देव-मनुष्यगति) के अवंधक जीव सबसे स्तोक हैं । देवगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनों गतियोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पांचों शरीरके अवंधक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अंगोपांगमें भी जानना ।

६ संस्थानोंके अवंधक जीव सबसे कम हैं । न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । स्वातिक संस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । कुञ्जकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वामनसंस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हुंडकसंस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । समचतुरस्रसंस्थानके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । छट्ठों संस्थानोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

इस प्रकार ६ संहननमें जानना चाहिये ।

दोविहा० सुभगादि-तिणिण-युगल-णीचुच्चागो० अवं० जीवा थोवा । अप्पसत्थवि०
दूभग-दुस्सर-अणादे० णीच्चागो० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । तप्पडिपक्खाणं वंधगा
जीवा संखेज्ज० । थिरादितिणिणयुग० णणभंगो । सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा ।
अबंधगा जीवा संखेज्ज० ।

५ §४५४. भवसिद्धि—ओघं ।

§४५५. अव्यवसिद्धिया -- सदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जीवा णत्थि ।

§४५६. सम्मादिट्ठीसु—सव्वत्थोवा पंचणा० पंचिदि० समचदु० वज्जगिस्सभ०
वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थविहा० तस० ४ सुभगादितिणिणयु० णिमिण-तित्थय०
उच्चागो० पंचंत० वंधगा जीवा । अवंध० अणंतगुणा । सव्वत्थोवा णिदापचला-
१० वंधगा जीवा । चदुदंस० वंधगा जीवा विसेसा० । अवं० अणंतगुणा । णिदापचला
अबंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा थोवा । असाद-बंधगा जी० संखेज्ज० ।
दोण्णं वंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा अणंतगु० । अपच्चक्खाणा० ४ वंध०
जीवा थोवा । पच्चक्खाणा० ४ वंधगा जीवा विसे० । कोध-सं० वं० जी० विसे० ।
माणसंज० वंध० जी० विसेसा० । मायासंज० वंध० जी० विसेसा० । लोभसंज०
१५ वंधगा जीवा विसे० । अवंध० अणंतगुणा । मायासं० अवं० जीवा विसे० । माणसंज०

२ विहायोगति, सुभगादि ३ युगल, नीच तथा उच्चगोत्रके अवंधक जीव स्तोक हैं ।
अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्रके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । इनके
प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रके वंधक जीव संख्यातगुणें
हैं । स्थिरादि ३ युगलोंमें मनोयोगियोंके समान भंग हैं ।

तीर्थकर प्रकृतिके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४५४. भव्यसिद्धिकोंमें ओघवत् जानना चाहिए ।

§४५५. अव्यवसिद्धिकोंमें—सत्यज्ञानके समान जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्वके अवंधक
जीव नहीं हैं ।

§४५६. सग्यदृष्टियोंमें—५ ज्ञानावरण, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन,
वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभगादि तीन युगल, निर्माण, तीर्थकर, उच्च
गोत्र, ५ अन्तरायके वन्धक जीव स्तोक हैं । अवंधक अनन्तगुणें हैं ।

निद्रा, प्रचलाके वंधक जीव सर्व स्तोक हैं । ४ दर्शनावरणके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
इनके अवंधक अनन्तगुणें हैं । निद्रा, प्रचलाके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

साताके वंधक जीव स्तोक हैं । असाताके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक जीव
विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के वंधक जीव स्तोक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के वंधक जीव
विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके वंधक जीव
विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके वंधक जीव

अवं जीवा विसेसा० । क्रोधसंज्ञ० अवं जीवा विसे० । पञ्चक्खाणा० ४ अवं जीवा विसे० । अपञ्चक्खाणा० ४ अवं जीवा विसेसा० । हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । भयदु० बंध० जीवा विसे० । पुरिस-वे० बंधगा जीवा विसे० । अवंध० अणंतगुणा । भयदु० अवं जीवा विसे० । अरदिसोग-अवं जीवा विसे० । हस्सरदि-अवं जी० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु- ५ बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोणं बंधगा जीवा विसे० । अवंध० जीवा अणंतगुणा । देवगदि-वं जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोणं बंध० जीवा विसे० । अवं अणंतगुणा । एवं दो-आणुपुब्बि० । आहारसरी० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं तिण्णि-अंगो० । थिरादि- १० तिण्णियुगलं वेदणीय-भंगो ।

§४५७. एवं खड्ग-सम्मा० । णवरि थोवा देवायु-बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा विसे० । सच्चत्थोवा अपञ्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा । पञ्च-

विशेषाधिक हैं । इसके अवंधक अनन्तगुणें हैं । साया-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

हास्य, रतिके बंधक जीव स्तोक हैं । अरतिशोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । भय-जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं । भय, जुगुप्साके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । अरति, शोकके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । हास्य, रतिके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनों के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं ।

देवगतिके बंधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनों के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अवंधक अनन्तगुणें हैं ।

इसी प्रकार दो आनुपूर्वी (देवमनुष्यानुपूर्वी) में भी जानना चाहिए ।

आहारकशरीरके बंधक जीव स्तोक हैं । वैक्रियिकशरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । औदारिकशरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तैजस, कार्माणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं । इसी प्रकार ३ अंगोपांगमें भी जानना चाहिए । गिरादि ३ गुणके बंधकोंमें वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए ।

§४५७. क्षाधिकसम्बन्धमे—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि देवायुके बंधक स्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक विशेषाधिक हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक

कखाणा० ४ वंधगा जीवा विसे० । एवं चदुसंजल० वंधगा जीवा विसे० । अवं० अणंतगुणा । सेसं पडिलोमेण भाणिदच्चं । हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । भयदु० वंधगा जीवा विसे० । पुरिसवेद-बंधगा जीवा विसे० । अवं० अणंतगुणा । सेसं पडिलोमेण भाणिदच्चं ।

- ५ §४५८. वेदगे-सव्वत्थोवा पच्चकखाणा० ४ अवंधगा जीवा । अपच्चकखाणा० ४ अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । पच्चकखाणा० ४ वंधगा जीवा विसे० । चदुसंज० वंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा हस्सरदि-बंधगा जीवा । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । भयदु० पुरिसवे० वंधगा जी० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोणं वंधगा जीवा विसे० ।
- १० अवं० जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा असंखेज्ज० ।

जीव विशेषाधिक हैं । इसीप्रकार ४ संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक अनन्तगुणें हैं ।

शेष भंग प्रतिलोमसे जानना चाहिए, अर्थात् प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव विशेषाधिक हैं, अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

हास्य, रतिके वंधक जीव स्तोक हैं । अरति, शोकके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । भय, जुगुप्साके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं । शेष भंगमें प्रतिलोमसे जानना चाहिए अर्थात् भय, जुगुप्साके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । अरति-शोकके अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । हास्य-रतिके अवंधक जीव भी संख्यातगुणें हैं ।

§४५८. वेदकसम्यक्त्वमें-प्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव सर्वस्तोक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के वंधक जीव विशेषाधिक हैं । ४ संज्वलनके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-संज्वलनचतुष्कके अवंधक जीवोंका यहाँ वर्णन नहीं किया गया । कारण वेदक सम्यक्त्व ४ से ७ वें गुणस्थान तक पाया जाता है, और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभकी वंधव्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणमें होती है । अतः वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा संज्वलन ४ के अवंधक जीवका अभाव होनेसे वर्णन नहीं किया गया ।]

हास्य-रतिके वंधक जीव सर्वस्तोक हैं । अरति-शोकके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । भय-जुगुप्साके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-पुरुषवेदके अवंधकका यहाँ उल्लेख नहीं किया है, कारण इसकी वंधव्युच्छित्ति नवमें गुणस्थानमें होती है किन्तु यहाँ वेदकसम्यक्त्व नहीं पाया जाता है । इस कारण यहाँ अवंधक नहीं कहे गये हैं ।]

मनुष्यायुके वंधक जीव स्तोक हैं । देवायुके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

देवगतिके वंधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । दोनोंके वंधक

दोष्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं दो आणुपुब्बि० । आहार० बंधगा जीवा थोवा । वेउब्बिय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं तिण्णि अंगोवंग० । वज्जरिसम-संघ० ओधिभंगो । सेसं युगलं देवोघं ।
 §४५८. उवसससं०—ओधिभंगो ।

§४५९. सासणे—वेदणीय-पंचसंठा० उज्जोव-दोविहाय० थिरादि-छयुग० दोगोदं ५ णिरयोघं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा । हस्सरदि-बंधगा जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अवं० जीवा असंखेज्ज० । देवगादि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगादि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । १० तिरिक्खगादि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुब्बि० । वेउब्बियस० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक०

जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार दोनों आनुपूर्वियोंमें भी जानना चाहिये ।

आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यात-गुणों हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । तैजस-कामाण-शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार तीनों अंगोपांगमें भी जानना चाहिए । वज्रवृषभनाराच-संहननमें अवधिज्ञानके समान भंग है । शेष युगलोंमें देवोंके ओघ समान जानना चाहिए ।

§४५८. उपशमसम्यक्त्वमें अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए ।

§४५९. सासादनसम्यक्त्वमें—वेदनीय, ५ संस्थान, उद्योत, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रके बंधकोंमें नरकके ओघवत् जानना चाहिए ।

पुरुषवेदके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । हास्य-रतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणों हैं । अरति-शोकके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । तीनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अवंधक जीव असंख्यातगुणों हैं ।

[विशेष—नरकायुका मिथ्यात्वगुणस्थान तक बंध होनेसे यहां उसका अभाव है ।]

देवगतिके बंधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव असंख्यातगुणों हैं । तिर्यच-गतिके बंधक जीव संख्यातगुणों हैं । तीनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकारका क्रम आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए ।

वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव स्तोक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणों तैजस, कामाणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अंगोपांगमें भी जानना चाहिए ।

बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगोवंग० । पंचसंध० अवंधगा जीवा थोवा । वज्जरिसम०
बंधगा जीवा असंखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणा । पंचण्णं बंधगा जीवा विसे० ।

§४६०. सम्मामिच्छे-वेदणी० सत्तणोक० दोगदि-दो-सरीर-दोअंगो० वज्जरिसम०
थिरादितिणियुगलं वेदभंगो । मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अभवसिद्धिय-भंगो ।

५ §४६१. सण्णी-मणजोगि-भंगो ।

§४६२. आहार-ओघभंगो ।

§४६३. अणाहार०-पंचणा० पंचंत० वण्ण० ४ णिमि० अवंधगा जीवा थोवा ।
बंधगा जीवा अणंतगुणा । छदंस० अवंधगा जीवा थोवा । थीणगिद्धि ३ अवंधगा
जीवा विसे० । बंधगा जीवा अणंतगु० । छदंस० बंधगा जीवा विसे० । सेसं ओवं ।
१० णवरि थोवा देवगदि-बंधगा । तिण्णं गदीण अवंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-
बंधगा, तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा० संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं
आणुपुच्चि० । अंगो० कम्मइगभंगो ।

एवं सत्थाण-जीव-अप्पावहुगं समत्तं ।



५ संहननके अवंधक जीव स्तोक हैं । वज्रवृषभनाराचसंहननके वंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।
वज्रनाराच, नाराच आदि संहननोंके वंधक जीवोंमें संख्यातगुणित क्रम जानना चाहिए । पांचों
संहननोंके वंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-हुंडक संस्थानकी वंधव्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थानमें होनेसे उसका वर्णन नहीं हुआ ।]

§४६०. सम्यक्त्व-मिथ्यात्वमें, २ वेदनीय, ७ नोकपाय, २ गति, २ शरीर, २ अंगोपांग, वज्र-
वृषभसंहनन, स्थिरादि ३ धुगलमें वेदके समान भंग जानना चाहिए ।

मिथ्यादृष्टि तथा असंझीमें अभव्यसिद्धिकोंका भंग जानना चाहिए ।

§४६१. संझीमें-मनोयोगियोंका भंग जानना चाहिए ।

§४६२. आहारकमें-ओघवत् भंग हैं ।

§४६३. अनाहारकमें-५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, वर्ण ४, निर्माणके अवंधक जीव स्तोक हैं ।
इनके वंधक जीव अनन्तगुणें हैं । ६ दर्शनावरणके अवंधक जीव स्तोक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके
अवंधक जीव विशेषाधिक हैं । वंधक जीव अनन्तगुणें हैं । ६ दर्शनावरणके वंधक जीव विशेषाधिक
हैं । शेष प्रकृतियोंमें ओघवत् हैं । विशेष यह है कि देवगतिके वंधक जीव स्तोक हैं । तीनों गतिके
अवंधक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्य, तिर्यचगतिके वंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तीनोंके वंधक
जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-अनाहारकमें नरकगतिके वंधकोंका अभाव है इससे उसकी यहां परिगणना नहीं हुई है]

इसी प्रकार आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए । अंगोपांगमें कार्माण काययोगके समान भंग
जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्वस्थान-जीव-अल्प-बहुत्वका वर्णन समाप्त हुआ ।



[परत्थाण-जीव-अप्पा-बहुगपरूवणा]

§४६४. परत्थाण-जीव-अप्पा-बहुगणुगमेण दुविहो णिदेसो । ओघेण, ओदेसेण य ।

§४६५. तत्थ ओघेण सन्वत्थोवा आहारसरीर-बंधगा जीवा । तित्थयर-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउच्चि० बंधगा जीवा विसे० । ५ तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा । उच्चागोद-बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुस-गइ-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जसगित्तिबंधगा जी० संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदिसो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे० । १० णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जी० विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि ३ अणंताणु० ४ बंधगा जीवा विसे० । अपचक्खाणा० ४

[परस्थान-जीव-अल्प-बहुत्व]

§४६४. अव परस्थान जीव अल्पबहुत्व अनुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते हैं ।

§४६५. ओघकी अपेक्षा आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्यरतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता-वेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शाकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नमुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । औद्यमिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । ग्लानगृह्णित्व, अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानवरण ४ के बंधक जीव विशेषा-

बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणा० बंध० जीवा विसे० । णिदापचला-बंधगा जीवा विसे० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । क्रोध-संज० बंधगा जीवा विसे० । माणसं० वं० जीवा विसे० । माया-सं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा०, चदुदंस०, पंचंत०, बंधा तुल्ला विसेसाहिया ।

- ५ §४६६. आदेसेण णेरइएसु-सन्वत्थोवा मणुसायु बंधगा जीवा । तित्थय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० (?) । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखे० । उच्चागो० बंधगा जी० संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-जस-हस्सरदिबंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । असाद-अरदिसो० अज्जसगित्ति-बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि-तिय-अणंताणुबंधि० ४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । सेसाणं पगदीणं तुल्ला विसेसाहिया । एवं पढमाए । पंचसु मज्झिमासु एवं चेव । णवरि उच्चागोदस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सत्तमाए पुढवीए-सन्वत्थोवा मणुसगदि-उच्चागो० बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज-

धिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । निद्रा, प्रचलाके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तैजस, कार्माण शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४६६. आदेशसे—नारकियोंमें—मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । तीर्थंकर प्रकृतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं (?) । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता-वेदनीय, यशःकीर्त्ति, हास्य, रतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । असाता-वेदनीय, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें बंधक जीव समान रूपसे अधिक क्रमवाले हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमें जानना चाहिए ।

मध्यवर्त्ती ५ पृथ्वियोंमें अर्थात् दूसरीसे छठवीं पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, उच्चगोत्रके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं ।

सातवीं पृथ्वीमें—मनुष्यगति, उच्चगोत्रके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक

गुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।
उवरि सो चेव भंगो । णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धितियं अणंता-
णुबंधि ४ तिरिक्खगदि-णीचागो० बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । सेसाणं बंधगा
जीवा विसेसा० ।

§४६७. तिरिक्खेसु-सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा ५
असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० ।
णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खायु-
बंधगा जीवा अणंतगुणा । उच्चागोदस्स बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा
जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज० ।
जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । असाद- १०
अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस०
बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा
जीवा विसेसा० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० ।
थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधि० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा
जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया । एवं पंचिदिय- १५
तिरिक्ख० । णवरि असंखेज्जगुणं कादव्वं ।

जीव संख्यातगुणें हैं । आगे इसी प्रकार संख्यातगुणें संख्यातगुणेंका भंग हैं । विशेष यह
है कि मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबंधी ४, तिर्यचगति
और नीच गोत्रके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव
विशेषाधिक हैं ।

§४६७. तिर्यचगतिमें-मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यात-
गुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
तिर्यचायुके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगति-
के बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक
जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साना-वेदनीय, धर्म,
रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यच-
गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । आचारिक शरीरके
बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक,
अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषा-
धिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूप से विशेषाधिक हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ असंख्यातगुणों का भंग करना चाहिए ।

§४६८. पंचिंदिय - तिरिक्ख - पज्जत्त - जोणिणीसु - सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । गिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । उच्चागोद बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० ५ बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । गिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसेसा० । अजस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जी० १० विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसा० ।

§४६९. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु-सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि १५ बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । सादहस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० ।

§४६८. पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त पंचेन्द्रिय-तिर्यच-योनिमतियोंमें-मनुष्यायुके बंधक जीव सर्व-स्तोक हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायु के बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । उच्च गोत्र-के बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । सातावेदनीय, हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यच-गतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नरक-गतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अग्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४६९. पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिवंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

§४७०. मणुसेसु-सन्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । [तित्थयर बंधगा जीवा] संखेज्जगुणा । णिरयायु-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । ५ देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । उच्चागोद० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिवंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । १० असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छ० बंधगा जीवा विसे० । उवरि मूलोवं ।

§४७१. मणुस-पज्जत्त-मणुसिणीसु-सन्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । तित्थय० १५

असाता, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४७०. मनुष्य गतिमें आहारक शरीरके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । [तीर्थंकरके बंधक] संख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता वेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता वेदनीय, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । आहारिक शरीरके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । आगेगी प्रकृतियोंमें अर्थात् स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४, अमृत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, निद्रा, प्रचला, तैजस, कार्माणि, भय, जुगुप्सा, संवृत्त-क्रोध मान नापा लेन, ५ भयानक, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय मूलके ओषधत् जानना चाहिए ।

§४७१. मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्ययोनियोंमें आहारक शरीरके बंधक सर्वस्तोक हैं । तीर्थंकर

बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसायुबंधगा जीवा संखेज्जगु० । णिरयायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा संखेज्जगु० । इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । साद-बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउच्चि० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे० । अज्जस० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छतबंधगा जीवा विसे० । उवरि १० मूलोव० । मणुस अपज्जत्त-पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो ।

§४७२. देवेषु सच्चत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तित्थय० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायु-बंधगा असंखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थि० वं० जी० संखे० । साद-हस्सरदि-जसगि० बंधगा सरिसा संखेज्जगु० । असाद-अरदि- १५ सोग-अज्जसगि० बंधगा जीवा सरिसा संखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० ।

प्रकृतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । सातावेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक विशेष अधिक हैं । अयशःकीर्तिके बंधक विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आगेकी प्रकृतियोंमें अर्थात् ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५, स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधी ४ आदिमें मूलके ओषधत् जानना चाहिए ।

§४७२. देवगतिके मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । तीर्थकर प्रकृतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव समान रूपसे संख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव समान रूपसे संख्यातगुणें

तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छ०
 बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि ३ अनंताणुवं० ४ बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं
 बंधगा जीवा सरिसा विसे० । एवं भवण० याव ईसाणत्ति । णवरि जोदिसियसोधम्मी-
 साणे उच्चागोदस्स बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सणक्कुमार याव सहस्सारत्ति विदिय-
 पुढविभंगो । आणद् याव उवरिग्गेवज्जात्ति सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । इत्थिवे० ५
 बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । णीचागो० बंधगा जीवा
 विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि-तिय० अणंताणुवं० ४ बंधगा
 जीवा विसे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । असाद-अरति-सोग-
 अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा
 जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । अणुद्दिस-अणुत्तर० सव्वत्थोवा १०
 मणुसायु-बंधगा जीवा । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । असाद-
 अरदि-सोग-अज्जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । सोसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।
 एवं सव्वट्ठे । णवरि संखेज्जगुणं कादव्वं ।

हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यग्गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
 नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धि ३,
 अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणादि-
 के बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

भवनवासियोंसे ईशान स्वर्गपर्यंत इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेष यह है कि ज्योतिष्कदेव तथा सौधर्म, ईशान स्वर्गवासियोंमें उच्चगोत्रके बंधक
 जीव असंख्यातगुणें हैं ।

सनत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गतक दूसरे नरकके समान भंग जानना चाहिए ।

आनतसे उपरिम त्रैवेयक तक मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्रीवेदके बंधक
 जीव असंख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नीच गोत्रके बंधक
 जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । स्त्यानगृद्धिप्रिक, अनन्ता-
 नुबंधी ४ के बंधक विशेषाधिक हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें
 हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । उच्च गोत्रके बंधक
 जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव
 समान रूपसे विशेष अधिक हैं ।

अनुदिश-अनुत्तरवासी देवोंमें-मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । साता, हास्य, रति,
 यशःकीर्तिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव
 संख्यातगुणें हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूपसे विशेष अधिक हैं ।

सर्वार्थसिद्धिमें ऐसा ही जानना चाहिए । विशेष, वहां 'संख्यातगुणें' ब्रह्मकी योजना
 करनी चाहिये ।

§४७३. सन्वएइंदिय-सन्वविगलिंदिय-सन्वपंचकायाणं पंचिंदियतस-अपज्जत्ताणं च पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो । णवरि एइंदिय-वणफदि-णिगोदेसु तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा । तेउ-वाउ०--मणुसायु-मणुसगदि-मणुसाणुपु० उच्चागो० बंधगा जीवा णत्थि ।

५ §४७४. पंचिंदिय-तसाणं मूलोघं । णवरि तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखे-ज्जगुणा । पंचिंदिय-पज्जत्तगेषु-सन्वत्थोवा आहार-बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदिबंधगा जीवा संखे-ज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखे० गु० । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । साद०-बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचा-गो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसं मूलोघं ।

१५

§४७३. सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पंचकायवालोंमें तथा पंचेन्द्रियत्रयस लब्ध-पर्याप्तकोंमें-पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, एकेन्द्रिय वनस्पति निगोद जीवोंमें तिर्यचायुके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं ।

तेजकाय वायुकायमें-मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रके बन्धक जीव नहीं हैं ।

§४७४. पंचेन्द्रिय त्रयोंमें-मूलके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुण हैं ।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें-आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यात-गुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता वेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसक-वेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए ।

§४७५. तस-पज्जत्तगेसु—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायुबंधगा जीवा असं० गु० । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखे० गु० । देवगदिवंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिवंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखे० गु० । जस० बंधगा जीवा ५ संखे० गु० । हस्सरदिवंधगा जीवा सं० गु० । सादबंधगा जीवा विसे० । णिरयगदिवंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिवंधगा जीवा संखेज्जगु० । ओरालिय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा० विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० अवंधगा (?) जीवा विसे० । सेसं मूलोघं । १०

§४७६. पंचमण० तिण्णिवचि०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायुबंधगा जीवा असं० गु० । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदिवंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिवंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा १५

§४७५. त्रसपर्याप्तिकोमें—आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । उच्च-गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता-वेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैयक्तिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके अवंधक (?) जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें मूलोपपत्तु जानना चाहिए ।

[विशेष—यहाँ मिथ्यात्वके अवंधकके स्थानमें बंधक पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है ।]

§४७६. पांच मन, तीन वचनयोगमें—आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैयक्तिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके

जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० वंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० वंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०, अथवा विसेसाहियं । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सो० वंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० वंधगा जीवा विसे० । णवुंस० वंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिवंधगा जीवा विसे० । णीचागोद० वंधगा जीवा विसे० । ओरालि० वंधगा जीवा विसे० । मिच्छ० वंधगा जीवा विसे० । उवरि ओवभंगो । वचिजोगि-असच्चमोस०-तसपज्जत्तभंगो ।

§४७७. काजोगि-ओरालिय-काजोगि-ओवभंगो ।

§४७८. ओरालियमिस्से—सच्चत्थोवा देवगदि-वेगुव्वि० वंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा । उच्चागो० वंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदि वंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० वंधगा जीवा संखेज्जगुणा । इत्थिवे० वंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० वंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदिवंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सो० वंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्ज० वंधगा जीवा विसे० । णवुंस० वंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० वंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० वंधगा जीवा विसेसा० । धीणगिद्धि ३ अणंताणुबंधि० ४ ओरालि० वंधगा जीवा

बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अथवा विशेषाधिक हैं । साता वेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यच-गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । औदारिक शरीर-के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवशेष आगेकी प्रकृतियोंमें ओववत् जानना चाहिए ।

असत्यमृपा अर्थात् अनुभयवचनयोगमें-त्रसपर्याप्तकके समान भंग हैं ।

§४७७. काययोगी, औदारिक काययोगीमें ओवभंग है ।

§४७८. औदारिक मिश्र काययोगीमें-देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक है । मनुष्यायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । उच्च गोत्र-के बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साताके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । सत्यान-

विसेसा० । सेसाणं वंधगा सरिसा विसेसा० ।

§४७९. वेउव्विय-काजो०, वेउव्वियमि०—देवोधं । णवरि मिस्से आयुगं णत्थि ।

§४८०. आहार० आहारमिस्स०—सच्चत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा । देवायु-
बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-हस्स-रदि-जसगित्ति-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।
असाद-अरदि-सोग-अज्जसगित्तिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाणं वंधगा सरिसा ५
विसेसाहिया ।

§४८१. कम्मइगका०—सच्चत्थोवा देवगदि-वेउव्विय० वंधगा जीवा । उच्चागो०
बंधगा जीवा अणंतगुणा । णुसग० वंधगा जीवा संखे० गुणा । पुरिस० वंध० जीवा
संखेज्जगुणा । इत्थिवे० वंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० वंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।
हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि- १०
सो० वंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० वंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० वंधगा
जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० वंधगा जीवा
विसेसा० । भिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि ३ अणंताणुवं०, ४ वंधगा
जीवा विसेसा० । ओरालि० वंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं वंधगा जीवा
सरिसा विसेसा० ।

१५

गृह्णित्रिक, अनन्तानुबंधी ४ तथा औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतिके
बंधक जीवोंमें समान रूपसे विशेष अधिकका क्रम है ।

§४७९. वैक्रियिकाययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें देवोंके ओघवत् जानना चाहिए ।
विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगमें आयुका बंध नहीं है ।

§४८०. आहारक, आहारक मिश्रकाययोगियोंमें-तीर्थकरके बंधक सर्वतोक्त हैं । देवायुके
बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव
समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४८१. कार्माण काययोगियोंमें—देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव मनुके नोक्त हैं । तप
गोत्रके बंधक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक
जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यात-
गुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । सातावेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
असाता, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तीर्थंच गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्र-
के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मनुष्यगतिपर गण
अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

- §४८२. इत्थिवे० पुरिस०—सञ्चत्योवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । गिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जी० संखेज्जगु० । गिरयगदि-बंधगा जीवा संखे० गुणा । वेउव्विय-बंधगा जी० विसेसा० । उच्चागो० ५ बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखे० गुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अथवा हस्सरदि० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखे० गुणा । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंसबंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा १० विसेसा० । णीचागोद-बंधगा जीवा विसेसा० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि ३ अणंताणुबंधि० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४ बंध० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । णिहापचलाणं बंधगा जी० विसे० । तेजाक० बंधगा जी० विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० । णवुंसगवे० — मूलोधं । णवरि १५ भयदुगुच्छादो उवरि तुल्ला विसेसा० ।

§४८२. स्त्रीवेद, पुरुषवेदमें—आहारक शरीरके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अथवा हास्य, रतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । साताके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । निद्रा, प्रचलाके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तैजस, कार्माणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

नपुंसक वेदमें मूलके ओषवत् जानना चाहिए । विशेष, भय, जुगुप्साके आगेकी प्रकृतियोंमें अर्थात् संज्वलन क्रोधादि ४ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतरायमें समान रूपसे विशेषाधिकता है ।

§४८३. अवगदवे०—सन्वत्थोवा क्रोध-संज० बंधगा जीवा । माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसे० । लोभ-संज० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा० चदुदंस० जस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा संखेज्ज० ।

§४८४. कसायाणुवादेण—क्रोधादि० ४ याव भयदुगुं० ताव मूलोर्ध० । उवरिं ५ साधेदूण भाणिदव्वं ।

§४८५. सदि० सुद०—तिरिक्खोर्ध० । णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । विभंगे—सन्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखे० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउच्चिय० बंधगा जी० १० विसेसा० । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असंखेज्ज० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जी० संखे० गुणा । जस० बंधगा [जीवा] संखेज्जगु० । साद-हस्स-रदि-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे० । णीचा- १५ गोद० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० ।

§४८३. अपगतवेदमें—क्रोध-संज्वलनके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मान-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । सातावेदनीयके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

§४८४. कषायानुवादेसे—क्रोधादि ४ से लेकर भय, जुगुप्सापर्यन्त मूलके ओघवत् संख्या है । आगेकी प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व योग्य रीतिसे निकाल लेना चाहिये ।

§४८५. मत्यज्ञान श्रुताज्ञानमें तिर्यचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेषके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

विभंगावधिमें—मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यात-गुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देव गतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक [जीव] संख्यातगुणें हैं । साता, हात्य, रतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषा-धिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेष अधिक

§४८६. आभि० सुद० ओधि०—सञ्चत्थोवा आहारस० वंधगा जीवा । मणु-
सायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिवेउच्चि०
बंधगा जीवा असंखेज्ज० । हस्स-रदि-बंधगा जी० असं० गुणा । जस० वंधगा जीवा
विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-अज्जस० वंधगा जीवा
५ संखेज्जगुणा । मणुसगदि-ओरालि० वंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४ वंधगा
जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा० ४ वंधगा जीवा विसेसा० । णिदापचला-बंधगा जीवा
विसेसा० । तेजाक० वंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० वंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे०
बंधगा जीवा विसे० । क्रोधसंज० वंधगा जीवा विसेसाहिया । माणसं० वंधगा जीवा
विसेसा० । मायासं० वंधगा जीवा विसे० । लोभसं० वंधगा जीवा विसे० । पंचणा०
१० चदुदंस० उच्चागो० पंचंत० वंधगा जीवा विसे० ।

§४८७. मणपञ्चव०—सञ्चत्थोवा आहार० वंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा
संखेज्जगुणा । हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० वंधगा जीवा विसे० ।
सादबंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० वंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।
णिदा-पचला-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउच्चिय० तेजाक० वंधगा जीवा
१५ विसे० । पुरिसवे० वंधगा जीवा विसे० । क्रोधसंज० वंधगा जीवा विसे० । माणसं०

हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

४८६. आभिनिवोधिक-श्रुत-अवधि-ज्ञानमें—आहारक शरीरके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । यशस्कीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । साता वेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोक अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । निद्रा, प्रचला के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तैजस, कार्माण के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोधसंज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मानसंज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मायासंज्वलन के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभसंज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बंधक जीव विशेष अधिक हैं ।

§४८७. मनःपर्ययज्ञानमें—आहारकशरीरके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । देवायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । साताके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । निद्रा, प्रचलाके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । देवगति, वैक्रियिक तैजस कार्माण शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-

बंधगा जीवा विसे० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसेसा० । पंचणा० चटुदंस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० ।

§४८८. एवं संजद-सामाइ० छेदो० । णवरि याव मायासंजलणं ताव मणपज्जव-भंगो । उवरि सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

§४८९. परिहारे—सव्वत्थोवा देवायुबंधगा जीवा । आहार० बंधगा जीवा ५ संखेज्ज० । साद-हस्स-रदि-जसगि० सरिसा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाणं सरिसा विसेसा० ।

§४९०. संजदासंजदा—सव्वत्थोवा देवायु-बंधगा जीवा । साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया । १०

§४९१. असंजदेसु—तिरिक्खोघं । णवरि थीणगिद्धि ३ अणंताणुबंधि ४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

§४९२. चक्खुदंसणी-तस-पज्जत्तभंगो । अचक्खुदंसणी-ओघं । ओधिदंसणी-ओधिणाणिभंगो ।

§४९३. तिण्णि लेस्सा-असंजदभंगो । तेउलेस्सि०—सव्वत्थोवा आहार० १५

संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मानसंज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभसंज्वलनके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञाना-वरण, ४ दर्शनावरण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४८८. संयम, सामायिक छेदोपस्थापना संयममें इसी प्रकार हैं । विशेष, मायासंज्वलनपर्यन्त मनःपर्ययके समान भंग है । आगेकी शेष प्रकृतियोंके बंधक जीवोंमें सदृश रूपसे विशेषाधिकता है ।

§४८९. परिहारविशुद्धि संयममें—देवायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । आहारकशरीरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिमें सदृश रूपसे संख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । शेष प्रकृतिके बंधक सदृश रूप विशेषाधिक हैं ।

§४९०. संयतासंयतोंमें—देवायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९१. असंयतोंमें—तिर्यचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानु-बंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९२. चक्षुदर्शनवालोंमें—त्रसपर्याप्तके समान भंग जानना चाहिए । अचक्षुदर्शनवालोंमें—ओघवत् जानना चाहिए । अवधिदर्शनवालोंमें—अवधिज्ञानके समान भंग है ।

§४९३. कृष्णादि तीन लेस्यावालोंमें—असंयतोंके समान भंग हैं । तेजेलेस्यावालोंमें—

बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा संखेज्जु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जु० ।
 तिरिक्खायु-बंधगा [जीवा] असंखेज्जु० । देवगदि-वेउज्जिय० बंधगा संखेज्जुगुणा ।
 उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जुगुणा । मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जुगुणा ।
 पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्जुगु० । इत्थिवे० बंधगा [जीवा] संखेज्जुगुणा
 ५ साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जुगु० । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा
 जीवा संखेज्जुगुणा । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जुगुणा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा
 विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० ।
 मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे० । थीणगिद्धि ३ अणंताणुबंधि ४ बंधगा जीवा विसेसा०
 हिया । अपच्चक्खाणावर० ४ बंधगा जी० विसे० । पच्चक्खाणावर० ४ वं० जीवा
 १० विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० ।

§४९४. पम्माए—आहार० थोवा । मणुसायु-बंधगा जीवा संखेज्जुगुणा । तिरि-
 क्खायु-बंध० जीवा असंखेज्जुगु० । देवायु-बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसग०
 बंधगा जीवा संखेज्जुगु० । इत्थिवे० वं० जीवा संखेज्जुगु० । णवुंस० बंधगा जीवा
 संखेज्जुगु० । तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे० । णीचागो० वं० जीवा विसे० ।
 १५ ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा सरिसा असंखेज्जु-
 गुणा । असाद-अरदि-सो०-अज्जस० बंध० सरिसा संखेज्जुगुणा । देवगदि-वेउज्जि०

आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
 देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक [जीव] असंख्यातगुणें हैं । देवगति,
 वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्य-
 गतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक
 [जीव] संख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।
 असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव
 संख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीचगोत्रके बंधक जीव विशेषा-
 धिक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक
 हैं । स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के
 बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके
 बंधक जीव समानरूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९४. पद्मलेश्यामें—आहारक शरीरके बंधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव
 संख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव विशेषाधिक
 हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । नपुंसक-
 वेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीचगोत्रके
 बंधक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । साता वेदनीय,
 हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव समान रूपसे असंख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक,
 अयशःकीर्तिके बंधक जीव समान रूपसे संख्यातगुणें हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक

बंधगा जीवा विसे० । उच्चागो० बंध० जी० विसे० । पुरिस० बंधगा जीवा विसे० ।
मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे० । उवरि तेउभंगो ।

§४९५. सुक्काए—सच्चत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा
संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउज्जि० बंधगा जीवा असंखे-
ज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । ५
णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे० । धीणगिद्धि ३
वं०, अणंताणुवं० ४ बंधगा विसे० । हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा
जीवा विसे० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-[सोग] अज्ज० बंधगा
जीवा संखेज्जगुणा । उच्चागो० बंधगा जीवा विसेसा० । पुरिस० बंध० जीवा विसेसा० ।
मणुसग० ओरालि० बंधगा जी० विसे० । अपच्चक्खाणा० ४ बंध० जीवा विसेसा० । १०
पच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । उवरि ओघभंगो ।

§४९६. भवसिद्धि—मूलोघं । अब्भवसिद्धि—मदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-सोलस-कसा०
एकत्थ भाणिदव्वा ।

§४९७. सम्मादिद्धि—ओधिभंगो । खड्ग-सम्मा०—सच्चत्थोवा आहार० बंधगा जीवा ।

जीव विशेषाधिक हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक
हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें तेजोलेख्याके समान भंग हैं ।

§४९५. शुक्ललेख्यामें—आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव
संख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव
असंख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीव संख्यात-
गुणें हैं । नीचगोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
स्त्यानगृद्धित्रिकके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अनन्तानुबंधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
हास्य, रतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नागादे
बंधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, [शोक] अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें
हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।
मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव
विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें—
ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

§४९६. भवसिद्धिकोंमें—मूल ओघवत् जानना चाहिए । अब्भवसिद्धिकोंमें—मनुष्यायुके
भंग जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्व और सोलह कसायके बंधकोंका भंग एक साथ
लगाना चाहिये ।

[विशेष—यहां मिथ्यात्वके साथ १६ कसायका सदा बंध होता है । इस कारण इनका शुद्ध
भंग नहीं कहा है ।]

§४९७. सम्यग्दृष्टियोंमें—अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । इतिदिवस-
में—आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । देवायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं ।

देवायु-ब्रंधं जी० संखेज्ज० । मणुसायु-ब्रंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउच्चि० ब्रंधगा जीवा विसे० । उवरि ओधिभंगो ।

§४९८. वेदगे—सच्चत्थोवा आहार० ब्रं० जीवा । मणुसायु-ब्रंधगा जीवा संखे-ज्जगु० । देवायु-ब्रंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवगदि-वेउच्चि० ब्रंधगा जीवा असंखे-ज्जगु० । साद-हस्स-रदि०-जस० ब्रंधगा जी० असंखे० गु० । असाद-अरदि-सो० अज्जस० ब्रंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसग० ओगलि० ब्रंधगा जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा० ४ ब्रंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणा० ४ ब्रंध० जीवा विसे० । सेसाणं ब्रंधगा जीवा सरिसा विसे० ।

§४९९. उवसम-सं०—सच्चत्थोवा आहार० ब्रंधगा जीवा । देवगदि-वेउच्चि-य-१० ब्रंधगा जी० असंखेज्जगु० । उवरि ओधिभंगो ।

§५००. सासणे—सच्चत्थोवा मणुसायु-ब्रंधगा जीवा । देवायु-ब्रंधगा जीवा असंखे-ज्जगु० । देवगदि-वेउच्चि० ब्रंधगा जी० असंखे० गुणा । तिरिक्खायु-ब्रंधगा जी० असंखे० गुणा । मणुसगदि-ब्रंधगा जी० संखेज्जगुणा । पुरिसवे० ब्रंधगा जीवा संखे० गुणा । साद-हस्स-रदि-जस० ब्रंध० जीवा विसे० । इत्थिवे० ब्रंधगा जी० संखेज्ज-१५ गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्ज० ब्रं० जीवा विसेसा० । अथवा असाद-अरदि-सो० अज्ज० ब्रंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० ब्रंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खागदि०

मनुष्यायुके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेष अधिक हैं । आगे अबाधज्ञानके समान भंग है ।

§४९८. वेदकसम्यक्त्वमें—आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतिके बंधक जीव समानरूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९९. उपशमसम्यक्त्वमें—आहारक शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें अवधिज्ञानका भंग है ।

§५००. सासादनसम्यक्त्वमें—मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । देवायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अथवा असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव

बंधगा जी० विसे० । णीचागो० बंधगा जी० विसे० । ओरालि० बंधगा जी० विसे० ।
सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवां सरिसा विसेसा० ।

§५०१. सम्मामिच्छ०—सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा. वेउव्वि० बंधगा जीवा ।
साद-हस्सरदि-जस० बंधगा जीवा असंखे० गुणा । असाद-अराद-सो० अज्ज०
बंधगा जी० संखेज्जगु० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जी० विसे० । सेसाणं पगदीणं ५
बंधगा जीवा सरिसा विसे० । मिच्छादिट्ठि अब्भवसिद्धिभंगो ।

§५०२. सण्णीसु—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जी०
असंखे० गुणा । णिरयायु-बंध० जीवा असंखे० गुणा । देवायु-बंधगा [जीवा]
असंखे० गुणा । णिरयगदि-बंधगा जी० संखेज्जगुणा । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असंखे०
गुणा । देवगदि-बंधगा जी० संखेज्जगु० । वेउव्वि० बंधगा जी० विसे० । उच्चागो० १०
बंधगा जी० संखेज्जगु० । मणुसग० बंधगा जी० संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा जीवा
संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जी० संखेज्जगु० । जस० बंधगा जी० संखे० गु० ।
हस्सरदि-बंधगा जी० विसे० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । उवरि मणजोगिभंगो ।
असण्णी-मिच्छादिट्ठि-भंगो ।

§५०३. आहारा-ओघभंगो । अणाहारा-कम्मइगभंगो ।

१५

एवं परत्थाण-जीव-अप्पावहुगं समत्तं ।

विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव
समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§५०१. सम्यग्मिध्यातवमें—देवगतिके बंधक जीव सवस्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक
जीव भी इसी प्रकार हैं । साता वेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधक जीव असंख्यातगुणें
हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगति, औदारिक
शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।
मिध्यादृष्टिमें—अभव्य सांद्धकोंके समान भंग हैं ।

§५०२. संज्ञीमें—आहारक शरीरके बंधक जीव सर्व स्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव असं-
ख्यातगुणें हैं । नरकायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक [जीव] असंख्यातगुणें हैं ।
नरकगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असंख्यातगुणें हैं । देवगतिके
बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । उच्च गोत्रके बंधक
जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव संख्यात
गुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । यश कीर्तिके बंधक जीव संख्यातगुणें हैं । हास्य,
रतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । साता वेदनीयके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । आनंदी शेष
प्रकृतियोंमें मनोयोगीके समान भंग हैं । असंज्ञीमें—मिध्यादृष्टिके समान भंग हैं ।

§५०३. आहारकमें—ओघके समान भंग हैं । अनाहारकोंमें—काम्याय कदयोगीके समान भंग हैं ।

इस प्रकार परत्थाण जीव जल्प बहुत समान हुआ ।

[अद्धा-अप्पा-बहुगपरुवणा]

§५०४. अद्धा-अप्पाबहुगं दुविहं । सत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं चेव, परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं चेव । सत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं पगदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ।

§५०५. तत्थ ओघेण-एत्तो परियत्तमाणियाणं अद्धाणं जहण्णुक्कस्सपदेण एक्कदो
५ कादूण चोदसणं जीवसमासाणं ओघियअप्पाबहुगं वत्तइस्सामो ।

§५०६. चोदस्सणं जीवसमासाणं—सादासादं दोणं पगदीणं जहणियाओ बंध-गद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । सुहुम-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्य उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । वादर-एइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा ।

[अद्धा अल्प बहुत्व]

§५०४. अद्धा-अल्पबहुत्वका अर्थ है कालसम्बन्धी हीनाधिकपना । यहाँ स्वस्थान-अद्धा-अल्प-बहुत्व तथा परस्थान-अद्धा-अल्प-बहुत्व से अद्धा-अल्प-बहुत्व दो प्रकारका है । स्वस्थान-अद्धा-अल्प-बहुत्व प्रकृत है । उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

§५०५. ओघसे यहाँसे आगे चौदह जीवसमासोंमें ओघसम्बन्धी अल्प-बहुत्वका परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य और उत्कृष्ट पदके द्वारा एक-एक करके, वर्णन करेंगे ।

§५०६. चौदह जीव समासोंमें साता-असाता इन दोनों प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

[विशेष—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, इन सातोंमेंसे प्रत्येकके पर्याप्त-अपर्याप्त भेद करने पर चौदह जीव-समास होते हैं । यहाँ वेदनीय २, वेद ३, हास्यादि ४, गति ४, जाति ५, शरीर २, संस्थान ६, संहनन ६, आनुपूर्वी ४, विहायोगति, त्रसस्थावरादि ४, स्थिरादि ६ युगल, अंगोपांग २, गोत्र २ ये परिवर्तमान प्रकृतियां जघन्य उत्कृष्ट कालके भेदसे चौदह जीवसमासोंमें वर्णित की गई हैं ।]

सूक्ष्म-अपर्याप्तकमें साताके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकमें साताके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यात-

(१)“अत्थि चोदस जीवसमासा । के ते ? एइंदिया दुविहा वादरा सुहुमा । वादरा दुविहा, पज्जत्ता, अपज्जत्ता । सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । वीइन्दिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । तीइन्दिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । चउरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । पंचिंदिया दुविहा सण्णिणो असण्णिणो । सण्णिणो दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । असण्णिणो दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता इदि । ऐदे चोदस जीवसमासा, अदीदजीवसमासा वि अत्थि ।” -ब० टी० भा० २ पृ० ४१५, ४१६ ।

संखेज्जगुणा । सुहुम-पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । वादर-एइंदिय-पज्जत्तस्स सो चेव भंगो । वेइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसाहिया । वेइंदिय-अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदिय अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसाहिया । एवं पज्जत्तगेषु वि सादासादाणं णेदव्वं । पंचिंदिय-असण्णि-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । पंचिंदिय-सण्णि-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । पंचिंदिय-सण्णिस्स पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । पंचिंदिय-सण्णिस्स पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा ।

१५०७. चौदसणं जीवसमासाणं तिणिण वेदाणं जहणिया वंधगद्धा सरिसा थोवा । सुहुम-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । णवुंसकवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । गुणा है । असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । सूक्ष्म पर्याप्तकमें साताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमें सूक्ष्म अपर्याप्तकके समान भंग है ।

दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमें—साताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमें—साताके वंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमें साताके वंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमें, असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमें, असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमें, असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियोंके पर्याप्तकोंमें, साता, असाताके वंधकका काल पूर्ववत् जानना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय-असंज्ञी-अपर्याप्तकमें—साताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय-संज्ञी-अपर्याप्तकमें—साताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय असंज्ञी-पर्याप्तकमें साताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय-संज्ञी पर्याप्तकमें—साताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

१५०८. चौदह जीव-सनासोमें—तीन वेदोंके वंधकोंका उच्चतम वंधकाल समान रूपमें न्योक्त है । सूक्ष्म-अपर्याप्तकमें—पुरुषवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । रुद्रवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । नपुंसकवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । वादर-अपर्याप्तक-



वादर-अपज्जत्तस्स तं चेव भाणिद्वं । सुहुम-वादर-पज्जत्ताणं च तं चेव भंगो । वेहंदिय-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखे० गुणा । तेहंदिय-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसा० । वेहंदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेहंदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसा० । चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसा० । वेहंदिय-अपज्जत्तस्स णवुंसकवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखे० गुणा । तेहंदिय-अपज्जत्तस्स णवुंसकवेदस्स उक्क० वंधगद्धा विसेसा० । चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स णवुंसकवेदस्स उक्क० वंधगद्धा विसेसा० । एवं पज्जत्तगेषु वि तिण्णं वेदाणं णेदव्वं । पंचिंदिय-असण्णि-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्क० वंधगद्धा संखेज्जगुणा । इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखे० गुणा । णवुंसकवेदस्स उक्क० वंधगद्धा संखेज्जगुणा । पंचिंदिय-सण्णि-अपज्जत्तस्स तं चेव भाणिद्वं । पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स एसेव भंगो । पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स तं चेव भंगो ।

§५०८. हस्स रदि-अरदि-सोगाणं सादासाद-भंगो ।

§५०९. चदुण्णं गदीणं वंधगद्धाओ जहणियाओ सरिसाओ थोवाओ ।

१५ सुहुम-अपज्जत्त-मणुसगदि-उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । वादर-वेदणीयभंगो । एवं याव सण्णि-असण्णि-

एकेन्द्रियमें—उपरोक्त ही भंग है । सूक्ष्म पर्याप्तक तथा वादर पर्याप्तकमें—यही भंग जानना चाहिए । दोइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—पुरुषवेदके वंधकका उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—पुरुषवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—पुरुषवेदके वंधकका उत्कृष्टकाल विशेषाधिक है । दोइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—स्त्रीवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तकमें स्त्रीवेदके वंधकका उत्कृष्टकाल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—स्त्रीवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । दोइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—नपुंसकवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—नपुंसकवेदके वंधकका उत्कृष्टकाल विशेषाधिक है । इसी प्रकार दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय पर्याप्तकोंमें तीन वेदोंका काल जानना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय-असंज्ञी-अपर्याप्तकमें—पुरुषवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । नपुंसकवेदके वंधकका उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय-संज्ञी-अपर्याप्तकमें—पूर्वोक्त भंग जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय-असंज्ञी-पर्याप्तकमें भी ऐसा ही जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकमें भी पूर्वोक्त भंग जानना चाहिए ।

§५०८. चौदह जीव-समासोंमें—हास्य-रति, अरति-शोकके वंधकोंका उत्कृष्ट तथा जघन्यकाल साता तथा असाता वेदनीयके समान जानना चाहिए ।

§५०९. चौदह जीव-समासोंमें—चारों गतिके वंधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक हैं । सूक्ष्म अपर्याप्तकमें—मनुष्यगतिके वंधकका उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा है । तिर्यचगतिके वंधकका उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा है । वादर-अपर्याप्तकमें—वेदनीयके समान भंग है । इसी प्रकार संज्ञी,

अपज्जत्तग ति वेदणीयभंगो । पंचिंदिय-असण्णि-अपज्जत्तस्स देवगदि-उक्कस्सिया
 बंधगद्धा संखेज्जगुणा । मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-
 उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । णिरयगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्ज-
 गुणा । एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स० । पंचण्णं जादीणं जहणियाओ बंधगद्धाओ
 सरिसाओ थोवाओ । सुहुम-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा ५
 संखेज्जगुणा । चदुरिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स उक्कस्सिया
 बंधगद्धा संखेज्जगुणा । वेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एइंदियस्स
 उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं वादर-अपज्जत्ताणं । सुहुम-वादर-एइंदिय-
 पज्जत्ताणं च एवं चेव भंगो । वेइंदिय-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा
 संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स-अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिंदिय- १०
 अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । एवं सेसाणं जादीणं । एवं पज्जत्ताणं
 च णोदन्नं । पंचिंदियं-सण्णि-असण्णि-अपज्जत्ता सुहुम-अपज्जत्तभंगो । पंचिंदिय-असण्णि-
 पज्जत्तस्स-चदुरिं० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स उक्कस्सिया
 बंधगद्धा संखेज्जगुणा । वेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एइंदियस्स

असंझी अपर्याप्तक पर्यन्त वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय-असंझी अपर्याप्तकमें—
 देवगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । मनुष्यगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा
 है । तिर्यचगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । नरकगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल
 संख्यातगुणा है ।

पंचेन्द्रिय-संझी-पर्याप्तकमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

पंचजातियोंके बंधकोंका जघन्य काल समानरूपसे स्तोक है । सूक्ष्म-अपर्याप्तकमें—
 पंचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । चौइंद्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल
 संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रियके बंधकका उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा है । दोइंद्रियके बंधकका
 उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । एकेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । वादर
 अपर्याप्तकमें इसी प्रकार भंग है । सूक्ष्म-वादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार जानना
 चाहिए ।

दोइंद्रिय-अपर्याप्तकमें—पंचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय
 अपर्याप्तकमें—पंचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइंद्रिय-अपर्याप्तकमें—
 पंचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइंद्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, दोइंद्रिय
 जाति, एकेन्द्रिय जातिके बंधकोंका काल इसी प्रकार जानना चाहिए । इसी प्रकारका वर्णन
 दोइंद्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक, चौइंद्रिय-पर्याप्तकमें जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय संझी-असंझी-
 अपर्याप्तकमें सूक्ष्म-अपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय-असंझी पर्याप्तकमें—चौइंद्रियके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय-
 के बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । दोइंद्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यात-

- उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । पंचिंदियस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं सण्णि-पज्जत्ता । दोण्णं सरीराणं जहण्णिगाओ वंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । सुहुम-अपज्जत्तस्स ओरालियसरीरस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं याव पंचिंदिय-असण्णि-सण्णि-[अ] पज्जत्तगत्ति । तेसिं चेव पज्जत्तेसु ओरालियसरीरस्स
- ५ उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । वेउच्चियसरीरस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तयस्स० । छस्संठाणं छस्संवडणं चट्ठु-आणुपुच्चि-दो-विहायगदि-तसथावरादि० ४ थिरादिछयुगलं सादासादाणं भंगो याव पंचिंदिय-असण्णि-सण्णि-पज्जत्तात्ति । णवरि पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स थावर० उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । तसस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं पंचिंदिय-
- ३० सण्णि-पज्जत्तस्स । एवं वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारणं कादव्वं । दो-अंगो-वंगाणं सरीर-भंगो । दो-गोदं वेदणीय-भंगो ।

§५१०. आदेसेण-णेरइएसु दोण्णं जीवसमासाणं दोण्णं पगदीणं जहणियाओ वंधगद्धाओ सरिसाओ थोवा । अपज्जत्तयस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्ज-

गुणा है । एकेन्द्रिय जातिके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय जातिके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकमें—इसी प्रकार भंग है ।

दोनों शरीरों—वैक्रियिक औदारिक शरीरके वंधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है । सूक्ष्म-अपर्याप्तकमें—औदारिक शरीरके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय असंज्ञी-संज्ञी अपर्याप्तक पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । इनके ही पर्याप्तकोंमें अर्थात् पंचेन्द्रिय असंज्ञी-संज्ञी-पर्याप्तक पर्यन्त औदारिक शरीरके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । वैक्रियिक शरीरके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

६ संस्थान, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ युगलोंके विषयमें पंचेन्द्रिय असंज्ञी-संज्ञी-पर्याप्तक पर्यन्त साता, असाताके समान जानना चाहिए । विशेष, पंचेन्द्रिय-असंज्ञी-पर्याप्तकमें स्थावर प्रकृतिके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । त्रसके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकमें भी जानना चाहिए । वादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । अर्थात् जिस प्रकार स्थावर तथा त्रसके वंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा कहा है, उसी प्रकार यहां भी वादर, सूक्ष्मादिके वंधकोंमें जानना चाहिए । दो अंगोपांग अर्थात् औदारिक वैक्रियिक अंगोपांग-के वंधकोंमें शरीरके समान भंग जानना चाहिए अर्थात् औदारिक, वैक्रियिक शरीरके वंधकोंके समान इनके भंग हैं । नीच, उच्च गोत्रके वंधकोंमें वेदनीयके सदृश भंग है ।

§५१०. आदेशसे—नारकियोंमें—पर्याप्तक, अपर्याप्तक रूप दो जीव समासोंमें साता-असाता इन दो प्रकृतियोंका जघन्य वंधकाल समान रूपसे स्तोक है । अपर्याप्तक नारकीमें—साताके वंधकका

गुणा । असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं तिण्णि-वेदाणं हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं दोगदि-छस्संठाणं छस्संघडणं दो-आणुपुव्वि-दोविहायगदि-थिरादिछयुगलं दोगोदाणं च सादासादभंगो । एवं याव छट्ठित्ति । सत्तमाए एवं चेव । णवरि दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदाणं च णत्थि अप्पावहुगं ।

५

§५११. तिरिक्क[क्ख]गदि-णवुंसगवेद-मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-असंजद-अचक्खु-दंसणि-भवसिद्धिय-अब्भवसिद्धिय-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-आहारग त्ति ओघभंगो । णवरि असण्णीसु वारस जीवसमासा त्ति भाणिदव्वं ।

§५१२. पंचिंदिय-तिरिक्खेसु-चटुण्णं जीवसमासाणं कादव्वं । पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु दोजीवसमासाणं भाणिदव्वं सण्णि-असण्णित्ति । पंचिंदिय- १० तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु दोजीवसमासा सण्णि-असण्णित्ति ।

§५१३. मणुसेसु-दो जीवसमासा । पज्जत्तजोणिणीसु एककं चेव । सादासादाणं

उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पर्याप्तक नारकी में—साताके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, २ गति (मनुष्य-तिर्यचगति), ६ संस्थान, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंके बंधकोंमें साता, असाता वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । यह क्रम प्रथम पृथ्वीसे छठवीं पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए । सातवीं पृथ्वीमें—इसी प्रकार भंग है । विशेष, दो गति, २ आनुपूर्वी, २ गोत्रोंके बंधकोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ।

[विशेष—सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थानमें ही तिर्यचगति तिर्यचाणुपूर्वी तथा नीचगोत्रका बंध होता है । तृतीय तथा चतुर्थ गुणस्थानमें ही मनुष्यगति मनुष्याणुपूर्वी तथा उच्च-गोत्रका बंध होता है । अतः इनके निमित्तसे सप्तम पृथ्वीमें अल्पबहुत्वपना नहीं पाया जाता है ।]

§५११. तिर्यचगति, नपुंसकवेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयमी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक पर्यन्त ओघके समान भंग जानना चाहिए । विशेष, असंज्ञी जीवोंमें बारह जीवसमास कहना चाहिए ।

[विशेष—इनमें संज्ञी पर्याप्तक तथा संज्ञी अपर्याप्तक ये दो जीवसमास नहीं होते हैं ।]

§५१२. पंचेन्द्रिय-तिर्यचोंमें—संज्ञी, असंज्ञी तथा इन दोनोंके पर्याप्तक, अपर्याप्तक भेदरूप चार जीवसमास हैं ।

पंचेन्द्रिय-तिर्यच पर्याप्तक तथा पंचेन्द्रिय-तिर्यच-योनिमतिर्योमें—संज्ञी तथा अनंज्ञी ये दो जीवसमास कहना चाहिए । पंचेन्द्रिय-तिर्यच-अपर्याप्तकोंमें—संज्ञी तथा असंज्ञी ये दो जीव समास हैं ।

§५१३. मनुष्योंमें—संज्ञी पर्याप्तक तथा संज्ञी-अपर्याप्तक ये दो जीव समास हैं ।

[विशेष—मनुष्योंमें असंज्ञीभेद नहीं होता । लब्धपर्याप्तक मनुष्य भी संज्ञी ही होते हैं ।]

जहणिया वंधगद्धा सरिसा थोवा । सादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा ।
असादस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । एदेण कमेण भाणिदव्वं । एवं मणुस-
अपज्जत्ता ।

§५१४. देवाणं-णिरयभंगो याव सहस्सार त्ति । णवरि भवणवासिय यात्र ईसाण
५ त्ति । दोण्णं जादीणं तसथावरादीणं दाण्णं जीवसमासाणं जहणिया वंधगद्धा सरिसा
थोवा । अपज्जत्त-पंचिदिय-तसस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । एइंदिय-
थावरस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । तं चेव पज्जत्ते० । आणद याव उवरिम-
गेवज्जात्ति णेरइयभंगो । णवरि मणुसगदि० २ ध्रुवं कादव्वं । अणुदिसादि याव
सवट्ठत्ति-दोण्णं जीवसमासाणं दोवेदणीय-हस्स-रदि-अरदि-सोग-थिरादि-त्तिणिगुगलं
१० णिरयभंगो । सेसाणं णत्थि अप्पावहुगं ।

§५१५. एइंदिएसु-चटुण्णं जीवसमासाणं ओघभंगो । एवं वादर० दोण्ण० [ण्णं]
जीवसमासाणं । सुहुम० दोण्णं जीवसमासाणं, वादर-पज्जत्त-अपज्जत्त-सुहुम-पज्जत्ता-
पज्जत्तगेसु पत्तेगं पत्तेगं एगं जीवट्ठाणं । एवं पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-

मनुष्य-पर्याप्तक तथा मनुष्यनीमें—एक पर्याप्तक रूप ही जीवसमास है । साता-असाता-
के वंधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है । साताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।
असाताके वंधकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । इस क्रमसे अन्य प्रकृतियोंके वंधका क्रम जानना
चाहिए ।

अपर्याप्तक मनुष्योंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§५१४. देवगतिमें—सहस्सार स्वर्ग पर्यन्त नारकियोंके समान भंग है । विशेष, भवनत्रिक तथा
सौधर्म ईशानमें त्रस-स्थावरादिके वंधकोंका जघन्यकाल दोनों जीवसमासोंमें समान रूपसे स्तोक
हैं । अपर्याप्तक-पंचेन्द्रिय-त्रसका उत्कृष्ट वंधकाल संख्यातगुणा है । एकेन्द्रिय-स्थावरका उत्कृष्ट
बंधकाल संख्यातगुणा है । पर्याप्त पंचेन्द्रिय त्रस तथा पर्याप्त एकेन्द्रिय-स्थावरके वंधकोंके विषयमें
अपर्याप्तकोंके समान भंग है । आनतसे उपरिम त्रैवेयक पर्यन्त-नारकियोंके समान भंग है । विशेष
यह है, कि यहां मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्विका ध्रुव भंग करना चाहिए । कारण वहां तिर्यच-
गतिद्विकका वंध नहीं होता है । अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि-पर्यन्त-पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोनों जीव
समासोंमें—दो वेदनीय हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन गुगलके वंधकोंका नरकके समान
भंग जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ।

§५१५. एकेन्द्रियोंमें—सूक्ष्म, वादर तथा इनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक रूप चार जीव-समास
होते हैं, उनमें ओघवत् भंग है । इसी प्रकार वादरमें पर्याप्त, अपर्याप्त रूप दो जीव-समास
हैं । सूक्ष्ममें भी पूर्वोक्त पर्याप्त, अपर्याप्तमें दो जीव-समास हैं । वादर, पर्याप्त-अपर्याप्त तथा
सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्तमें प्रत्येक प्रत्येकका एक जीव समास है ।

[विशेष—एकेन्द्रियोंमें वादर, सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त अपर्याप्त इस प्रकार चार पृथक्-पृथक्
जीवसमास होते हैं ।]

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक तथा निरोदियोंमें इसी प्रकार जानना

चाउकाइय-णिगोदाणं । णवरि तेउ-चाऊणं मणुसगदितियं णत्थि । वणप्फदि-काइय-छण्णं जीवसमासाणं । वादर-वणप्फदि-पत्तेय० दोण्णं जीवसमासाणं । विकलिदि० दोण्णं जीवसमासाणं । पज्जत्तापज्जत्ताणं एवकं चेव जीवसमासा । पंचिंदिएसु चट्ठण्णं जीवसमासाणं । पज्जत्ते दोण्णं जीवसमासाणं । अपज्जत्ते दोण्णं जीवसमासाणं । तसेसु-दस-जीवसमासाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं पंच जीवसमासाणं ।

§५१६. पंचमण० पंचवच्चि० वेउव्विय० वेउव्वियमिस्सका० [आहार]
आहारमिस्सका० कम्मइग० अवगद० कौधादि० ४ सुहुमसांपराय-सासणसम्माइट्ठि-
सम्मामिच्छाइट्ठि-अणाहारगत्ति णत्थि अप्पावहुगं ।

१५१७. काजोगीसु-वेउव्वियल्लक्कं वज्ज सेसाणं ओवभंगो कादव्वो । एवं ओरालिय-काजोगि-ओरालियमिस्स-काजोगीसु । णवरि सत्तणं जीवसमासाणं त्ति १० भाणिदव्वं ।

§ ५१८. इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु-चदुण्णं जीवसमासात्ति भाणिदव्वं ।

चाहिए। विशेष, तेजकायिक, वायुकायिकमें मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी तथा मनुष्यायुका बंध नहीं होता है। वनस्पतिकायिकमें साधारण तथा प्रत्येक ये दो भेद हैं। इनमेंसे प्रत्येकके पर्याप्त तथा अपर्याप्त ये दो भेद हैं। साधारणके वादर तथा सूक्ष्म ये दो भेद हैं। वादरके पर्याप्त तथा अपर्याप्त और सूक्ष्मके भी पर्याप्त तथा अपर्याप्त इस प्रकार वनस्पतिकायिकमें ६ जीव-समास हैं। वादर-वनस्पति प्रत्येकके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास हैं। विकलेन्द्रियके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास हैं। इनके पर्याप्तकों तथा अपर्याप्तकोंमें एक एक जीव-समास हैं। पंचेन्द्रियोंमें चार जीव-समास हैं। पर्याप्तकोंमें संज्ञी और असंज्ञीमें दो जीव-समास हैं। अपर्याप्तकोंमें भी संज्ञी और असंज्ञी ये दो जीव-समास हैं।

त्रसोंमें—दस जीव समास हैं, पर्याप्तकोंमें पांच अर्थात् दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पांच हैं तथा अपर्याप्तकोंमें भी पांच जीव समास हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर दस जीव समास होते हैं।

§५१६. ५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, [आहारक] आहारकमिश्रकाययोगी, कार्माणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि ४ कपाय, सूक्ष्मसांपराय, सासादन-सम्यक्त्वी, सम्यग्मिध्यादृष्टि, अनाहारकपर्यन्त अल्पवहुत्व नहीं है ।

§५१७. काययोगियोंमें—वैक्रियिकपट्कको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग करना चाहिए । औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगीमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहां सात जीव-समास करना चाहिए । अर्थात् पर्याप्तिकोंके सूक्ष्म-चादर-एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये सात भेद हैं तथा अपर्याप्तिकोंके भी ये सात जीव-समास हैं ।

§५१८. स्त्रीवेदियों, पुरुषवेदियोंमें—पर्याप्त, अपर्याप्त भेद युक्त संज्ञी तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय वे चार जीव-समाप्त कहना चाहिए ।

— §५१९. विभगे वेउच्चिय-छक्कं तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणाणं णत्थि अप्पावहुगं । सेसाणं देवभंगो ।

§५२०. आभि० सुद० ओधिणाणीसु—दोण्णं जीवसमासाणं दोवेदणीय-चटु-णो-कसाय-थिरादि-तिण्णि-युगलाणं ओघं । सेसाणं णत्थि 'अप्पावहुगं । एवं ओधिदं०

५ सम्मादिट्ठी-खहग-सम्मादिट्ठी-वेदग-सम्मादिट्ठी-उवसम-सम्मादिट्ठी त्ति । मणपज्जव-णाणि ओधिभंगो । णवरि एक्कं जीवट्ठाणं ।

§५२१. एवं संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावणं परिहार-संजदासंजद० । चक्खु-दंसणी तिण्णि जीवसमासाणि ।

१० §५२२. तिण्णिलेस्सि० वेउच्चियछक्कं पंचजादि-तसथावरादि ४ णत्थि अप्पावहुगं । सेसाणं णिरय-भंगो । तेउलेस्सि०—देवगदि० ४ वज्ज सेसाणं देवोघभंगो । एवं पम्माए । णवरि सहस्सार-भंगो । सुक्काए-आणद-भंगो ।

§५२३. सण्णिस्स दोण्णं जीवसमासाणं ओघं ।

एवं सत्थाणं अट्ठा अप्पावहुगं समत्तं । एवं पत्तेगेण णीदं ।

§५१९. विभंगावधिमें—वैक्रियिकपट्क, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्तक-साधारणके बंधकोंमें अल्पवहुत्व नहीं है । शेष प्रकृतियोंके विषयमें देवगतिके समान भंग हैं ।

§५२०. आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमें—पर्याप्तक, अपर्याप्तकरूप दो जीव-समास हैं । इनमें दो वेदनीय, चार नोकपाय, स्थिरादि तीन युगलके बंधकोंमें ओघवन जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंमें अल्पवहुत्व नहीं हैं ।

अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टिमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानीमें—अवधिज्ञानके समान भंग है । विशेष, यहाँ संज्ञी पर्याप्तक रूप एक ही जीव-स्थान है ।

§५२१. संयमी, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, संयतासंयतोंमें—मनःपर्ययज्ञानके समान एक जीव-स्थान है । चक्षुदर्शनीमें—चौद्विन्द्रिय पर्याप्तक तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तक संज्ञी एवं पंचेन्द्रिय पर्याप्तक असंज्ञीमें तीन जीव-समास हैं ।

§५२२. कृष्ण-नील-कापोत-लेश्याओंमें—वैक्रियिकपट्क, ५ जाति, त्रस-स्थावरादि ४के बंधकोंमें अल्पवहुत्व नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें नरकगति के समान भंग हैं ।

तेजोलेश्यामें—देवगति ४ को छोड़कर शेष प्रकृतियोंके विषयमें देवोंके ओघवत् भंग है ।

पद्मलेश्यामें—इसी प्रकार भंग है । विशेष यह है कि यहाँ सहस्रार स्वर्गके समान भंग है ।

शुक्ललेश्यामें—आनत स्वर्गके समान भंग है ।

§५२३. संज्ञीमें—पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास हैं । उनमें ओघवत् जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्वस्थान अट्ठा-अल्पवहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार प्रत्येक रूपसे वर्णन किया ।

[परत्थाण-अद्धा-अप्पावहुगपरूवणा]

§५२४. एत्तो परत्थाण-अद्धा-अप्पावहुगेण पगदं । एत्तो परियत्तमाणियाणं अद्धाणं जहणुक्कस्सेण पदेण एककदो कादूण ओधियं परत्थाण-अद्धा-अप्पावहुगं वत्तइस्सामो ।

§५२५. आयुगवज्जाणं सत्तारस पगदीणं जहणियाओ वंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । चदुण्णं आयुगाणं जहणिया वंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा । उक्क-
स्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । देवगदिउक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा ।
उच्चागोदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । मणुसग० उक्कस्सिया वंध-
गद्धा संखे० गुणा । पुरिसवेदस्य उक्कस्सिया वंधगद्धा संखेज्जगुणा । इत्थि-
वेदस्स उक्क० वंधगद्धा संखेज्जगुणा । सादावे० हस्सरदि-जसगित्तिस्स उक्कस्सि०
बंधगद्धा संखे० गुणा । तिरिक्खगदि-उक्कस्सि० वंधगद्धा संखेज्जगुणा । णिरयग० १०
उक्कस्सि० वंधगद्धा संखे० गुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्जसगित्ति० उक्कस्सि०
बंधगद्धा विसेसा० । णवुंसगवेदस्स उक्कस्सि० वंधगद्धा विसेसा० । णीचागोदस्स
उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसा० ।

[परस्थान-अद्धा-अल्पवहुत्व]

§५२४. अब परस्थान-अद्धा अल्पवहुत्व प्रकृत है । यहांसे परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य तथा उत्कृष्ट पद द्वारा पृथक्-पृथक् करके ओषसम्बन्धी परस्थान-अद्धा-अल्पवहुत्व कहेंगे ।

[विशेष—यहां परिवर्तमान प्रकृतियोंका परस्थानमें जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थानों द्वारा अल्प-वहुत्वका प्रतिपादन करते हैं । यहां ४ गति, ३ वेद, २ गोत्र, २ वेदनीय, ४ आयु, हास्यरतियुगल तथा यशःकीर्तियुगल इन २१ प्रकृतियोंका ओष तथा आदेशसे जघन्य, उत्कृष्ट कालका वर्णन किया गया है ।]

§५२५. आयुको छोड़कर (पूर्वोक्ति) सत्रह प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य काल ममान नामसे अल्प है । ४ आयुके बंधकोंका जघन्य काल सद्दश रूपसे संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । देवगतिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । उषसोत्रके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । मनुष्यगतिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पुरुषवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । न्नीवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । सातवेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । तिर्यचगतिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असादा, अरदि, सोग, अज्जसगित्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नपुंसकवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

उक्कस्सि० वंधग० विसेसा० । तिरिक्खग० उक्कस्सिया वंधग० विसेसा० । णीचा-
गोदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसा० ।

§५२८. एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं सव्वएहंदि० सव्वधिगलिंदि० सव्वपुढवि०
आउ० वणप्फदिणिगोदाणं च ।

५ §५५९. देवेसु—भवणवासिय याव ईसाण त्ति पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-भंगो ।
सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयभंगो । आणद याव उवरिमगेवज्जात्ति-आयुग-
वज्जाणं तेरसणं पगदीणं जहणिया वंधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जहणिया
बंधगद्धा संखे० गुणा । उक्क० वंधग० संखे० गुणा । उच्चागो० उक्क० वंधग०
संखे० गुणा । पुरिसवे० उक्क० वंधग० संखे० गुणा । इत्थिवे० उक्क० वंधग० संखे०
१० गुणा । साद० हस्स-रदि-जस० उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसा० । णवुंसवे० उक्क०
बंधग० संखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्ज० उक्क० वंधग० विसेसा० । णीचागो०
उक्क० वंधग० संखे० गुणा । अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति-आयुगवज्जाणं अट्ठणं पगदीणं
जहणिया वंधगद्धा सरिसा थोवा । आयुग० जह० वंधगद्धा संखेज्जगुणा । उक्क०

बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । तिर्यचगतिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीच
गोत्रके बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

§५२८. सर्व अपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय सर्व पृथ्वीकाय-अपकाय तथा
चनस्पतिनिगोदोंका इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

§५२९. देवोंमें—भवनवासियोंसे ईशान पर्यन्त पंचेन्द्रिय-तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान भंग है ।
सनत्कुमारसे सहस्रारपर्यन्त नरकगतिके समान भंग है । आनतसे उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त आयुको
छोड़कर १३ प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

[विशेष—आनतादि स्वर्गोंमें केवल मनुष्यगतिका बंध होता है । अतः परिवर्तमान १७ प्रकृ-
तियोंमेंसे गति चतुष्क घटा ली गई । इस प्रकार १३ प्रकृतियाँ शेष रहीं ।]

मनुष्यायुके बंधकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । उच्च-
गोत्रके बंधकोंका उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा है । पुरुषवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।
स्त्रीवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधकोंका
उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नपुंसकवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाता, अरति,
शोक, अयशःकीर्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीचगोत्रके बंधकोंका उत्कृष्ट काल
संख्यातगुणा है ।

अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त आयुको छोड़कर आठ प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्यकाल
समान रूपसे स्तोक है ।

[विशेष—अनुदिशादि स्वर्गोंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं । उनके नीच गोत्र, स्त्रीवेद तथा
नपुंसकवेदका बंध नहीं होता है । अतः गोत्रद्वय तथा तीन वेदनिमित्तक परिवर्तन न होनेसे
आनतादिकी १३ प्रकृतियोंमेंसे ५ प्रकृतियाँ घटानेपर ८ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं ।]

बंधग० संखे० गुणा । साद-हस्तरदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । असाद-
अरदि सो० अज्जस० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा ।

§५३०. तेउ० वाउ०—आयुगवज्जाणं एक्कारसणं पगदीणं जहणिया
बंधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जहणिया बंधगद्धा संखे० गुणा । पुरिसवे०
उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा । इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा । साद- ५
हस्तरदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्जस० उक्क०
बंधगद्धा संखे० गुणा । णवुंस० उक्क० बंधगद्धा विसेसा० ।

§५३१. पंचमण० पंचवचि० वेउच्चि० वेउच्चियमि० आहार० आहारमि०
कम्मइग० अवगदवे० कोधादि० ४ सातण० सम्मामि० ति साधेदूण णेदव्वं । णवारे
क्रोधा० ४ कसायाणं साधेदूण णेदव्वं । कसायकालो थोवो । उक्क० बंधगद्धा १०
संखे० गुणा । ओरालि० ओरालिमि० पांचंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो ।

§५३२. विभंगे—णिरयभंगो । आभि० सुद० ओधि० आयुगवज्जाणं अट्ठणं पगदीणं
जहणिया बंधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जह० बंधगद्धा संखे० गुणा । उक्क०

मनुष्यायुके बंधकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता,
हास्य, रति, यशःकीर्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयशः-
कीर्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

§५३०. तेजकाय, वायुकायमें—आयुको छोड़कर ११ प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्यकाल समान
रूपसे स्तोक है ।

[विशेष—अनुदिश सम्वन्धी पूर्वोक्त आठ प्रकृतियोंमें अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, यशः-
कीर्ति, अयशःकीर्ति, साता, असातामें वेदत्रयको जोड़ने ११ प्रकृतियां होती हैं । यहां वेदत्रयका
बंध होनेसे परिवर्तमान प्रकृतियोंमें उनको परिगणित किया है ।]

तिर्यचायुके बंधकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । पुरुषवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल
संख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता, हास्य, रति, यशः-
कीर्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बंधकोंका
उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । नपुंसकवेदके बंधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

§५३१. ५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैक्रियिकाययोगी, वैक्रियिकमिथकाययोगी, आहारक-
आहारकमिश्रयोगी, कार्माणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि चार कषाय, नासादनसम्प्रकल्पी,
सम्यक्मध्यात्वी पर्यन्त परिवर्तमान प्रकृतियोंके बंधकोंका बंधकाल निकालकर जान लेना चाहिए ।
विशेष—क्रोधादि चार कषायोंमें विचार करके भंग जानना चाहिए । कषायका बंध स्तोक
है । बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

औदारिक तथा औदारिकमिश्रकाययोगके—पंचेन्द्रिय तिर्यच-अपवर्तकके समान भंग है ।

§५३२. विभंगावधिमें—नृकगतिके समान भंग है अर्थात् यहां १५ प्रकृतियां हैं । आभिनि-
बोधक, श्रुत-अवधिज्ञानमें—आयुको छोड़कर शेष ८ प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य काल समान
रूपसे स्तोक है ।

बंधगद्धा संखे० गुणा । साद-हस्त-रदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । असाद-
अरदि-सोग० अज्ज० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा । एवं मणपज्जव० । णवरि
दो-आयुगाणं भाणिदच्चं (व्वे) एकं चैव भाणिदच्चं ।

५ §५३३. संजदा-सामाइ० छेदो० परिहार० संजदासंजद० मणपज्जव० भंगो ।
ओधिदं० ओधिणाणिभंगो ।

§५३४. किण्णणीलकाउलेस्सि० णिरयभंगो । तेउ०-देवोघं । पम्म०-सहस्सारभंगो ।
सुक्कले०-आणदभंगो ।

§५३५. सम्मादिट्ठी-खड्ग० वेदग० उवसम० ओधिणाणि-भंगो । णवरि उवसम०
आयुगाणं णत्थि अप्पावहुगं ।

१० §५३६. आहाराणुवादेण-आहारा मूलोघं । अणाहारा-कम्म (?) कम्मइ० का-
जोगि-भंगो ।

एवं परत्थाण-अद्धा-अप्पावहुगं समत्तं ।

एवं पगादिवंधो समत्तो ।



[विशेष-यहां साता, हास्य, रति, अरति, शोक, असाता, शःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति ये ८
परिवर्तमान प्रकृतियां हैं ।]

आयुके बंधकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता-
हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयशः-
कीर्त्तिके बंधकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । मनःपर्ययज्ञानमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।
विशेष, यहाँ बंधकोंमें दो आयुके स्थानमें एक देवायुका ही बंध कहना चाहिए ।

§५३३. संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा संयतासंयतोंमें—मनःपर्ययवत् भंग है ।
अवधिदर्शनमें—अवधिज्ञानका भंग है ।

§५३४. कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामें—नरकगतिके समान भंग है । तेजोलेश्यामें—देवोंके ओघ-
वत् है । पद्मलेश्यामें—सहस्रार स्वर्ग समान भंग है । शुक्ललेश्यामें—आनत-स्वर्गका भंग है ।

§५३५. सम्यग्दृष्टि, ध्यायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम, सम्यग्दृष्टिमें—अवधि-
ज्ञानके समान भंग है । विशेष, उपशमसम्यक्त्वमें आयुकृत अल्पबहुत्व नहीं है ।

[विशेष-सम्यग्दृष्टिके मनुष्य अथवा देवायुका ही बंध होता है, उपशम सम्यक्त्वमें
इन दोनोंका भी बंध नहीं होता है ।^१]

§५३६. आहारानुवादेसे—आहारकोंमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए । अनाहारकमें—कार्माण
कार्ययोगवत् जानना चाहिए ।

इस प्रकार परत्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार प्रकृतिबंध समाप्त हुआ ।



महाबन्ध मूलगत-गाथानुक्रमणिका

	पृ०		पृ०
अयणं संवच्छर पलिदो	२१	तेजासरीरत्नंभो	२३
असुराणमसंखेज्जा	२२	पणुवीसं जोयणाणं	२२
अंगुलमावलियाए	२१	परमोधि असंखेज्जा	२३
आणदपाणदवासी	२३	परमोधिमसंखेज्जा	२२
आवलियपुधत्तं पुण	२१	भरदं च अद्धमासं	२१
उक्कस्समणुस्सेसु य	२३	सक्कीसाणे पढमं	२२
ओगाहणा जहण्णा	२१	सव्वं पि लोग्गणालिं	२३
काले चट्ठण्हं बुड्डी	२२	संखेज्जदिमे कालं	२१
तेजाकम्मसरीरं	२२		



शब्द सूची

अट्ठपद ३१, ३ ।	उवसमिग २५९, ४। २५९, ६ ।
अथिरादिपंच १४८, १ ।	एइंदियदंडग ८८, ७ ।
अथिरादिछक्क १४४, ६। १५०, ३ ।	ओव ६९, ३। ९५, ३। ११६, ३। १३३, ३। १४१, २।
अद्धा अप्पा बह्ग २७९, १। ३३४, १ ।	१७६, ३। १८६, ३। १९१, ३। २३६, ३। २५०, ३।
अप्पडिवादी २३, ८ ।	२५९, ३। २७९, ४। ३१५, २। ३३४, ४ ।
अप्पाबह्ग २७९, १ ।	ओदइग २५९, ३। २५९, ५ ।
अभिकखणं णाणोपयुत्तदा ३६, ५ ।	ओधी २१, ५ ।
अरहकम्म २७, ४ ।	ओधिविपय २२, १० ।
अरहंतभत्ती ३६, ४ ।	ओधिणाणावरणीय २४, २ ।
असंखेज्ज पोग्गलपरियट्ठ ४७, १ ।	अंतराणुगम ६९, २। २५०, २ ।
आदिकम्म २७, ३ ।	कल २७, ३ ।
आदेस ७१, १। १३४, ४। १४३, ७। १७७, १। १८७, ६।	कालाणुगम २३६, ३ ।
१९४, ४। २३७, ३। २५०, ९। २६२, ३।	केवलगाणावरणीय २३, १ ।
२८२, ११। ३१६, ५। ३३८, १५। २४४, ५ ।	कइग २५९, ४। २५९, ६ ।
आवासएसु अपरिहीणदा ३६, १ ।	खगलववडिउत्तमदा ३६, २ ।
एवम २५, २ ।	खाणोवत्तमिग २५९, ६ ।
उज्जुमदिणाण (तिविध) २४, ४ ।	खुदानवग्गह ४६, ११ ।
उवम २५, २ ।	खेचाणुगम १८६, २ ।

जह्णहोषी २२,८। २३,६।
 जीव अप्यात्रहुग २७९,१। २७९,२।
 जीवसमास ३२,२।
 जुदि २७,३।
 तक्क २७, ३।
 तसथावरादिसच्चयुगल २०२,५।
 तसथावरादिणयुगल १०३,३। ११७,६। १४८,२।
 १५१,९। १५९,९। १६६,५।
 १९६,३।
 तसथावरादि अट्टयुगल १६४,१२।
 तसथावरादि छक्कयुगल १५२,१०।
 तसादि दसयुगल ७६,९। ७९,११।
 तित्थयर ३५,१३।
 तित्थयरणाम गोदकम्म ३५,१५।
 थावरअथिरादिपंच १५९,३।
 थिरादि छक्क १५१,६। १५२,२।
 थिरादि छ युगल १०,३९।
 थिरादि तिण्णियुगल १०१,९।
 थिरादिदोण्णियुगल ८३,६। ८४,५।
 थिरादि पंचयुगल १०६,४। १९५,१।
 दंसणविसुज्झदा ३५,१६।
 पम्मतित्थयर ४१,१।
 धुविग १५१,१। १६०,१०। १७७,७।
 पगदिवंधवोच्छेद ३२,३।
 पडिवादी २३,८।
 पडिसेविद २७,३।
 परत्थाण २७९,२।
 परत्थाण अद्धा अप्यात्रहुग ३३४,१। ३४३,१।
 परत्थाण जीव अप्या बहुगाणुगम ३१५,१।
 परत्थाणसण्णियास ९५,१। ११६,२।

परिमाणुगम १७६,२।
 परमोधि २२,५।
 पवयण भत्ती ३६,४।
 पवयण भावणदा ३६,५।
 पवयणवच्छल्लदा ३६,४।
 पुरिसवेददंडग ४८,१।
 पंचेदियदंडग ४८,२।
 फांसणाणुगम १९१,२।
 बहुमुदभत्ती ३६,४।
 बंधसाभित्तिचय ३२,१।
 भागाभागाणुगम १४१,२।
 भावाणुगम २५९,२।
 भंगविचयाणुगम १३३,२।
 मणपज्जवणाणावरणीय २४,१।
 यया छामे (थामे) तवे ३६,२।
 लल्लिसंवेगसंपण्णदा ३६,२।
 विणयसंपण्णदा ३६,१।
 विपुलमदिणाण (छव्विह) २४,४।
 वेडविय छक्क १७२,२। १७६,८।
 हस्सादि दो युगल १७०,४।
 सत्थाण २७९,२।
 सत्थाण सण्णियास ९५,१।
 साददंडग ४८,१।
 सादियबंध ३१,१।
 सामाणं वेजावसज्जागयुत्तदा ३६,३।
 सामाणं समाधिमरणदा ३६,३।
 सोलवद निरिदिचारदा ३६,१।
 सोलस कारण ३५,१६।
 संभम २५,२।

ERRATA

Refer page 15 of the preface, line No. 13-15

"Date of the Author:—The exact date of the author has not been known but it appears that the work must have been compiled in the beginning of the Christian era. "*"

* Refer Hindi Introduction, Page 40

हम उन धर्म-प्रेमी महाशयों का विशेषतः मूडविद्री के पू० भट्टारकजी का स्मरण करके आत्म-विभोर हो उठते हैं, जिन्होंने घोर संकट काल में, जब कि शास्त्रों को जला-जला कर स्नान के लिये गरम पानी किया जाता था, मन्दिर विध्वंस किये जाते थे; प्राणों से लगाकर इस ग्रंथरत्न की रक्षा की और उपयुक्त समय आने पर उनके उत्तराधिकारियों ने भगवन्त भूतवलि की यह वरोहर समाज के कल्याणार्थ साँप दी।

समाज उन सभी बन्धुओं का आभारी है जिन्होंने इस ग्रन्थराज की गोपनीय भण्डार से उपलब्धि और प्रतिलिपि कराने में एक क्षण के लिये भी सहयोग दिया है, अथवा प्रयत्न किया है।

वे महानुभाव भी कम आदर के पात्र नहीं हैं जिन्होंने ग्रन्थ की प्राप्ति में विघ्न नहीं डाला, क्योंकि बने बनाये शुभ कार्य तनिक से विघ्न से छिन्न भिन्न होते देखे गये हैं।

पं० परमानन्द जी साहित्याचार्य और पं० कुन्दनलाल जी शास्त्री के हम विशेषतः आभारी हैं जिन्होंने उक्त ग्रंथ के सम्पूर्ण आद्य अनुवादमें दिवाकरजी को नींव की ईंट की तरह सहयोग देकर इस ग्रन्थप्रासाद की जड़ जमाई।

ज्ञानपीठ के प्राकृत विभाग के सम्पादक ख्यातिप्राप्त डॉ० हीरालालजी ने इस ग्रन्थ का प्रास्ताविक लिखा है और संस्कृत विभाग के सम्पादक न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमार जी की देख-रेख में मुद्रण और प्रकाशन हुआ है। समस्त प्रूफ उन्होंने देखे हैं। दोनों ही विद्वान ज्ञानपीठ के विशिष्ट अंग हैं, उन्हें धन्यवाद देने का हमें अधिकार नहीं है।

हम उन सभी बन्धुओं के आभारी हैं जिनकी कृपा या भावनाओं से यह ग्रन्थ-राज प्रकाश में आया और हमें भी घर बैठे दर्शनों और स्वाध्याय का पुण्य प्राप्त हुआ।

भार्गव प्रेस के मालिक पं० पृथ्वीनाथजी भार्गव भी धन्यवाद के पात्र हैं।

डालमियानगर,
५ मई १९४७

अयोध्याप्रसाद गोयलीय,
मन्त्री

ग्रन्थ की लागत—

११००) कागज ग्रन्थ
२०००) छपाई ”
१२००) जिल्द ”

२००) कवर डिजाइन, क्लॉक की छपाई, कागज
४००) व्यवस्था, प्रूफरीडिंग आदि
४५००) विक्री खर्च, विज्ञापन, भेंट, फुटकर खर्च आदि

१००००) लगभग

प्रास्ताविकं किञ्चित्

जब मैंने षट्खंडागमका सम्पादन प्रारम्भ किया था तब मेरे मार्गमें अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित थीं । तो भी जब उक्त ग्रंथका प्रथम भाग सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ और लोगोंने उसका आनन्दसे स्वागत किया, तब मुझे यह आशा हो गई कि कठिनाइयोंके होते हुए भी यथा-समय तीनों सिद्धांत ग्रंथ प्रकाशमें लाये जा सकेंगे । फिर भी मुझे यह भरोसा नहीं था कि मेरी आशा इतने शीघ्र सफल हो सकेगी और साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें संसार-युद्धके कारण अधिकाधिक बाधाओंके उपस्थित होते हुए भी, जयधवलका प्रथम भाग सन् १९४४ में तथा महाबंधका प्रथम भाग सन् १९४७ में ही प्रकाशित हो सकेगा । जैनसमाज और उसके विद्वानोंके इन सफल प्रयत्नोंसे भविष्य आशापूर्ण प्रतीत होता है ।

मैं षट्खंडागमके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें बतला चुका हूँ कि धवल और जयधवल सिद्धांतोंकी प्रतिलिपियाँ सन् १९४४ में ही मूडविद्रीके शास्त्रमंडारसे बाहर आ गई थीं और उसके पश्चात् कुछ वर्षोंमें उनकी प्रतियाँ उत्तर भारतमें उपलब्ध हो गईं । किंतु महाधवल नामसे प्रसिद्ध सिद्धांत ग्रंथ फिर भी मूडविद्री सिद्धांत मंदिरमें ही सुरक्षित था । जब मैंने सन् १९३८-३९ में इन सिद्धांत ग्रंथोंके अन्तर्गत विषयोंको जाननेका प्रयत्न प्रारंभ किया तब मुझे यह जानकर बड़ा विस्मय हुआ कि जो कुछ थोड़ा बहुत वृत्तान्त महाधवलकी प्रतिके विषयमें प्राप्त हो सका था उसके आधारपर उस प्रतिमें केवल वीरसेनाचार्यकृत सत्कर्म चूलिकाकी एक पंजिका मात्र है और महाबंधका वहाँ कुछ पता नहीं चलता तब मैंने इस विषयपर अपनी आशंका और चिंताको प्रकट करते हुए कुछ लेख प्रकाशित किये और अधिकारियोंसे इस विषयकी प्रेरणा भी की कि वे मूडविद्रीकी ताडपत्रीय प्रतिका सावधानीसे समीक्षण कराकर महाबंधका पता लगावें । मुझे यह कहते हर्ष होता है कि मेरी वह प्रार्थना शीघ्र सफल हुई । मूडविद्रीके भट्टारक जी महाराजने, पं० लोकनाथ शास्त्री व पं० नागराज शास्त्रीसे ताडपत्रीय प्रतिकी जाँच कराई और मुझे सूचित किया कि उक्त पंजिका ताडपत्र २७ पर समाप्त हो गई है, एवं आगेके पत्रोंपर महाबंधकी रचना है । देखिये जैनसिद्धांत भास्कर (भाग ७, जून १९४०, पृ० ८६-९८) में प्रकाशित मेरा लेख 'श्री महाधवलमें क्या ?' एवं षट्खंडागम भाग ३, १९४१ की भूमिका पृ० ६-१४ में समाविष्ट 'महाबंधकी खोज' ।

इस अन्वेषणसे उत्पन्न हुई रुचि बढ़ती गई और शीघ्र ही, विशेषतः पं० सुमेरचंद्र जी दिवाकरके सत्प्रयत्नसे, दिसम्बर १९४२ तक महाबंधकी प्रतिलिपि भी तैयार हो गई व उन्होंने प्रस्तुत प्रथम भागका सम्पादन व अनुवाद कर डाला । उनके इस स्तुत्य कार्यके लिये मैं उन्हें बहुत धन्यवाद देता हूँ । पंडितजीने अपनी प्रस्तावनामें जो सामग्री उपस्थित की है उसके साथ षट्खंडागमके प्रकाशित ७ भागोंमें मेरे द्वारा लिखी गई भूमिकाओंको पढ़ लेनेकी मैं पाठकोंसे प्रेरणा करता हूँ । इससे इन सिद्धांतोंके इतिहास व विषय आदिका बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो

सकेगा। पंडितजीकी भूमिकाके पृ० ३० पर णमोकार मंत्रके जीवद्वानके आदिमें अनिवद्ध मंगल होनेके सम्बन्धका वक्तव्य मुझे विलकुल निराधार प्रतीत होता है, क्योंकि वह प्राचीन प्रतियोंके उपलब्ध पाठ एवं आचार्य वीरसेनकी टीकाकी युक्तियोंके सर्वथा विरुद्ध है। इस सम्बन्धमें पट्खंडागम भाग २ की भूमिकाके पृ० ३३ आदि पर मेरा 'णमोकार मंत्रके आदि कर्ता' शीर्षक लेख देखें।

महाधवल सिद्धांत नामसे प्रसिद्ध शास्त्र यथार्थतः पट्खंडागमका ही महाबंध नामक छठवाँ खंड है। जैसा कि मैं उसके प्रथम भागकी भूमिकामें बतला चुका हूँ। वहाँ मैं इस ग्रंथके कर्ताओं व समय आदिके सम्बन्धका भी विचार कर चुका हूँ। तबसे अभी तक कोई ऐसी नवीन सामग्री प्रकाशमें नहीं आई जिसके कारण मुझे अपने उस मतमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो।

यद्यपि महाबंध पट्खंडागमका ही एक अंश है और उन्हीं भूतबलि आचार्यकी रचना है जिन्होंने पूर्व पांच खंडोंके बहुभागी रचना की है, यहाँ तक कि उसका मंगलाचरण भी पृथक् न होकर चतुर्थ खंड वेदनाके आदिमें उपलब्ध मंगलाचरणसे ही सम्बद्ध है। तथापि यह रचना एक स्वतंत्र ग्रंथके रूपमें उपलब्ध होती है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं—एक तो यह ग्रंथ पूर्व पांचों भागोंको मिलाकर भी उनसे बहुत अधिक विशाल है, और दूसरे उस पर धवलाकार वीरसेनाचार्यकी टीका नहीं है, क्योंकि उन्होंने इतनी सुविस्तृत रचनापर टीका लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी। इस ग्रंथका विषय बहुत ही शास्त्रीय है जिसमें केवल जैनदर्शनके उन्हीं मर्मज्ञोंकी रुचि हो सकती है जिन्हें कर्मसिद्धांत सम्बन्धी सूक्ष्मतम व्यवस्थाओंकी जिज्ञासा हो।

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रंथमालाके प्राकृत विभागके सम्पादक और नियामक के नाते मैं इस अवसर पर श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी जैनका अभिनन्दन करता हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ जैसी संस्था स्थापित की व भारतीय संस्कृतिकी छुपी हुई निधियों का संसारको परिचय करानेके हेतु अपनी मातृश्रीकी स्मृतिमें यह मूर्ति देवी जैन ग्रंथमाला प्रारंभ कराई। मुझे आशा और विश्वास है कि उनकी धर्मपत्नी तथा ज्ञानपीठ की सञ्चालक समितिकी अध्यक्ष श्रीमती रमारानीजीकी रुचि तथा संस्थाके संचालक न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमारजी शास्त्रीके परिश्रम, अभियोग और उत्साहसे संस्थाका कार्य उत्तरोत्तर गतिशील होगा। मेरी सब विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे संस्थाके उद्देश्यकी पूर्तिमें सहयोग प्रदान करें।

मारिस कालेज,
नागपूर
१५-४-४७

हीरालाल जैन,
ग्रंथमाला सम्पादक।

(१) “इदं पुण जीवद्वानं णिवद्धमंगलं। यत्तो ‘इमेसिं चोदसण्हं जीवसमासाणं’ इदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिवद्ध ‘णमो अरिहंताणं’ इच्चादि देवदाणमोक्कारदंसणादो।” —ध० टी० पृ० ४१।

णिवद्धका अर्थ स्वरचित है, जिसे दिवाकरजीने स्वयं अपनी भूमिकाके पृ० २९ में स्वीकार किया है। यथा—“अर्थात् सूत्रके आदिमें सूत्ररचयिताके द्वारा रचित देवता नमस्कार निबद्ध मंगल है।”

FOREWORD.

When I started editing the SATKHANDAGAMA, there were several difficulties in my way. Still, when the first volume was published in 1939 and was received with general applause, I became hopeful that, inspite of all the hindrances then existing, all the three Siddhanta works would be brought to light in due course. But I did not then expect that my hope will materialize so soon as to lead to the publication of JAYADHAVALA Vol. I in 1944 and of MAHABANDHA Vol. I in 1947, inspite of the additional difficulties in the way of such literary efforts, created by the World War. These successful efforts of the Jaina Community and its scholars augur well for the future.

I had already described in my introduction to Vol. I of Satkhandagama, how copies of DHAVALA and JAYADHAVALA Siddhanta had emerged from the Moodbidri temple as early as 1915 and how the same had become available in North India during the subsequent years. But the so-called MAHADHAVALA Siddhanta was still confined to the private archives of the Moodbidri temple. When I examined critically the contents of these Siddhanta works in 1938-39, I was startled to find that the scanty information available about the manuscript of Mahadhavala only showed the existence of a gloss (Panchika) on the supplementary portion (Chulika) of Virasena's commentary Dhavala, and there was no trace of the Mahabandha. I, therefore, published a few articles on the subject expressing my anxiety in the matter and also urged upon the proper authorities the necessity of a thorough examination of the palmleaf manuscript in search of Mahabandha. I am glad to say that my appeal met with a ready response. The Bhattarakaji got the palmleaf manuscript examined by pandit Lokanath Shastri and his colleagues, and reported to me that the gloss ended on leaf 27 and the rest of the MS. did contain the MAHABANDHA (See my article on "*Shri Mahadhavala men kya ?*" in Jaina Siddhanta Bhaskara Vol. VII, June 1940, pp. 86-98; and "*Mahabandha ki khoja*" in Satkhandagama Vol. III, 1941, Introduction, pp. 6-14.)

The interest aroused by this discovery was kept up, and a transcript of the Mahabandha was completed by the end of 1942, mainly through the efforts of Pandit Sumerchandra Diwakara, the editor of this volume, to whom my best thanks are due for the laudable task he has done in obtaining, editing and translating the text, as well as in writing the introduction which the readers would be well advised to supplement by the information presented in my introductions to the seven volumes of Satkhandagama so far published, in order to get a clear idea of the

history and subject-matter of these works. The remarks of Pandit Sumerchandrajī on page 30 of his introduction regarding the Pancha Namokara Mantra as '*anibaddha mangala*' in Jivatthana appear to me to be entirely baseless as they are against the reading available in the old MSS. and the arguments set forth by Virasenacharya which I have discussed in my introduction to Vol. II, p. 33 ff. under the heading '*Namokara Mantra ke Adikarta*.'

The MAHABANDHA, popularly known as Jayadhavala Siddhanta forms the sixth section (khanda) of the Satkhandagama, as I had already shown in my introduction to Vol. I of that work where I had also discussed all the evidence available on the point of authorship and age of these works. No new material has since been brought to light and therefore my views on the subject remain unaltered.

Though Mahabandha is an integral part of the Satkhandagama, and is composed by the same author Bhutabali who did not even provide it with a separate benediction (Mangala), but made it share the one given at the beginning of the fourth Khanda Vedana, yet it has come down to us in a separate manuscript for two reasons. Firstly, the composition is much larger in volume than even all the first five sections put together; and secondly, it contains no commentary by Virasena, the author of Dhavala, who thought it unnecessary to comment upon a work which was so exhaustively self-sufficient. The subject-matter of the work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina philosophy who desire to probe the minutest details of the Karma Siddhanta.

As the General Editor of the Series, I take this opportunity to congratulate and offer my best thanks to Mr. Shantiprasad Jain for establishing the BHARATIYA JNANA-PITHA at Benares and starting this series of publications in memory of his mother Moortidevi, with the noble object of making known to the world the hidden treasures of ancient Indian culture. I hope and trust that with the keen interest of Mrs. Shantiprasad Shrimati Rama Rani, the President of the Managing Committee, and the industry, zeal and enthusiasm of Nyayacharya Pandit Mahendrakumar Shastri, the acting Director of the institution, the work started would continue to advance steadily towards the goal. I appeal to all scholars to co-operate with the institution in achieving its laudable object.

Morris College,
Nagpur. }
15th March, 1947. }

H. L. Jain,
M. A., LL. B., D. Litt.,
General Editor.

PREFACE.

We have great pleasure in placing before the literary world the first volume of *Mahabandha* alias *Mahadhavala*, which was hitherto hidden in the Shashtra Bhandar of Moodbidree (South Kanara). *Mahabandha and its importance.* It is one of the three most reputed and revered Jain canonical works, whereof Jayadhavala and Dhavala have seen the light of the day and have reached the hands of scholars. Ordinarily this Mahabandha is supposed to be as remarkable as the said two Shastras but as a matter of fact, this is worthy of greater attention, since it is the biggest Prakrit Sutra work consisting of forty thousand slokas, composed in the beginning of the Christian era.

This Mahabandha is the sixth part of the great *Shatkebandagama Sutra*. The commentary on the five parts is called *Dhavala*, composed by Acharya Virasen in the 9th century A. D. during the reign of Jain monarch Amoghavarsha having 72000 slokas. The original sutras consist of 6000 slokas, out of which only 177 sutras had been written by *Pushpadanta* Acharya and the remaining portion was composed by Sri *Bhutabali* Acharya. Thus the entire composition of Bhutabali comes to about 46000 slokas.

The other sacred work *Jayadhavala* is a commentary written in the 9th century A. D. by Virasen and Bhagwata Jinasen Acharya in 60000 slokas on one of the most sacred scriptures, named *Kashaya Pahuda* of *Gumadhara* Acharya. This Kashaya Pahuda consists of only hundred and eighty *gathas*, which also belong to the early part of the Christian era. Naturally therefore Dhavala and Jayadhavala commentaries cannot rank with Mahabandha from antiquarian stand-point.

This work deals with the Bandha category, which is one of the sevenfold Tattvas in Jainism, in the Jain Sauraseni Prakrit. The language is simple and lucid. The entire work is in prose, with the exception of about one and a half dozen verses. About three thousand slokas of the work are missing, since they have been eaten by worms and so they cannot be replaced by any amount of human effort.

The entire work has no historical reference ; even the name of the author Acharya Bhutabali does not appear in such a voluminous *Historical reference.* composition, probably reflecting author's detachment for name, which according to poet Milton 'is the last infirmity of noble mind.'

In the panegyric the name of the work appears as Mahabandha, 'which is a mine of meritorious karmas' (सत् पुण्याकर महाबंधदुस्तकं). This book has been referred to in the Dhavala and Jayadhavala on several occasions and its authorship is ascribed to Bhutabali. The prashasti of palm-leaf manuscript mentions, that it was written through the munificence of *Raja Shantisena's* pious and benevolent queen *Mallikadevi* for the purpose of presentation to an erudite *Muniraj Maghanandi* who was the disciple of *Meghachandra Suri* in commemoration of the successful completion of her Panchami-Vrita. This throws light upon the fact that in ancient India the ladies of high family had refined taste and were attached to literature. It is through the generosity of *Mallikadevi*, that we have at least one copy amid us written in the Kannad script. It is really a matter of profound regret that such important work has not been preserved in any other Bhandara.

The Dhavala sheds light upon the descent of this work and the historicity of Monks Bhutabali, Pushpadanta and their spiritual preceptor *Dharasena Acharya*. He was a great soul and an enlightened scholar well-versed in some portions of the Twelve-Angas, which had been composed by the head of Jain hierarchy, *Gautama Ganadhar*, who had received direct Teaching from the Omniscient Tirthankara *Bhagwan Mahavira*. *Dharasena* flourished after *Lohacharya*, who died 683 years after *Mahavira's* Nirvana i. e., in 137 A. D. What is the exact date of *Dharasena* is not definitely known, but it is surmised that he must have lived a couple of years after *Lohacharya*. It is just possible that he might have seen the demise of *Lohacharya*, who possessed the knowledge of entire Acharanga. It appears, therefore, that *Dharasena* should belong to the later half of the second century after Christ.

It transpires that *Dharasena Acharya* was proficient in the occult science of Ashtanga Nimitta Shastra; as also in 'Maha-Karma-Prakriti-Prabhrita.' On one occasion his mind was diverted towards the sudden disappearance of canonical Teachings of *Mahavira Bhagwana* and this fact grieved him a great deal. He made up his mind to preserve the Teaching, which was fresh in his memory. He imparted instructions to *Bhutabali* and *Pushpadanta*, who were sent to him by the religious head of the monks of the south on his requisition for sending disciples specially remarkable for their memory and retentive faculty. After the termination of studies, the disciples left the place in accordance with the wishes of their master. *Pushpadanta* went to *Vanavas Desa* (modern Wandewash), composed 177 sutras and sent them to *Bhutabali* with his high-souled disciple

Jinapalita to *Dramila Desa*. After going through the sutras *Bhutabali* could see into the mind of *Pushpadanta*. *Jinapalita* communicated to him that his master is not expected to survive long, thereby suggesting him that he should speed up into the matter of compiling the teaching imparted to them by the preceptor, *Dharasena Acharya*.

Bhutabali devoted himself to writing with single mind and was successful in completing the whole of *Shatkhandagama Sutra*. Fortunately *Pushpadanta* was alive then, therefore he sent the entire composition to his colleague *Pushpadanta* with the selfsame saint *Jinapalita*. *Pushpadanta* was extremely delighted to see his heartfelt wishes fulfilled and he performed the worship of the scripture with due eclat and grandeur accompanied by the huge assemblage of Jains.

The date of the author is not mentioned, but it appears that it must be assigned to the later part of the 2nd century A. D.
Date of the author.

The subject matter of this book, as already mentioned, is *Bandha*, which forms an essential part of the doctrine of *Karma*. Almost all the believers in transmigration attach importance to the philosophy of *Karmas*. The adage, 'as you sow, so you reap,' is significant enough to show the universality and popularity of this doctrine, but the treatment of this subject is unique in Jain philosophy, in as much as it is scientific, rational and elaborate. No other system has explained this matter, as has been done by Jain thinkers and sages.
The Subject matter.

With a view to appreciate this doctrine it is necessary to comprehend the nature of the world. Our analysis brings out, that there are sentient and non-sentient beings in this universe. The soul is possessed of consciousness, while other objects, devoid of this faculty, are matter, space, time, etc. The special characteristics of matter are taste, smell, touch and colour. All that is perceived by us is material. Like the soul matter is also indestructible. They are eternal, therefore they are not created by any agency, whether super-natural or super-human. The whole panorama of nature is the outcome of the combination or the chemical action of atoms due to the property of smoothness and aridity. The variegated forms and appearances are evolved out of material atoms. But this has driven many a thinker to the conclusion that some Intelligent and Supreme Being is at the helm of affairs. He creates, destroys and recreates. The entire world dances attendance to His sweet wishes. He is Omnipotent, Omniscient and Enjoyer of transcendental bliss.